कथा पंजाब

(खंड- दो)

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

कथा पंजाब

(खंड- दो)

संपादन

हरिभजन सिंह

अनुवाद

सुभाष नीरव

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

अनुक्रम

भूमिका

आज से लगभग दो दशक पूर्व मैंने नेशनल बुक ट्रस्ट के लिए पंजाबी कहानी संग्रह (कथा पंजाब) तैयार किया था। उसी क्रम में अब यह दूसरा कहानी संग्रह प्रस्तुत है। इस तैयारी के दौरान मुझे पंजाबी कथा-साहित्य नई जमीन तोड़ता दिखाई दिया है। इसके अनुभव-क्षेत्र का विस्तार हुआ है और इसकी कहानी-कला में भी नए प्रयोग हुए हैं। चेतना और भावना के रूपों में भी परिवर्तन हुए हैं। इस संग्रह के लिए कहानियां एकत्र करते हुए मेरी दृष्टि निरंतर इन्हीं परिवर्तनों पर टिकी रही है। पुराना, वस्तुतः त्याग नहीं दिया गया है। त्यागा जा भी नहीं सकता। पर नई सोच, नई चेतना और नया सृजन पुरानी सोच, पुरानी चेतना और पुराने सृजन को चुनौती देता दृष्टिगोचर होता है।

हमारी कथा-रचना का परिवेश आमतौर पर गांव व कस्बों का बना हुआ है। हमारे शहर भले ही बड़े से बड़े होते जा रहे हैं पर महानगरों का चलन अभी पंजाब में दिखलाई नहीं देता है। पंजाब के कुछ लोग पंजाब से बाहर महानगरों में जा बसे हैं। उनके माध्यम से महानगरीय दृश्य, दृष्टियां और अंतर्दृष्टियां पंजाबी साहित्य-सृजन में प्रवेश करने लगी हैं। हमारे कहानीकार सुखबीर के कथनानुसार उनकी कहानियों में महानगर (बड़े औद्योगिक शहर) की जिंदगी के वैविध्य चित्रित हुए हैं। महानगर की यह जिंदगी पंजाबी साहित्य में बहुत कम दिखलाई देती है। एक महानगरीय कहानी का चयन, मुझे इस लेखक की कई कहानियों में से करना पड़ा। मेरा प्रयास था कि चुनी हुई महानगरीय कहानी की शक्ल-सूरत इतनी पराई ने लगे कि कहानी गांव व कस्बों की संस्कृति के अभ्यस्त पाठकों के लिए बिलकुल अजनबी हो जाए। 'इकाई' कहानी में भी बहुत कुछ हमारा जाना-पहचाना है। गांवों के प्राचीन रहन-सहन तथा उसके ढंग आदि के तत्व महानगर में शामिल हुए लगते हैं। महानगर में रहते हमारे लेखक की मानसिकता अपनी ग्रामीण पृष्ठभूमि से, असल में, पृथक नहीं हो पाई। फिर भी, मुझे लगा, इस महानगरीय कहानी में कुछ है जो हमारी पाठकीय रुचि को विस्तार देने का प्रयत्न करता है।

पंजाबी कहानी महानगरीय जीवन-व्यवहार से भी आगे जाती हुई प्रतीत होती है। 'एक और हैमिंग्वे' ऐसी ही एक कहानी है जो गांव, कस्बे, नगर, महानगर सभी से मुक्त प्रतीत होती है। इसमें एकमात्र पात्र है जो किसी अन्य पात्र के साथ किसी तरह के मानवीय प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक रिश्ते में नहीं बंधता। जंगल में अकेला बैठा वह आदिम-युग का जंगली

भी नहीं। खानाबदोशी की हालत से चलकर मानव गुफाओं, गांवों, कस्बों, शहरों तक पहुंचा और समाज में बस गया। महानगर से आगे जंगल है, समाज से आगे एकांत। जिंदगी से आगे खुदकुशी है। महानगर से ऊबा हुआ व्यक्ति जंगल तक पहुंचने की आवश्यकता महसूस करता है पर वहां बस नहीं सकता। कबीले/समाज से हटकर वह खुदकुशी के तट पर पहुंच जाता है। इस तट पर बैठे हुए मनुष्य की कहानी है– 'एक और हैमिंग्वे'। यह पंजाबी संस्कृति की कहानी नहीं, इसमें पंजाबियत के ब्यौरे खोजने का यत्न करना भी व्यर्थ है। इसमें एक ही अंतर्कथा (हैमिंग्वे की खुदकुशी) है और वह भी पंजाबी संस्कृति से बाहर की है। इसमें कथात्मक ढांचा भी न होने के बराबर है। मानवीय रिश्तों का तनाव भी नहीं कि कथा-प्रवाह को जन्म दे। अपनी व्यक्तिगत पहचान के अतिरिक्त इसकी कोई समस्या भी नहीं। कथा-साहित्य के आवश्यक तत्वों–समय, स्थान और समाज में विचरने की भी मजबूरी दिखाई नहीं देती। यह मेरे जीवन-चिंतन और साहित्य-चिंतन दोनों को ललकारती रही। क्या मानवीय परंपरा इसी नुक्ते पर आकर टिकेगी? क्या रेखा की भांति बढ़ती हमारी कथा-रचना मानसिक सोच के बिंदु पर पहुंचकर सिकुड़ जाएगी? पहले तो मुझे यह कहानी इतनी अजनबी लगी कि इसे संग्रह में सम्मिलित करते हुए मुझे संकोच हुआ। लेकिन, जब लगा कि यह पंजाबी सृजन का सामर्थ्य, पंजाबी अंतर्धारा, पंजाबी संस्कृति और पंजाबी कथा-परंपरा से आगे भावी प्रतिबिंब सृजित करने के लिए प्रयत्नशील है तो मैंने अनुभव किया कि यह नए उदय की ओर का संकेत है। सो, मैंने इस संग्रह में शामिल कर लिया। स्वीकृति प्रथा के साथ साथ एक-आध अपवाद को शामिल करना भी उचित लगा।

उपर्युक्त दोनों तरह की कहानियों के मध्य एक तीसरे प्रकार की कहानी के नमूने भी पंजाबी में मिलते हैं, जिसके लिए स्वयं कहानीकार 'एक्स्ट्रेक्ट' नाम तजवीज करता है। ऐसी कहानियां न महानगर से संबंधित हैं, न जंगल से। मनोदेश की कहानियां हैं। लेखक (देव भारद्वाज) के अनुसार ये अंतर्मन की कहानियां हैं जो सोचने को विवश करती हैं कि मनुष्य वास्तविकता में ही नहीं, मानसिकता में भी विचरण करता है। मानसिकता जो अपनी सामग्री मिथों से प्राप्त करती है। मिथ जो समय में जन्मता-मरता नहीं, सर्वकाल में ही रूप धारण करता है और सदैव अमर बना रहता है।

पंजाबी कहानी में देश की निम्न जातियों के प्रति रवैया पारंपरिक-सा रहा है। प्रथमतः तो कहानीकारों का ध्यान इस ओर जाता ही नहीं और अगर कहीं वे कथा पारिदृश्य का अंग बन भी जाते हैं तो कथा-दृष्टि पुरानी बनी-बनाई राहों पर ही चलती प्रतीत होती है। हमारा बहुत-सा कथा-परिदृश्य, वस्तु-दृश्य का अनुसरण करता है। गल्प, वस्तु को वस्तुतः बदल तो नहीं सकता, पर निम्न श्रेणियों के मन में बदलाव के लिए पैदा हो रही चेतना को प्रतिबिंबित अवश्य कर सकता है। पंजाबी कहानी इस ओर जागरूक होती प्रतीत होती है। कहानीकार अतर जीत की रचना 'अदना इंसान' इस नई चेतना की बहुत संतुलित

अभिव्यक्ति है। संतुलित दृष्टि, नई कथा-रचना का जाना-माना लक्षण है। एक-पक्षीय पक्षधरता से हमारी कहानी आगे बढ़ती प्रतीत होती है। 'अदना इंसान' नई चेतना के अनुरूप, सहज सम्मान के साथ जीना चाहता है। समाज में वह अभी भी 'अदना' ही समझा जाता है, इस तथ्य को वह भूलता नहीं। वह वर्तमान सचाइयों के अंदर रहते हुए ही अपने अहम को प्रकट करता है। हमारा समय नई चेतना की गतिशीलता और पुरानी परंपरा की स्थितिशीलता के मध्य तनाव का समय है। निम्न जातियों के बहुत सारे लोग अभी भी अदने-से कामों पर ही तैनात हैं। बड़ी जातियों के अफसर लोग उन्हें अभी भी पुराने ढंग से इस्तेमाल करना चाहते हैं। अदने आदमी अपने स्वाभिमान पर हल्का-सा बल देते हैं तो तनाव उपजता है। इस तनाव से जो घटनाएं घटित होती हैं, उनका दुख 'अदने लोगों को' ही सहना पड़ता है। बड़ी जातियों के जिन लोगों के मन को, इन जातियों को पक्ष न्याय-संगत प्रतीत होता है, वे भी उनके हक में आवाज बुलंद करने से कतराते हैं। हमारा वास्तविक और कथात्मक दौर न्यायशील चेतना के उदय का दौर तो है, किंतु न्यायशील कर्म की शुरुआत अभी नहीं हुई। चेतना और कर्म की दरार को समझने और उसके प्रकटीकरण में इन कहानियों की महत्वपूर्ण और सार्थक भूमिका है।

जब मैं अपनी ही संपादित पुस्तक 'कथा पंजाब' (1970) की तुलना में इस संग्रह को पढ़ता हूं तो लगता है कि हमारे कथा-संसार में, वास्तव में, नए विस्तार का रास्ता खुल रहा है। 'अदना इंसान' के अतिरिक्त इस संग्रह में बलदेव सिंह की कहानी 'चक्रवात' भी है। दलित वर्ग का प्रीतू उच्चवर्ग की कथनी-करनी पर टिप्पणी करता है। वह ऊंचे घरों के गुप्त कारनामों को छिपकर बयान करता है। ऊंचे घरों का बीमार-सा करतारा, खुद निम्न जातीय प्रीतू को बीमार करना प्रतीत होता है। बहुत लंबे समय तक निम्न जातियों ने उच्च जातियों के तौर-तरीकों के कारण बीमारी-सी भोगी है और अब वे इस बीमारी से मुक्त होने के पहले पड़ाव पर हैं। प्रेम गोरखी की कहानी 'जीना-मरना' भी इसी दिशा में एक खूबसूरत कहानी है। ये तीनों कहानियां बहुत-सी ऐसी ही कहानियों में से चुनी गई हैं। अदने समझे जाने वाले लोग साहित्य में प्रवेश नहीं पा रहे थे, उन्हें अगर प्रवेश मिलता भी तो अदना-सी भूमिका के लिए ही। साहित्य में यह अचेतन छूआछूत की भावना सामाप्त हो रही है। 'अदने लोग' मुख्य पात्रों की भांति रेखांकित किए जाने योग्य समझे जा रहे हैं। 'एक था राजा' से आरंभ होकर कहानी 'एक था अदना आदमी' तक पहुंच रही है।

चेतना और कर्म का अंतर हमारे दौर का व्यापक लक्षण है। वह निम्न तथा उच्च वर्ग के बीच के फासले को ही प्रकट नहीं करता बल्कि भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में सहज ही पहचाना जा सकता है। पुरानी जीवन-शैली खंडित होती प्रतीत होती है और नई के आसार प्रकट होने लगे हैं पर दोनों में से किसी को पूरी तरह अपनाया नहीं जा सका। पुराने मूल्यों के टूटने और नए मूल्यों के पूरी तरह स्थापित न हो सकने के कारण वातावरण

में अनाचार बढ़ रहा है। जगदीश कौशल की कहानी 'शर्मा सर' हमारे ही समय का चित्र है। पुराना जिम्मेदार किस्म का अध्यापक गायब है, अध्यापक का शिष्टाचार टूट रहा है, कोई बिरला अध्यापक ही आज अध्यापन के उत्तरदायित्व और नैतिकता दोनों का दावेदार नजर आता है। अवसरों की ताक में लगे आदमी की तरह वह अलग ही पहचाना जाता है। एक ही समय में वह गंभीर भी प्रतीत होता है और उपहासास्पद भी। संजीदगी ही उसको हंसी का पात्र बना देती है। करुणा व हास्य की यह असंगतता हमारे समय के वास्तविक एवं काल्पनिक संबंधों को बहुत खूबसूरती से पेश करती है। शर्मा के चरित्र और कर्म में हमें किसी प्रकार का असंतुलन दिखलाई नहीं देता। लेकिन, वह वास्तविकता में अनमेल होने के कारण एक ही समय में स्वभाव में उदार तथा कर्म में प्रभावशाली नजर आता है। स्वभाव में वह अपने समकालीनों से पृथक प्रतीत होता है और कर्म में दूसरे उसे दबाने की कोशिश करते हैं। यह हमारे समय का प्रामाणिक स्वर है, स्थिति में दोफाड़ है जो भावनाओं की तरेड़ (दरार) में रूपायित होता है।

इस कहानी को पढ़ते हुए मुझे चीनी कथाकार लू-शुन की संसार-प्रसिद्ध कहानी 'यह क्यों?' याद आई। गंभीरता और हास्यास्पदता की एक साथ प्रस्तुति मुझे पंजाबी के कथा-सामर्थ्य को विस्तार देती प्रतीत होती है।

ऊपर, कहानियों में जिस प्रकार के तनावयुक्त उदाहरणों की चर्चा की गई है वे गल्प की बुनावट पर प्रभावकारी होते हैं। अब गल्प सीधी लकीर पर चलने से कतराता है। अब तो एक लेखक यहां तक कहता है कि "वह बयान (वृतांत) का लेखक नहीं, वर्णन का लेखक है।" पहले कहानियां हमदर्दी के सिद्धांत पर लिखी जाती थीं। हमदर्दी के पात्र पहले अपनी नेकी के कारण दुख पाते हैं और अंत में, उनकी नेकी एक सुखदायी बिंदु पर पहुंच जाती थी। "कूड़ निखुटे नानका औड़कि सचि रहि" (झूठ झूठ ही रहता है और अंत में, कायम सच ही रहता है)। यह आदि-दुख से अंतिम सुख की ओर, रेखकीय दिशा में किस्सा लिखने का सिद्धांत है। जब नेकी और बदी का बंटवारा इतना स्पष्ट नहीं होता था, तब भी हमारा लेखक एक सैद्धांतिक नुक्ता या एक अंतर्दृष्टि बना लेता था और कहानी उसी नुक्ते को सिद्ध करती हुई खत्म हो जाती थी। गुरबख्श सिंह 'प्रीतलड़ी', सुजान सिंह, कुलवंत सिंह विरक आदि पिछले दौर के लेखक हमदर्दी, स्थापित मूल्यों और निश्चित अंतर्दृष्टियों के लेखक थे। अनजाने में वे 'जन्म-साखियों' के अक्षरों पर ही चलते थे। उनकी अंतर्दृष्टियां नई थीं पर उनकी कथा-रचना के 'अक्षर' पुराने थे। बुनियादी तौर पर वे सहानुभूति-युक्त साहित्य के रचनाकार थे, वे कुछ विचारों, भावनाओं और अंतर्दृष्टियों को अंतिम तौर पर सच और कल्याणकारी समझते हैं। अपने विचारों की परिपक्वता और मानव-कल्याण के प्रति वचनबद्धता के प्रति उनका विश्वास पारंपरिक था और उसको कहानी में अभिव्यक्त करने के ढंग भी जो उन्होंने इस्तेमाल किए, पारंपरिक ही थे। उनकी कहानियां, प्रायः

'सुनिश्चित आदि' से चलकर 'सुनिश्चित अंत' तक पहुंचती थीं। सहानुभूति के मुकाबले आज का लेखक (देव भारद्वाज) निष्पक्षता पर जोर देता है। अपने आपको जीरो डिग्री का कहानीकार मानता है।

वर्तमान दौर की कहानी, भावना से अधिक चेतना भी, सहानुभूति से अधिक सूझ की कहानी है। सहानुभूति में वह पुरानी कहानी से किसी प्रकार की कम नहीं पर वह विचारों की एकपक्षीय परिपक्वता की दावेदार नहीं है। वह किसी सुनिश्चित पूर्व-धारणा से आरंभ होकर किसी सुनिश्चित बिंदु तक नहीं पहुंचना चाहती। वह कुछ सिद्ध नहीं करना चाहती, अपने आसपास की वास्तविकता और मानसिकता को समझना चाहती है, क्योंकि उसे पूर्व-निर्धारित गंतव्य तक नहीं पहुंचना है, इसलिए उसकी कथा बनी-बनाई लकीर की दिशा में नहीं चलती। वह गहराई की दिशा में विचरती है। पूर्व-धारणा अपने स्वभाव में भावुक होती है, वह अपने नुक्ते पर दृढ़ता से अड़ी रहती है। वचनबद्धता को किसी पूर्व-धारणा की टेक होती है। सूझ की तलाश में निकली कहानी सोचती है, वह पूर्व-धारणाओं के सम्मुख प्रश्नचिह्न भी लगाती है, मानव-मन को वचनबद्धता की विवशता से मुक्त करती है। सचेत या अचेत, वर्तमान कहानी पूर्व-धारणाओं की विवशता से पार (आगे) जाने की कोशिश में संलग्न है।

उदाहरण-स्वरूप, प्रेम प्रकाश की कहानी 'घोड़ा' प्रेम-समस्या के सुखदायी और दुखदायी दोनों पक्षों पर विचार करती है। वह न तो प्यार के सुख से प्यार के दुख तक पहुंचती है और न ही दुख का समाधान ढूंढने का प्रयत्न करती है। वह न शुद्ध सुखांत है, न दुखांत। इस कहानी में प्रेम का न कोई पक्षधर है, न अपक्षधर। इसका किस्सा इश्क के आरंभ से इश्क के अंत तक नहीं फैलता। इसीलिए, यह सुखांत-दुखांत की पूर्व-धारणा से पूरी तरह मुक्त है। पुरुष लेखक की यह रचना पुरुष के दृष्टिकोण से नहीं लिखी गई। इसमें स्त्री को अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए पूरा अवसर मिला है। इसका स्वभाव अर्द्धनारीश्वरी है जो स्त्री और पुरुष, दोनों आवाजों को एक-सा महत्व देता है। प्रेमी या प्रेमिका अथवा दोनों के प्रति सहानुभूति प्रगट करने की आवश्यकता भी इस कहानी के कथा-विधान को नहीं। सहानुभूति भी इस कहानी का रचना-सिद्घांत नहीं। यह कहानी स्त्री-पुरुष के संबंध को उसकी व्यापकता में समझने का प्रत्यन करती है। इस कहानी की समस्या (प्रेम) तो पारंपरिक है पर इसकी कथा नए प्रकार की है। कथानक में घटनाओं का महत्व कम कर दिया गया है, जबकि सोच का महत्व बढ़ा दिया गया है। वातावरण पारंपरिक विषय से संबंधित होकर भी पूर्व-धारणाओं से मुक्त है : कोई नई दृष्टि रेखांकित करने अथवा सिद्ध करने की कोशिश नहीं की गई है। प्राचीन धारणाओं को परत-दर-परत देखने-विचारने से मन से जिस प्रकार की निर्मलता और स्पष्टता का वास होता है, पाठक को उसी की प्राप्ति होती है।

स्त्री-पुरुष संबंधों के बारे में उपजी सोच का ही नतीजा है कि पंजाबी में 'पोलियो' और 'दीए-सी जलती आंख' जैसी कहानियां लिखी गईं। इससे पहले स्त्री कभी करुणा का विषय थी, कभी पूजा का। दया और पवित्रता के इस घेरे से परे स्त्री को व्यावहारिक समस्याओं से जूझते हुए वर्जित क्षेत्रों में भी प्रवेश करना पड़ता है, इसकी अधिक प्रामाणिक अभिव्यक्ति उपर्युक्त दोनों कहानियों में है। दोनों कहानियों में स्त्रियां अपने परिवारों की सलामती से पूरी तरह जुड़ी हुई हैं। परिवार के सुख की कामना से ही वे स्वयं को वर्जित घेरों के जोखिम में झोंक देती हैं। नामर्द पति की पत्नी, वंश-परंपरा को चलाने हेतु किसी गुमनाम पराए मर्द से संबंध स्थापित करती है, पर संतानोत्पत्ति के लक्ष्य से आगे नहीं जाती। उसको प्रेम की जरूरत नहीं, संतानोत्पति से आगे जाने का उसका लक्ष्य नहीं। वह प्रेमिका नहीं, मां है। पति के नामर्द होने की अथवा गैर मर्द से गर्भ धारण करने की बात को वह उछालती नहीं। अपने सामाजिक कर्तव्य के पालन हेतु सामाजिक रूढ़ि को तोड़ने वाली यह कहानी नई सोच को अभिव्यक्ति देती है। 'दीए-सी जलती आंख' में स्त्री को ऐसा कुछ नहीं करना पड़ता। कम भूमि वाले परिवार की वह चरित्रवान औरत किए गए वर्जित कर्म को भरी सभा में स्वीकारती प्रतीत होती है और परिवार की आर्थिक स्थिति को कुछ खुशहाल बनाए रखने में मददगार साबित होती है। 'दीए-सी जलती आंख' अपनी ऊष्मा अथवा चकाचौंध से वर्तमान को आतंकित ही करती है अथवा अपने प्रकाश से दूर तक फैले भविष्य को भी प्रकाशमान करती है?—यह प्रश्न पाठक के मन में उपजता है और कहानी की सार्थकता को रेखांकित करता है।

वस्तुजगत में, गुप्त तौर पर ऐसी कई घटनाएं सभ्यता के आदि काल से होती रही होंगी पर साहित्य के प्रकट देश में उन्हें प्रवेश न मिल सका। जो कुछ वस्तुजगत में वर्जित होने के बावजूद गुप्त रूप से घटता रहा, वह साहित्य-जगत में वर्जित ही रहा। आज की कहानी छिपी हुई वास्तविकता के बारे में सोचती है और उसे शब्द-रचना के प्रकाश-वृत्त में आने का अधिकार देती है। वर्जित आज भी वर्जित ही है। पर वर्जित क्यों है, इसको पंजाबी कहानी ने अपने ढंग से अभी-अभी ही विचारा और अभिव्यक्त किया है। यह मुक्त-चिंतन और मुक्त-सृजन का समय है जिसमें 'डैड-लाइन' (प्रेम प्रकाश), 'संगचूड़' (तरसेम नीलगिरी), 'पोलियो' (कुलदीप बग्गा), 'दीए-सी जलती आंख' (गुरबचन सिंह भुल्लर) जैसी कहानियों की रचना संभव हो सकी। स्मरण रहे कि ये कहानियां दमित भावनाओं की आवारा अभिव्यक्ति नहीं, सभ्यता की सीमा के अंदर घटित हो रही वर्जना को समझने का यत्न है। इस कहानियों का स्वभाव ध्वंसात्मक नहीं, रचनात्मक है। अपवाद ही अपवाद पेश करना इनका उद्देश्य नहीं। ये किसी भी वर्जना को स्वीकृति नहीं देती, सभ्यता की सीमा में घटित होने वाले अपवादों के तर्क को समझने का प्रयत्न करती है। यह सहानुभूति का नहीं, सूझ का साहित्य है।

अपवादों को समझने के बावजूद आज की पंजाबी कहानी के स्वीकृत मूल्यों के प्रति अपने मोह को मैंने परिपक्व ही किया है। स्वीकृत मूल्य तो उस बुनियाद का काम करते हैं जिस पर कोई संस्कृति युग-युगांतर तक टिकी रहती है। ऐसी रचनाएं इस दौर में भी लिखी गईं और उनका इस संग्रह में शामिल किया जाना भी स्वाभाविक ही था। 'धौल धरम', 'रामो चंडी' ऐसी ही कहानियां हैं। रूढ़ियों और अपवादों के मध्य दोहरे प्रकाशमय क्षेत्र भी हैं जहां रूढ़ियों के टूटने की संभावना बनी रहती है। 'आखिरी बार' ऐसी ही कहानी है। पराई स्त्रियों के साथ पति की चुहलबाजी की खबरें पत्नी तक पहुंचती रहती हैं और वह यह सोचकर अपने परिवार को बनाए रखती है कि समापन बिंदु पर पहुंच गई यह चुहल शायद आखिरी हो। 'पंछी बूढ़े नहीं होते' भी दोहरे-प्रकाशमय क्षेत्र की कहानी है। मां का बुढ़ापा इस हालत तक पहुंच गया है कि उसकी बिलकुल अकेली, अनब्याही, नौकरीशुदा बेटी के लिए उसकी परवरिश करना मुश्किल है। पर जैसे कूकती चिड़िया से परेशान होकर भी व्यक्ति चिड़िया को पत्थर मारने से गुरेज करता है, उसी प्रकार अनब्याही, अकेली बेटी बूढ़ी और बीमार मां को त्यागती नहीं, कमरे में बंद कर दफ्तर जाने लग जाती है। यह न आदर्श-सेवा है, न मां के प्रति संतान के उत्तरदायित्व का त्याग। यह जीवन का दोहरा प्रकाशमय क्षेत्र है।

पंजाबी कहानी समकालीन इतिहास के बहुत समीप है। इसका अति प्रामाणिक उदाहरण इस संग्रह की 'तालाब' कहानी है। देखने में तो यह एक गरीब 'जट्ट' तेजू की मृत्यु से संबंधित कहानी है पर उसमें स्वतंत्र भारत की खुशहाली और मंदहाली की धाराओं के एक-दूसरे के समानांतर बहने का चित्र खींचा गया है। इन्हीं दिनों में 'सहनशीलता' से संबंधित 'उपहास' का चित्र भी पंजाब की अवचेतन वस्तु की तरह उजागर हुआ है। 'अक्ल की विरासत' के बावजूद यहां के लोग किसी किनारे न लग सके। 'हंसी' के मध्य 'संजीदगी' का यह चित्र पढ़ते हुए भी मुझे 'यह क्यों?' वाला चीनी कथाकार लू-शुन याद हो आया। पर इस कहानी का व्यंग्य अपने ढंग का है। कहीं इस कहानी ने अपने मिथ की वास्तविक व्याख्या की है (जैसे तारों के सुदूर आसमान में चढ़ने की) और कहीं, वास्तविक घटना में प्रतीकात्मक विस्तार को जोड़ दिया है (जैसे फत्तू और तेजू की तालाब वाली लड़ाई में)। वस्तु-संसार में असह्य दुख को पंजाबी के लोग, साहित्य-संसार में कैसे खुशरंग बना लेते हैं, यह इस कहानी से ज्ञात होता है। यह कहानी, आदि-मध्य-अंत बनकर किसी रेखीय गति में फैलने वाली कथा-रचना नहीं, यह एक विशेष नुक्ते पर सिकुड़ा हुआ वृत्तांत भी नहीं। एक नुक्ते पर उजागर अंतर्दृष्टि, देश के अतीत को प्रकाशमान कर जाती है और यह प्रश्न भी उठाती है कि क्या दुखी तेजू की मृत्यु के समय उसके हंसमुख चरित्र की बातें करने वाला हमारा समाज, बहुत लंबे समय तक यूं ही संजीदा दुख को हंसाने वाली बातों से टालता रहेगा? कब तक? आखिर कब तक?

—हरिभजन सिंह

विद्रोह

गुरमुख सिंह जीत

सोमवार। सांध्यवेला। विंग कमांडर भाऊ राव रंगेकर गायत्री का जाप कर रहा था। उसने आंखें मूंद रखी थीं और ध्यान ईश्वर की ओर लगा रखा था। शाम के छह बजे थे लेकिन घुप्प अंधेरा छाया था। दरअसल, पूर्वी असम के बिलकुल भीतरी हिस्से में सूरज जल्दी डूब जाता है और जल्दी ही चढ़ता है। इसी कारण, शाम का जीवन भी शीघ्र ही मद्धम पड़ जाता है।

पूजा समाप्त करने के बाद विंग कमांडर रंगेकर ऑफिसर्स मेस में जाया करता था जहां वह शाम को ड्रिंक अवश्य लिया करता था। यह उसकी जिंदगी का एक रुटीन बन चुका था। वह एक पायलट था और फाइटर जहाज उड़ाया करता था। इस कारण, उसकी जिंदगी में कई अंतर्विरोध थे। एक ओर तो वह ईश्वर से डरता था और समझता था कि उसकी कृपा से ही जिंदगी का एक-एक दिन जिया जा रहा है, वरना उसके प्रोफेशन के अनुसार इस बात का जरा भी भरोसा नहीं था कि किस वक्त, लड़ाई में अथवा ट्रेनिंग फ्लाइट के दौरान उसका जहाज किसी हादसे का शिकार हो जाए। दूसरी ओर, इस तनाव भरे जीवन की शिद्दत को खत्म करने के लिए वह हमेशा हर शाम ड्रिंक लेता था, भले ही बस एक पैग! और इसके पश्चात् वह 'दस फॉर ऐंड नो फर्दर' करता था क्योंकि अगले दिन उसकी फलाइंग ड्यूटी हुआ करती थी।

विंग कमांडर रंगेकर के रुटीन में तेजपुर पहुंचकर भी कोई बदलाव नहीं आया था। आ भी कैसे सकता था? वह जिंदगी का मूल्य पहचानता था और हर पल की कद्र करता था—मौज मस्ती करके, भगवान से डरकर और हर एक से अच्छा व्यवहार करके। इसीलिए, एक फाइटर पायलट की तरह वह पूरे एअरफोर्स स्टेशन में बहुत हरमन प्यारा था। यहां तक कि उसको अपने अंतर्विरोधों से भी मोह हो गया था और उन्हें उसने अपने दिल की धड़कन का हिस्सा बना रखा था।

रंगेकर ने महसूस किया कि कोई उसके समीप आकर खड़ा हो गया है। उसने बंद नेत्रों को खोला। उसकी एकाग्रता उखड़ने लगी थी। किसी की उपस्थिति ने उसकी तल्लीनता को प्रभावित करना शुरू किया था। उसने देखा, उसकी बेटी नलिनी प्रभा उसके समीप

सिर झुकाए खड़ी है। उसने हाथ से उसे बैठ जाने तथा थोड़ी देर इंतजार करने का संकेत किया जिसका अर्थ था कि पाठ खत्म करके वह उससे बात करेगा।

नलिनी प्रभा यौवन की सीमारेखा में पैर रख रही थी। उसकी उम्र कोई पन्द्रह वर्ष की होगी। वह कान्वेंट ऑफ मदर स्मिथ में दसवीं कक्षा की छात्रा थी। रंग-रूप से सुंदर, चेहरा-मोहरा निखरा हुआ, तंदरुस्त कद-काठी, अच्छी संरचना वाली मजबूत नाक तथा व्यक्तित्व स्मार्ट! वह जिस समय कंधे झटकती थी, देखने वाले का ध्यान बरबस उसकी छाती के भरे हुए उभारों की ओर चला जाता था। कान्वेंट, तेजपुर शहर के पदमा पार्क में स्थित था और एअर फोर्स स्टेशन से लगभग बीस किलोमीटर दूर था। नलिनी हर रोज स्कूल की हरे रंग की बस पर जाया करती थी, जो एअर फोर्स स्टेशन से बहुत सारे बच्चों को लेकर जाती थी।

नलिनी को स्कूल से लौटे तीन घंटे हो चुके थे। उसने अभी भी स्कूल की यूनीफॉर्म पहन रखी थी—सफेद स्कर्ट और सफेद ही ब्लाऊज जिसे वह प्रायः घर पहुंचते ही उतारकर पलंग पर फेंक देती थी और लंच कर लेने के बाद ही कहीं जाकर उसे सम्हाला करती थी। ऐसा लगता था, जैसे वह किसी भीतरी कशमकश में उलझी हुई है, वह कुछ कहना चाहती है, पर कुछ कह नहीं पा रही। शब्द आ-आकर उसके गले में अटके जा रहे थे और उसके निश्चय को व्यक्त करने में असमर्थ हो रहे थे। उसके चेहरे पर आई गंभीरता को देखकर उसकी मां ने उससे पूछा था, "नलिनी बेटा, क्या बात है? आज तू चुपचाप क्यों है?"

"मम्मी, आपको अच्छा-भला पता है," कहकर नलिनी ने कंधे को झटकते हुए बात को टाल दिया था। मिसेज दमयंती उस वक्त शाम का खाना बनाने में व्यस्त थी। उसने भी बेटी की ओर कोई अधिक ध्यान नहीं दिया। वह जानती थी कि नलिनी कहीं से कोई नई किताब पढ़कर आए तो अक्सर उसी के ख्यालों में कितनी ही देर तक खोई रहती है।

रंगेकर ने अपने मुंह पर हाथ फेरा और पूजा समाप्त करके वह उठ खड़ा हुआ। उसने बेटी के कंधों पर हाथ रखकर मुस्कुराते हुए कहा, "हाय नलिनी, व्हट इज़ वरीइंग यू, माई डियर?"

नलिनी इस पर, आंखें नीची किए खड़ी रही। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह दूर-दराज कहीं शब्दों का सहारा ढूंढ़ रही हो। उसके होंठ थोड़ा-सा खुले और उनमें से केवल इतना भर निकला, "हाय पापा!" इससे आगे वह और कुछ न कह सकी। शब्दों की एक गांठ उसके गले की नली में अटक गई। उसके चेहरे पर व्याप्त गंभीरता और सघन हो उठी।

रंगेकर को चिंता-सी कचोटने लगी कि जाने क्या बात हो गई? नलिनी तो हर वक्त चहकती रहती है। आज वह कौन-सी बात छिपाए हुए है जिसके कारण वह इस तरह गुमसुम

बनी हुई है? उसने इस बोझ को हल्का करने के लिए अपनी छनकती हंसी के साथ कहा, "यैस, माई लवली नलिनी, आज क्या टीचर से लड़ाई हुई है और उससे कुट्टी करके आई हो?"

" नो पापा नो, आप हर बात को मजाक में उड़ा देते हैं। कभी मेरी बात को समझने की कोशिश नहीं करते। मैं अब कोई बच्ची तो हूं नहीं कि ऐसी बातों से बहल जाऊंगी।" इतना कहने के बाद, नलिनी के होठों पर पुनः चुप की मोहर लग गई और वह अंगुलियों से सामने रखी तिपाई पर लकीरें खींचने लगी।

"कम ऑन नलिनी, आज तू किस तरह का व्यवहार कर रही है? साफ-साफ बता, नहीं तो मेरी भी कुट्टी।" रंगेकर ने आदत के अनुसार खिलखिलाकर हंसते हुए कहा।

नलिनी थोड़ा-सा हिली। ऐसा लगा जैसे वह अपने साहस को बटोर रही हो। उसके होंठ खुले और वह पापा की आंखों में देखते हुए कहने लगी, "मैं जानती हूं पापा, आप मेरी बात की खिल्ली उड़ाएंगे। मैं पहले भी मम्मी से कई बार कह चुकी हूं। पर वह डरती है। पता नहीं उसने आप से बात की है या नहीं। पर मैंने आपके साथ स्वयं बात करने का मन बना लिया है और आपको साफ-साफ बताना चाहती हूं कि मैं अपने बालों को बुआय-कट कराऊंगी और कभी-कभी जीन्स और टॉप भी पहना करूंगी।"

यह सुनकर विंग कमांडर रंगेकर को यूं लगा जैसे उसके सिर के ऊपर कोई बंब आकर फटा हो। वह भड़क उठा। उसका हर समय खुश रहने वाला स्वभाव एक पल में बदल गया। वह कड़ककर बोला, "यह कैसे हो सकता है? तू जानती है, हम मराठी ब्राह्मण हैं और हमारे पुराने विचारों वाले तथा कट्टरपंथी परिवार में इस बात को कोई बर्दाश्त नहीं कर सकता।" यह कहते हुए रंगेकर की आंखें एकदम लाल भभूका होकर चमकने लगीं और उनमें से क्रोध के शोले फूटने लगे।

पहले तो नलिनी कांप गई पर पुनः अपने संकोच को त्यागते हुए धैर्य के साथ एक-एक शब्द नाप-तौलकर कहने लगी, "यह मैं नहीं जानती, पापा! आप जानें और आपका काम। वह बिरादरी आपकी है, परिवार आपका है, समाज आपका है, मेरा नहीं। मैं तो पुणे को जानती नहीं और न ही मुझे वहां जाना है। लेकिन, मेरा निश्चय अब पक्का है, एकदम अटल! इस सीमा तक पहुंचने के लिए मुझे कुछ समय अवश्य लगा है, किंतु अब मैंने आपको अपना इरादा बता दिया है। माइंड इट, पापा! अभी भी मैंने आपको अपना सिर्फ निर्णय बताया है। इस पर अमल तो बाद में करूंगी।" नलिनी के एक-एक शब्द से दृढ़ता झलक रही थी जिसके कारण रंगेकर का मन और अधिक पीड़ित हो रहा था। उसे महसूस हुआ कि उसके अपने कैरेक्टर की पुख्तगी की एक लकीर नलिनी में भी उभरती हुई दिखाई देने लगी है।

रंगेकर सभी दलीलों को बुहारकर एक ओर फेंकते हुए बोला, "देखो नलिनी, प्यार

रहा एक तरफ। अगर तूने इस बात का दुबारा नाम भी लिया तो मैं तेरी टांगें तोड़ दूंगा।" उसके स्वर में असीम गुस्सा और दो-टूकता शामिल थी। ऐसा लगता था जैसे वह आप्रेशन में किसी मोर्चे पर जाने के लिए अपने जेट को एक मन, एक चित्त होकर स्टार्ट करने लगा हो और उसका पूरा ध्यान सीधा अपने निशाने के ऊपर टिक गया हो।

आशा के विरुद्ध पापा की ऐसी आवाज सुनकर नलिनी रोने लगी। इतने में उसकी मां भी जेट समान गरजती रंगेकर की आवाज को सुनकर किचन का अपना काम बीच में ही छोड़कर उनके पास आ गई थी। उसने अपने पति का यह रूप पहली बार देखा था, वैसे वह उसके गुस्सैल पर अक्सर शांत स्वभाव से परिचित थी।

नलिनी सिसकते हुए मां से बोली, "मम्मी, मैं तुमसे पहले भी कह चुकी हूं कि तुम डैडी को कहो, मुझे अपने बाल बुआय-कट करवाने हैं। मेरी फ्रैण्ड्स ने तो पहले ही इस तरह के बाल बनवा लिए हैं और वे जीन्स भी पहनती हैं। यह लेटेस्ट फैशन है।" यह कहते हुए उसकी आवाज कांपने लगी थी किंतु उसने साहस बनाए रखकर कहना ज़ारी रखा, "जब मैं उनसे कहती हूं कि मेरे पापा नहीं मानते तो वे हमें बैकवर्ड कहती हैं। तुम ही बताओ, क्या मैं फैमिली की यह इन्सल्ट बर्दाश्त कर सकती हूं?"

दमयंती अपने पति के स्वभाव को भली भांति जानती थी और अपनी बेटी के स्वभाव को भी। अतः वह चुप रही और दोनों को शांत करने का प्रयत्न करने लगी। उसका विचार था कि शायद इस तरह बात दब जाएगी।

नलिनी पापा से डांट खाकर अंदर अपने बिस्तर पर जा गिरी और कितनी ही देर सिसकती रही। उसके रोने की आवाज उसकी मां को लगातार किचन में भी सुनाई दे रही थी किंतु वह मन को पक्का कर अपने काम में जुटी रही। उधर, विंग कमांडर रंगेकर की पूरी शाम खराब हो गई और वह मेस भी नहीं गया। वह अपनी जगह कुढ़ता रहा और ड्राइंग रूम में बैठकर किसी पत्रिका के पृष्ठों को घूरता रहा।

अगला दिन। मंगलवार। शाम के चार बजे। विंग कमांडर रंगेकर के घर में चिंता व्याप्त थी। मिसेज दमयंती रंगेकर दरवाजे से बाहर आ-आकर देखती थी कि नलिनी अब भी लौटकर आ रही हो। लेकिन, हर बार उसे निराशा ही हाथ लगती और वह पहले से भी अधिक उदास होकर अंदर आ जाती और कुछ पल बाद फिर बाहर की ओर चल देती। स्कूल की बस को आए एक घंटा हो चुका था। साथ वाले मकान में स्क्वेड्रन लीडर नीरुरकर की लड़की मधु कब की आ चुकी थी। अतः उसकी चिंता, बांध टूट जाने के कारण दरिया में पल-पल चढ़ते पानी की भांति बढ़ती ही जा रही थी। इतने में, विंग कमांडर रंगेकर भी ऑफिस से लौट आया था, जबकि उसे अभी वहां काम था। उसे नलिनी के न लौटने की सूचना मिल गई थी। वह भी घर में दाएं से बाएं, बाएं से दाएं तेज कदमों से चल रहा था और उसकी खुश्क आंखें तेनाली की ओर से आती सड़क पर ही लगी हुई थीं।

रंगेकर के मन में रह-रहकर ख्याल आ रहा था कि हो न हो, नलिनी स्कूल बस मिस कर गई हो और अब वह किसी प्रॉइवेट बस से आ रही हो। लेकिन, इस ख्याल की तह में उसको कल का नलिनी का दृढ़ चेहरा व्याकुल कर रहा था, जब वह निश्चयपूर्वक और निर्णयात्मक ढंग से बात कर रही थी। यह सही है कि वह उसके पास से चुपचाप चली गई थी और अंदर जाकर अपने बिस्तर पर लेटकर रोती रही थी और किसी से कोई बात नहीं कर रही थी। अब उसे स्मरण हो रहा था कि उसने नलिनी की आंखों में, बस चढ़ते समय अलगाव का एक गहरा अहसास चमकता हुआ देखा था, पर अपने विंग हैड क्वार्टर जाने की शीघ्रता में उसने उसकी कोई परवाह नहीं की थी और आखिर वह थी भी एक बच्ची ही। उसने सोचा था, बात 'आई-गई' हो गई होगी।

लेकिन, अब उसकी घबराहट में असीम वृद्धि हो गई थी। भले ही वह अपनी घबराहट को नियंत्रण में किए हुए था और इसको बेवजह प्रकट नहीं होने दे रहा था। पर अंदर ही अंदर उसके मन पर आरियां चल रही थीं और वह बहुत अधीर हो उठा था। वह नीरुरकर के घर गया और उसकी बेटी मधु से पूछने लगा।

"मधु बेटी, नलिनी तेरे संग नहीं आई?"

"अंकल, मैंने उसको स्कूल से बाहर बस के पास खड़ी देखा था, फिर ध्यान नहीं दिया।"

"उसकी तेरे साथ कोई विशेष बात हुई हो जिससे उसके मन के अंदर चल रहे संघर्ष का पता चलता हो?"

"नहीं अंकल, मुझे तो वह बिलकुल नॉर्मल लगी थी, इसलिए मैंने कोई अधिक गौर नहीं किया।"

अन्य लड़कियों ने भी लगभग यही कुछ मिसेज रंगेकर को बताया।

अब रंगेकर की व्याकुलता और बढ़ गई। वह अपने घर आकर टेलीफोन घुमाने लगा, पर उसको कोई नंबर मिल ही नहीं रहा था। उसका टेलीफोन ही डेड पड़ा था। उसने रिसीवर को पटक दिया। फिर वह ग्रुप कैप्टन अहलुवालिया के घर की ओर चल दिया जो सड़क की दूसरी ओर कुछ दूरी पर था। उसका दिमाग बहुत तेजी से चलने लगा था। कई अनहोनियों के भयानक ख्याल उसको अधीर कर रहे थे। वह एक प्रकार से हांफने लगा था। वह हर बार अपना सिर झटककर इस प्रकार के काले विचारों को बाहर फेंक देने का यत्न करता, पर वे थे कि अमरबेल की भांति और अधिक बढ़कर उसकी विचारतंद्रा को जकड़ते जा रहे थे। उसकी तंद्रा तभी टूटी जब उसको महसूस हुआ कि उसके हाथ ने अहलुवालिया की कॉलबेल का बटन दबा दिया है।

अहलुवालिया अपने ड्राइंग-रूम में बैठकर व्हिस्की की बोतल को ट्रे में घुमा रहा था। उसने रंगेकर को पैग लेने के लिए कहा।

"नहीं, शुक्रिया। क्या मैं तुम्हारा टेलीफान इस्तेमाल कर सकता हूं?" रंगेकर के स्वर

में घबराहट और घोर चिंता की बूंदें मिली हुई थीं। उसने रस्मी तौर पर स्टेशन कमांडर से पूछा था जबकि इसकी कोई खास आवश्यकता नहीं थी।

"ओ यैस, विद प्लेजर।" अहलुवालिया ने अपने कथन में खोए हुए तथा उसकी ओर देखे बिना उत्तर दिया। कुछ ही देर बाद उसने देखा, रंगेकर डॉयल को जल्दी-जल्दी घुमाता जा रहा है और डॉयल-टोन होने से पहले ही दूसरा नंबर मिलाने लगता था। तब उसने उसकी ओर ध्यान से देखा, उसे दिसंबर माह की सर्दी में रंगेकर के माथे पर आई पसीने की बूंदें दिखाई दीं। वह हैरान रह गया। बोला, " रंगा, मैं नंबर मिला दूं?"

अब रंगेकर स्वयं पर और अधिक नियंत्रण न रख सका और वह फूट-फूटकर रोने लगा। उसने उसको सारी बात सुनाई और बताया, "नलिनी स्कूल से लौटकर नहीं आई। मालूम नहीं उसको कुछ हो न गया हो। हम बहुत वरीड हैं और हर जगह पूछताछ कर चुके हैं।"

"फिक्र करने की कोई बात नहीं," अहलुवालिया ने उसको दिलासा देते हुए कहा, "चल, मेरे साथ कार में बैठ, उसके स्कूल चलते हैं।"

उस समय, शाम की स्वच्छ, शीतल पवन आनेवाली हल्की सर्दी का आभास दे रही थी। कार तेनाली से गुजरकर बहुत तेजी के साथ एन. टी. रोड पर दौड़ने लगी। रंगामाटी टी इस्टेट, सरोची टी इस्टेट, लोपोहिया टी इस्टेट तथा अन्य कई इस्टेट्स उनकी आंखों के आगे चक्कर खाकर पीछे छूट गए। कार ने मेन बाजार में प्रवेश किया। रंगेकर ने अपने अंतर में छिपे किसी भय के अधीन अहलुवालिया को सीधे पदमा पार्क की ओर चलने के लिए कहा। 'उधर क्यों?' वह स्वयं से भी प्रश्न का उत्तर जानने का साहस नहीं कर सकता था। उसने मन में बेचैनी उत्पन करते तथा गहन अंधेरे को बढ़ाते किसी विचार के अधीन यह कहा था।

उन्होंने कार को पदमा पार्क में एक ओर खड़ा कर दिया और जल्दी-जल्दी पहाड़ी की सीढ़ियां चढ़ने लगे। रंगेकर अहलुवालिया से बहुत आगे निकल गया था। वह एक छलांग में कई सीढ़ियां चढ़ रहा था। अहलुवालिया ने देखा, रंगेकर पार्क के शिखर पर बनी गोल फूलों की क्यारी के आसपास सामने फैले ब्रह्मपुत्र के पानी के तल को बहुत ध्यान से देखने लगा था। वहां से ब्रह्मपुत्र दरिया नहीं, एक समुद्र की भांति दिखाई देता था, जिसका कोई ओर-छोर न हो। पर आज यह समुद्र शांत था, इसमें तेज ध्वनि करती लहरें नहीं थीं। आकाश में लटके सफेद बादल नीचे होते हुए ऐसे प्रतीत होते थे जैसे नीले सागर की छाती पर रूई के फाहे गिर रहे हों। दूर, बहुत दूर, ब्रह्मपुत्र के एक कोने में तांबई रंग का सूरज का गोला धीरे-धीरे पानी की ओर सरक रहा था और पानी पर सोने की एक चौड़ी सड़क दूर तक चमकने लगी थी। इस सुनहरी सड़क के चारों ओर कांपते दरख्तों की परछाइयों के ऊपर सोने की पतली-सी चादर बिछी हुई दिखने लगी थी। अहलुवालिया

इस दृश्य को देखने के लिए प्रायः पदमा पार्क आया करता था।

तभी, रंगेकर को दूर पानी में कोई वस्तु तैरती हुई दिखलाई दी और उसके मुंह से अकस्मात् एक चीख निकल गई। अहलुवालिया उसके समीप आकर पूछने लगा। रंगेकर ने कहा, "हो न हो, नलिनी ने ब्रह्मपुत्र में कूदकर आत्महत्या कर ली है। मुझे दूर तैरती हुई उसकी लाश की झांई पड़ी है।"

"होश से काम ले, रंगा! यह तूने कैसे अनुमान लगा दिया कि वह नलिनी की लाश है जबकि इतने धुंधलके में कुछ भी दिखाई नहीं देता!" अहलुवालिया उसके कंधे को झिंझोड़ता हुआ कहने लगा, "आ, अब तू मेरे साथ, कान्वेंट की ओर चलते हैं। वहां जरूर कोई सुराग मिलेगा।" यह कहकर वे नीचे उतरने लगे। रंगेकर का सिर नीचे झुका हुआ था और वह अपने सोच विचार में गुम था।

प्रिंसिपल मिसेज हजारिका का घर स्कूल के साथ ही था। नलिनी की एक क्लास वह खुद भी लिया करती थी। वे दोनों बरामदे में आकर बैठ गए और नौकर मिसेज हजारिका को जाकर बुला लाया। रंगेकर ने उससे सारी बातें कीं। मिसेज हजारिका कहने लगी, "नलिनी मेरी क्लास में अवश्य थी, मैंने खुद उसके साथ बात की थी। मुझे जरा भी पता नहीं लगा कि उसके गंभीर चेहरे के नीचे कोई ऐसी उथल-पुथल चल रही थी।" उसने सहानुभूति दर्शाते हुए बात खत्म की।

व्याप्त अंधेरे में निराशा के काले गिलाफ ने रंगेकर के मन को अपने घेरे में पूरी तरह लपेट लिया था। उसको नलिनी के मिलने की रंचमात्र उम्मीद नहीं रही थी और उसका मन मृत्यु के बाद की समस्याओं में उलझता जा रहा था। वह अपनी पत्नी को क्या कहेगा? वह उसके सख्त रवैये के बारे में क्या सोचती होगी, जिसके कारण उनकी इकलौती बेटी आत्महत्या की ओर धकेल दी गई है? वह पुणे में अपने परिवार को नलिनी की मौत का क्या कारण बताएगा? इन प्रश्नों ने उसकी आत्मा को बुरी तरह नोंच दिया था।

प्रिंसिपल के घर से निकलकर अहलुवालिया ने कार को पुनः बाजार की ओर मोड़ लिया। मोनीहारी स्टोर के पास होते हुए उसने कान्वेंट के होस्टल के समीप कार को ला खड़ा किया। रंगेकर को कोई सुध नहीं थी कि वे कहां आए हैं। अहलुवालिया ने उसकी बांह पकड़कर नीचे उतारा और वे वार्डन के आफिस में आ गए। चपरासी वार्डन मिसेज बरुआ को जाकर बुला लाया। इस बार बात अहलुवालिया ने की। मिसेज बरुआ पूरी बात सुनकर उठ खड़ी हुई। नलिनी उसकी स्टुडेंट थी और उसको बहुत चाहती थी। उसके चेहरे से प्रतीत होता था कि रंगेकर की मानसिक पीड़ा ने उसे प्रभावित किया है। वह बोली, "मैं स्वयं अंदर जाकर मालूम करती हूं। आप बैठिए।"

रंगेकर सांस रोककर प्रतीक्षा करने लगा। उसे अपने दिल की धड़कन ऐसे सुनाई दे रही थी जैसे सामने दीवार पर क्लाक की टिक-टिक! अहलुवालिया गोल तिपाई पर किसी

मैगजीन के पन्ने उलटने लगा था। उसका मस्तिष्क बिलकुल खाली था। रंगेकर का मन काली संभावनाओं से ग्रस्त था और उसने नलिनी की मौत को बिलकुल सत्य मान लिया था, भले ही वह अपने आप को इसका विश्वास करवाने में असमर्थ था।

रंगेकर की नजरें दरवाजे की ओर टिकी हुई थीं। वह पूरे समय ही मिसेज बरुआ का अंधेरे में भी पीछा करती रही थीं जबकि उसे दिखाई कुछ नहीं दे रहा था। उसे भ्रम हुआ, कोई आफिस की ओर आ रहा है। यह मिसेज बरुआ ही थी। उसकी चाल मद्धम तथा चेहरा निरुत्साही था। उसे देखकर रंगेकर की रही-सही आस भी चली गई। उसे सभी भ्रम सच होते लगे। उसका स्वयं का चेहरा रक्तहीन हो गया था जिस पर से आशा की झलक भी लुप्त हो गई थी।

मिसेज बरुआ उनके पास पहुंच चुप्पी साधकर बैठ गई। दोनों में से किसी को भी पूछने का साहस न हुआ। आखिर मिसेज बरुआ के होंठ हिलते प्रतीत हुए और फिर उसके मुंह से शब्द गिरने लगे, "नलिनी अपनी फ्रैण्ड प्रमीला के कमरे में है।"

रंगेकर के उत्साहहीन चेहरे पर से मौत का काला साया एक क्षण में गायब हो गया। वह कुर्सी पर आगे की ओर झुककर उसकी बात सुनने लगा।

"पर, वह यहां आकर अपने पापा से बात करने को तैयार नहीं है। कहती है, मेरे कोई डैडी नहीं। मैं किसी से नहीं मिलना चाहती। 'मिसेज बरुआ की बात समाप्त होते ही एक प्रश्न-चिह्न उसकी आंखों के सम्मुख हवा में लटक गया।

उन्होंने फिर वार्डन से विनती की कि वह नलिनी को मनाकर एक बार यहां आफिस में ले आए। नलिनी ने पुनः इंकार कर दिया और कहा कि वह डैडी से बात नहीं करना चाहती। इस पर रंगेकर ने अहलुवालिया से कहा कि वह स्वयं मिसेज बरुआ के साथ जाकर नलिनी को समझा-बुझाकर ले आए। अहलुवालिया ने नलिनी को प्यार करते हुए कहा, "बेटा, तेरे मम्मी-डैडी बहुत वरीड हैं। तेरे पापा को तेरी फिक्र में पता नहीं क्या हो गया है। उनके मुंह से बात तक नहीं निकल रही। आ, एक बार आकर उनसे आफिस में मिल ले। उन्हें तसल्ली हो जाएगी। फिर जो तू कहेगी, वह मान लेंगे।"

"अंकल, उनसे कह दीजिए, मेरे कोई पेरेन्ट्स नहीं। मुझे कहीं नहीं जाना।" नलिनी ने बहुत दृढ़ आवाज में उत्तर दिया। उसके चेहरे से ऐसा मालूम होता था जैसे वह लोहे की मोटी चादर को हाथों से चीरने का यत्न कर रही हो और उसका पूरा चेहरा शिकनों से भर उठा हो। ग्रुप कैप्टन अहलुवालिया की कोई भी दलील कारगर न हुई। नलिनी के व्यवहार में कोई बदलाव नहीं आया और वह टस-से-मस नहीं हुई। वह पापा से मिलने से लगातार मना करती रही।

"अंकल, अगर मुझे बहुत मजबूर करेंगे तो मुझे कभी भी नहीं देख सकेंगे।" नलिनी ने दो टूक कहा। उसकी आंखें खुश्क और बौराई हुई थीं और उनमें से गहरी

उदासी झांक रही थी।

अहलुवालिया वापस आफिस जाने के लिए मुड़ने लगा। उसने एकबार फिर मिन्नत की, "आ जा बेटी, तू कितनी अच्छी लड़की है!"

नलिनी बिना आंखें झपकाए बोली, "अंकल, डैडी से कह दीजिए, वे वापस चले जाएं। मैं आज घर लौटकर फिर नए सिरे से बहस नहीं शुरू करना चाहती। मैं कल स्कूल के बाद बस से आ जाऊंगी।"

बुधवार। दोपहर के तीन बजे। मिसेज दमयंती अपने बरामदे में बेंत की कुर्सी की पीठ का सहारा लिए खड़ी थी। उसकी नजरें सड़क के मोड़ पर टिकी हुई थीं। विंग कमांडर रंगेकर आफिस से जल्दी लौट आया था और ड्राइंग-रूम में बहुत तेज कदमों से एक सिरे से दूसरे सिरे तक चक्कर लगा रहा था। वह कई बार सोफे से टकराते-टकराते बचा और संभल गया। तभी, मिसेज रंगेकर ने देखा कि कान्वेंट की बस आ रही है और उनके घर से कोई पचास गज दूर अपने स्टॉप पर आकर रुकी है। उसने आंखों को झपका, बंद किया, फिर खोला। उसे अपने आप पर विश्वास नहीं हो रहा था, जब उसने नलिनी को बस से उतरकर घर की ओर आते हुए देखा।

नलिनी मां की ओर देखकर मुस्कुराई। पुनः हंसने का जतन करने लगी जैसे अपनी किसी कमजोरी को छिपाने की कोशिश कर रही हो। उसकी दृष्टि ड्राइंग-रूम में तेज कदमों से चक्कर लगाते पापा पर पड़ी। उसका श्वास जैसे भीतर ही रुक गया और वह वहीं मूर्तिवत खड़ी हो गई। मिसेज रंगेकर अपनी बेटी की ओर थोड़ा-सा आगे बढ़ी। एक विवशता से भरी मुस्कुराहट की परछाईं नलिनी के चेहरे पर आकर गुम हो गई। विंग कमांडर रंगेकर सिर झुकाए द्वार की ओर बढ़ा। उसके भीतर कोई भयानक संघर्ष चल रहा था। नलिनी के मां की ओर बढ़ते पैर वहीं जड़ हो गए और उसके चेहरे का रंग राख की पिन्नी की भांति हो गया, जबकि एक कटु मुस्कान में उसके होंठ हिलाते हुए प्रतीत हुए। मिसेज रंगेकर ने आगे बढ़कर नलिनी को अपने आलिंगन में ले लिया। नलिनी जोर-जोर से रोने लगी। विंग कमांडर रंगेकर उसकी ओर बौराई आंखें से देखने लगा। नलिनी उसकी टांगों से आकर लिपट गई और ऊंचे स्वर में सिसकने लगी। उसने नलिनी को प्यार से अलग किया। फिर उसने एक गहरा सांस लिया और अहिस्ता-अहिस्ता हवा को बाहर निकालने लगा।

नलिनी ने अपने हाथों से अपने बुआ।य-कट बालों को इकसार किया और अपनी जीन्स को पकड़कर ऊंचा करते हुए टॉप की सलवटें दूर करने लगी। उसका चेहरा आंसुओं से भीगा हुआ था। उसकी हिचकी बंध गई थी। मिसेज रंगेकर चुपचाप उसके सिर पर कितनी ही देर प्यार करती रही।

इकाई

सुखबीर

कमरे में कोई भी चीज ऐसी नहीं थी, जो उसकी दृष्टि को विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित करती। वही जाना-पहचाना कमरा था, जिसका एक कोना एक ओर को बढ़ा हुआ था। आरंभ में, वह कमरा देखकर उसे अजीब-सा लगा था। उसका चौरस न होना उसकी नजर में अखरा था। उसको देखकर हर वक्त टेढ़ी चारपाई का ख्याल आता था। और जैसे टेढ़ी चारपाई पर सोना बेढंगा लगता है, उस कमरे में बैठकर या फर्श पर बिछे बिस्तरे पर लेटकर भी बेढंगा-सा लगता था, जैसे कोई वस्तु अपना ढांचा बिगाड़ बैठी हो।

यह अहसास कुछ ही देर रहा था।

फिर, आहिस्ता-आहिस्ता उसको जैसे आदत पड़ गई थी। उसको लगा था कि कमरा ऐसी शक्ल का भी हो सकता है। इस शहर में कई इमारतें थीं—तिकोनी या चौकोर प्लाटों पर बनी हुई, जिनमें कुछ कमरे ऐसे भी थे।

हां, कमरे की किसी भी वस्तु ने उसका ध्यान अपनी ओर नहीं खींचा था। वही नित्य दिखने वाली चीजें थीं उसमें—खूंटियों पर बड़ी सफाई से टंगे हुए कपड़े, नीचे बांस के छोटे-से रैक में बहुत करीने से रखी गई किताबें, पत्रिकाएं और अखबार, एक कोने में—उसी एक ओर बढ़े हुए कोने में—पड़े हुए बर्तन, डिब्बे और एक स्टोव, एक साफ-सुथरी छोटी -सी रसोई। और इसी तरह की कुछ और वस्तुएं। वह बिस्तर पर बैठा हुआ था और सामने शून्य में देख रहा था। उस शून्य में हल्की-सी धुंध थी। या फिर वह उसकी आंखों की धुंध थी? हां, उसकी आंखों की ही धुंध थी और वह धुंध उसके दिमाग में भी थी।

कुछ देर पहले वह धुंध बहुत सघन थी। राही मिल गया था और उसको जबरन खींचकर शराब के अड्डे पर ले गया था। राही को शराब पीते वक्त साथ चाहिए था। बिना कंपनी के वह शराब नहीं पी सकता। और शराब पीने के बाद राही ने उसका अधिक देर तक साथ नहीं दिया था। कुछ देर घूमने के पश्चात् एक स्थान पर रुककर उसने पूछा था, "अब क्या प्रोग्राम है?"

"कोई खास नहीं।" उसने कहा था।

"अच्छा तो मैं चलता हूं। एक जरूरी काम है। फिर कब होगी मुलाकात?"

"देखो..." उसके मुंह से निकला था।

राही टैक्सी पकड़कर चला गया था।

उसके चले जाने पर वह कुछ देर वहीं खड़ा रहा था। उसको सूझा नहीं था कि कहां जाए, क्या करे। उसको बेहद अकेलापन महसूस हुआ था। उसे लगा था, जैसे वह किसी उजाड़-बियाबान में खड़ा हो। आखिर, उसके कदम खुद-ब-खुद अपने कमरे की ओर चल पड़े थे। उसने वहां से बस नहीं पकड़ी थी। दिमाग की बोझिलता और बेध्यानी में ही वह चलता रहा था और अपने कमरे के सामने पहुंच गया था। कमरे में पहुंचकर उसका डर कम हो गया था पर अकेलापन ज्यों-का-त्यों था। बल्कि, वह और बढ़ गया था।

कैसा अकेलापन था वह! सूना और सघन!

वह कुछ देर उस अकेलेपन में घिरा रहा था।

पर अब अकेलापन नहीं था। बस, एक सूना-सा अहसास था। सूनापन जो उसके बाहर फैला हुआ था, जो उसके अंदर भरा हुआ था।

कमरे में कोई भी चीज ऐसी नहीं थी जो उसकी दृष्टि को विशेष तौर पर अपनी ओर खींचती।

रात काफी बीत चुकी थी, पर उसकी आंखों में नींद नहीं थी। वह उसी तरह सामने शून्य में देखता रहा। कुछ देर बाद, उसको सामने वाली दीवार दिखाई दी—मैली और खोखली, जिस पर से सफेदी उड़ी हुई थी और कुछ जगहों पर से पपड़ी उतरी हुई थी। उस पर मटमैले रंग के छोटे-छोटे धब्बे थे और उन धब्बों के एक ओर, जहां दीवार का हिस्सा कुछ साफ और सपाट था, एक चित्र टंगा हुआ था।

वह चित्र पहले तो उसे अन्य धब्बों की भांति ही लगा, पर जब उसकी नजर उस पर स्थिर हो गई तो वह धब्बा नहीं रहा। उसमें से एक शक्ल उभरने लगी। वह शक्ल जैसे हिलने लगी थी। उसकी रेखाएं और रंग हिलते हुए परस्पर जुड़ रहे थे।

अब वह चित्र को एकटक देख रहा था। चित्र ने जैसे उसकी नजर को पूरी तरह से पकड़ लिया हो। पर वह स्वयं अभी तक चित्र को पूरी तरह से पकड़ नहीं पाया था। वह जब भी उस चित्र को देखता, कुछ देर तक उसकी पकड़ में न आता। उसके आपस में उलझे हुए रंग फिसलते रहते, आपस में उलझी हुई रेखाएं थिरकती रहतीं और एक चेहरा रह-रहकर अपना रूप बदलते हुए नई शक्ल धारण करता रहता। आखिर, वह शक्ल एक जगह स्थिर हो जाती और उसकी नजर की पकड़ में आ जाती।

वह चित्र उसे मुकुल घोष ने दिया था।

मुकुल! उसे मुकुल घोष का ख्याल आया तो अपने उस अकेलेपन को महसूस करते हुए उसने सोचा, क्यों न मैं मुकुल की ओर ही चला गया? राही के जाने के बाद मुकुल की ओर चला गया होता तो अच्छा था। पर उस वक्त ख्याल ही नहीं आया। खैर, अब

भी जाया जा सकता है। अब?... नहीं, अब रात बहुत हो चुकी है। और मुकुल यहां से बहुत दूर रहता है। कम से कम एक घंटा लग जाएगा उस तक पहुंचने में।

मुकुल! उसने फिर सोचा और चित्र में उसकी शक्ल देखने लगा। वह चित्र मुकुल का सेल्फ-पोर्ट्रेट था। बहुत शौक था उसे अपने पोर्ट्रेट बनाने का। वह अपने अनगिनत पोर्ट्रेट बना चुका था। जैसे आदमी कोरा कागज सामने रखकर उस पर लिखने लगे और बार-बार अपना नाम लिखे, कुछ इसी तरह मुकुल अपना सेल्फ-पोर्ट्रेट बनाया करता था। किंतु, इतने सेल्फ-पोर्ट्रेट बनाने पर भी उसकी तृप्ति नहीं हुई थी। वह हमेशा कहता, "इन सेल्फ पोर्ट्रेट्स में मैं अपने आप को पहचाने का यत्न कर रहा हूं। अपने आप को ढूंढ़ने की कोशिश कर रहा हूं, पर अभी तक मैं स्वयं को पकड़ नहीं सका हूं।"

मुकुल से जब उसकी मुलाकात हुई थी, तब उस पहली ही मुलाकात में वह उसकी ओर खिंच गया था। बहुत दिलचस्प शख्सियत थी उसकी। उसका चेहरा भी दिलचस्प था और बातें भी। वह एक होस्टल में रहता था—उसके कोने वाले छोटे-से कमरे में। वहीं उसका स्टूडियो था, बिखरे हुए चित्रों से भरा हुआ। कई शैलियों के चित्र थे वे। उन चित्रों में भी मुकुल स्वयं को ढूंढने का यत्न कर रहा था और उनका सफर तय करता हुआ किसी मंजिल पर पहुंचना चाह रहा था। 'पर वह मंजिल है कहां?' वह कहता, 'मंजिल कहीं नहीं है। बस, सफर ही सफर है।'

चित्रों का सफर। उसने सोचा और उन चित्रों में सेल्फ-पोर्ट्रेट्स का सफर। मुकुल रात-दिन वह सफर तय कर रहा था।

वह सफर तय कर रहा था पर मंजिल पर नहीं पहुंचना चाहता था, क्योंकि उसके अपने शब्दों में 'जिस दिन मैं मंजिल पर पहुंच गया, उस दिन आत्महत्या कर लूंगा। मंजिल पर पहुंचकर जीने का क्या फायदा? और क्योंकि मैं आत्महत्या से डरता हूं, इसलिए मंजिल पर पहुंचने से भी डरता हूं। वैसे, यह भी एक सचाई है कि मंजिल कहीं नहीं है। बस, सफर ही सफर है।'

मुकुल को भी वह पहली मुलाकात में ही अच्छा लगा था और वह उसे अपने कमरे पर ले गया था।

वहां, मुकुल के बहुत सारे सेल्फ-पोर्ट्रेटस देखकर उसे हैरानी हुई थी। कई शैलियों के पूरे-अधूरे सेल्फ-पोर्ट्रेट थे वे, जो आपस में एक-दूसरे से उतने ही मिलते थे, जितने वह मुकुल के चेहरे से मिलते थे। मुकुल ने बताया था, "इनमें मैंने उस असलियत को पकड़ने का प्रयत्न किया है, जो मेरे चेहरे की आकृति में नहीं, बल्कि उसके भी पार है।"

फिर, उसने मुकुल के कमरे पर जाने हेतु रवाना हो गया।

एक बार, जब वह उसके पास पहुंचा, तब मुकुल अपना पोर्ट्रेट बनाकर हटा ही था। उसमें झुंझलाहट थी क्योंकि वह अपनी आकृति के उस पार की असलियत को

पकड़ नहीं सका था।

पर, उस सेल्फ-पोर्ट्रेट ने उसका ध्यान खास तौर पर खींचा था। उसमें उसको मुकुल की नहीं, अपनी खुद की शक्ल दिखाई दी थी—एक चेहरा, जिसमें उसके चेहरे के टुकड़े आपस में जुड़े हुए थे।

"बात बनते-बनते रह गई है।" मुकुल ने चित्र की ओर संकेत करते हुए कहा था।

उसने आंखों में प्रश्न लेकर मुकुल की ओर देखा था।

"यानी कि बात नहीं बनी।" मुकुल हंसा था, जैसे उसको इस बात की प्रसन्नता थी कि वह मंजिल पर नहीं पहुंच सका।

"बहुत अजीब बात है, मुकुल!" आखिर उसने कहा था, "कि इसमें तेरी ही नहीं, मुझे अपनी भी शक्ल दिखाई देती है। जैसे तूने मेरा ही पोर्ट्रेट बनाया हो।"

"सच? मुकुल के मुंह से निकला था और उसने ध्यान से चित्र को देखा था।

"क्यों? नहीं दिखती?"

कुछ देर देखते रहने के पश्चात्, मुकुल ने कहा था, "शायद इसको बनाते समय मैं अवचेतन में तुझे ही देख रहा होऊंगा। या... या फिर यह भी हो सकता है कि मैंने अपने चेहरे की कुछ चीजों को जनरलाइज करने का प्रयास किया है। यानी कि किसी हद तक यह बताने की कोशिश की है कि यह चेहरा मेरा ही नहीं, वर्तमान दौर में से गुजर रहे एक आम आदमी का भी है।"

इस पर, उसने कहा था, "ज्यों-ज्यों मैं इसको देखता हूं, इसमें मुझे अपनी शक्ल उभरती हुई दिखाई दे रही है। इसे हमेशा देखते रहने को मन करता है।"

"तो फिर इसे तू ही रख ले और हमेशा देखा कर।" मुकुल मुस्कुराया था।

"मेरा यह मतलब नहीं था।" उसे कुछ झिझक हुई थी।

"पर मेरा यही मतलब है।" मुकुल हंसा था और उसने चित्र उसे दे दिया था।

यह चित्र की बदौलत ही था कि उसका तुच्छ-सा कमरा एक बारगी बहुत अहम बन गया था। वैसे, उसको यह भी लगा था कि वह चित्र इस जैसे कमरे में टांगे जाने के योग्य नहीं था। उसे तो किसी बहुत सुंदर कमरे का शृंगार होना चाहिए था। पर कुछ अरसे के बाद वह उस कमरे का एक हिस्सा लगने लगा था। जैसे वह खुद उस कमरे का एक हिस्सा बना हुआ था। बस, फर्क था तो इतना कि वह चित्र कमरे की अन्य वस्तुओं की भांति साधारण प्रतीत नहीं होता था।

वह कमरे में बैठा होता तो कई बार कितनी-कितनी देर तक चित्र को निहारता रहता, उसमें अपने आप को ढूंढने-पकड़ने की कोशिश करता रहता। कभी उसमें मुकुल की शक्ल का भ्रम होता, पर तभी वह शक्ल बिखर जाती और उसकी अपनी शक्ल बनने लगती।

एक बार खोखली हो चुकी दीवार में लगी कील उखड़ जाने से चित्र नीचे गिर पड़ा

था और उसका कांच टूट गया था। उसमें दो दरारें पड़ गई थीं। कांच के तीन टुकड़े हो गए थे, लेकिन वे फ्रेम में से निकले नहीं थे।

उसने एक और स्थान पर कील गाड़कर चित्र को टांग दिया था।

फिर, जब उसने देखा था, तब उसे कांच के नहीं, बल्कि चित्र वाले चेहरे के तीन टुकड़े हो गए प्रतीत हुए थे। वह चेहरा जो कई टुकड़ों में जुड़ा हुआ था, तीन टुकड़ों में टूट गया था।

तब, एकटक देखते हुए उसको चित्र में अपनी शक्ल अधिक साफ दिखने लगी थी। अब उसका चेहरा कई टुकड़ों के स्थान पर सिर्फ तीन टुकड़ों में टूटा हुआ था। चेहरे के तीन टुकड़े! उसने सोचा था। या तीन टुकड़ों वाला चेहरा! इनमें से एक टुकड़ा है जो वर्तमान है। एक टुकड़ा भूतकाल है। और तीसरा टुकड़ा भविष्य है। 'वाह!' उसके मुंह से अनायास निकला था। यह तो एक नया विश्लेषण हो गया इस पोर्ट्रेट का। कितना सुंदर विचार सूझा है! मुकुल को बताया जाना चाहिए। फिर शायद वह इसी नुक्ते से कोई अन्य सेल्फ-प्रोट्रेट बनाए। बहुत खुश होगा वह यह विचार सुनकर! जिंदगी की चौखट में जड़ा होने के कारण जुड़ा हुआ।

उस समय, चित्र को देखते हुए उसे ख्याल आया कि कहीं उसका चेहरा सचमुच इस तरह टूटा हुआ न हो। उसने दोनों हाथ चेहरे पर फेरे पर कुछ पता न चला। तब उसने शीशा उठाया और उसमें अपना चेहरा देखने लगा। शीशे का पानी कुछ जगहों से उतरा हुआ था। वैसे भी शीशा साफ नहीं था। शराब के नशे के कारण उसकी नजर भी साफ नहीं थी। उसको अपना चेहरा स्पष्ट दिखाई नहीं दिया तो उसने शीशा रख दिया और सोचा, अब नया शीशा ही लाना पड़ेगा। वैसे और भी कितनी ही वस्तुएं हैं जो नई लाने वाली हैं। तौलिया जो घिसकर जगह-जगह से फट चुका है, बूट जिनकी अब और मरम्मत नहीं हो सकती, बिस्तर की अकेली रह गई पुरानी चादर, और हां, बेदी का उपन्यास 'एक चादर मैली-सी।' कितना मन करता है इस उपन्यास को पढ़ने का! एक दिन लेखकों की मीटिंग में उसने बेदी के मुंह से सुना था। लेकिन, बेदी ने उपन्यास सुनाते समय कई बार बीच-बीच में रोकर उपन्यास का मजा ही खराब कर दिया था। रोना तो श्रोताओं को चाहिए था। बेदी भला क्यों रोया? अजीब बात है कि इतने धैर्य से लिखने वाला आदमी सुनाते समय स्वयं रो पड़ता है! लिखते समय भी अवश्य रो-रोकर लिखता होगा। लेकिन उसके लेखन में यह विलाप कहीं छिपा हुआ है। क्या मजाल है कि उसका एक फिकरा भी भावुक प्रतीत हो। इतने जब्त से लिखना बेदी का ही काम है। और आजकल सिख उसके पीछे पड़े हुए हैं। उपन्यास में सिखों के बारह बजने के बारे में एक लतीफा है, जो सिखों के हक में जाता है। लेकिन सिख उसको समझ नहीं सके और बेदी पर मुकदमा करने को घूमते हैं। किसी दिन चलकर बेदी के सिखों के बारे में कोई लतीफा सुनना चाहिए। बड़ा करारा लतीफा

सुनाएगा। दरअसल, बेदी के अंदर कोई बहुत तल्खी छिपी हुई है, जिसके कारण वह ऐसा लतीफेबाज है। उस तल्खी को लतीफों के माध्यम से बाहर निकालकर वह हल्का हो जाता है। मगर एक लेखक के तौर पर कितनी गहन-गंभीर है—उसकी कला! लो, वह बेदी भी किधर ले चला है।

वह बेदी और स्वयं पर हल्का-सा मुस्कराया और फिर सोचने लगा कि वह क्या सोच रहा था। उसे याद नहीं आया। तब उसके सामने पुनः दीवार पर टंगा चित्र उभरा और उसके एक टुकड़े को वह ध्यान लगाकर देखने लगा। यह टुकड़ा जो उसने मन ही मन कहा, वर्तमान चेहरे का टुकड़ा है। वर्तमान का चेहरा। सड़कों की गर्दिश का चेहरा। इस शहर की भीड़ का चेहरा। बिना आंखों वाली भीड़ जो शहर में बिखरी हुई है, दौड़ रही है और शहर की हदों में फंसी हुई है। इस शहर में से निकला नहीं जा रहा। जिंदगी इस शहर में फंसी हुई है। हां, यह वर्तमान का चेहरा इस शहर में फंसा हुआ चेहरा है। अपने शरीर से टूटा हुआ, खेतों से तथा गांव वाले घर से बिछुड़ा हुआ...।

उसको अपना गांव दिखाई दिया—सुदूर। और, उस गांव में अपना घर और परिवार दिखाई दिया—मां, बाप, दोनों बहनें और छोटा भाई। भूरी भैंस और काली बकरी। तीन-सवा तीन साल हो गए थे घर छोड़े, घर वालों से बिछुड़े और वह गांव नहीं जा सका था। वह शहर में फंसा हुआ था और निकल नहीं पा रहा था। इस शहर में आकर उसका चेहरा जैसे टूट गया था। फिर भी वह जुड़ा हुआ था, जिंदगी के फ्रेम की बदौलत। उसे याद आया कि बहुत पहले उसने कहीं पढ़ा था—होटल में बैठे एक आदमी के विषय में—जो इस प्रकार उदास बैठा था कि उसके चेहरे से उसकी नजर टूटी हुई थी, नजर से उसकी सोचें टूटी हुई थीं और सोचों से...। उस समय उसको पूरी तरह यह बात समझ में नहीं आई थी। लेकिन, यहां इस शहर में आकर, यह बात इतनी अच्छी तरह से समझ में आई थी कि उस चेहरे को वह कई बार अपने ख्यालों में देखा करता था। इस शहर में आकर उसका चेहरा कई चेहरों में तब्दील हो गया था—क्लर्क का चेहरा, बेकार आदमी का चेहरा, उस भिखारी का चेहरा जो वह बन नहीं सका था, और भूख का चेहरा, और फिल्म डायरेक्टर के चौथे असिस्टेंट का चेहरा तथा असफल कहानीकार का चेहरा...।

हां, यही अलग-अलग चेहरे हैं, उसने सोचा, जिनके टुकड़ों को जोड़कर मुकुल सेल्फ-पोर्ट्रेट बनाता है। जैसे उसके सेल्फ-पोर्ट्रेट के बीच कई टुकड़े। पर नहीं, अब तो वे सिर्फ तीन ही टुकड़े थे। एक टुकड़ा जो वर्तमान है। दूसरा टुकड़ा जो भूतकाल है—जिंदगी के बीते हुए वर्षों का चेहरा। जिंदगी के बीते हुए वर्ष...

उसने उस टुकड़े की ओर देखते हुए कहीं अतीत में देखा—अपनी जिंदगी के बीते हुए वर्षों की ओर। वे धुंधले-से लगे। उसने उनको साफतौर पर देखने के लिए अपने दिमाग पर जोर डाला। लेकिन, उसके सामने जो धुंध थी, उसमें वे वर्ष स्पष्ट दिखाई न दिए।

उसने सोचा, इन वर्षों में मेरा चेहरा कैसा था? वह उसकी कल्पना न कर सका। तब उसने अपनी किसी पुरानी फोटो को सामने लाने का प्रयत्न किया। कालेज के दिनों की एक फोटो उसके सामने आई, जो उसके आइडेंटिटी-कार्ड पर लगी हुई थी। कालेज में उसका वह प्रथम वर्ष था और अंतिम भी कालेज की आगे की पढ़ाई उससे छूट गई थी। पर वह एक वर्ष उसकी जिंदगी का कैसा वर्ष था! उस समय, वह आज जैसा नहीं था। तब का चेहरा, वह अपने आइडेंटिटी-कार्ड वाले चेहरे के सामने लाया तो उसके साथ ही एक और चेहरा उसके सामने आ खड़ा हुआ--तृप्ता, नहीं, तृप्ति का चेहरा। तृप्ता उसे कुछ अजीब-सा नाम लगता था। वह उसके विषय में जब भी सोचता, मन में तृप्ति कहकर ही सोचता। वह उसे बेहद अच्छी लगती थी। वह रात-दिन उसी के बारे में सोचता रहता, पर उसके साथ कभी बात करने का साहस नहीं कर पाया था। उसके विषय में बस यही सोचता था कि कभी अवसर मिलेगा और अपने आप बात हो जाएगी। आखिर, एक बार जब उसने तृप्ति को किसी अन्य लड़के के साथ--उसी जगमोहन के साथ जो कालेज में सबसे अधिक शौकीन और लोफर लड़का था--पार्क के एक कोने में हंस-हंसकर बातें करते देखा था तो उसे लगा था कि तृप्ति कांच की एक लड़की थी जो उसी वक्त टूटकर चूर-चूर हो गई थी और उसकी अनगिनत किरचें उसकी जिंदगी में गड़ गई थीं। उनकी चुभन आज भी शेष थी। तब, उसको अपना चेहरा बेहद मामूली-सा लगा था। वैसे, कितने तीखे नयन-नक्श थे उसके! गोरा रंग था और काले बाल! बिल्कुल उसकी मां का चेहरा प्रतीत होता था--सुंदर और कोमल और लड़कियों जैसा! स्कूल के नाटकों में उसने कई बार लड़की का रोल किया था। फिर उसकी दाढ़ी आ गई--काले, मुलायम, घुंघराले बाल। और उस दाढ़ी के कारण उसका चेहरा कुछ और ही बन गया था। वैसे भी, उसका चेहरा अब भर गया था और बहुत मर्दाना लगने लगा था। पर इस शहर में आकर उसने दाढ़ी और बाल कटवा लिए थे। "यहां तो स्वयं को संभालना कठिन है, दाढ़ी-बालों को कौन संभाले?" उसने सोचा था। फिर, एक बार हालात ऐसे बन गए थे कि दाढ़ी बढ़ने लगी थी और बढ़ती ही रही थी। वह उसे कटवा नहीं सका था। बेकारी का बहुत कठिन दौर था। वैसे, उन दिनों दाढ़ी रखने पर उसको कुछ लाभ ही हुआ था। गाल अंदर धंस जाने से उसका चेहरा जो बहुत ही दुर्बल-सा लगता था, दाढ़ी के कारण कुछ रौबदार बन गया था। उसे स्वयं भी लगता था कि वह इतना क़मजोर तो नहीं हुआ था। फिर, एक बार जब वह चौथे असिस्टेंट डायरेक्टर के तौर पर सत्तरह रुपयों की नौकरी कर रहा था तो फिल्म में एक छोटा-सा रोल मिलने पर उसको दाढ़ी कटवानी पड़ी थी। उस रोल में मुश्किल से पंद्रह मिनट का काम था उसका। और उसको ढाई-सौ रुपए मिले थे उसके। बाद में, उसी पात्र के रूप में फिल्म में आगे चलकर उसको एक बार फिर काम मिला था। डायरेक्टर ने उसके काम की बहुत तारीफ की थी। तब उसे आशा बंधी थी कि अगर फिल्म चल गई तो उसके रोल की बदौलत

उसको अन्य फिल्मों में भी काम मिलने लगेगा। लेकिन फिल्म रिलीज होने पर उसका रोल कहीं नहीं था। एडीटिंग के समय वह पात्र ही निकाल दिया गया था फिल्म से। वैसे फिल्म चली भी नहीं थी। फिल्म नहीं चली थी तो उसका डायरेक्टर भी नहीं चला था। उसके बाद उसे कोई फिल्म नहीं मिली थी। सो, उसके साथ ही चौथे असिस्टेंट के रूप में उसकी नौकरी भी जाती रही थी।

तब फिर वही सड़कों की गर्दिश थी।

एक ही बात से वह खुश था कि उसको शीघ्र ही फिल्म-लाइन से छुटकारा मिल गया था, नहीं तो वह सालों तक उसमें फंसा रहता। और वर्तमान में फंसे हुए, किसी आशा में, भविष्य की ओर देखता रहता। फिल्म-लाइन में भविष्य कितना सुनहरा और शानदार दिखाई दिया करता था।...

अब, वह पीछे की ओर नहीं, आगे की ओर देख रहा था—आगे, अपने भविष्य की ओर, फिल्मी जिंदगी वाले भविष्य की ओर नहीं, अपनी अब की जिंदगी के भविष्य की ओर।

पर भविष्य उसे अंधकारमय दिख रहा था।

भविष्य के उस अंधेरे में उसने अपना चेहरा देखना चाहा, लेकिन वह दिखाई न दिया।

भविष्य का चेहरा! उसने सोचा और सामने चित्र की ओर देखा। उसके एक टुकड़े को वह देर तक देखता रहा, पर उसमें भी अपने भविष्य का चेहरा न देख सका।

शायद, कुछ लोगों का भविष्य होता ही नहीं, उसने सोचा।

कुछ देर बाद, उसे अपनी आंखें बोझिल होती प्रतीत हुई। उनमें नींद थी और थकावट भी। लेकिन, वह चित्र की ओर एकटक देखता रहा। उसकी आंखें बंद होने लगीं। आखिर, वह लेट गया और उसे नींद आ गई।

सोए हुए उसने जैसे सपने में देखा, चित्र के टूटे हुए कांच की जगह नया साबुत कांच लगा हुआ था और वह कई टुकड़ों वाला चेहरा भी जैसे पूरा-साबुत बन गया था। मुकुल के बनाए चेहरे से वह बिलकुल ही पृथक चेहरा लग रहा था। और वह चेहरा—उसने. तुरंत पहचान लिया—उसकी मां का चेहरा था। बिलकुल पूरा चेहरा! लेकिन तब उसने देखा, मां की आंखों में आंसू थे और उसके होंठों पर जो चिर-स्थाई मुस्कुराहट हुआ करती थी, वह गायब थी। उस मुस्कुराहट के बिना उसको लगा, वह चेहरा उसकी मां का चेहरा नहीं है। वह कोई बहुत पराया चेहरा था!

घोड़ा

प्रेम प्रकाश

मेरी मौसी का बेटा मास्टर रमेश बूढ़ा नहीं था पर परहेजी खाना खाता था। पीने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। विवाह में फर्ज निबाहने आया था। सब से वर्षों बाद मिला था।

रात का खाना पेटभर खाने के बाद जब मैं सिगरेट लगाने लगा तो उसने मुझे एक ओर ले जाकर कहा, "छोड़ो भी लड़कों-वड़कों को। मैंने किसी रिश्तेदार के घर अलग कमरे का प्रबंध कर लिया है। बिस्तर भी लगवा लिए हैं । लेटकर गप्पें मारेंगे।" और मैं उसके संग चल पड़ा थां।

रिश्तेदारों की बातों से ऊबकर उसने मुझे अपनी प्रेम कहानी सुनाई। और फिर उसे उचित तथा प्रभावकारी सिद्ध करने के लिए एक लेखक की कहानियां सुनाता रहा, जिनमें आदमी किसी भी आयु में किसी पराई औरत के साथ दोस्ती कर अपने आपको मालामाल हुआ महसूस करता है। हर कहानी इस बात पर समाप्त होती कि उस औरत के प्यार ने उसको हाथ भर ऊंचा उठा दिया। उसकी सारी शख्सियत ही बदल गई। वह अच्छा इंसान बन गया। जीना सिर्फ उसके लिए ही नहीं, वरन उसके सभी अपनों तथा घरवालों के लिए भी आसान हो गया।

रमेश ने अपनी कहानी का निष्कर्ष भी यही निकाला था कि प्यार के वे दो वर्ष उसकी जिंदगी के वीरान रेगिस्तान में नखलिस्तान जैसे थे, जिन्हें याद कर अब भी उसको ठंडी छांव और सुखदायी हवा के चलने का अहसास होता है।

मैंने ऊबकर उसे रोक दिया। कहा, "मुझे लगता है, वह लेखक आदर्शवादी है। और तेरा अनुभव अधूरा है।... औरत का प्यार केवल सुख और आनंद ही नहीं देता, दुख और संताप भी पैदा करता है। वह आदमी को हल्का और जलील भी करता है। उससे सड़े हुए मांस की दुर्गंध आती है।"

मेरी बात सुनकर 'हूं' करते हुए वह सिरहाने पर खड़ी की गई बांह के हाथ पर सिर रखकर मेरी ओर देखने लगा। मैंने सिगरेट जलाकर अपनी बात मनवाने के लिए उसे अपने दोस्त की बात सुनाई।

कुलदीप मेहता कालेज में मेरे संग पढ़ा था। हम बी. काम. करने के पश्चात उस वर्ष कपड़े की एक बड़ी फर्म में नौकर हो गए थे। अब वह दफ्तर में हैड-अकाउंटेंट है और मैं कहने को तो डिप्टी मैनेजर हूं पर मेरा काम अधिकतर बाहर जाने का होता है। कभी टेढ़ी हुई पार्टी को सीधा करने, कभी मरी हुई असामी को तारने तो कभी डूबती रकम उगाहने। दफ्तर में मेहता की बहुत आवभगत है। पच्चीस-तीस लोग उसके अधीन काम करते हैं। अपने काम पर सवार होने के कारण मालिक भी उसकी खुशामद करते हैं, इसलिए दफ्तर में उसका दबदबा है। पर मैं दफ्तर में भी उसको मेहता कहकर बुलाता हूं।

चालीस की उम्र में पहुंचकर भी हम बाहर एक-दूजे को 'ओए कमीने' कह लेते हैं। और 'काफी होम' में बैठकर सभी छोटी-मोटी लुच्ची बातें कर लेते हैं।

छह महीने हुए, मुझे महसूस हुआ, मेहता जब मेरे घर आता है तो उसका चेहरा कुछ कसा हुआ होता है। लौटता है तब भी कसा-सा। बातें करते हुए भी उसका ध्यान कहीं और होता है। कई बार वह मेरी बात ही नहीं पकड़ता। और, कभी किसी के बारे में बताई गई बात किसी और से ही जोड़ लेता है। दफ्तर में भी किसी छोटी-सी बात पर भड़क उठता है। किसी का ढंग थोड़ा-सा भी रूखा लगे तो वह कागज फेंकने लगता।

मैंने समझा कि यह ढलती उम्र की निशानी है। घर की जिम्मेदारियों के बोझ का कारण है। एक दिन मैनेजर ने मुझे बुलाकर उसके घर की हालत के विषय में पूछा। मैं क्या बताता? मैंने भाभी के साथ उसकी लड़ाई कभी सुनी ही नहीं थी। एक दिन भाभी ने शिकायत की थी कि वह अब कम बोलता है। हंसता नहीं। अक्सर बाहर घूमता रहता है।

जब मैंने पूछा तो कहने लगा, "ऐसे ही यार, ब्लड-प्रैशर ठीक नहीं रहता। कभी 'लो'-हो जाता है, कभी 'हाई'। चैकअप करवाया है। दवाई खा रहा हूं।"

एक दिन मुझे उसके ब्लड-प्रैशर के लो-हाई होने का कारण मिल गया।... वह थी मेरे बिहारी किराएदार सक्सेना की पत्नी आशा। ऐसी ही सामान्य-सी शक्ल वाली। पक्के रंग, चौड़े मस्तक, मोटे होंठ और नाटे कद वाली औरत। उसका शरीर तो इकहरा था पर आगा-पीछा भारी था। वह बेहद मृदुभाषी, लज्जाशील और शरीफ औरत थी। वह मेकअप नहीं करती थी। सिर्फ बिंदी लगाती थी। नाक में कोका पहनती थी। और कानों में सादे-से टाप्स। वह बाजारों में व्यर्थ ही नहीं घूमा करती थी और न ही कोई पर-पुरुष उसके पास आया करता था। सारा दिन अपने तीनेक साल के बेटे के साथ खेलती रहती या मेरी घरवाली के पास बैठकर बातें करते हुए सिलाई-कढ़ाई का काम करती रहती।

वह टूटी-फूटी वस्तुओं को जोड़कर बहुत सुंदर बनावटी नमूने बना लेती थी। सक्सेना दवाओं की कंपनी में ऐजेंट था। वह घर में कम ही रहता था। उसके परिवार की देखभाल हम ही करते थे। मकान का उनका वाला हिस्सा एक ओर था। मैंने उनकी सुविधा के

लिए उनके वाले हिस्से में एक छोटा-सा गेट लगवा दिया था। सक्सेना रात-बिरात देर-सवेर से आता था न! मकान के दोनों हिस्सों के मध्य छोटी-सी दीवार थी जिसे बच्चे भी फांद सकते थे।

महीना भर हुआ, मैंने देखा कि कोई आदमी सक्सेना के गेट में से निकला और तेजी के साथ अस्पताल वाली गली में घुस गया। अभी रात के आठ बजे थे। मैं उसके पीछे गया। वह टी-स्टाल वाले मोड़ से मुड़कर बड़ी सड़क की ओर हुआ तो मैंने भाई-साहब कहकर उसको बुलाया और तेजी के साथ आगे बढ़कर उसे रोक लिया।... मैं देखकर अवाक रह गया, वह मेहता था। मैंने कहा, "कमीने! चोरों की तरह लौट चला है। चल घर।" पर वह यही कहता रहा, "आज मुझे जाने दे। मूड ठीक नहीं।"

मैं उसके साथ ही चल पड़ा। वह अपने घर की ओर नहीं गया। रेलवे रोड पर हो लिया। चलते-चलते मैंने पूछा, "बात क्या है?" तो बोला, "बतलाने योग्य नहीं।" मैं हैरान था कि ऐसी क्या बात हो सकती है? वह तो मुझसे अपनी जिसी कमजोरियां और कमीने काम भी नहीं छिपाता था। जब भी कोई घटना होती है, तुरंत मुझे सुना देता है।

मैं उसे बेसमेंट वाली बार में ले गया। बीयर आ गई। पीने लगे तो वह मुस्कुरा उठा। मैंने सोचा, लो अब पकड़ा गया। यह उसकी आदत है, जब मेरी ओर देखकर मुस्कुराता है तो वह अपने दिल की बात बताने के लिए स्वयं को तैयार कर रहा होता है। आखिर, उसने बतलाना आरंभ किया। बोला, "क्या बताऊं, मैं फंस गया था। पर अब कोई बात नहीं, मैं उस दलदल से निकल आया हूं।...तू ही सोच, अपनी कोई उम्र है फंसने वाली? और वह भी है साली छोकरी-सी! मालूम नहीं अपने आप को क्या समझती है?"

मैंने कहा, "कमीने, तूने मुझे फंसने वाली बात तो बताई ही नहीं। निकलने वाली बता रहा है।... शुरू से बता।" वह बोला, "शुरू से बतानी तो मुझे आती नहीं। जो बात हुई, सुन ले। लेकिन, किसी और से न करना। मसखरी भी न करना, मेम के साथ।"

वह अपनी गोरी पत्नी को मेम कहकर बुलाता है। मैंने बीयर का गिलास उठाकर कसम खाई। एक और आर्डर दे दिया। मेहता झिझकते हुए बात सुनाने लगा। बोला, "तुझे याद होगा, एक बार तेरे घर बैठकर हम लोग चाय पी रहे थे। मैंने आशा के बनाए उस बैग की तारीफ की थी जिस पर सीपियों के रंग-बिरंगे मूंगे-मोतियों से एक तस्वीर बनाई हुई थी। खजूर के वृक्ष तले मिट्टी के ढेर पर बैठा मछुआरा बांसुरी बजा रहा था।... जब वह उठकर जाने लगी तो एक बार फिर तारीफ कर दी। बाद में मैं सोचता रहा कि यह तारीफ मैंने क्यों की? मुझसे कैसे हो गई? वह बैग मुझे इतना सुंदर नहीं लगा था।... रात को मैं सोचता रहा कि मुझे महसूस हुआ कि उसके सांवले चेहरे पर मोटे होंठ और आंखों के लाल डोरे अच्छे लगते हैं। बात खत्म हो गई। फिर भी, जब वह मेरे सामने होती, मुझे कुछ न होता। जब वह चली जाती, मुझे उसकी आंखें और होंठ याद आते।... एक रात

मेम साहिबा के साथ लेटे हुए मुझे ख्याल आया कि अगर इस गोरी और सुंदर औरत का रंग सांवला होता, होंठ मोटे होते और आंखें मसकीन-सी होतीं... मसकीन नहीं, कुछ खोजती हुई-सी, जिनकी सफेदी में लाल–डोरे हों, जो पहली बार देखने पर आम-सी लगें, पर आहिस्ता-आहिस्ता अंदर गड़ती चली जाएं। और आदमी को कस दें।

एक दिन मेम साहिबा गई हुई थी। खालीपन की ऊब से तंग आकर मैं उसके घर चला गया। वह बहुत खुश हुई। हम चाय पीते रहे। वह कभी कोई फल काटकर सामने रखती और कभी कोई नमकीन चीज। फिर मुझे अपने सजावटी नमूने निकाल-निकालकर दिखाती रही। मैं तारीफ करता रहा। उस दिन मुझे उसकी आंखों और होंठों के खिंचाव का ठीक-ठीक अहसास हुआ। मैं जल्द ही घबरा गया और उठकर तेरे घर चला आया।... उस दिन शाम को वह तुम्हारे घर आई तो मुझे उसका बच्चा बड़ा प्यारा लगा। मैं उससे लाड़ करता रहा। ...एक बार तुम सब कहीं गए हुए थे। उसने मुझे स्वयं दावत दी। वह मुझे बाजार में मिली थी। मैंने उसे बताया था कि मैं आज अकेला हूं।

मैं दफ्तर से लौटा तो वह बरामदे में खड़ी थी। मुझे लगा, वह मेरी प्रतीक्षा कर रही है। उसने लाल-पीले रंग की राजस्थानी साड़ी पहन रखी थी। पहनी इस ढंग से थी कि शरीर की सेहत का पूरा पता लगता था। हमने चाय का एक-एक प्याला पिया। बच्चा खेलता रहा। अचानक मुझे महसूस हुआ कि मैं उसके पास और अधिक रुक नहीं सकता। मुझे चले जाना चाहिए। दिल घबराने लगा था। मैं उठकर चलने लगा तो उसने रोकते हुए कहा–कहां चले? मैं खाना तैयार करने लगी हूं। खाकर ही जाना। लेकिन, मैं 'आता हूं' कहकर बाहर निकल गया। मन करता था कि तुझसे मिलकर अपने दिल की हालत बताऊं। पर डर गया । कहीं बात का बतंगड़ न बन जाए।

सड़कों पर आवारा घूमता-घुमाता नौ बजे के करीब मैं उसके पास पहुंच गया। वह खाना तैयार किए हुए बैठी थी। हल्की-हल्की ठंड थी, फिर भी उसने नहा-धोकर गाऊन पहन रखा था। बाल करीने से बनाकर जूड़ा किया हुआ था। हल्की-सी लिपिस्टिक लगा रखी थी। उसके समीप होने पर मालूम हुआ कि उसने कोई सैंट भी लगा रखा था। शायद, जिस्म की गंध को दबाने के लिए, जो कि मुझे अच्छी लगती थी। दो बार मैं उसकी उसी गंध के कारण ही उसके करीब आया था। मन किया, उसके जिस्म की गंध वाले हिस्से को खुरचकर रुमाल में रख लूं।

खाना बेहद स्वादिष्ट था। उसने मेरी पसंद के ख्याल से भरवां भिण्डी, मछली तथा कद्दू का रायता बनाया था।... बातें करते हुए उसने बताया कि उसका पति पुणे गया है। चिट्ठी आई है... परसों लौटेगा। बच्चा दूध न पीने की जिद्द करता हुआ रोने लगा था। उसे अंदर ले जाकर उसने सुला दिया। हम कॉफी पीते हुए बातें करते रहे। मुझे औरतों से बातें करना नहीं आता। मुझे मालूम ही नहीं कि औरत की किसी बात का कौन-सा

जवाब उसको जंच सकता है। सो, मैं उसका आगा-पीछा पूछता रहा। उसकी मां बंगाली थी और पिता बिहारी। उसे पंजाबी लोग अच्छे लगते थे, पर उनके स्वभाव का रूखापन परेशान करता था।... उसने मुझसे कुछ नहीं पूछा। जैसे मेरे बारे में सब कुछ जानती हो या उसको जानने की आवश्यकता न हो। उसके ड्राइंग-रूम की खिड़कियों और दरवाजों पर लटकते पर्दे शानदार रंगों और डिजाइनों वाले थे। रंगों का चुनाव वहां खत्म होता था। मैं तो उसके सम्मुख मूर्ख था। सजावट की तारीफ करते हुए मेरी दृष्टि दीवार पर टंगे एक सजावटी नमूने पर पड़ी; उस पर पूरी चित्रकारी कपड़े की रंग-बिरंगी कतरनों को जोड़कर की हुई थी। तीन जेबें भी थीं जिनमें कागज-पत्र रखे जा सकते थे। मैं उसकी तारीफ करता हुआ उसके समीप चला गया।... 'ठहरो, मैं उतारकर दिखलाती हूं।' कहकर वह स्टूल पर चढ़कर उसको उतारने लगी और फिसलकर फर्श पर पीठ के बल गिर पड़ी। उसकी एक टांग पूरी और दूसरी आधी नग्न हो गई। उसके बाहर से दीखने वाला पक्का रंग और पतले शरीर के उलट उसके ढके हुए अंग गोरे भरे हुए थे। मैंने तुरंत उसकी बांह पकड़कर उसे उठाया। वह मेरी ओर देखते हुए अपने गिरने पर खूब हंसी। फिर सिर झुकाकर सोचती रही। उसकी बांह मेरे हाथ में थी।... जिंदगी में पहली बार मैंने किसी पराई स्त्री की बांह पकड़ी थी। उस दिन, मालूम नहीं मुझमें हिम्मत कहां से आ गई, मैंने अपनी दूसरी बांह उसके कंधों पर रख दी। मैंने उसकी ओर देखते हुए बत्ती बुझाने के लिए स्विच की ओर हाथ बढ़ाया तो उसने सिर हिलाकर 'न' कहा। डर कर मेरा हाथ पीछे हट गया। मैं उसके सामने कुर्सी पर बैठ गया। 'मैं कॉफी बनाती हूं।' कहकर वह अंदर चली गई। ट्रे लेकर बाहर आई तो वह पूरी बंगालिन लग रही थी। उसने अपने बाल कंधों पर बिखेरे हुए थे। उसके सारे खिंचाव में मनमानी व्याप्त थी। मुझे लगा, उसने यह रूप मुझे तंग करने के लिए ही बनाया था। काफी पीने के बाद मुझे कोई बात नहीं सूझ रही थी। उसे भी नहीं। वह उठकर अंदर वाले कमरे में चली गई तो मैं भी उसके पीछे-पीछे चला गया। जब उसने मेरा आलिंगन स्वीकारा तो मुझे कुछ खबर ही नहीं रही कि मैं कहां हूं।

दसेक दिनों के बाद एक अवसर फिर मिला। चाय पीते हुए मुझे लगा, वह जो बातें कर रही है, उनमें कभी मीठी-सी चुभन होती है और कभी कसक तो कभी गुदगुदी। उसने बंगला का एक लोकगीत बेहद धीमे स्वर में गाया। फिर वह बंगला कविता की बात करने लगी, जिसकी मुझे कोई समझ नहीं थी। पर वह जो कुछ बोलती थी, जिस सुर में गाती थी और सिर को हिलाते हुए चेहरे के भाव जिस तरह बदलती थी, वह सब कुछ उत्तम था। लेकिन, उसके जवाब में मेरे पास कुछ भी उत्तम नहीं था। मुझे तो बस यही महसूस हो रहा था कि उस गीत के सुर, उसके होंठों, आंखों और भौंहों की हरकतें, मेरी रग-रग में चुभ रही थीं। वह चुप हुई तो मैं उठकर उसके पास खड़ा हो गया। वह खीझ गई और बोली, 'यह क्या पशुओं की भांति पीछे पड़ जाते हो?...' उस समय, मैं सचमुच पशु ही

था। मेरा पशुपन खत्म होता था तभी मैं कुछ और सोचने के योग्य होता था। पता नहीं क्यों, जब मैं उसके करीब जाता था तो मेरे दिल की धड़कन इतनी बढ़ जाती थी कि मुझे खुद को उसकी आवाज सुनाई देने लगती थी। फिर निरंतर सुनाई देती रहती। जैसे घोड़े की टापें बज रही हों। आहिस्ता-आहिस्ता वे टापें इतनी ऊंची हो जातीं कि मुझे और कुछ भी सुनाई न देता। बस, घोड़ा सरपट दौड़ता रहता।

यह बात एक दिन मैंने उसे बताई तो वह खूब हंसी। बोली, हमारे एक लोक गीत में आता है—घोड़े लगामों के साथ ही अच्छे लगते हैं।

उसके घर से उठकर जाता तो मुझे कुछ भी अच्छा न लगता। घर, पत्नी, बच्चे, दफ्तर और मित्र, कुछ भी नहीं। दफ्तर में दिल न लगता, छुट्टी ले लेता। घर जाता तो मेम साहिबा कारण पूछती। बीमारी का बहाना बनाता तो वह डाक्टर के पास जाने को विवश कर देती। मैं यों ही कोई टॉनिक लेकर लौट आता। शहर में घूमता रहता। अंत में, उसके घर चला जाता। बार-बार मेरे आने पर वह भी परेशान हो जाती। मुझे घूरने लग जाती। एक दिन बोली, 'मैं ऐसी-वैसी औरत नहीं। तुम क्या समझकर आ जाते हो?' मैं क्या कहता? मुझे यह बात बताने का ढंग ही नहीं आता था कि जब मैं उससे दूर होता हूं तो मेरी जान निकलने लगती है। वह दिखाई नहीं देती तो परेशान हो जाता हूं। दिखाई देती है, मिलती है तब भी परेशान रहता हूं। पास बैठता हूं तो ब्लड-प्रेशर बढ़ता है, दूर होता हूं तो घटने लगता है। अजीब दलदल में फंस गया।

एक बारगी, मैं बेचैन हो उठा। मुझे लगा कि घोड़ा बेलगाम हो गया है। मुझे उसकी टापों की आवाज भी सुनाई देना बंद हो गई। मुझसे एक गलत-सी हरकत हो गई तो उसने मुझे बेहद बुरा-भला कहा। यहां तक कहा कि 'मेरे घर से बाहर हो जा। कोई जरूरत नहीं मेरे पास आने की। मुझे बहुत बेइज्जती महसूस हुई। स्वयं को बहुत धिक्कारा। फैसला किया कि अब नहीं जाऊंगा। पर चौथे-पांचवें दिन मैं फिर उसके घर में था। पहले तो उसके घर जाते-जाते मैं गुस्से से तुम्हारे घर जा घुसा था। वहां से निकलकर मैंने अपने घर जाने का फैसला किया था पर जब उसका गेट सामने आया तो मैं अंदर चला गया। मुझे देखकर वह कुछ न बोली। क्रोशिए से कुछ काढ़ती-देखती रही। मैं खड़े-खड़े ही लौटने लगा तो उसने उठकर मेरी बांह थाम ली। कहने लगी, 'नाराज हो गए?' मैं क्या कहता? कहने लायक ही नहीं था। बैठ गया। वह कॉफी बना लाई। कॉफी पीते हुए मुझे महसूस हुआ कि मुझे तो कुछ सूझ ही नहीं रहा—वह मेरे अच्छे, सच्चे और पवित्र इंसान होने की तारीफ करने लगी। उसने सीधे-सीधे कुछ नहीं कहा कि वह मेरी प्रतीक्षा करती रही है। अपनी कही बात के लिए क्षमाप्रार्थी है।.. दफ्तर का ख्याल आने पर मैं उठ खड़ा हुआ। उसने मेरा हाथ पकड़कर चूमा और विदा करते हुए कहा, 'इन सुंदर हाथों वाला आदमी कोई महान होना चाहिए। अपने आसपास फूल खिलाने वाला।'

एक बार मैं तेरे घर गया। भाभी ने बताया, आशा बीमार है। मैं उसे देखने चला गया। उसे कई दिनों से हल्का-हल्का बुखार आ रहा था। सक्सेना उसे डाक्टर को दिखाकर और दवा दिलाकर टूर पर चला गया था। पर बुखार नहीं उतरा था। मैंने उसकी सारी स्थिति जानकर पूछा, 'पैखाना और पेशाब टैस्ट करवाए?' उसने बेचारगी व्यक्त करते हुए कहा, 'कौन करवाए?' मैंने कहा, 'लानत है मुझ पर। तू मुझे अपना कुछ नहीं समझती? मुझे क्यों नहीं बुलवाया?'

मैंने दफ्तर में लेट पहुंचने के लिए फोन किया और उसे पैखाना और पेशाब टैस्ट के लिए ले गया। भाभी को मैंने यही बताया कि मैं दवा लेने जा रहा हूं।

तुम्हारा सारा परिवार उसकी सेवा में लगा रहा। वह ठीक होने पर सबका अहसान मानती रही। उसका पति आया तो उसकी सेहत बनाने के लिए उसको शिमला ले गया। मैं उदास हो गया। खाने-पहनने, बातें करने और काम करने के सभी स्वाद मारे गए। अपना यह फिल्मी-सा व्यवहार मुझे खुद को ही व्यर्थ-सा लगने लगा। तुझे अगर पता चलता तो मालूम नहीं मुझ पर कितनी लानतें लगाता।'

उसके लौट आने पर मुझे फिर महसूस होने लगा कि मेरा आधा अस्तित्व मेरे नियंत्रण से बाहर होने लगा है। मैं अपने इस आधे हिस्से को उसकी ओर जाने से रोकता। अंदर एक गोला-सा उठता और मैं दफ्तर से कुछ समय की छुट्टी लेकर चल देता। पर कभी सड़क पर से ही लौट आता तो कभी उसके घर के गेट पर से। और कभी अपने आप को खींचकर तुम्हारे घर में ले जाता।

एक दिन कर्नाटक की एक फर्म के मैनेजर ने मुझे तीन साड़ियां दीं। उनमें से एक थी तो कम कीमत की पर प्रिंट बहुत शानदार था। मैंने धीरे से उस साड़ी को लपेटा और उसके घर पहुंच गया। उसने साड़ी खोली। पसंद की। लेकिन, कुर्सी पर बैठकर सोचती रही। वह मुझे पहले से अधिक सुंदर लग रही थी। चेहरे पर लाली आ गई थी। शिमला ने उसका रंग निखार दिया था। मैंने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ना चाहा, उसने सिर हिलाकर मना कर दिया। कुर्सी पर बैठी टांग हिलाती रही। मेरे अंदर चाहत, निराशा, गुस्सा, हतक और पता नहीं कैसी-कैसी भावनाएं आपस में गुत्थम-गुत्था होती रहीं। फिर घोड़े की टाप एकाएक तेज हो गई। जैसे उछल पड़ा हो वह। वहशी हो गया हो। मालिक से भी बागी।... मैंने उसके संग जोर-जबरदस्ती करनी चाही। मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। वह मुझसे इतनी जोर से दब गया कि उसकी चीख ही निकल गई। वह रोने लगी। मैं गूंगा बनकर खड़ा रहा। उसने उठकर मेरा तना हुआ चेहरा देखा। फिर तिपाई पर से साड़ी उठाकर दूर फेंक दीं। अंग्रेजी में मुझे बेरहम, बदतमीज, असभ्य तथा बहुत कुछ कहा। हुक्म देते हुए बोली कि 'इसी वक्त मेरे घर से निकल जा, फिर कभी न आना।'

''मैं बहुत लज्जित हुआ। भय भी लगा। दुख भी हुआ। उसके हाथ पर तो मैंने दबाव

डाला ही नहीं था। उसका हाथ जैसे रबड़ का हो गया था। मैं अपनी मूर्खता पर पछताता रहा। राह में सोचता रहा, छोड़ो भी, क्या पड़ा है इस पागलपन में?

लेकिन, पांचेक दिन के बाद, मैं पुनः उसके कमरे में था। उसका बच्चा घर पर नहीं था। स्कूल गया हुआ था। मुझे देखकर उसका चेहरा पत्थर का हो गया। मैंने अपनी गलती स्वीकार की। वह उसी तरह बैठी रही। वह समझौते के मूड में नहीं थी। मेरा रक्तचाप फिर एकाएक बढ़ने लगा। फिर मालूम नहीं मुझे क्या हुआ, मैंने उसकी चप्पल को उठाकर अपने सिर पर मारना आरंभ कर दिया। और कहता गया—मैं इसी योग्य हूं... मैं इसी काबिल हूं। उसने उठकर मेरा हाथ पकड़ लिया। खड़े-खड़े ही मेरे हाथ को पलोसा। बोली, 'तुम्हें क्या हो जाता है?' मेरी रुलाई फूट पड़ी। मेरे भीतर कुछ टूटने-बिखरने लगा। मैंने हाथ जोड़कर कहा, 'मैं तुझसे मिले बिना नहीं रह सकता। मुझ पर रहम कर। मेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं।' फिर मैं कुत्ते की तरह झुककर उसके पैर चूमने लगा। उसने पैरों को पीछे नहीं खींचा. वैसे इधर-उधर करती रही। फिर पीछे हटकर कुर्सी पर बैठ गई। आखें मूंदकर सोचती रही।... तभी मुझे याद आया, मैं तो कर्नाटक वाली पार्टी को तीन बजे का समय देकर आया था। मैं उसको सोचते हुए ही छोड़कर लौट आया।

दफ्तर से घर की ओर जाते हुए सोचता रहा कि मैं क्या कर रहा हूं।... रात को भी यही सोच मुझ पर हावी रही।... तभी मुझे अपने छोटे शहर की एक बात स्मरण हो आई।... जागीरदार अजमल खां, जिसे बाद मे लोग अज्जू पठान कहने लगे थे, बहुत रौब वाला आदमी था। वह घोड़ी पर निकलता था तो दरवाजों में बैठे लोग उठकर खड़े हो जाते थे। उसकी घोड़ी किसी के खेत में घुस जाती थी तो उसको तुरंत शोर मचाकर तो निकाला जा सकता था, पर छड़ी नहीं मार सकते थे। न ही उलाहना दे सकते थे। वह नमाजी व्यक्ति था, शराब नहीं पीता था। किसी गरीब के साथ किसी जट्ट को जबरदस्ती नहीं करने देता था। स्त्रियों के संग ज्यादती तो वह बिल्कुल ही बर्दाश्त नहीं करने देता था।

उसका उस उम्र में जब कि उसका अपना बेटा जवान हो गया था, नियामत नाम की एक कंजरी से इश्क हो गया था। अजमल खां पहले तो उसके कोठे पर जाता रहा, फिर उसको अपने शीशमहल में बुलाकर मुजरे करवाता रहा। कहते हैं, जब उसका बड़ा बेटा नूर खां इसका विरोध करने लगा, तब खां ने जमीन का एक हिस्सा बेचकर नियामत के लिए लाहौर में कोठी डाल दी और स्वयं भी वहीं रहने लगा। कहते हैं, लोगों ने अपनी आंखों से देखा कि अजमल खां पठान उस कंजरी की जूतियां साफ करता था। वह कहती तो घुटनों के बल होकर उसके लिए घोड़ा बन जाता था। वह उसके मुंह में लगाम डालकर चुन्नी की चाबुक बनाकर उसे मारा करती थी। और खान साहब घोड़े की भांति हिनहिनाकर कालीन पर चारों पैरों से चलकर नियामत को खुश किया करते थे।... यह बात सोचते हुए मुझे लगता जैसे मैं खुद घोड़ा बन गया होऊं और मेरे अंदर से हिनहिनाने की आवाजें

आतीं।... मेम साहिबा पूछती, क्या बात है? नींद नहीं आ रही? मैं 'हां' कहता और उसके कहने पर नींद की गोली खा लेता। वह समझती थी कि दफ्तर के काम की कोई परेशानी होगी।

कुछ दिन हुए, मैंने बेहद परेशानी के कारण एक हफ्ते की छुट्टी ले ली और दिल्ली चला गया। आवारा घूमता और दोस्तों से मिलता रहा, पर तीन दिन में ही ऊब गया। अंदर एक गोला-सा उठा तो लौट आया। सीधा उसके घर गया। पर वहां ताला लगा हुआ था। फिर भी, मैं अपने घर नहीं गया। दफ्तर से छुट्टी पर था न! एक चाय की दुकान पर छिपकर बैठा रहा। घंटे भर बाद गया तो वह घर पर थी। मैंने नमस्ते की उसने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल सिर हिला दिया। बैठने के लिए भी नहीं कहा। मैं स्वयं ही एक कुर्सी पर बैठ गया। वह एक टांग फैलाकर दीवान पर बैठी-बैठी कढ़ाई कर रही थी। मैंने कहा, 'मैं चरणवंदना के लिए आया हूं।' वह चुप्पी साधे हुए पैर हिलाती रही। मैंने हाथ बढ़ाकर उसका पैर पकड़ना चाहा तो उसने पैर पीछे खींच लिया। अंग्रेजी में बोली, 'बंदा बनकर बैठ।' मुझे लगा कि यह चाहती है कि आज फिर मैं कुत्ते की भांति झुककर इसके पैर चूमूं और इसे मनाऊं। इसके तलुवे चाटूं...। फिर पता नहीं मुझे क्या हुआ। मैंने उठकर उसे थप्पड़ दे मारा। उसके खुले हुए बाल पकड़कर खींचे। और, उसको फर्श पर गिरा दिया। कुछ गंदी-सी गालियां निकालीं और बाहर निकल आया।... मोड़ पर मेरा पीछा कर तूने मुझे पकड़ लिया।

आज मैं खुश हूं। आजाद हूं। निकल आया हूं, जिल्लत की दलदल से।...आज शराब मंगा। हम जी भरकर पीएंगे।" कहकर उसने सौ-सौ के नोट निकालकर मेरे आगे रख दिए।

"समझा बात?" मैंने अपनी मौसी के बेटे मास्टर रमेश से पूछा, "सो गया क्या?"

"नहीं तो।" उसने अकस्मात् हड़बड़ाकर आंखें खोलीं और उठकर मेरी ओर देखते हुए बोला, "तू बता रहा था कि फिर तुम शराब पीने लग पड़े। फिर क्या हुआ?" उसने उठकर सिगरेट लगा ली। मैं भी सिगरेट लगाकर ताजादम होकर बताने लगा, "मैंने सक्सेना को बहाना बनाकर कहा कि मेरे रिश्तेदारों को मकान की जरूरत है, अतः मकान खाली कर दे। लेकिन, उसको दूसरा मकान ढूंढ़ने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। उसकी बदली दिल्ली हो गई थी।"

उनके जाने के कुछ दिन बाद औरंगाबाद से एक चिट्ठी आई। आशा की ओर से अपनी सहेली ललिता को लिखी हुई थी। सहेली का पता ठीक न होने के कारण वह लौट आई थी। मिसेज सक्सेना ने लिखा था—तूने यह तो लिखा ही नहीं कि तुझे और कितने दिन औरंगाबाद रहना है। सक्सेना साहब का तबादला होने वाला है। शायद, हम इस महीने दिल्ली चले जाएं।

तूने अपने पंजाबी पड़ोसी के बारे में जो अनुभव लिखा था, मेरे लिए वह उल्टा सिद्ध

हुआ है। कुछ अजीब-सा भी। मुझे लगता है कि ये अच्छा खाने वाले, अच्छा पहनने वाले पंजाबी लोग रूखे, कटु और सहज स्वाभाव से वंचित होते हैं। इनका स्वभाव मध्य प्रदेश के 'होत कबीले' के लोगों से मिलता है, जो खाने-पीने का जश्न मानते हैं और कई जानवरों को मारकर उन्हें भूनकर खाते और शराब पीते रहते हैं। शादियां करते हैं तो कबीले की एक भी लड़की कुआंरी नहीं रहने देते।... पंजाबी हर काम धुंआधार करते हैं। चाहे गहनों-कपड़ों का दिखावा हो या खर्च। प्यार और नफरत भी जी भरकर करते हैं।...ऐसे ही एक बखेड़े में मैं फंसी हुई हूं।

सक्सेना साहब का एक दोस्त है। अक्सर घर आता-जाता है। बेहद सादा, सभ्य और निश्छल-सा व्यक्ति है। सच बोलने वाला और दूसरे के काम आने वाला। मुझे वह इसलिए भी अच्छा लगा क्योंकि उसको रंगों और कपड़ों की चित्रकारी की समझ है। वह सुंदर वस्तु को देखकर सराह सकता है।... दो-चार मुलाकातों पर मुझे महसूस होने लगा कि उसके माथे और आंखों की चमक, सच का गहरापन और आवाज की थराथराहट मुझे आकर्षित करती है! मुझे बहुत देर बाद अच्छे व्यक्ति की संगत के सुख का अहसास हुआ। और बोरियत के बोझ और उसके दबाव का ज्ञान हुआ। उसके संग बैठकर, चाय पीकर और बातें कर अजीब-से सुख का अनुभव हुआ।

लेकिन, मेरे अकेले होने का भय तेरे जैसा नहीं था—भटकाव वाला। न ही एडवेंचर करने के लिए उकसाने वाला। मुझे तो यह सहज-सी अवस्था लगती थी। सुखदायी। मन में मीठी-सी खुशबू पैदा करने वाली, जो धीमे-धीमे तुम्हारे अंदर से निकले और चारों दिशाओं को मादक बना दे, जो आदमी को व्याकुल न करे, वरन व्याकुलता के दर्द को रसीला बना दे।

जब हमारी कई मुलाकातें हो गईं तो मुझे महसूस होने लगा कि मेरा मन कमजोर होने लगा है। वह न आता, मुझे प्रतीक्षा रहती। वह चला जाता, मैं उदास हो जाती। मेरी यह सोच कभी मुझे भयभीत भी कर देती। इसका अंत क्या होगा? कहीं तेरे वाला तो नहीं?...

मैं जिस अंत से डरती थी और अपनी जिस कमजोरी से, वह नहीं हुआ। बल्कि कुछ और ही होने लगा।... कुछ मुलाकातों के पश्चात् ही वह भावुक हो उठा। उसके अंदर मध य प्रदेश के आदिवासियों की तरह चौमासे की रामगंगा में बाढ़ आ गई। वह प्यार जताता तो वहशियों की भांति हमले करने लगता... वह स्वयं कहा करता कि उसके अंदर कोई घोड़ा दौड़ता है। जिसके दौड़ने की आवाज उसे सुनाई देती है।... पर मुझे लगता है कि उसका घोड़ा सुधारे जाने वाली नस्ल का घोड़ा नहीं है। मुझे कभी वह बुरा लगता है और कभी बहुत अच्छा।... अहिस्ता-अहिस्ता मुझे मालूम हुआ कि उसमें कलात्मक गुण वाली कोई बात है ही नहीं। उसके मस्तिष्क में सुर नहीं है। वह कपड़ों के सजावटी रंगों और डिजाइनों की बातें इसलिए कर लेता है क्योंकि वह टेक्सटाइल कंपनी में काम करता हैं

मैंने बहुत कोशिश की, उसकी सोच को बदलने और एक ठहराव लाने की। प्यार की बातें करने और फिर उनके विषय में सोचकर आनंद लेने की। लेकिन, उसका आदिवासी होना न गया। इस बात से मैं बहुत दुखी हो जाती।

मैं नहीं समझती कि उसका मकसद मुझे कष्ट देना है वह तो प्यार की बाढ़ में बहकर इतना पागल हो जाता है कि भूल ही जाता है कि उसकी किसी हरकत से मुझे कितना कष्ट होता है। वह हाथ दबाता या बांहों में भरता तो मेरी हड्डियां कड़क उठतीं।

एक बार, मैंने चाहा, उसे सख्ती से रोककर समझाऊं। पर उसने तभी राई का पहाड़ बना लिया। एकदम बिफर गया। रूठकर भाग गया। एक दिन मुझे भी गुस्सा आ गया। मैंने उसकी दी हुई साड़ी उठाकर फेंक दी वह खिसक गया।

फिर एक दिन आया तो 'सारी' कहकर बात खत्म करने के बदले मेरी चप्पल अपने सिर पर मारने लगा। मैंने रोका तो फूट-फूटकर रो पड़ा। मैं फंस गई, इस नई परिस्थिति में। मुझे बेहद शर्म आई। दया आई—उसकी और अपनी हालत पर। सोचा और प्रार्थना की कि मेरी इसके साथ बात खत्म हो ही जाए तो अच्छा है।... और मैंने बात को खत्म करने का फैसला कर लिया।

वह एक शाम फिर आया। मैं अभी फैसला भी नहीं कर पाई थी कि मेरा व्यवहार कैसा हो, वह मुंह में कुछ बड़बड़ाया। मैंने प्रतीक्षा की कि वह कुछ बोले, अपनी बात स्पष्ट करे। पर उसे पता नहीं क्या हो गया था? एकाएक मुझ पर हमला कर दिया। मेरे बालों को पकड़कर मुझे फर्श पर गिरा दिया और भिनभिनाता हुआ बाहर निकल गया।... मैं हैरान-परेशान रह गई।

ललिता, तू बता सकती है कि उसका यह व्यवहार क्यों है?... लिखना, अब मुझे क्या करना चाहिए?... तेरे उत्तर की बेसब्री से प्रतीक्षा करूंगी।"

"तू सुन रहा है, रमेश?" मैंने पूछा तो वह गहरी नींद में सोया पड़ा था।

अगर वह जाग रहा होता तो मैं उसको बता देता कि यह कहानी मेरे दोस्त की नहीं, मेरी है।... और यह भी बता देता कि मैंने उस चिट्ठी के जवाब में आशा को लिखा था, "आशा, इस जन्म में तूने मुझे जो दुख दिया है, अगले जन्म में भी मैं उसकी प्रतीक्षा करूंगा।"

शीशे के सम्मुख खड़ा व्यक्ति

मनमोहन बावा

छुट्टी होने में दस मिनट शेष थे। परमजीत ने बाथरूम में जाकर आंखों पर पानी के छींटे मारे, पगड़ी को ठीक किया, कनपटियों के पास झांक रहे सफेद बालों को पगड़ी के अंदर किया। रुमाल से मुंह पोंछा और लौटकर अपनी सीट पर आ बैठा। छुट्टी होने में पांच मिनट रह गए थे पर अभी भी उसके मन में कोई उत्साह नहीं था। सबके साथ वह भी कोट पहनकर बाहर की ओर चल पड़ा।

रिसेप्शन-हाल में रिसेप्शनिस्ट लड़की मेज की दराजों को बंदकर जाने की तैयारी कर रही थी। इस दफ्तर में आए उसे कुछ ही दिन हुए थे। परमजीत को कुछ ऐसा लगा जैसे लड़की उसकी ओर देखकर मुस्कुराई हो। पहले भी एक-दो बार उसको ऐसा ही भ्रम हुआ था जैसे लड़की ने सिर हिलाकर होंठों में कुछ कहा हो।

परजीत ने फिर सोचा, 'अभी घर जाकर क्या करूंगा? कहीं एक-दो घंटे बैठूं, दोस्तों से गप्पें लड़ाऊं, पहले की भांति हाकी खेलने जाऊं या वीना को टेलीफोन करूं।' पर जैसे उसके लिए सभी दरवाजे बंद हो चुके थे। और उसको लगा, जैसे शीशे में खड़ा व्यक्ति उसकी ओर बुझी-बुझी आंखों से देख रहा हो।

उसने स्कूटर स्टार्ट किया। पहले घर की ओर मोड़ा। कुछ दूर जाकर फिर दूसरी ओर मोड़ लिया। बस-स्टैंड के पास दफ्तर के कुछ लोग बस की प्रतीक्षा में खड़े थे। उसमें वह नई रिसेप्शनिस्ट लड़की भी थी। लड़की ने उसको देखा पर इस बार वह मुस्कुराई नहीं। परमजीत का स्कूटर अचानक उसके पास रुक गया। लड़की के होंठों पर फिर मुस्कुराहट आ गई।

"आप कनाट-प्लेस की ओर तो नहीं जा रही हैं?" परमजीत ने पूछा।

"हां, जाना तो उसी ओर है।"

"मैं भी उधर ही जा रहा हूं। अगर चाहें तो बैठ जाएं।"

लड़की ने एक बार बस-स्टैंड पर खड़े लोगों की ओर देखा और फिर झट से स्कूटर के पीछे बैठ गई।

परमजीत को लगा, शीशे में खड़ा व्यक्ति उसकी ओर देखकर मुस्कुरा रहा है।

वह स्कूटर चलाते हुए सोच रहा था कि बात कैसे आरंभ करे? आप नई आई हैं? पहले कहां काम करती थीं? मेरी ओर कभी-कभी ऐसे क्यों देखती हैं? पर वाक्य उसके गले में आकर रुक जाते।

"आपको ठंड तो नहीं लग रही?" आखिर परमजीत ने साहसकर पूछ ही लिया।

"नहीं।" फिर चुप।

वे उद्योग भवन के पास पहुंच गए थे।

परमजीत के मन में आया कि स्कूटर पंक्चर हो जाए, कोई छोटा-सा हादसा हो जाए, और या फिर कनाट-प्लेस ही कहीं दूर चला जाए।

"आप बहुत पहले से यहां काम करते हैं?" लड़की स्वयं ही बोली।

"हां, बारह साल हो गए हैं।"

"इसी दफ्तर में?"

"हां इसी दफ्तर में।"

"आप गीत-संगीत में भी रुचि रखते हैं?" लड़की ने पूछा।

"सिर्फ सुनने का शौक रखता हूं। पर आपने कैसे अंदाजा लगा लिया?"

"आप संगीत विद्यालय में आया करते थे।"

"पर यह तो बहुत साल पहले की बात है।"

राजपथ आ गया था और साथ ही बोट-क्लब! बात चल पड़ी थी। परमजीत ने स्कूटर धीमा किया और बोला, " आपको घर पहुंचने की जल्दी तो नहीं?" परमजीत के मन में एक स्वार्थ-सा उठा।

"जल्दी तो नहीं, फिर भी पहुंचना तो है ही।"

"कोई बात नहीं। मैं पहुंचा दूंगा। आइए, कुछ देर यहां रुकते हैं। मुझे यहां नहर के किनारे सैर करना बहुत अच्छा लगता है।"

परमजीत को उम्मीद नहीं थी कि वह मान जाएगी। पर वह प्रत्युत्तर में कुछ नहीं बोली और स्कूटर के रुकते ही उतरकर खड़ी हो गई।

दोनों, नहर के किनारे हरी घास पर चलने लगे।

ऐसे ही, हां ऐसे ही, शाम को छुट्टी होने के बाद... कितने साल बीत गए। जैसे पिछले जन्म की बात हो। किसी के मधुर शब्द, किसी के पदचापों की आवाज, किसी के बेसब्र हाथों की पकड़ और चलते-चलते रगड़ खाते शरीर में सिहरन दौड़ा देने वाला स्पर्श! ऐसे ही जैसे इस अनजान लड़की के साथ बात कर रहा था।

"आपको जल्दी तो नहीं घर पहुंचने की?" परमजीत ने रुकते हुए पुनः पूछा।

"नहीं, मुझे जल्दी नहीं। पर..."

"मैंने ऐसे ही पूछा। कहीं आप..."

"घबरा न गई होऊं... यही न?" लड़की ने वाक्य पूरा करते हुए कहा।

"आप कहां रहती हैं?" परमजीत ने पूछा।

"पटेल नगर।"

"बहुत दूर। बहुत देर के बाद घर पहुंचती होंगी?"

"हां, एक-डेढ़ घंटा तो लग ही जाता है।"

परमजीत का मन किया कि वह पूछे—और कौन-कौन रहता है घर में? विवाहिता हैं या कुंआरी? कुंआरी तो नहीं लगती। उम्र तीस से कम नहीं। विवाहिता भी नहीं लगती। अगर होती तो मेरे साथ इस प्रकार न चल पड़ती। इसका कोई जान-पहचान वाला देख सकता है। मेरा कोई परिचित भी देख सकता है। अगर किसी ने मेरी पत्नी को जाकर कह दिया? वह तो पहले ही मेरी हर बात पर शक करती है। चाहे मेरा स्कूटर रास्ते में खराब हो गया हो, वह कहेगी, "जरूर कोई बात है। पता नहीं दफ्तर के बाद कहां-कहां घूमते रहते हो। घर की तो कोई चिंता ही नहीं। मैं अकेली सारा दिन बोर होती रहती हूं।" लेकिन उसके ठीक समय पर घर पहुंच जाने पर भी उसकी बोरियत दूर नहीं होती थी। उसके माथे पर उसी प्रकार त्यौरियां चढ़ी रहतीं जैसे कि उसकी बोरियत और उसके हर दुख-तकलीफ का जिम्मेदार परमजीत ही हो।

'हां, घूमता रहता हूं, कुछ पलों के संग, कुछ यादों के साथ।'

और यह एक अनजान लड़की उसके बीते हुए पलों में साकार हो उठी थी।

"आप भी संगीत सीखने आती थीं?" परमजीत ने कुछ देर चुप रहने के बाद पूछा।

"हां, सीखा तो करती थी, पर बीच में ही छोड़ दिया।"

"क्यों?"

"बस यूं ही। हालात ही ऐसे हो गए थे।"

परमजीत ने सोचा, शायद कहेगी, विवाह हो गया। उन्हें अच्छा नहीं लगता मेरा वहां जाना।

"आप शायद वहां प्रकाश से मिलने आते थे?" लड़की ने पूछा।

"हां, वह मेरा दोस्त था। और आप..."

"वह मेरा भी दोस्त था।" लड़की ने कुछ इस प्रकार कहा जैसे एक बार में बहुत कुछ कह गई हो। उसके अधरों पर एक कटु मुस्कान फैल गई।

परमजीत सोचने लगा, प्रकाश से इसकी दोस्ती थी। पर उसने मुझसे कभी बात नहीं की। शायद, इस कारण कि वह मेरा बहुत गहरा दोस्त नहीं था। उसके विवाह पर गया था। वहां शायद यह लड़की भी आई हो। शायद नहीं भी आई हो। शायद यह मुझसे इस बारे में पूछेगी।

लेकिन, उसने कुछ नहीं पूछा। दोनों चुपचाप पानी के किनारे चलते रहे। शायद, यह

भी किसी प्रकाश के साथ यहां आई हो?

"आप थक तो नहीं गईं?" परमजीत बोला।

"नहीं।"

"यहां बैठ जाएं कुछ देर?" परमजीत ने एक बैंच की ओर संकेत करते हुए कहा।

"एज यू लाइक।"

वे दोनों बैंच पर बैठ गए और सामने पानी में चल रही किश्तियों में बैठे लोगों की ओर देखते रहे। हवा से लड़की के बालों की एक लट उड़कर कभी-कभी उसके चेहरे को छू जाती। उसका कंधा लड़की के कंधे से रगड़ खा रहा था। पर न तो परमजीत दूर हटा, न ही और करीब हुआ। लड़की को भी जैसे इसकी कोई सुध नहीं थी।

"गर्म चने बाबूजी... मसाले वाले।" एक चने बेचने वाला लड़का समीप आकर बोला।

"दो दे दे।"

दोनों उसी प्रकार बैठे हुए चने खाते रहे।

परमजीत को लगा जैसे शीशे में खड़ा व्यक्ति अब पानी में से उसकी ओर झांक रहा हो, कह रहा हो—किसलिए बैठा है यहां? किसलिए?

उसने उत्तर खोजना चाहा, पर उसके पास कोई उत्तर नहीं था।

"चलिए, अब चलते हैं। आपको देर हो रही होगी।" परमजीत ने उसका हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहा।

"चलिए।" लड़की भी खड़ी हो गई।

पूरे रास्ते वे चुपचाप चलते रहे। पानी में चलती किश्तियों के चप्पुओं की छप-छप आवाज कहीं दूर से आती हुई प्रतीत हो रही थी। स्कूटर के पास पहुंचकर परमजीत बोला, "आपको घर तक छोड़ आऊं?"

"नहीं। बस, मैं चली जाऊंगी। बहुत देर नहीं हुई।"

कुछ देर रुककर वह फिर बोला, "अच्छा फिर, आज की शाम के लिए आभारी हूं।"

लड़की थोड़ा-सा मुस्कुराई और धीमे-धीमे पैर उठाती हुई बस-स्टैंड की ओर चल पड़ी।

परमजीत ने स्कूटर में किक लगाई, लेकिन फिर बंद कर दिया। वह जूते उतारकर पुनः ठंडी घास पर सैर करने लगा। और उसी पत्थर के बैंच पर जाकर बैठ गया। वह इतनी जल्दी जाकर आज के इस पल को खोना नहीं चाहता था।

अगली शाम छुट्टी के बाद उसने स्कूटर स्टार्ट किया। एक बार बस-स्टैंड की ओर मोड़ा तो उसे लगा कि शीशे में खड़ा व्यक्ति उसकी ओर घूर-घूरकर देख रहा है और कह रहा है—क्या करने जा रहा है उस ओर? जो रास्ते पीछे रह गए, सो रह गए।

और, उसने फिर स्कूटर वापस मोड़ लिया। घर जाने से पहले वह कुछ देर के लिए उस कल वाले पत्थर के बैंच पर बैठकर पानी में चल रही किश्तियों की ओर देखता रहा।

बघेलो साधणी

राम सरूप अणखी

शरीर पर कमर के नीचे तक की कुरती और साथ में सलवार, सिर के बालों का पुरुषों की तरह जूड़ा, उस पर दो गज चारखाने कपड़े का साफा, नाक कान में कोई टूम नहीं, पांव में मड्डी जूती, कंधे पर रखी कान तक ऊंची लाठी—यह बघेलो साधणी है। इसके मुंह पर इसको बघेल कौर कहता है हर कोई। आगे जा रही दो भैंसें और एक बछिया। पीछे-पीछे उसका छोटा पोता, बड़े लड़के का बेटा नाचता-कूदता, जगह-जगह रुकता और फिर चल पड़ता।

पशु आगे निकल गए हैं। बघेलो चौपाल में खड़ी हो गई। वृक्ष के ठूंठ पर दो आदमी बैठे हैं। वह उनके साथ कोई बात करती है। खड़े होने का उसका अंदाज—लाठी का एक सिरा ठूंठ की आड़ से टिका, दूसरा सिरा ठोड़ी के नीचे। एक हाथ से लाठी के ऊपरी सिरे को दबा रखा है, दूसरा हाथ बगल पर है।

बहुत धैर्य से बात कर रही है। ठूंठ पर बैठे लोग पूरे गंभीर हैं। बात खत्म कर वह भैंसों के पीछे चल पड़ती है। चौपाल के लोग पीठ पीछे उसकी कोई बात नहीं करते।

वह कभी बड़ी चर्चित औरत हुआ करती थी। हर मुंह उसकी ही बातें करता। हर कोई उसकी ओर कटखनी आंखों से देखता। हर कोई उसको हड़प कर जाना चाहता। लेकिन हर कोई उससे डरता भी। हर कोई अपनी इज्जत बचाकर रखता।

मायके के गांव में वह साधु के डेरे पर पढ़ा करती। अन्य लड़के-लड़कियां भी पढ़ते। लड़कियां, लड़कों की तरह रहतीं। लड़कों की तरह सिर के बालों का जूड़ा बनातीं। और पगड़ियां बांधतीं। बघेलो सभी लड़कियों से कहीं अधिक जवान थी। अच्छी तगड़ी और ऊंचे कद वाली। लगता जैसे वह कोई भरपूर जवान और सुंदर-सुडौल लड़का हो। वह बोलती भी लड़कों की तरह, " मैं नहीं जाता आज गांव में दूध लेने को।" अथवा "भई मैं खाऊंगा पहले प्रसादा... बहुत भूख लगी है।"

डेरे के महंत की वह प्रधान कार्यकर्ता बन गई। पांच करे, पचास करे, महंत उसे रोकता-टोकता नहीं। वह एक आंख से काना था। अधिक उम्र का हो चुका था। धागे-तावीज देता और वैद्य का काम भी करता। डेरे के नाम से थोड़ी-बहुत जमीन भी थी। पर गांव

में महंत की बहुत मान्यता थी। बरामदे में गेहूं की बोरियां छत को छूती थीं। दूध-मक्खन आम था। लंगर चौबीस घंटे खुला रहता। गर्म चाहे ठंडा। प्रसाद हर समय मिलता। यात्री-पथिक कोई आता, हर एक की सेवा-टहल होती।

महंत नारायण दास का छोटा भाई काकू दूर अपने गांव में रहता और खेती-बाड़ी का काम करता। महंत ने उसका विवाह किया। उसे और जमीन लेकर दी। काकू एक हिस्सेदार को साथ लेकर हर किसी पर रौब गांठता घूमता और फिर एक दिन वह काकू से काका सिंह कहलाने लग पड़ा। काके की दो लड़कियां थीं। वह पचास को पहुंचने वाला था। उसकी बीवी बेटा पैदा कर चल बसी। बेटा भी दो वर्ष का होकर मर गया। लड़कियां जवान थीं। बुरा हाल हो गया काका सिंह के घर का। खेती का काम कम हो गया। उसकी पत्नी उससे पंद्रह सोलह साल छोटी थी। एक रिश्ता उस वक्त भी मुश्किल से हुआ था। अब इस उम्र में उससे कौन शादी करता? नारायण दास से भाई का दुख देखा नहीं जाता था। वह समझता, काकू का दुख उसका अपना दुख है। वह अन्य लोगों के कष्ट निवारण करता था, उसका अपना सगा भाई दुखी क्यों रहे? उसका तो मझधार में ही बेड़ा डूब गया था। डेरे की महंती किस काम की?

और फिर, बघेलो के मां-बाप ने महंत नारायणदास पर उपकार किया। वे गरीब जट्ट थे। जमीन थोड़ी थी। खेती का काम मुश्किल से चलता। बच्चों की पूरी कतार। पांच लड़कियों के पीछे लड़का। बघेलो सबसे बड़ी। उसका बाप लालच में आ गया। अंदर की बात उसने महंत से पता नहीं क्या कुछ ले लिया होगा। बघेलो का काकू से विवाह कर दिया गया। जैसे कोई गाय की रस्सी किल्ले से खोलकर किसी गैर व्यक्ति के हाथ पकड़ा दे। उस वक्त उसकी उम्र बीस वर्ष की होगी। वह तो जैसे गुमसुम होकर ही रह गई थी। क्या विरोध करती वह? एक ओर मां-बाप के घर की गरीबी, दूसरी ओर गुरु महंत नारायण दास का नेक आदेश!

काकू ने दूसरा विवाह करवा तो लिया कि चलो रोटी पकनी आरंभ हो गई, लड़कियां कितने वर्ष घर बैठी रहतीं। लेकिन वह इस ढलती उम्र में मर्दों जैसा मर्द नहीं रहा था। अंदर से खोखला था, बस हिलता रहता। बघेलो लड़कियों में लड़की बनी रहती। उसके साथ हंस-खेलकर दिन गुजर जाता उसका। काका सिंह दाढ़ी रंगकर रखता। सर्दियों में दवाइयां मिलाकर पंजीरी बनाता। महंत नारायण दास उसके लिए ताकत की गोलियां भेजता। काका सिंह चाहता, वह फिर से अठारह बरस का हो जाए। वह सदैव जवान बने रहने की कोशिश करता रहता। बन-ठनकर रहने लगा था। किंतु, सूखी लकड़ी पर चाहे घी के पीपे खाली कर दो, वह हरी नहीं होती। पुरानी हड्डियों का नई हड्डियों से कैसा मेल?

और फिर, कटी बांह वाले जैमल का उनके घर पता नहीं कब से आना-जाना हो गया। और वह न जाने कैसे काका सिंह का इतना करीबी हो गया। जैसे काका सिंह को जैमल

बगैर सांस ही न आता हो। घर पर भी उसके साथ, खेतों में भी उसके साथ। काका सिंह कभी निकट के गांव जाता, जैमल उसके साथ होता। जैमल जैसे इस घर में जन्मा-पला हो।

जैमल के बाप के पास जमीन कम थी। बस, किसी तरह दिन काटने में लगा रहता वह। जैमल जब जवान हुआ, लोगों के काम-धंधे करने लगा। एक ही बेटा था मां का। बाप जब थककर बैठ गया, जैमल इधर-उधर से दाना-पानी एकत्रकर मां को देता रहता और घर की गुजर होती रहती। जैमल को ऐब कोई नहीं था। शराब नहीं पीता था। लड़कों की ढाणी में बैठकर लड़कों जैसी बातें नहीं करता। उनकी गंदी बातें भी नहीं सुनता। उठकर चल देता। लड़के उसे मोनी साधु कहा करते। काम करने में पूरा जोरावर था।

संधुओं की ईख पेरने वाली मशीन पर वह दो रातों से रतजगा कर रहा था। गाड़ियों में भरा ईख खत्म होने में ही न आता था। तीसरी रात भी वह मशीन में गन्ने लगा रहा था। पता नहीं कब उसका बायां हाथ गन्नों के संग मशीन में आ गया और फिर एक दिल को चीरने वाली ऊंची चीख! बैलों को हांकने वाले ने बैल जहां के तहां खड़े कर दिए। वह दौड़कर जैमल के पास गया। वह बुरी तरह कराह रहा था। पिंजाइ वाले स्थान पर गांठ के इर्द-गिर्द बैठे लोग भी दौड़कर आ गए, "ओए क्या हुआ, ओए क्या हुआ।" और फिर बैलों को पीछे किया गया। पर दुर्घटना तो हो चुकी थी। कोहनी तक बांह गन्ने की तरह कुचली गई थी। दो आदमी उसे चारपाई पर डालकर गांव में ले आए। बांह पर अंगोछा बांध दिया था। गांव में ही प्राईवेट डाक्टर को जगाया गया। आधी रात हो चुकी थी। उसने पट्टियां कर दीं और सुई लगा दी। दिन चढ़ने तक उसे घर में निकाली गई शराब पिलाते रहे। सितम यह कि वह उस दिन पहली बार शराब पी रहा था। फिर भी बांह में दर्द इतना था कि पहले तोड़ की शराब भी जैसे फीका पानी हो। सार यह कि शहर के सरकारी अस्पताल जाकर उसकी बांह काटनी पड़ी। कोहनी तक पूरी बांह! लड़के का लहू जैसे बूंद-बूंद कर सूख गया हो। बकरे जैसा मुंह, बंदर के मुंह-सा छोटा हो गया।

लेकिन, कुछ दिनों में ही वह फिर से भरने लगा। नई हड्डी थी। शरीर में अपंगता तो पड़ ही गई थी पर वह एक हाथ से भी पहले जितना ही काम करता। उसकी दाईं बांह जैसे लोहे की बन गई थी। एक बांह से ही वह कुश्ती लड़ता। टुंडी बांह के डोले के नीचे दबोचे अपने प्रतिद्वंद्वी की कलाई को शिकंजे की भांति कस लेता। बड़ी उम्र के लोग उसे शाबाशी देते, "जैमल तो कील की तरह ठुक जाता है!"

बघेलो ने दो-दो साल के अंतर पर एक के बाद एक तीन बेटों को जन्म दिया। तीनों बेटे पालपोस कर शेर-जवान किए। सौतन की दोनों लड़कियों के बारे में सोचा। उन्हें अच्छे घरों में विदा किया। फिर अपने बेटों को ब्याहना आरंभ किया। दिन बीतते गए। एक-एक कर तीनों बहुएं घर आ गईं। फिर बेटों का परिवार बढ़ने लगा। लड़के इकट्ठे रहते थे।

मां की आज्ञा मानते। खूब कमाई करते और चौथे-पांचवें वर्ष नई जमीन गिरवी रखवा लेते।

काका सिंह मर गया। तीसरे लड़के की शादी करके मरा। लड़कों ने उसका क्रियाकर्म किया। दान-पुण्य पर पूरा पैसा लगाया। पूरे मौहल्ले में काका सिंह के घर वालों की बल्ले-बल्ले हो गई।

जैमल जीवित है अभी। वह बघेलो के घर में ही रहता है। अब तो वह भी काफी बूढ़ा लगता है। बघेलो के लड़के और बहुएं उसका पूरा आदर-सत्कार करते हैं। उसको चारपाई पर बैठे-बैठे रोटी-पानी मिलता है। घर की एक पृथक बैठक में वह रहता है। बैठक की एक अलमारी को ताला लगाए रखता है। बघेलो के पोते-पोतियां जैमल के आगे-पीछे घूमते रहते हैं और रो-धोकर उससे पैसे ले जाते हैं। कभी-कभी कोई भतीजा बैठक में आकर उससे कोई नेक सलाह लेने लगता है।

बघेलो ही जानती है, रंडापे जैसा सुहाग उसने कैसे बिताया। शेरों के मुंह में रहकर वह कैसे जान को बचाए रखती थी।

पहले-पहले तो यही कुप्रचार होता रहा कि वह नंगे सिर रहती है। किसी बूढ़े-बुजुर्ग की कोई शर्म-हया नहीं, पशुओं को पुरुषों की तरह गालियां बकती है।

फिर उसको सुना-सुनाकर लोग ताने मारते। कोई कहता, "काने ने अपनी जूठी कटोरी यहां फेंक दी, चाटे जा रहा है सफेद दाढ़ी वाला काकू।"

"अरे, सफेद दाढ़ी वाला तो घरबार का है, बस। कटोरी तो टुंडा साफ कर रहा है।"

"चीनी की बोरी है, तुझे क्या डर है कोई? तू मार ले फंकी।" पहला दूसरे को सलाह देता।

और फिर दोनों बेशर्मी से हंसने लगते। बघेलो कुछ न बोलती। कुछ न कहती। जैसे उसने कोई बात सुनी ही न हो।

कभी वह खेत पर जा रही होती, काका सिंह का कोई हमउम्र दौड़कर उसके साथ जा मिलता और उसको बातों में लगा लेता। इधर-उधर की बातें करने के बाद जान-बूझकर वह मीठी-सी चुहल पर उतर आता, "बघेल कौर, भाई तो हमारा अब हार गया लगता है।"

"ऐसे ही लगता होगा तुम्हें। वह तो पहले जैसा ही है। कुछ भी नहीं बिगड़ा उसका तो।" कहने वाले की ओर वह कटु आंखों से ऐसे देखती कि वह आगे बिना कुछ कहे-बोले उसके पास से हट जाने की करता। और वह आगे-आगे जाते हुए अपने डंगर-पशुओं को गालियां निकालने लग जाती।

एक दिन खुरदरी दाढ़ी वाला गांव का एक आदमी उससे बोला, "बता हमने क्या भूनकर बीज रखा* है? हमारे साथ बात ही नहीं करती। टुंडा साला तीसरे मोहल्ले का..."

---

* गलत काम करना।

"अपनी इज्जत अपने पास रख भले मानस! मैं कंजरी तो हूं नहीं। दाढ़ी नोचकर हाथ में दे दूंगी।" वह पैर जमाकर खड़ी-खड़ी बोली थी।

और फिर, अन्य एक दिन वह खेत से लौट रही थी। हाथ में लाठी और सिर पर चारे की गांठ। एक आदमी उसके पीछे चुपके-चुपके चला आता था। पीछे से आती पदचाप सुनकर बघेलो ने गर्दन घुमाई। वह दूसरे मोहल्ले का एक लोफर लड़का था। मालूम नहीं किधर से आ रहा था। पहले भी वह दो-तीन बार उसकी ओर बुरी नजर से देखते हुए उसके घर के सामने से गुजरा था। जैसे ही खड्ड के बड़े नाले के पास वह पहुंची, लड़के ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसके सिर पर से चारे की गांठ नीचे गिरा दी। लड़का उसके साथ गुत्थम-गुत्था हो गया। उसको डोलों से पकड़कर नाले की तरफ खींच रहा था। बघेलों ने खूब गालियां निकालीं, ऊंची आवाज में चीखी कि कोई सुन ले। लड़का तगड़ा नहीं था। लेकिन वह उसका पीछा नहीं छोड़ रहा था। बघेलो ने दूर पड़ी लाठी देखी। स्वयं को उससे छुड़ाकर वह लाठी की ओर लपकी। अगले ही क्षण लड़के का माथा फटा पड़ा था। धरती पर पड़ा वह मछली की भांति तड़प रहा था। बघेलो ने दो लाठियां उसके घुटनों पर भी जड़ दी थीं। फिर उसने खुद ही अपनी गांठ उठाई, नीचे गिरी लाठी को पांव से खड़ा किया, लड़के के ऊपर थूका और आराम से अपनी राह पर चलने लगी।

वह दिन तो वह दिन, फिर किसी आदमी ने बघेलो की ओर बुरी निगाह से नहीं देखा था।

जिंदगी की कीमत

हरबख्श सिंह हंसपाल

इस बार गरमी का मौसम शुरू होते ही हमारा फ्रिज फिर जवाब दे गया। इस बार फिर राजेश कुमार, फ्रिज-मैकेनिक को बुलाना पड़ा था।

जब से हमने यह फ्रिज लिया, इसने कभी संतोषजनक काम नहीं किया। यह कुछ न कुछ बलि हर साल मांगता रहा है और मैकेनिकों को कुछ न कुछ हमसे पुजवाकर ही हमारा गरमी का मौसम निकलवाता रहा है।

कई बार सोचा कि हर साल रिपेयर करवाने से अच्छा नया फ्रिज ही क्यों न ले लिया जाए पर बढ़ती हुई कीमतें देखकर हमें फ्रिज मैकेनिकों का ही मुंह देखना पड़ता है। एक-एक कर इसके सभी पुर्जे बदले जा चुके थे—कंप्रेशर, थर्मोस्टेट, रिले-स्विच वगैरह। गैस तो तीन-चार भरी जा चुकी थी।

जब यह फ्रिज लिया था, उस वक्त भी मन कुछ अनमना-सा था। लोग सलाह देते थे कि कोई स्टैंडर्ड का फ्रिज ही लेना चाहिए, जैसे केल्वीनेटर, गोदरेज आदि। खर्चे इतने थे कि गुंजाइश ही नहीं निकलती थी। लेकिन, फ्रिज का घर में होना जरूरी बन गया था। यह एक अय्याशी या अमीरी की वस्तु नहीं रह गई थी, घर की एक अहम जरूरत बन गई थी। पहले अवश्य बड़ी रकम खर्च करते समय कड़वा घूंट भरना पड़ता है, लेकिन हैं इसके फायदे ही फायदे! चीजें खराब नहीं होतीं। बर्फ बनी-बनाई मिल सकती है और ठंडा पानी पीने को। सब्जी वगैरह अपनी सुविधानुसार आगे-पीछे भी बना लेने की सुविधा। बस, बचत ही बचत। अगर नुकसान है तो नौकरानियों-जमादारनियों को जिन्हें बची-खुची चीजें भी नहीं मिलतीं। वे तो फ्रिज को अपना दुश्मन समझती हैं लेकिन, पहले कड़वा घूंट! शुरू में तीन-चार हजार रुपए निकालने ही मुश्किल लगते थे। कई बार प्रोग्राम बनाया, लेकिन हर साल चढ़ती कीमतें बजट को फेल कर देतीं।

सोचते, सर्दियों में आफ-सीजन में कुछ सस्ता हो जाता है, तभी कोशिश करेंगे लेने की। मगर सस्ता मुश्किल से तीन-चार सौ रुपए ही होता। फिर सोचते, चलो अगर इतना कम ही अंतर पड़ता है तो गरमी का मौसम शुरू होते ही नए स्टाक में से ले लेंगे ये तब नया बजट आ जाने से कीमतें और ऊपर चढ़ जातीं। फिर सोचते, अगली बार ले लेंगे

और फिर वही चक्कर। इसी तरह, दो-तीन वर्ष का और फर्क पड़ गया। जितने भी हमारे दोस्त-यार फ्रिज के महत्व को जानते थे, वे सभी हमारा मजाक उड़ाने लगे—भाई फ्रिज कब ले रहे हो? कब तुम्हारे फ्रिज का पानी पी सकेंगे? अथवा, थोड़े ऊंचे स्तर के लोग कहते—भाई, जिस दिन तेरा फ्रिज आया, बीअर की बोतलें हम लाकर रखेंगे उसमें...। एक ने फिकरा कसा—तू किसी नए माडल की प्रतीक्षा तो नहीं कर रहा?

हमारी परेशानी हर गर्मियों में बढ़ने लगी। लेकिन, फ्रिज के मूल्य देखकर सब्र का घूंट भर लेते। फिर एक चमत्कार हो ही गया। पड़ोस में से एक परिवार विदेश जा रहा था और घर की सब चीजें बेचकर जाना चाहता था। फर्नीचर के अतिरिक्त फ्रिज भी था। कहते थे, फ्रिज भी बस दो-तीन साल ही पुराना है। बहुत अच्छी तरह संभालकर रखा गया था। बस, नयों जैसा ही लगता है।

वास्तव में, फ्रिज देखने में ठीक-ठाक लगता था। कीमत बाजार से भी आधी। हमारे लिए और दो सौ रुपया कम करने को तैयार हो गए। पड़ोसी जो थे। बोले—तुम्हारी ओर से 'न' होगी तभी किसी और को दिखाएंगे। लगा, कीमत हमारे बजट में आ जाएगी। पर पुराना फ्रिज! मन नहीं मानता था। पूरी तसल्ली मन को नहीं होती थी। नई चीज नई ही होती है। साथ ही, पूरी गारंटी। नए फ्रिज के लिए पैसे नहीं, पुराने के लिए मन नहीं मानता, पर किया क्या जाए? हारकर मन को मनाया। जिंदगी में बहुत समझौते करने पड़ते हैं। लोगों के फ्रिज पंद्रह-पंद्रह साल चलते हैं। कुछ नहीं होता। फिर यह तो दो-तीन साल ही चला है। लोग सैकिंड-हैंड कारें भी तो लेते हैं। हमने सैकिंड-हैंड फ्रिज ले लिया तो क्या हुआ? वैसे भी तो डिस्काउंट सेल पर क्या मालूम पुराना स्टाक ही निकालते हों। खैर, अपने मन को मना लिया। घर का बजट और टाइट कर पैसों का इंतजाम किया और फ्रिज घर ले ही आए।

वास्तव में, बहुत ही सुख था फ्रिज का। थोड़ी शान भी थी क्योंकि हम भी फ्रिज वालों की श्रेणी में आ गए थे। जमादारनी जो पहले हमारे घर का कभी पानी नहीं पीती थी, उसने भी अब फ्रिज का ठंडा पानी मांगना आरंभ कर दिया। घर आए मेहमान को पानी पिलाते समय जब फ्रिज का दरवाजा खोलकर ठंडे पानी की बोतल निकाल गिलास में कड़ल-कड़ल कर पानी उलटते तो मन में अनोखी-सी तसल्ली और एक नशे का-सा अहसास होता।

यह नशा दो-एक साल फ्रिज ने खूब बरकरार रखा।

तीसरे वर्ष, गरमी के शुरू होते ही, वोल्टेज के उतार-चढ़ाव के कारण फ्रिज ने काम करना बंद कर दिया। कंपनी को शिकायत लिखवाई। उनका मैकेनिक आया। इधर-उधर तारें लगाकर, कोई मीटर जोड़कर, कभी बल्ब जलाकर, कभी बुझाकर, उसने फैसला सुना दिया, "कंप्रैशर जल गया है। कंप्रैशर की गारंटी पांच साल की होती है। कब

लिया था फ्रिज?"

उसको गारंटी-कार्ड दिखलाया। उसने तारीख देखी, हिसाब-किताब लगाया, "हूं! दो महीने ऊपर हो गए हैं। आपकी गारंटी खत्म है। अब तो पूरे चार्जिज लगेंगे। हजार के आसपास। सोच लें। कंपनी की चैकिंग-फीस फिलहाल दे दें—पैंतीस रुपए। कंप्रैशर ठीक करवाना हो तो बता दीजिएगा। मैं अपनी रिपोर्ट में लिख दूंगा।"

"रिपेयर के बाद फिर गारंटी कितने समय के लिए होती है? फिर पांच साल?" हमने डरते हुए पूछा।

"जी नहीं, सिर्फ एक साल।" और वह अपना बैग उठाकर चला गया।

और तब से ही हमारी सलाना फ्रिज-पूजा की कहानी चली आ रही है।

समस्या थी, फ्रिज को ठीक करवाने की। अब आदत पड़ चुकी थी। फ्रिज के बगैर गुजारा मुश्किल लगता था। हमारी बदकिस्मती थी कि फ्रिज खराब भी हुआ तो दो महीने बाद! अगर दो महीने पहले होता तो कंप्रैशर का खर्चा तो बच जाता। कंपनी से ठीक करवाने में हजार के लगभग का खर्चा हो जाना था। दूसरे मैकेनिकों का जरा भी भरोसा नहीं था। यों ही पैसे भी ठग लें और काम भी ठीक न हो। असमंजस में पड़ गए। नजदीक में कोई अच्छा मैकेनिक मिल जाए तो पूछने में क्या हर्ज है। बल्कि कोई शिकायत हो तो उसे तुरंत पकड़ सकते हैं।

किसी ने समीप ही एक दुकान के बारे में बताया कि राकेश कुमार नाम का एक व्यक्ति काम में माहिर है। है बहुत मौजी, पर काम ठीक करता है।

दुकान जबकि मेन सड़क पर ही थी, पर खोजनी पड़ी। दो बड़ी दुकानें—एक मोटर पार्ट्स की और दूसरी बिजली के सामान की, बीच में फंसी हुई छोटी-सी दुकान थी। आदमी बेध्यान ही पास से गुजर जाए। बोर्ड भी छोटा-सा, पुराना-सा लगा हुआ था, "राकेश रैफ्रिजरेशंस"। एक ओर दुबला-पतला-सा आदमी, मैले-कुचैले कपड़ों में, पसीने से लथपथ, एक डिब्बे-से फ्रिज के पास बैठा अपने काम में मग्न था।

पूछने पर कपड़े झाड़ता हुआ, पसीना पोंछता हुआ उठा, "हां जी, बताओ जी सरदार जी!"

अपने फ्रिज की समस्या बताई। साथ ही कहा कि आकर देख ले और बताए कि कितने पैसे लग जाएंगे।

"पैसे तो बाऊजी, देखकर ही बताऊंगा। पहले देखने की फीस बीस रुपए दे जाओ, फिर आपका भी नंबर लगा देंगे। परसों आऊंगा देखने। अभी टाइम नहीं है, यूं ही आपसे कहें। फालतू बात हम करते नहीं और अधिक पैसे लेते नहीं। ईमानदारी की रोटी खाते हैं।"

"पर पैसे जब आओगे, ले लेना। फलां आदमी ने तेरे बारे में बताया है।"

"नहीं जी, हमें भी रोटी खानी है। फीस पहले।"

उसकी बेबाकी अजीब-सी लगी। यह तो कंपनी वालों से भी बढ़कर निकला। लेकिन, प्रभावित भी हुए कि इतना काम है उसके पास कि परसों से पहले नहीं आ सकता। अवश्य माहिर कारीगर होगा। मौजी तबीयत का भी प्रमाण मिल गया था। कभी बाऊजी और कभी सरदार जी कहता था।

बीस रुपए दे दिए। परसों न आकर वह दो दिन और ठहरकर आया। एक बार पूछने के लिए दुकान का चक्कर भी लगाना पड़ा।

"क्या करें मालिको, बत्ती चली जाती है, काम खत्म नहीं होता। पर हम तो यहीं हैं, भागे तो नहीं जा रहे।"

उसने आकर फ्रिज चैक किया। कंप्रेशर वाकई जल गया था।

"खर्चा आपका सात सौ हो जाएगा, बाऊजी!"

"भाई, कोई और रियायत नहीं हो सकती है?"

"लो शाह जी, कंपनी के पास जाओगे, हजार दोगे। और किसी से तो साढ़े सात सौ से एक पैसा कम नहीं लेना था।"

कंप्रेशर यूनिट उसने उतार लिया।

"लो फिर दो सौ रुपया अभी दे दो।"

माथा ठनका कि कहीं फंस ही न जाएं। पहले ही दो दिन देर से आया था। अब फिर न कहीं चक्कर ही लगाते रहें। खुद ही कहने लगा, "कुछ खर्चा तो होगा उसपर, आपसे ही लेना है। लेबर तो अपनी है, बाद में ले लेंगे।"

दो हफ्तों बाद आकर कंप्रेशर फिटकर बाकी पैसे लेकर चला गया। फिर दो दिन बाद चैक करने आया, "ठीक चल रहा है न मालिको?"

"हां, अभी तो ठीक ही लगता है।"

"अरे सरदार जी, आगे भी ठीक ही रहेगा। अपने हाथों काम किया है।"

थोड़ा झिझकते हुए पूछा, "कितने समय की गारंटी है तेरी?"

"हमारी गारंटी तो साल भर की है, पर चलेगा कई साल। वैसे मैं तो हूं ही, जब भी आवाज दोगे, हाजिर हो जाऊंगा। लो फिर, चाय का कप पिलाओ, सिर बहुत भारी है।"

हमारी गर्मियां ठीक-ठाक निकल गईं। सड़क जाते हुए कभी उसकी दुकान के पास से गुजरना पड़ता और उसकी नजर पड़ जाती तो खुद ही आवाज देता, "सरदार जी, हमारा फ्रिज ठीक चल रहा है न?"

फिर अगले वर्ष गर्मियों में फ्रिज की ठंडक कम हो गई। बर्फ जमना बंद हो गई। राकेश को बुलाना पड़ा।

"लो जी बाऊजी, बात ही कुछ नहीं। मैं समझ गया फाल्ट। इस वक्त पच्चीस रुपए दे दो।"

साल भर बाद उसकी फीस पांच रुपए बढ़ गई थी।

"क्या?...अभी ही?"

"ओ शाह जी, रोटी तो खानी हुई न। बाकी हमारा काम।"

फुर्सत में था, साथ ही चल पड़ा।

"सरदार जी, हमारा कंप्रैशर ठीक है। हमारे हाथ लगे हुए हैं न। पर गैस खत्म हो गई है। गैस भरनी पड़ेगी। डेढ़ सौ रुपए का खर्चा है।"

"क्या! तेरी गारंटी का क्या हुआ?"

"मालिको! कैसी बातें करते हो? गांरटी तो कंप्रैशर की थी—साल की। गैस की सिर्फ छह महीने की ही होती है। यह तो आपसे डेढ़ सौ ही मांगा है, दूसरों से तो ढाई सौ लेता हूं। यह मशीन मेरे हाथों से निकल चुकी है न, इसलिए।"

सो, डेढ़-सौ रुपया पूजना ही पड़ा और एक वर्ष और गुजर गया।

अगले वर्ष थर्मोस्टेट खराब हो गया। फिर राकेश जी दो सौ ले गए। फिर कभी रिले खराब, कभी स्विच खराब, कभी ठंडक कम। कभी गैस फिर भरना। बात यह कि हर वर्ष फ्रिज महाराज को कुछ न कुछ पूजना ही पड़ता था और गरमी का पूरा मौसम "वाहेगुरु, वाहेगुरु" करते हुए निकालते थे।

सोचने पर विवश हो गए कि रिपेयर पर ही कुल मिलाकर हमारा खर्चा डेढ़ हजार और हो गया होगा। क्या लाभ हुआ, पुराना फ्रिज लेने पर? फिर निर्णय किया कि अगर अब फ्रिज खराब हुआ, खास तौर पर अगर कंप्रैशर फुंका तो रिपेयर नहीं करवाना, फ्रिज नया ही लेंगे या फिर बगैर फ्रिज ही गुजारा करेंगे। बार-बार की रिपेयर पूरी नहीं पड़ती।

बजट की आशा भी बन गई थी। पांच हजार की एक पुरानी जीवन-बीमा पालिसी खत्म हो रही थी और आशा थी कि फ्रिज की कीमत उसमें से निकल आएगी।

अतः वही बात हो गई। इस साल भी गर्मियों में फ्रिज ने काम करने से इंकार कर दिया।

राकेश को बुलाया। पच्चीस रुपए उसने पहले रखवा लिए।

"बाऊजी, रोटी तो खानी हुई न। बस, अभी आकर देखता"।

देखभाल कर बोला, "लो बाऊजी, कंप्रैशर उड़ गया है। वोल्टेज का कोई भरोसा नहीं आजकल। बहुत कम आ रही है। उतार-चढ़ाव इतना है कि बंदा उड़ते भी कुछ पता नहीं लगता।"

"पर अबकी बार खर्चा कितना आएगा?"

"आठ सौ रुपए। वह भी आपसे, वैसे तो हजार ही समझो।"

"गांरटी साल की?"

"हां मालिको! साल की हमारी गारंटी, पर चलेगा कई साल।"

"पहले भी तू यही कहता था।"

"पर सरदार जी, तीन-चार साल तो चल ही गया है। आखिर, मशीन है, घिस जाती है चल-चलकर। आदमी भी तो चार साल में कई बार बीमार पड़ जाता है, कमजोर हो जाता है। कई तो खत्म ही हो जाते हैं—कंप्रेशर की तरह।"

"अगर इसे बेचना हो तो?"

"इस तरह शायद पांच सौ ही मिलें। यह डिब्बा अलमारी ही तो रह जाता है। हां, रिपेयर के बाद दो हजार के करीब मिल सकता है। ग्राहक भी ढूंढ दूंगा।"

"अच्छा फिर सोचते हैं।"

"चलो बाऊजी, सोच लेना। आपके पच्चीस फिर कम कर देंगे, अगर ठीक करवाना हो तो। अच्छा अब थोड़ी चाय पिला दो। सिर दर्द हो रहा है। कोई गोली हो तो वह भी दे देना।"

"भले मानस, अनी डाक्टरी का खर्चा हमारी गोलियों-चायों से ही बचा लेता है। तू है बहुत होशियार!"

"लो सरदार जी, ये तो इंसानी दुख हैं। वह तो भला धंधा है। रोटी जो खानी है। वरना आदमी की क्या जिंदगी होती है? है कोई कीमत?"

कंप्रेशर रिपेयर करवाने का मन नहीं हुआ। क्या हर बार ठीक करवाए जाओ और परेशान होते रहो। नया फ्रिज होगा, कुछ गारंटी होगी और कुछ साल आराम से कट जाएंगे। अफसोस है कि यह फैसला पहले ही क्यों न कर लिया। जब ऐसे ही व्यर्थ में हजार रुपया बहाएं? क्यों न छह-सात हजार और मिलाकर नया ही लिया जाए? वह भी बड़े सहज का। बीमा पालिसी का पैसा भी मिलना है बोनस को मिलाकर कोई आठ हजार के करीब हो जाएगा। इधर काम आ जाएगा।

बीमे का चैक आने तक बगैर फ्रिज ही काम चलाना उचित समझा। आखिर, वह भी जमाना था जब हम बिना फ्रिज के रहते थे। देश में करोड़ों गरीब लोग फ्रिज के बगैर ही तो गुजारा कर रहे हैं। अपने से नीचे देखने वाली फिलासफी को अपनाना बेहतर लगा।

"मेरी एक सलाह मानो। मेरे पास एक ग्राहक है। फ्रिज अपना रिपेयर करवा लो। दो हजार मिल जाएगा। वैसे तो अपको पांच-सौ भी नहीं मिलने। अलमारी ही तो रह जाती है। इस तरह मेरा रिपेयर का खर्चा काटकर आपको हजार से अधिक बच जाएगा। और फिर जब तक ग्राहक नहीं आता, आप फ्रिज इस्तेमाल करो। फ्रिज के बगैर, सरदार जी, घर में रौनक नहीं रहती।"

बात उसकी जंच गई हमने उसको कंप्रेशर रिपेयर करवाने लिए हामी भी दी।

"मालिको, यह हुई सरदारों वाली बात। तो फिर तीन सौ रुपया हमको भी दे दो।"

वह कंप्रेशर यूनिट खोलकर ले गया, साथ ही दो सौ रुपया भी और हफ्ते भर का

वायदा कर गया।

लेकिन, हफ्ते भर बाद जब पता करने गए तो वह दुकान पर नहीं था। कंप्रैशर उसी तरह खुला पड़ा था। पड़ोसी दुकानदार ने बताया कि कहता था, पंजाब जाना है। आने के बारे में कुछ कहकर नहीं गया।

बहुत गुस्सा आया कि इतनी चालाकी कर गया इस बार और पैसे भी ले गया।

इतने में बीमा कंपनी का चैक भी पहुंच गया। पालिसी पूरा होने पर कोई पौने आठ हजार के करीब पैसे मिले। सोचा कि वैसे तो पैसे खर्च ही हो जाएंगे, क्यों न समय पर ही इस्तेमाल कर लिए जाएं? तो बगैर कुछ लंबा-चौड़ा सोचे, बगैर किसी संकोच के एक मशहूर कंपनी का फ्रिज ले ही आए। राकेश को तो दो सौ ही दिए थे। कह देंगे कि रिपेयर करने की जरूरत नहीं।

कुछ दिनों पश्चात् राकेश आ गया।

"मालिको, अपनी मशीन की कोई पूछताछ ही नहीं की? मैं तो तकरीबन तैयार किए बैठा हूं। कोई दो सौ रुपया और दे दो, काम पूरा करूं।"

"पर भले मानस, तेरी दुकान ही बंद थी—दस दिन हुए। इस बार तूने बड़ा लारा लगाया हमें।"

"शाह जी, मुझे पंजाब जाना पड़ गया था। मैं तो बड़ी मुश्किल से बचकर आया हूं। कुछ पैसे चाहिए थे।"

"अच्छा। पर अब तो हमने फ्रिज भी नया ले लिया है।"

"लो, यह कोई बात हुई। हमारे होते हुए आपने इतना खर्चा क्यों कर लिया?"

"चलो, अब तो हो गया। तू हमारा यह अलमारी-डिब्बा बिकवा दे।"

"ये काम तो होते ही रहेंगे। रोटी जो खानी हुई। मैंने तो सोचा था, कुछ पैसे और मिल जाएंगे। जिंदगी की कीमत ही क्या है? चलो, जिदंगी तो बच गई।"

लगता था, कोई उपयुक्त बहाना सोच रहा था अपनी इस देरी का। हमें भरोसा दिलाने के लिए।

"पर, किसकी जिंदगी बच गई?"

"मैंने बताया नहीं, मैं तो चंगुल में आ गया था उनके।"

"किन लोगों के?" मैंने उत्सुकता प्रकट की।

"उनके ही, और किनके?" उसने धीमे स्वर में कहा, "उग्रवादियों के।"

"क्या?" मैं चौंक उठा, "फिर?"

"मेरी दुकान बंद थी न। मैं पंजाब गया था—अंबाला। सोचा, दर्शन कर आएं दरबार साहिब जाकर। वहां से बस पकड़ी और अमृतसर चल दिया। रास्ते में हमारी बस खड़ी कर ली गई। मालूम नहीं कहां? सभी को नीचे उतार लिया गया और सबसे पहले बंदूक

मेरी ओर कर दी और कहा—निकाल दे जो कुछ भी है, नहीं तो गोली मार देंगे।"

मुझे लगा, अपने मौजीपन के कारण ऐसे ही कहानी गढ़ रहा है। हमदर्दी की खातिर। मैंने टटोला, "पर वे तो बहुत खूंखार होते हैं। सुना है, किसी को नहीं छोड़ते। तू कैसे बच गया?"

"यह तो बाबे की कृपा रही है। मुझे तुरंत सूझा। मैंने उनसे कहा, ओ बादशाहो, मैं भी तुम्हारे बीच से ही हूं। अभी-अभी पुलिस के जाल में से निकलकर आया हूं। बस, यही पहली बस थी जो मुझे मिली, भागने के बाद। उन्होंने कहा, अच्छा, जा जाकर जीप में बैठ जा। मैं पेशाब करने के बहाने थोड़ा दूर हो गया और फिर दौड़ पड़ा और दौड़ता ही गया। खूब दौड़ लगाई और फिर दूसरी तरफ से आती बस पकड़कर वापस पहुंचा और सुख की सांस ली।"

"और, दूसरों का क्या हुआ? उन्होंने गोली नहीं चलाई? तुझे कुछ सुनाई नहीं दिया?"

"उनका मुझे क्या पता? मैंने तो बस अपनी जान बचाई और वाहेगुरु का शुक्र मनाया।"

कहानी बड़ी दिलचस्प गढ़ी थी उसने। देरी करने का या दुकान बंद करने का बहुत सनसनीखेज बहाना ढूंढा था। फिर भी, उससे ऊपरी हमदर्दी जताते हुए कहा, "हां भई, बहुत बचाव हो गया।"

"हां जी, नहीं तो उन्होंने तो मार ही देना था। बाद में, सरकार ने घर वालों को बीस-बीस हजार मुआवजा देने की घोषणा कर देनी थी। वह भी मालूम नहीं, घरवालों तक रकम पहुंचती भी कि नहीं। बीस हजार! आखिर, क्या कीमत है जिंदगी की?"

"हां भाई, सच है। पता नहीं जिंदगी की कीमत बीस हजार है या ज्यादा।" मुझसे कहे बिना न रहा गया, "पर अपनी जिंदगी की कीमत का तो यह फ्रिज सामने रखा है—बीमे की रकम वाला!"

पोलियो

कुलदीप बग्गा

मणिका उन दिनों बेहद निराश्रय हो गई थी। उदासी में वह चुपचाप अपने आप में डूबी रहती ।

मुझे सदैव ऐसी ही लड़कियों का साथ अच्छा लगता है। उदात्त, गमगीन और अपने आप से भी बेखबर लड़कियां! मैं उदासी के घेरों को अपने ठहाकों से दूर करने की कोशिश करता हूं क्योंकि मन की गहराई में मुझे हमेशा यही डर लगा रहता है कि कहीं यह उदासी मुझे ही न घेर ले। एक बाद उदासी ने घेर लिया तो अपने ढेर सारे जख्म हरे हो जाएंगे।

मणिका को मैं खुश करने की कोशिश करता। उसकी चुप्पी को तोड़ता रहता। उसे कुरेद-कुरेदकर पूछता रहता ताकि उसका जमा हुआ दर्द बाहर निकल आए और वह कुछ सुख की सांसें ले सके।

मनीष के साथ उसकी नई-नई दोस्ती बढ़ रही थी। मनीष गोरे रंग का बेहद स्मार्ट लड़का था। किसी आफिस में काम करता था।

मैंने उससे पूछा, ''मनीष के साथ तेरे संबंध बहुत बढ़ गए हैं?'' मेरे सम्मुख वह कभी झूठ नहीं बोलती। वह मुझे अपनी हर बात बता देती थी।

उसने 'हां' में सिर हिला दिया।

वह कुछ कहने से संकोच या लाज महसूस कर रही थी। मुझे समझने में देर न लगी कि मणिका और मनीष के संबंध कहां तक पहुंच गए हैं। तभी मेरी दृष्टि उसके पैरों पर पड़ी। उसके पोलियोग्रस्त पैर के बारे में सोचकर मैं कांप उठा। मैं उदास हो गया।

यह बात नहीं कि मैं उसका पैर पहली बार देख रहा था। मनीष और मणिका के संबंधों के बीच यह बड़े सैंडिल वाला पैर देखकर मैं भयभीत हो उठा।

वह देखने में बहुत दिलकश है। तीखे नयन-नक्श, रंग गेहुंआ, पर जब वह चलती है तो उसको देखकर आदमी खुद ही उदास होने लगता है। वह काफी खुले स्वभाव की है। जब वह नई-नई आई थी तो उसने एक दिन बताया था, ''भई, मैंने तो जिंदगी में हमेशा ही कुछ खोया है।''

'भई' कहना उसका तकिया-कलाम था।

उसके स्वर में कड़वाहट थी। मुझे लगा, आज वह रो पड़ेगी। मैं कुछ कहने के लिए सोच ही रहा था कि वह स्वयं ही बोल उठी, "पोलियो ने एक टांग ले ली। बड़ा भाई खूब पीटा करता था और मेरे सभी खिलौने छीन लेता था। तब मैं एक टूटी हुई गुड़िया गोद में लेकर उसको देखती रहती थी।"

मैं उसके विषय में सोच रहा था। अकस्मात मेरे मुंह से निकला, "मणिका, तुझे कई समझौते करने पड़ेंगे। अभी भी कई बार बहुत कुछ गंवाना पड़ेगा।"

"तुम भी यही कहते हो?" उसकी आंखें गीली हो आई थीं। मेरा भी गला भर आया। मैंने उसका हाथ धीमे से दबाया। हम दोनों की सांझ गहरी ही होती चली गई।

उस दिन, वह मेरे संग कनाट-प्लेस में घूम रही थी। वह शायद बहुत अच्छे मूड में थी। उसने मुझसे पूछा, "तुमको मेरे संग चलने में शर्म तो महसूस नहीं हो रही?"

"मणिका, तुझे क्या लग रहा है?"

वह मुस्कुरा उठी। मेरे प्रश्न का उसने कोई उत्तर नहीं दिया। कॉफी पीते हुए वह बोली, "आज मैं बहुत खुश हूं। आज मैं पहली बार अनुभव कर रही हूं कि मुझे एक अच्छा दोस्त मिल गया है।"

"अचानक तुझे यह ख्याल कैसे आ गया?"

वह कॉफी सिप करती रही। वह बेहद खुश दिखाई दे रही थी। कुछ देर बाद वह बोली, "कुछ लोग मेरे साथ हमदर्दी दिखाते हैं, वह अपने नेक होने का सबूत देने की कोशिश करते हैं। मुझे ऐसी हमदर्दी से नफरत है।" मणिका और मनीष के बढ़ते संबंधों को देखकर मुझे कुछ घबराहट-सी होने लगती है। एक ही सवाल मेरे मन में उठता—क्या वह मणिका से विवाह करेगा?

एक दिन, उसने स्वयं ही आकर बताया कि मनीष की मां उसको देखने आ रही है। मुझे वेहद खुशी हुई। दूसरे दिन, वह आई तो बहुत उदास थी। मैं सारी बात समझ गया। उसने स्वयं ही बताना आरंभ किया, "कल मनीष की मां आई थी। मेरे लंबे बालों की, मेरी आंखों की बहुत प्रशंसा कर रही थी। मैं स्वयं जान-बूझकर उठी और दूसरे कमरे में चली गई। वापस आकर देखा तो उसकी मां के चेहरे का रंग बदला हुआ था।"

"क्या मनीष ने अपनी मां को तेरे पैर के बारे में कुछ नहीं बताया था?"

वह उदास बैठी रही। बहुत देर बाद वह बोली, "मनीष का तर्क कुछ और ही था। वह मां को पैर के बारे में शादी के बाद ही बताना चाहता था।"

"अब क्या कहता है?"

"भई, अब वह अपनी मां की आज्ञा का पालन करेगा।" यह कहकर वह ठहाका लगाकर हंस पड़ी।

मैं शुरू से ही मनीष के साथ उसके इस हद तक बनाए गए संबंधों को मूर्खता समझता था पर मैं जानता था कि ऐसी मूर्खता हम सभी करते हैं।

एक समय यह भी आया जब वह दो लड़कों से रोमांस करने लगी। मुझे उस पर हैरानी हुई। मैंने उससे पूछा तो बोली, ''तुम जानते हो कि मैं क्या चाहती हूं। मुझे तो एक सहारा चाहिए। मैं एक जीवन-साथी चाहती हूं।

मुझे विश्वास हो गया कि मणिका अपना वर स्वयं नहीं ढूंढ सकती। वह जैसा लड़का चाहती थी, उसके पैर के कारण वैसा लड़का मिलना कठिन था।

उसकी उम्र बढ़ रही थी। घर के लोग शायद भूल गए थे कि उनकी एक जवान लड़की है। मणिका अब बिखरती जा रही थी।

''शादी कोई जरूरी है, शैलेन्द्र?''

कभी वह कहती, ''अब मेरी शादी नहीं हो सकती।''

उसकी और मेरी बातचीत बहुत बढ़ गई थी। मैं चाहता था कि उसकी शादी शीघ्र हो जाए। उसकी उदासी मुझे हर वक्त चुभती रहती।

मेरे एक दोस्त ने उसके लिए एक लड़का बताया, उस लड़के की दोनों टांगें रेल से कट गई थीं। वह अच्छे व्यापार में लगा हुआ था। उम्र के हिसाब से भी वह मणिका के योग्य था। मैंने एक दिन मणिका से कहा, ''मैंने तेरे लिए एक लड़का ढूंढ लिया है।''

''अच्छा!'' एक फीकी-सी मुस्कुराहट उसके चेहरे पर फैल गई। वह बात टाल गई।

दूसरे-तीसरे दिन मैंने फिर वही बात दोहराई। तब वह बोली, ''बताओ न, वह कैसा है? मेरी पसंद तो तुम्हें पता ही है।''

यह सुनकर मुझे कंपकंपी-सी महसूस हुई।

''मणिका, शादी और पसंद बिलकुल अलग-अलग चीजें हैं।''

इस पर वह बोली, ''तुम ठीक कहते हो, मणिका को अपनी पोलियो वाली टांग कभी नहीं भूलली चाहिए।''

''मणिका, प्लीज, यह बात हम सब पर लागू होती है। यह नियम सिर्फ तेरे लिए नहीं है।''

वह मेरे सामने उदास और गमगीन बैठी थी। वह ऐसे बैठी थी जैसे कोई निर्दोष सज़ा सुनने के लिए बैठा हो। गम का घेरा बढ़ने लगा। मैं शशोपंज में फंस गया कि बात कैसे आरंभ करूं। मैं उठ खड़ा हुआ।

''हां, पर मुझे डर है कि तू नाराज हो जाएगी।''

''मैंने बहुत दुनिया देखी है, राह चलते हुए कितनी ही आंखों का शिकार होती हूं। किस-किस से नाराज होऊंगी?''

''एक लड़का है, रेल-एक्सीडेंट में उसकी दोनों टांगें कट गई थीं। व्यापार करता है,

अच्छा कमाता है।"

"न भई, तुम मेरी सारी ही टांगें तो न छीनो।" यह कहकर वह लंगड़ाती हुई चली गई थी।

एक दिन, उसने बताया कि एक लड़का उसे देखने आया था। बात पक्की हो गई। यह सुनकर बहुत खुशी हुई। आहिस्ता-अहिस्ता मैं उदास होने लगा।

"कैसा है?" पूछा।

"उसके एक हाथ पर सफेद दाग है, वह दाग उसके पूरे शरीर पर फैल सकता है।"

"मणिका, यह ठीक है, यह एक मामूली बात है। एक समझौता तो हम सबको करना पड़ता है।"

मेरी बात सुनकर वह बोली, "पर मैंने 'हां' नहीं की।"

"क्यों?"

"तुम्हें दिखलाए बिना मैं 'हां' कैसे कर देती?"

यह सुनकर मैं खुश हुआ, पर दूसरे ही पल मैं फिर उदास हो गया।

मैंने लड़के को देखा, लड़का मणिका के बिल्कुल योग्य लगा। मुझे लगा कि मणिका को जिस प्यार और स्नेह की आवश्यकता है, वह उसे मिलेगा।

उसके विवाह की तैयारियां शुरू हो गईं। वह हर बात मेरे फैसले पर छोड़ देती। उसकी साड़ियों के रंग कैसे होने चाहिए, लड़के के सूट का कपड़ा कैसा हो, यह सब फैसला उसने मेरे पर छोड़ दिया था। उसका विवाह हो गया। कुछ दिन मैं उखड़ा रहा। लगा कि अपना एक हिस्सा टूटकर अलग हो गया है। मुझे इस बात की खुशी थी कि मणिका को जीवन-साथी मिल गया है। मन को कुछ राहत-सी हुई।

कुछ ही दिन बीते थे कि वह अपने पति के साथ मुझसे मिलने आई। विवाह के बाद लड़की कितनी जिम्मेदार बन जाती है, उसे देखकर ऐसा ही लगा। वह बच्चों के लिए खिलौने और मिठाई का डिब्बा लेकर आई थी। आते ही सबसे लिपटकर मिली।

"तेरा क्या हाल है, मणिका?"

"बहुत अच्छा," मणिका हंस रही थी।

उसका पति प्रीतम बोला, "बस, आपकी ही बातें सुनाती रहती है। आपको बहुत मानती है। कई दिनों से आपके पास आने को कह रही थी।"

"तुम दोनों खुश हो न?" मैंने पूछा।

"अपनी मणिका से पूछिए।" प्रीतम ने हंसते हुए कहा।

लगा कि मणिका की आंखें कुछ कहना चाहती हैं। उसका पति बाथरूम में गया, मेरी पत्नी उनके लिए चाय बनाने चली गई।

वह उदास-सी मेरे सामने बैठी थी।

तभी बच्चे अपनी दीदी के खिलौने दिखाने आ गए। उसकी आंखें कुछ कह रही थी, वह कुछ बताना चाह रही थी।

कुछ दिन बाद उसका फोन आया, "क्या तुम कुछ समय निकाल सकते हो?"

"क्यों?"

"बैठकर कुछ बातें करेंगे।"

उसने नई दुल्हन जैसे कपड़े पहन रखे थे। अजीब तरह की महक उसके कपड़ों से आ रही थी।

मैंने उसे छेड़ने के मूड में कहा, "हनीमून कैसे मना रही हो?"

वह चुपचाप मेरे सामने बैठी थी, अपनी साड़ी के पल्लू से खेल रही थी। कभी-कभी उसकी चूड़ियों की खनक सुनाई देती।

"सुहागरात ठीक रही न?"

वह आंखें नीची किए साड़ी के पल्ले को गांठें लगा रही थी।

"किन विचारों में गुम हो गई हो?" मैंने फिर मजाक किया। उसके चेहरे पर फीकी-सी हंसी आई। एक गहरा सांस लेकर बोली, "वे तो इंपोटेंट हैं।"

"क्या कह रही हो?" मुझे लगा कि कहीं जोर का धमाका हुआ है। मैं पूरी तरह से हिल गया था।

"तुझे पक्का यकीन है?" मैंने फिर पूछा।

"हां।" आंखें झुकाए हुए बोली।

मैं उसके पोलियो-ग्रस्त पैर को देख रहा था। मुझे उस पर तरस आ रहा था, बेचारी मणिका!

वह मेरे सामने बैठी थी और मैं कुछ भी कहने के योग्य स्वयं को नहीं पा रहा था।

"सुख मेरे जीवन में नहीं है। पिछले जन्म में मैंने बहुत पाप किए हैं। उनकी ही सजा भुगतने के लिए मैंने यह जन्म लिया है।"

"मणिका, शादी के शुरू-शुरू के दिनों में ऐसी परेशानी लगभग सभी को आती है। घबराने की जरूरत नहीं। इस सबका इलाज हो सकता है।"

"वह पिछले कई सालों से इलाज करवा रहे हैं।"

"फिर उस बेवकूफ ने शादी क्यों की?" मुझे गुस्सा आ गया था।

"शादी न करना भी आसान काम नहीं। मां-बाप, समाज और रिश्तेदार सबको शादी न करने का जवाब देना पड़ता है।" वह बोली।

उसके चेहरे की चमक बढ़ गई थी। अब वह सहज हो गई थी। वह बोली, "भई, हैं बहुत अच्छे, प्यार करते हैं, जिंदगी इसी तरह गुजर जाएगी।"

मैं चुप, उदास उसके सम्मुख बैठा था। मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था।

"मेरा एक दोस्त डाक्टर है, उससे इलाज करवाओ। वह तुम्हारी जरूर मदद करेगा।"

मैंने उसको अपने डाक्टर दोस्त का पता और फोन नंबर दे दिया और वायदा किया कि मैं उसको फोन करूंगा।

अब वह जब भी मिलती, मैं एक ही सांस में कई प्रश्न पूछ लेता।

"इलाज चल रहा है?"

"हां।"

"कुछ फर्क पड़ा?"

"कुछ भी नहीं। सारी रात जागते हुए कटती है। उससे कुछ नहीं हो सकता। वह रोने लगते हैं। उन्हें आत्महत्या करने के दौरे पड़ते हैं। मेरा मन करता है, उन्हें पीट दूं। उनकी बोटी-बोटी नोच लूं।"

मैं चुपचाप बैठा रहा। उसका दुख मेरे अंदर जमता जा रहा था। मैं चाहता था, ठहाके लगाकर उसके घेरे को तोड़ दूं। लेकिन, कर कुछ न सका।

"तुम ही कोई राह बताओ।"

"तलाक ले लो। नए सिरे से जिंदगी शुरू करो।"

"बहुत दिल करता है कि नए सिरे से जिंदगी शुरू करूं, तेज बुखार आए, पोलियो वापस चला जाए, क्या यह मुमकिन है?"

मैं उसकी बात सुनकर दंग रह गया। यह लड़की उदासी के घेरे को टूटने नहीं देती। मैं उसका गम बांटा करता था, आज मैं उससे हार गया था। बहुत देर तक हम चुप बैठे रहे।

वह बोली, "अब मेरे साथ कौन विवाह करेगा? मुझे प्रीतम पर भी दया आती है, वह कुछ कर न ले। मुझ पर एक और पाप चढ़ जाएगा।"

"एक बच्चा हो जाए तो तुम दोनों जिंदगी मिलकर काट सकते हो।" अकस्मात् मेरे मुंह से निकला। वह खामोख पत्थर-सी मेरे सामने बैठी थी।

"मणिका, एक ही रास्ता है, गुपचुप समझौता। एक बच्चा हो जाए तो तुम दोनों एक धागे में बंधे रह सकती हो।" मैंने कहा।

"छी! छी!! तुम किस तरह की बातें कर रहे हो?"

मुझे अपने ही सुझाव पर हैरानी हुई। शायद, गम और उदासी ने मेरी अक्ल पर पर्दा डाल दिया था। क्या यह संभव है? एक मन कहता कि जीने के लिए सब कुछ संभव है। पर, दूसरा मन इसे काल्पनिक बात कहकर हवा में उड़ा देता। दूसरे पल मुझे लगा कि कहीं मेरी अतृप्त इच्छाएं तो प्रकट नहीं हो रहीं?

इस दिन के बाद से मणिका धीरे-धीरे मुझसे दूर रहने लगी। मुझे लगता कि यह मेरा वहम था। उसकी गृहस्थी है, अपना परिवार है, उसका सास-ससुर जेठ-देवर सब। उन सबकी

ओर उसकी जिम्मेदारी है।

उस दिन, दफ्तर से लौटा तो पत्नी ने बताया कि मणिका गर्भवती है, तीसरा महीना लगा है। यह खबर सुनकर मैं अवाक् रह गया। पत्नी मेरे चेहरे को देखकर घबरा उठी।

"तुम्हें क्या हो गया?"

"कुछ भी नहीं। यही सोच रहा था कि अभी कुछ दिन पहले ही तो उसका विवाह हुआ था।"

मेरे मन में तूफान उठ खड़ा हुआ। हर सवाल टकराकर वापस लौट आता, किनारा न मिलता।

दूसरे दिन, मैं अपने डाक्टर दोस्त के क्लीनिक में पहुंच गया। मैंने उससे केस के बारे में पूछा। उसने पूरी केस-हिस्ट्री बताई।

"इसका क्या इलाज हो सकता है, डाक्टर?"

"इलाज?" वह मुस्कुराकर बोला।

मैं झेंप गया।

"मेरा मतलब है कि उनको एक बच्चा हो जाए तो दोनों का जीवन कट जाए।"

"अगर लगातार वे इलाज करवाएं तो संभव है।"

"मगर मणिका को अब गर्भ ठहर जाए तो?" मैंने कहा।

फिर डाक्टर चमत्कारों के बारे में बताने लगा। उसने मेरे साथ ही मजाक करना आरंभ कर दिया।

मेरे अंदर कुछ हलचल-सी होने लगी। अंदर ही अंदर मैं गम से घिर गया था। कभी लगता, अंदर कुछ टूट गया है। मानसिक तौर पर मैं बीमार हो रहा था।

अब जब भी वह मुझसे मिलती, कुछ जल्दी में ही होती। मुझसे दूर-दूर रहने का यत्न करती। पहले की तरह अब पास बैठकर अपने दिल की बात न करती। कभी वह भी समय था कि वह हर बात मुझसे कहा करती थी।

उस दिन, वह हमारे घर आई। पूरा दिन हमारे घर पर रही, बच्चों और मेरी पत्नी के संग बातें करती रही।

मैंने मणिका से पूछा, "प्रीतम का क्या हाल है?"

"ठीक हैं," कहकर वह बात टाल गई।

"मणिका, तेरा क्या विचार है, लड़का होगा या लड़की?" मेरी पत्नी ने उससे पूछा।

"लड़का!" उसने निश्चयपूर्वक कहा।

मुझे आश्चर्य हुआ कि वह कितने आत्म-विश्वास से बोल रही थी।

मेरी पत्नी ने पूछा, "उस परिवार में सबसे अधिक कौन अच्छा लगता है?"

"मेरा जेठ। वह तो मेरा भगत है। वह हर समय मुझे घूरता रहता है, मेरी हर बात

मानता है, उसके चार लड़के हैं।"

एक दिन खबर मिली कि मणिका के बेटा हुआ है और अब वह अलग हो गई है। उससे मिलने को मेरा बहुत मन था। कई बार उसे फोन किया पर मुलाकात को वह हमेशा टाल जाती।

अचानक ही, एक दिन वह मुझे मिल गई। मैंने व्यंग्य किया, "मेरे संग कनाट प्लेस घूमने में तुझे शर्म तो नहीं आएगी?"

"क्या मतलब?"

"मेरा मतलब है कि अब तू बड़े परिवार वाली है, तेरी ससुराल के लोग ही न कहीं मिल जाए!"

"ऐसी तो कोई बात नहीं, पर अब पहले जैसी आजादी भी नहीं है।"

"मैं तुझसे कुछ पूछना चाहता हूं।"

"पूछो, तुम मेरे गुरु हो।"

"यह कहकर तू मेरा मजाक उड़ा रही है। मैं तो तेरा दोस्त हूं।"

"तुम मेरी हमेशा भलाई चाहते हो।"

"हां।"

मुझे लगा कि एक दीवार हमारे दोनों के मध्य खड़ी हो गई है, मैं असमंजस में फंस गया। एक सवाल कील की तहर मेरे मन में चुभ रहा है। मैं जानता हूं कि वह मेरे सवाल को जानती है, उसका उत्तर देने से वह घबरा रही है। मुझे किसी के निजी जीवन में दखल देने का क्या हक है?

मुझे गुमसुम देखकर वह बोली, "तुम कुछ पूछना चाहते थे न?"

"हां, यही कि अब प्रीतम का क्या हाल है?"

"वह उसी तरह है," उसने स्पष्ट करते हुए कहा। फिर कुछ रुककर बोली, "तुम जो कुछ पूछना चाहते हो, वह मैं जानती हूं। तुम मेरे गुरु हो, मैं तुम्हारी बहुत इज्जत करती हूं। तुमने अंधेरे दिनों में मुझे रास्ता सुझाया था।"

"वह कौन है?"

"तुम्हारे लिए तो यह एक छोटी-सी उत्सुकता है पर मेरे लिए यह जीवन है। तुमसे कभी कुछ नहीं छिपाया पर यह बात..."

वह बहुत गंभीर हो गई थी।

मैं हतप्रभ-सा उसको देख रहा था।

"एक दिन तुमने समझौता करने की सलाह दी थी, अब तुमसे कहती हूं—क्या तुमको समझौता करना पड़ेगा?"

"क्या?"

"वह सब कुछ भूल जाओ, जो मैंने तुम्हें बताया था।"

मैं चुपचाप उसकी बात सुनता रहा।

वह बोली, "मैं एक बार तुम्हारे पास आना चाहती थी। बहुत सोचा, फिर लगा, यह गलत होगा। तुम्हें मैं ऊंची जगह से नीचे गिरते हुए नहीं देखना चाहती थी। तुम्हें इस सबसे अलग रखना चाहती थी।"

"फिर तूने क्या योजना बनाई?"

वह कुछ देर हंसती रही, फिर बोली, "कोई योजना बनाकर शिकार नहीं किया। बस, उसी मनःस्थिति में किसी के साथ टक्कर हो गई, उसने अपनी हवश और आग मिटाई, और मैंने अपनी संतान-प्राप्ति की इच्छा पूरी की। वह आदमी शायद भूल गया होगा। हम शायद फिर कभी जीवन में मिलें तो एक-दूसरे को पहचान भी न सकें।"

"क्या प्रीतम को मालूम है?"

"वह कोई दूध-पीता बच्चा नहीं है। उसे मालूम होना चाहिए। मैं दावे के साथ कुछ नहीं कह सकती। हमारी आपस में इस विषय पर कभी बातचीत नहीं हुई। उसने स्वयं ही एक बार कहा था—तेरा गुरु ठीक कहता है, हमारा एक बच्चा हो जाए तो हम जुड़े रह सकते हैं, नहीं तो मुझे लगता है, तू किसी के संग भाग जाएगी या आत्महत्या कर लेगी।"

उसने बच्चे के लिए कुछ खिलौने खरीदे और जल्दी-जल्दी घर की ओर चल दी।

मैं वहीं खड़ा होकर उसे जाते हुए देखता रहा, मुझे लगा कि वह बहुत आगे निकल गई है। हालात ने उसको समझौता करने की कितनी ताकत दी है!

मैं बहुत उदास हो गया था। मैं उसके सम्मुख छोटा हो गया था। मेरा तसव्वुर उसकी आंखों में चकनाचूर हो गया था, मुझे लगा कि पोलियो अब मुझे हो गया है।

रुतबा

अजीत सिंह

औरों का पता नहीं, हमारे आठों घरों को इन्होंने सूली पर टांगा हुआ था और इन आठों घरों में भी हम सबसे अधिक दुखी थे।

असल में, हम पांचेक दिन पहले ही इस क्वार्टर में आए थे। जब क्वार्टर खोला तो हमारे होश उड़ गए। सारा घर गंदगी से भरा हुआ था। तीनों कमरों में ईंटों, कागज के टुकड़ों, कपड़े की कतरनों, दीवारों से उखड़े सीमेंट और रेत के गरदे के साथ-साथ और मालूम नहीं क्या-क्या भरा पड़ा था। हम अंदर घुसे ही थे कि पड़ोसी शर्मा जी बाहर निकले। कहने लगे, "भाई साहब, आप कहां फंस गए? आने से पहले पूछ तो लिया होता। पता तो तब लगेगा जब आप ऊपर छत पर जाएंगे।" मैं और मेरी पत्नी, दोनों ही, सचमुच अपनी जल्दबाजी पर पछता रहे थे। बच्चों ने जब अंदर घुसकर देखा तो उन्होंने क्वार्टर में रहने वाले पहले अलाटियों को कोसना शुरू कर दिया।

छत के ऊपर, दुनिया भर की गंदगी पड़ी हुई थी।

"ओ जी, हम तो कभी सूद साहब के घर में घुसे ही नहीं। एक तो दो-दो कुत्ते रखे हुए थे उन्होंने। किसी ने दरवाजा खटखटाया नही कि वे काटने को दौड़ते। वैसे, सूद साहब खुद बड़े भाग्य वाले हैं। खुद कहीं मास्टरी करते थे, रिटायरमेंट ले ली। बीवी पी. एंड टी. में गजेटेड पोस्ट पर काम करती हैं। एक ही बेटी है जो कालेज में पढ़ती है। दो-दो टेलीफोन लगे हुए थे। ऊपर से तो सजधजकर निकलना पर घर पूरा नर्क! सच्ची बात तो यह कि हम कभी गर्मियों में छत पर नहीं सोए। इतनी सड़ांध! कुत्तों का गंद, घर का गंद..." शर्मा जी छत पर खड़े होकर हमें बता रहे थे।

क्वार्टर सरकारी था। इंक्व्यारी वालों को सफाई के लिए कहा तो उन्होंने इंकार कर दिया। बोले, "छत की सफाई करवाना हमारी जिम्मेदारी नहीं। तुमने कब्जा ही क्यों किया?" उनका एक ही उत्तर था।

"चलो, घर तो अंदर से साफ कर लेंगे पर ऊपर छत का क्या करेंगे? गर्मियों में छत पर सोने की तो अलग ही मौज होती है। नही तो क्या हमारा मन करता, चौथी मंजिल पर क्वार्टर लेने का?" मेरी पत्नी कह रही थी, बच्चे बोल रहे थे।

सड़क वाले जमादार से बात की। उसने भी सिर घुमा दिया था।

"अच्छा, मैं हुक्मी को कहूंगा। वह अवश्य मान जाएगी। आने ही वाली है।" शर्मा जी ने कहा। हुक्मी इन घरों की जमादारनी थी।

हुक्मी मान तो गई पर बहुत नखरों के बाद। इन नखरों में नकद पैसे लेना भी शामिल था, कपड़ा-लत्ता भी और रोटी-सब्जी भी। वैसे, हम भी अनुभव कर रहे थे कि यह काम सचमुच ही बहुत कठिन था। इतना गंद और वह भी चार सीढ़ियां उतरकर फेंकना पूरी मुसीबत थी जिसको कोई मोल लेने को तैयार नहीं था।

"चलो, थोड़ा-थोड़ा कर आठ-दस दिन में हटा देगी। अगर नहीं मानती तो हम क्या कर लेते?" मेरी पत्नी का कहना उचित था। हम सभी घर के अंदर की सफाई में जुटे हुए थे। घर साफ करने के बाद सफेदी करवानी जरूरी थी। टूट-फूट को ठीक करवाना जरूरी था। तभी तो रहा जा सकता था।

घर के अंदर का नक्शा कुछ-कुछ निखरता जा रहा था कि हुक्मी ने तीसरे दिन ही धमाका कर दिया। बोली, "बीबी जी, मुझे गांव जाना पड़ रहा है। भाई के जवान बेटे की मौत हो गई है। ऊपर वाला काम तो अब मैं आकर ही करूंगी। पांच-सात दिन तो लगेंगे ही। दो छोरियां आएंगी काम करने। उनसे प्यार से काम लेना। छोटा-मोटा काम कर देंगी।"

ऐसी स्थिति में, किया भी क्या जा सकता था?

अगले दिन, कोई साढ़े दस-ग्यारह बजे घंटी बजी। मेरी पत्नी ने दरवाजा खोला। नीले और गुलाबी रंग के सूट पहने दो जवान लड़कियां दरवाजे पर खड़ी थीं।

"आंटी, कूड़ा देना जरा।" उनमें से एक ने कहा। मैं उसकी आवाज साफ सुन रहा था।

"मुन्नी, अंदर से उठा लो।" मेरी पत्नी सफेदी के बाद की गई सफाई के कारण इकट्ठा हुए कूड़े को उठवा देना चाहती थी।

"नहीं, हम अंदर नहीं आएंगे," दूसरी ने तुरंत उत्तर दिया।

"हम किसी के नौकर तो हैं नहीं।" पहली ने दूसरी का समर्थन किया। इतने में मैं भी दरवाजे पर पहुंच गया था।

"बेटा, नौकरी का इसमें क्या मतलब है? काम तो करना ही पड़ता है।" मेरा मतलब स्पष्ट था कि अगर यह काम करना है तो इससे नफरत करने की क्या जरूरत है?

"नहीं, हम नहीं जाएंगे अंदर।" यह कहकर उन्होंने सामने शर्मा जी के घर की बेल बजाई। मिसेज शर्मा ने दरवाजा खोला, "बेटा, बाल्टी अंदर रखी है, उठा ले। मैं तुम्हारे लिए चाय बनाती हूं। तुम हुक्मी की क्या लगती हो?" मिसेज शर्मा एक ही सांस में कितने ही बातें कह गईं।

"बाल्टी आप ही बाहर ला दीजिए। बाकी हम तो अपना नाश्ता करके आए हैं घर

से। हुक्मी हमारी आंटी हैं।" यह कहकर उन्होंने अंदर जाने से भी मना कर दिया और चाय पीने से भी। हमारे देखते-देखते वे खाली टोकरा उठाए नीचे उतर गईं।

"यह कोई तरीका है इनके काम करने का? कैसे बिंदी-लिपस्टिक लगाकर आई थीं जैसे शादी पर आई हों?" मेरी पत्नी बड़बड़ा रही थी।

"भई, इतना समय हो गया इन क्वार्टरों में रहते पर इस तरह के नखरे तो पहली बार ही देखे हैं। अगर किसी चीज को हाथ ही नहीं लगाना तो घर बैठो जाकर अपने।" मिसेज शर्मा कह रही थी। नीचे से 115 नंबर की मिसेज कौड़ा भी ऊपर आ गई थी। वह भी जो मुंह में आया, बोलती रही।

"एक तो छुट्टी का दिन, ऊपर से दोपहर होने पर आई, कूड़ा ज्यों-का-त्यों पड़ा है घर में। कोई आ जाए तो क्या अच्छा लगता है? इनसे हुक्मी अच्छी है, चाहे अंदर बुलाकर पखाना साफ करवा लो। कभी न नहीं करती। इन नवाबजादियों के तो नखरे के नीचे ही कुछ नहीं आता।" मिसेज कौड़ा ऊपर जहर घोल रही थी।

बाद में, ज्ञात हुआ कि वे इन आठ क्वार्टरों में से केवल 119 वालों का कूड़ा ही उठाकर ले गई थीं। उनके घर के सामने पड़ा डस्टबिन खाली पड़ा था। सबसे नीचे वाली मिसेज रावत अलग से रो रही थी, " एक-दो-बार दरवाजे पर नॉक किया। मैं टायलेट में थी। जब बाहर आई तो जा चुकी थी। आंगन सारा साफ करने को पड़ा है। हुक्मी को चाहे दो घंटे के लिए रोक लो सफाई के लिए, कभी मना नहीं करती।"

दूसरी तरफ, सबसे नीचे के क्वार्टर वाले भी चिल्ला रहे थे, "हरामनें कैसे सजी-धजी घूमती थीं। उठाना गोबर-कूड़ा और करना हार-शृंगार! हमारे कुत्ते को देख उन्होंने घंटी नहीं बजाई होगी। मैंने सोचा, उधर से उतरकर ले जाएंगी कूड़ा हमारा।"

मिसेज मान अलग चिल्ला रही थीं, "सीढ़ियां चढ़ते तो मैंने खुद देखा। पहले तो मैंने समझा, ये सेल्स-गर्ल्स होंगी। जब बगल में टोकरी-सी दिखाई दी तो पता लगा कि ये तो कूड़ा उठाने आई हैं। अगर मुझे पता होता, उन्होंने ऐसा करना है तो मैंने तो चोटी पकड़कर काम करवा लेना था।" मिसेज मान गुस्से में फुंफकार रही थीं।

अगले दिन, वे आईं ही नहीं। सभी त्राहि-त्राहि कर रहे थे। जो मुंह में आ रहा था, बोल रहे थे। जितना संभव हो सका, हमने घर का कूड़ा नीचे जाकर फेंका। किसी को भी उन लड़कियों के घर का पता नहीं था। मालूम हुआ कि पहले भी कभी-कभार हुक्मी ऐसा कर जाती थी। लेकिन, तब उसका घरवाला बीमारी की हालत में भी काम निपटा जाता था। सबको मालूम था कि हुक्मी का पति टी बी. का मरीज था।

"भई, हुक्मी के घरवाले पर तो तरस आता है देखकर। फिर भी हुक्मी कोई न कोई प्रबंध कर ही जाती थी। उसका घरवाला भी तो साथ गया होगा। इस बार तो पता नहीं कहां से ढूंढकर लाई है ये हूर-परियां।" मिसेज शर्मा मेरी पत्नी को दूसरे दिन बता रही थी।

तीसरे दिन भी वे नहीं आई थीं। लोग बड़बड़ा रहे थे। लेकिन, उस दिन एक और घटना हो गई। मिसेज कौड़ा ने कूड़े की बाल्टी कहीं बाहर रख दी थी। रात को कुत्तों ने कूड़े को टटोला और उसमें से हड्डियां निकालकर जगह-जगह बिखेर दीं। उस रात उन्होंने अवश्य ही मीट बनाया होगा। कुत्तों को क्या पता था कि सामने वाला घर जैनियों का था और हड्डियां उनके घर के ठीक सामने बिखेरकर चले जाना गलत था। जैनियों ने जब सुबह दरवाजा खोला तो चीखना-चिल्लाना आरंभ कर दिया। इधर, कौड़ा परिवार कौन-सा कम था! फिर, चल सो चल। बातें कहां की कहां पहुंच गई थीं। कोई पंजाबियों को भी बुरा बता रहा था।

"जैनी कौन-सा आजकल कम है किसी से? हमारे दफ्तर के कई जैनी शराब भी पीते हैं और मांस भी खाते हैं।" कोड़ा साहब चीख रहे थे।

"यह सारा स्यापा इन छोकरियों ने डाला है। अगर कूड़ा उठा ले जातीं तो यह कंजरखाना होना ही नहीं था।" शर्मा जी कह रहे थे।

"पर इन्हें क्या जरूरत पड़ी थी कूड़ा बाहर रखकर सीढ़ियों पर गंद फैलाने की?" मिसेज शर्मा का तर्क था।

"अरे भई, इन लोगों पर भी अब कोई वश नहीं है। सरकार ने इनको इतना सिर चढ़ाया है कि इन्होंने अति कर दी। पढ़ाई मुफ्त, नौकरियां इन्हें सबसे पहले, तरक्कियां पाने में ये सबसे आगे। हमारे बाल सफेद हो गए क्लर्की करते-करते। ये आते पीछे हैं, अफसर पहले बन जाते हैं। बच्चों को वजीफे अलग। चाहे किसी को कुछ आता हो या न आता हो।" नीचे आए कौड़ा साहब दिल की भड़ास निकाल रहे थे।

चौथे दिन, वे दोनों सज धजकर आईं। लोगों ने अपने-अपने कूड़े की बाल्टियां पहले ही निकालकर बाहर रख दीं और सुख की सांस ली, जब वे कूड़ा उठाकर ले गईं।

"बेटा, जरा सीढ़ियों में भी झाडू दे देना। कितनी गंदी हुई पड़ी हैं।" मिसेज शर्मा से बोले बिना फिर भी न रहा गया।

"यह हमारा काम नहीं है, आंटी!" एक ने कहा।

"ये लोग यहां रहते हैं, अपनी-अपनी सीढ़ियां भी साफ नहीं कर सकते।" दूसरी ने तुनककर पहली का समर्थन किया।

मिसेज शर्मा शांत होकर अंदर चली गईं।

"कहकर देखूं, अगर अंदर का बचा हुआ छोटा-मोटा गंद भी ले जाएं उठाकर।" मेरी पत्नी ने अहिस्ता से मेरे कान में कहा, "कोई बात नहीं, अगर पांच-सात रुपए देने पड़ें।" मैंने 'हां' में 'हां' मिलाई। मेरी पत्नी ने बेहद विनम्रता के साथ गुलाबी सूट वाली लड़की से कहा।

"हम पैसे के भूखे नहीं, बीबीजी!" यह कहकर वे नीचे उतर गईं।

"भाड़ में जाओ।" मेरी पत्नी बड़बड़ाती हुई वापस आ रही थी।

अगले दिन, उन्होंने फिर नागा कर दिया। उससे अगले दिन जब हुक्मी स्वयं आ गई तो कहीं जाकर लोगों की जान में जान आई। मिसेज शर्मा और हुक्मी की ऊंची आवाज सुनकर मेरी पत्नी और मैं भी बाहर आ गया था। नीचे से मिसेज कौड़ा और मिसेज जैन भी ऊपर आ गई थीं।

"हुक्मी, इन छोकरियों ने तो हमें इतना दुखी किया कि हम बता नहीं सकते।" मिसेज कौड़ा कर रही थी।

"पांच दिनों में दो बार तो वैसे आईं। सीढ़ियों में झाडू देने को कहा तो सिर हिला दिया। अगर किसी ने कूड़ा बाहर दे दिया तो ले गईं, नहीं तो हरि हर!" मेरी पत्नी ने भी हुक्मी को सम्बोधित करते हुए कहा।

"पता नहीं, ये छोकरियां अपने आप को क्या समझती हैं? ऐसे बन ठनकर आती थीं जैसे किसी की शादी पर जाना हो।" मिसेज जैन किसी से पीछे नहीं रहना चाहती थी।

हुक्मी सबकी सुनती रही और मंद-मंद मुस्कुराती रही।

"कोई बात नहीं, अब मैं आ गई हूं, सब ठीक कर दूंगी। वे तो पहले ही नहीं मान रही थीं। बीबीजी, बात ये है कि वे काम करती हैं बनारसी दास मार्किट की कोठियों में। अब ये देख लो बीबीजी, वहां की एक-एक कोठी लाखों की है। ये ठहरे सरकारी क्वार्टर! वो तो पहले ही कह रही थीं, हम नहीं जाएंगे बाबुओं के क्वार्टरों में। आप ही देख लो बीबीजी, कोठियों और क्वार्टरों में तो बहुत फर्क होता है। कोठियों में तो बन-संवरकर ही जाना पड़ता है।" हुक्मी कह रही थी और एक तरह से वह लड़कियों द्वारा किए गए व्यवहार का समर्थन ही कर रही थी।

"यह तो कोई बात न हुई, हुक्मी!" मेरी पत्नी ने हुक्मी की बात काटते हुए कहा।

"काम तो हुक्मी काम ही होता है चाहे यहां हो, चाहे वहां।" मिसेज शर्मा भी हुक्मी के तर्क से संतुष्ट नहीं थी।

"देखो जी, हुक्मी की बात है तो चालीस सेर की। अगर गहराई से सोचो तो बहुत कुछ है इसमें।" मैंने हंसते हुए कहा और हुक्मी को छत साफ करने के लिए कहकर छत पर जा चढ़ा।

"नहीं बीबी जी, ये बात तो आपकी ठीक नहीं है।" हुक्मी हंसती रही और उत्तर देती रही।

कुर्सी

रघबीर ढंड

हम सब उधर देखने लगे थे जिधर से थप्पड़ों, घूसों के साथ-साथ चुन-चुनकर गालियां निकाले जाने की आवाजें आ रही थीं। जब वे आवाजें स्कूल की सीमा के अंदर दाखिल होने लगीं तो मेरे दोस्त हैडमास्टर बलवीर ने ललकारते हुए कहा, "खबरदार! अगर अब हाथ लगाया तो।" मगर ललकार थोड़े-से असर के बाद बेअसर हो गई। बलबीर ने जाकर उसकी कलाई पकड़कर झटक दी, "कंजर के अली, कुछ तो होश कर। अगर लड़का मर गया तो..."

अमली मेरी कुर्सी के पास वाले नीम के वृक्ष से जा लगा। बलबीर ने लड़के के घुटे हुए सिर पर हाथ फेरा। उसके गालों पर पोंछे गए आंसुओं की लकीरें स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। किंतु वह इतना डरा हुआ भी नहीं था। वह बहुत मोटे नयन-नक्श वाला बेहद कद्दावर लड़का था। बेडौल मोटे डंडे-सा। बलबीर ने उसे हाथ-मुंह धोने और कक्षा में जाकर बैठने के लिए कहा। जब वह जाने लगा तो मेरी दृष्टि उसकी मजबूत टांगों और कछुए जैसे पैरों पर पड़ी जो धूल से सने हुए थे। मैंने सोचा, गरीबों के लड़के जरूरत से कुछ अधिक ही आज्ञाकारी होते हैं। नहीं तो इसकी एक ही ठोकर से नशेड़ी बाप की चक्करियां घूम जातीं।

अली अभी भी नीम के पेड़ के साथ हाथ टिकाए हांफ रहा था। लंबी सांसों के बीच जो भी क्षण मिलता, उसमें वह लड़के को गालियां दे रहा था, "... मां का खसम। कहता है, मैंने नंगे पैर स्कूल नहीं जाना।...जैसे यह 'पांच-गिराई' वाले सरदारों का काका हो...सारा मुल्क नंगे पैर चलता-फिरता है...तुझे ही मुसीबत पड़ती है..."

बलबीर ने अमली को प्यार भरी झिड़की दी, "चल, बस भी कर अब। यूं ही चीखे जा रहा है। जो चार सांसें आ रही हैं, उनसे भी जाएगा। बैठ जा, घड़ी भर आराम कर ले। ...ये अपना मित्र है, विलायत से आया है। कोई बात सुना इसे।"

बलबीर क्लास की ओर चला गया। अमली मेरे सामने नीम की टेक लगाकर पैरों के बल बैठ गया।

इस घटना से पहले मैं बड़े आनंद में था। नीम की घनी छांव में रखी पुश्तैनी कुर्सी, जो मेरे लिए विशेष तौर पर घर से मंगवाई गई थी, पर बैठा था। गांव से थोड़ा हटकर इस स्कूल में दो ही अध्यापक थे—मेरा दोस्त बलबीर और दूसरी परमिंदर बहन। मेरे सामने

कोई सौ गज की दूरी पर बठिंडा ब्रांच की नहर चुपचाप बह रही थी। बहुत ही साफ पानी जैसे कुंआरी बर्फ पिघलकर अपना कौल पूरा करने के लिए यार के टीले की ओर बढ़ी चली जा रही हो। फसलें काट ली गई थीं। बेशक खलिहान में पड़ी गेहूं की गांठों का सोने जैसा रूप झेला नहीं जा रहा था, मगर कुबड़ी होकर स्त्रियां सीले क्यों चुग रही थीं?

खैर, मैं ऐसा कुछ भी नहीं सोच रहा था। अशोका होटल की शाम का नशा अभी भी मेरे जेहन में बराबर छाया हुआ था...

दिल्ली की शाम थी। अप्रैल की तपती हुई शाम। धूल और धुएं के बादलों में लिपटी शाम। भीड़ और शोर से शाम की कनपटियां फट रही थीं। लगभग सौ डेलीगेट्स अशोका होटल में प्रविष्ट हुए। धूल, धुआं, भीड़ और कोलाहल, गेट के आगे खड़े छह फुट तुर्रे वाले नौजवान सिक्ख पहरेदारों से आगे नहीं जा सकता था। हम अंदर थे। भारत की समस्त कला दीवारों पर चिपकी हुई थी। हर जगह वातानुकूलित, कोने-कोने में टुनक रही रविशंकर की सितार। हम सब खूबसूरत कुर्सियों पर बैठ गए। इतने लंबे-चौड़े हाल में वन-पीस गलीचा देखकर मैं अवाक रह गया। हाथ निश्चय ही करामाती हुआ करते हैं। हम लोग खाना खाने लगे। एक कोने से दूसरे कोने तक मेजों पर इतने प्रकार के भोजन थे कि बचपन से सुनते आ रहे छत्तीस प्रकार के व्यंजनों की कहावत चरितार्थ हो उठी थी। जितना खाया, उससे दुगना छोड़ा। एक बार तो मेरा मन हुआ कि प्रबंधकों से पूछूं कि यह जूठन कौन खुशकिस्मत खाएगा। मगर यह बात अशोका होटल के स्तर की न होने के कारण मैंने अनकही ही रहने दी। तभी, तबला बजा, सितार ठुनकी और घुंघरू छलके। सामने नृत्य के लिए सजी-धजी नृत्यांगना हाथ जोड़कर प्रणाम कर रही थी। फिर वह अंग्रेजी में बोलने लगी, फिर नाचने लगी। सितार और तबले वाला, दोनों उसके नृत्य को संगीत में ढालने लगे। वह नृत्य की एक भंगिमा का प्रदर्शन करती और फिर उसकी व्याख्या करने लगती ...देखो, अभी मैं माथे की त्यौरियों से, आंखों से, भौंहों से, नाक से, अधरों से, ठोड़ी और गले से क्रोध को दर्शाने वाला नृत्य करने वाली हूं...अब वैराग्य...अब करुणा अब खुशी और प्रेम...

डेलीगेट झूम रहे थे। मेरे दाएं-बाएं बैठे आस्ट्रेलिया और जाम्बिया के डेलीगेट अश-अश कर रहे थे, तस्वीरें ले रहे थे, टेप कर रहे थे और मुझे एक हिन्दुस्तानी होने के नाते शाबाशी दे रहे थे। मुझे जिसको अगर रूपाकार नर्तकी अपनी नृत्य की व्याख्या न करती तो यह भी अहसास नहीं होता कि ऐसी खूबसूरत जगह पर वैराग्य और करुणा जैसे प्रभाव को दर्शाने वाला नृत्य करने को कोई साहस भी कर सकता है। लगभग एक घंटा यही 'परी-नृत्य' होता रहा। फिर सुंदर नर्तकी ने हिन्दुस्तानी अंदाज में हाथ जोड़कर 'थैंक यू' कहा। जब वह पर्दे के पीछे चली गई तो मेरे साथ बैठे डेलीगेट ने कहा," यह तेरा देश है। उस नर्तकी से बोल कि हम उसके आटोग्राफ लेना चाहते हैं।" मैंने प्रबंधक से कहा और उसने मुझे

विश्वास दिलाया कि नर्तकी कपड़े बदलकर आएगी। वह आई तो लगा जैसे परी इन्द्रलोक के अखाड़े से भू-लोक में उतर आई हो। वह आटोग्राफ देती रही और 'थैंक यू' लेती रही। मुस्कुराती रही और आंखों पर गिरते बालों को कानों के पीछे खोंसती रही। उत्तरी कोरिया का डेलीगेट कहने लगा, "मैडम, आपके नृत्य ने तो मंत्रमुग्ध कर दिया हमको।...क्या आप गांवों में जाकर भी नृत्य करती हैं?"

नृत्यांगना की कलम रुक गई। उसने तराशी हुई भौंहों को ऊपर उठाया और छोटी-सी मुस्कान के साथ कहा, "सर, नृत्य सभ्य लोगों के लिए किया जाता है।"

मुझे अब डेलीगेट्स का तो पता नहीं, अशोका होटल वाली नृत्यांगना मेरे दिल-दिमाग पर छाई रही।

कल दिल्ली से पंजाब आने के बाद भी!

और, आज स्कूल में नीम की छांव में शाही कुर्सी पर बैठे हुए भी मेरा ध्यान उधर ही लगा रहा। मेरे सामने नहर का चांदी जैसा पानी किनारों पर सिर पटकते हुए बह रहा था और मुझे लग रहा था जैसे अशोका होटल वाली नृत्यांगना पानी पर नाच रही हो और क्रुद्ध भंगिमा वाले उसके नृत्य से पानी उबल पड़ा हो और उसने अपने घुंघरू इतनी शांत अदा से छनकाए हों कि ख्वाजा-पीर एकदम ठंडे-शीतल हो गए हों।

मुझे वह अप्सरा गांव की अन्य स्त्रियों के संग सीले चुगती हुई भी नजर आती, सीले उसके बालों में उलझ जाते। पसीने से तरबतर हुई उस अप्सरा के गालों पर तांबा तपने लगता। उसकी गर्दन पर घमौरियां निकल आतीं। रंग सांवला हो जाता। लंबे बाल टूटकर बालिश्त भर की लटों में तब्दील हो जाते और वह लाभी चमार की बचनी जैसी हो जाती। बचनी तो फिर भी लंबी, सुडौल और तराशी हुई लगती लेकिन...। और सारा माहौल मुझे विधाता का रूप ही लगता।

उसकी ऐसी हालत देखकर उस पर बहुत दया आई। मैं तुरंत उसे अशोका होटल ले गया।

फिर अशोका होटल...फिर वही नृत्य...फिर सभ्य तबके की ओर से मरहबा।

लेकिन, कमबख्त अमली दाल में कंकड़ की तरह आ धमका।

मैंने अमली की ओर बड़े ध्यान से देखा। उसकी आंखें बेहद मोटी और लाल थीं। वैसे आंखों में जीवंतता के स्थान पर उदासी थी। शरीर पर पहने हुए कपड़े घिसे हुए थे, पर साफ थे। उसने बहुत एहतियात से जेब में से लैंप सिगरेट की डिब्बी निकाली। लेकिन मैंने 'बेंसिज ऐंड हैजिज' की सिगरेट निकाली और लाइटर से सुलगाकर उसको थमा दी। दो-एक कश खींचने के बाद उसने सिगरेट बुझाकर कान में खोंस ली और उसकी जगह लैंप की सिगरेट सुलगा ली और उसे छोटी अंगुली में फंसाकर कश खींचा।

"क्या बात है, मेरी वाली नहीं पी?"

"वह बाऊजी तब पिऊंगा, जब तलब कम होगी। नशा तो लैंप की सिगरेट से ही होता है। एक बार तो साली काटती चली जाती है।"

अमली आदमी दिलचस्प था।

"नाम क्या है तेरा?"

"जी, नाम तो अरजन है, पर सब 'अरजू-अरजू' कहकर बुलाते हैं।"

"काम क्या करता है?"

अमली ने चुटकी मारकर एक भरपूर कश खींचा। बोला, "जी, जवानी के समय नगोजे बजाया करता था। अब नशों ने शरीर को गला छोड़ा है। फेफड़ों में पहले जैसी लचक नहीं रही। श्वास बीच में ही टूट जाता है।"

मेरी दिलचस्पी बढ़ गई। पूछा, "तब कैसा बजाता था?"

उसकी सिगरेट खत्म हो चुकी थी। कान में खोंसी मेरे वाली निकालकर बोला, "तब तो जी एक बार वाह-वाह करा देता था," फिर गहरा निःश्वास लेकर बोला, "पर बाऊजी, समय-समय की बात है। वही अरजन के बाण थे, वही अरजन के हाथ।"

"अब फिर गुजारा कैसे होता है?"

अमली ने आखिरी कश खींचकंर सिगरेट का टोटा दूर फेंक दिया। बोला, "बस, यूं ही धंधा पीटते हैं। घरवाली और बेटी सीले चुग लाती हैं या घासफूस। खुद कभी कोई डंगर-पशु पाल लेते हैं या फिर दिहाड़ी-विहाड़ी कर लेते हैं। पर अब साले भइयों का तांता लगा है। अपने बंदे को तो दिहाड़ी अब मिलती ही नहीं।"

मन हुआ, अमली को 'अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारावाद' का पाठ पढ़ाऊं। मैं इस योग्य था भी। अशोका होटल में नृत्यांगना के घुंघरुओं की झनकार सुनकर आए आदमी के लिए सिद्धांत बघारने के मंत्र में सिद्धहस्त होना कोई कठिन काम नहीं होता। फिर सोचा कि अमली को शाम को भूख लगेगी, लड़का जूता मांगेगा और ऐसी हालत में अमली से 'अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारावाद' हजम नहीं होगा।

सोचते-सोचते मैं इंग्लैड पहुंच गया। हम सभी प्रवासी 'भइये' बन गए और अंग्रेज मजदूर 'अरजन अमली'। अंदर से तो कोई फर्क नहीं था—सिर्फ 'साले भइये' की जगह 'ब्लैक-बास्टर्ड' हो गए थे।

"बाऊजी, कहीं दूर चले गए लगते हो।" पता नहीं कितनी देर प्रतीक्षा करने के पश्चात अमली ने मुझे संबोधित करते हुए जगाया।

"नहीं, मैं तो तेरे बेटे के बारे में सोच रहा था। पढ़ाकर क्या बनाएगा इसे?"

अमली बोला, "बाऊजी, यह कहां अपने वश में है? अगर इसकी किस्मत में है, तो बन जाएगा, कुछ न कुछ। मगर मेरा वश चलता तो दो काम नहीं करने दूंगा इसे। एक तो पुलिस में भर्ती नहीं होने देना और दूसरा इसे गाने-बजाने वालों के साथ

मिलने नहीं देना।"

"क्यों... यही दो पेशे तो इज्जत-सम्मान वाले हैं।...लोगों की सेवा वाले हैं।"

मेरा वाक्य मुश्किल से पूरा हुआ ही था कि अमली की आंखों में लाल डोरे उभर आए, जैसे किसी ने अभिमन्यु का सिर धड़ से अलग कर दिया हो। तभी सीले चुगने वाली स्त्रियों के इतने करीब से एक बहुत तेज चक्रवात उठा और सब कुछ उड़ाता हुआ-सा नहर की ओर दौड़ गया, मगर किनारों पर पहुंचकर खत्म हो गया।

अमली अपनी कड़वाहट थूकने लगा। कड़वाहट जो शायद उसने मेरे लिए संभालकर रखी हुई थी, "बाऊजी! आप शायद हमारी दुनिया में नहीं रहते। राक्षसों में तो कहीं न कहीं थोड़ी-बहुत दया होगी पर पुलिस में नहीं। हमने सुना नहीं, भोगा है। यह मास्टर है न बलबीरा, इसके घरों से ही था एक लड़का—हरभजन। भजो-भजो कहकर बुलाते थे उसे सभी। बहुत खुबसूरत और चौदह जमात पास। इतना नरम, इतना मुलायम कि बात ही न पूछो। मुझे भी चाचा कहकर बुलाता था। काफी दिनों बाद मिलता तो मेरे पैरों को हाथ लगाता। लोग तो यों ही बातें बनाते हैं, वह करके दिखाता था। विवाह करवाया तो कोई बारात नहीं ले गया। अकेला गया और बहू को तीन कपड़ों में स्कूटर पर बिठाकर ले आया। बहू भी खूब शालीन और सुबह उठकर परमात्मा का स्मरण करने वाली सच्ची औरत!"

"फिर..." मैंने उसे टोका। मुझे अमली लोगों के बारे में पता था कि वे जिधर चल पड़े, चलते चले जाते हैं।

"फिर क्या... एक रात गोलियां चलीं। चली तो बाऊजी गोली, पर सरदार काटा गया किरपानों से। दूसरे दिन, पुलिस के जत्थे आ घुसे। एक को काटा गया तो सारा गांव ही बांधकर चौपाल में ला बिठाया। हलवाहों से हल छुड़ा दिए, भट्ठे पर ईंटें निकालने जा रहे मजदूर रास्ते में से ही घेरकर ले आए गए, स्कूल के बच्चे घेर लिए गए, इदू चरवाहे का हुक्का तोड़कर फेंक दिया गया। पशुओं के झुंड ने फसलें उजाड़ दीं। बलबीरा मास्टर का मुंह थप्पड़ों से लाल कर दिया गया। हाहाकार मच गया। डी. एस. पी. लड़की की गाली के बिना बोलता नहीं था। कहता था, "नक्सलियों ने सरदार का खून किया है और खूनियों का सरदार है—भजो। उसे हाजिर करो, नहीं तो बच्चों समेत पीसकर रख दूंगा।...रावण जैसी आंखें थीं डी. एस. पी. की। राइफलों के बट मार-मारकर भजो के बाप का कंधा तोड़ दिया गया और डी. एस. पी. ने स्वयं उसकी सफेद दाढ़ी घास की तरह उखाड़ फेंकी। उसने, बाऊजी, बहुत मिन्नतें कीं कि भई, मैंने बहू से पूछा है, भजो तो कितने दिनों से घर में ही नहीं घुसा। बस, बाऊजी, फिर क्या था—भजो की बीवी को चौपाल में तलब किया गया। उसने गांव की बहू होने के नाते चौपाल में आने से न-नुकर की। तैश में आया डी. एस. पी. गारद लेकर उसके घर में जा घुसा। राक्षस ने उसकी चुन्नी गले में डाल ली। एसी गालियां और गंदा बोला कि बताते हुए भी जीभ को तंदुआ पड़

जाए। फिर बहू के कुर्ते का गला खींचकर फाड़ डाला और उसकी छाती पर राइफल का बट दे मारा। नगाहें-पीर की कसम, बाऊजी, दूध की धार डी. एस. पी के मुंह पर पड़ी और वह राक्षस मां के दूध को थूकने लगा। बड़े सरदार का भाई सफेद रुमाल से डी.एस. पी का मुंह साफ करने लगा...।"

एक क्षण चुप रहा।

मैंने अमली के कंधे पर हाथ रखा तो वह फूटकर रो पड़ा। मुझसे लिपट गया। सिसकते हुए वह मुझसे टूटी-फूटी बातें करता रहा।

"तीन दिन यही आंधी पिलती रही। तीसरे दिन भजो पुलिस मुकाबला बनाकर मार दिया गया...तीन साल हो चले हैं बाऊजी पर लोग अभी भी सहम उठते हैं।"

फिर, वह मुझसे कुछ दूर हटकर बैठ गया। सिगरेट लगाई। फिर एक लंबी चुप्पी पसर गई। चुप्पी, जो शांति जैसी नहीं थी। अब वह रो नहीं रहा था। लेकिन उसकी आंखें ऐसी थीं जैसे सूरज पश्चिम के स्थान पर उसकी आंखों में मर गया हो।

मेरा मन हुआ, अमली की चीरफाड़ करूं, "तू तो अर्जुन था। द्रौपदी के चीर हरण के समय तेरे गांडीव ने अंगडाई क्यों न ली?" साथ ही पूछा, "तेरे गांव में बस एक भजो ही बाज था, बाकी सभी चिड़ियां ही थे, उन्हें बाज क्यों नहीं बनाया..."

लेकिन अमली तो बिल्कुल बुझ गया था। मैंने बात का रुख ही बदल दिया, "मगर तू अपने लड़के को गाना-बजाना क्यों नहीं सिखाना चाहता?"

वह 'एक्सक्यूज मी' कहे बिना ही नल की ओर चला गया। मेरी दृष्टि उसके पीछे पीछे थी। उसने कुल्ला किया, आंखों पर पानी के छींटे मारे, दो-चार चुल्लू पानी पिया और लौट आया। जेब में से डिब्बी निकालकर जर्दे की चुटकी मुँह में रखी। बोला, "साला कलेजा जलने-सा लगा था... क्या पड़ा है गाने-बजाने में, बाऊजी? मैंने सारी उम्र लगा दी और मेरे बाप ने भी, पर बना क्या? वही भूख-नंग। शरीर को नशों की लत और लगा ली। आज ही देख लो, लड़का जूतों के लिए कई दिनों से जिद्द कर रहा था। मुझे तो पता ही नहीं था कि उसके पांव जलते हैं। पर लेकिन कहां से दूं? यहां तो एक वक्त की रोटी की भी चिंता रहती है!"

उसकी आंखें पुनः रक्तिम हो उठीं और उसने खेतों में सोने की तरह चमकती गेहूं की पैलियों की ओर देखकर कहा, "वो देख लो, कितना अन्न पड़ा है। पर, मैं इसे ड्योढ़े पर लेकर खाऊंगा। यही हाल मेरे बाप का था। आपने पाखर सारंगी वाले का नाम सुना होगा। मेरा बाप था वह। पूरे देश में मशहूर! मैं उसकी बराबरी कहां कर सकता हूं? टिकी हुई चांदनी रात में जब वह सारंगी बजाता था, गऊ की कसम, ये चांद आसमान में चलना बंद कर देता था। मालूम नहीं उसको कौन-सा दुख था। झांझरों की भांति लटके सारंगी के गजों के घुंघरू झनकते और सारंगी यूं बजती जैसे कोई रो रहा हो। और वह खुद भी

रोने लगता। फिर कई बार तो जगेड़े की कोठी वाले आम के दरख्तों में मोर बोलने लगते। मैं पूछता, 'बापू, बादल तो छाए नहीं, फिर मोर क्यों बोलते हैं?' बापू कहता, 'मेरी सारंगी पर मोहित हो जाते हैं।' बेबे मां खीझी रहती। कहती—तेरे बाप का तो दिमाग हिल गया है।...बापू का एक गुरुभाई हुआ करता था—रायकोटिया विलैती। बहुत प्यार करता था मुझे। वह बताया करता था—पाखर जब सारंगी बजाता है न, तो मोर पहले तो मस्ती में गाते हैं, फिर सारंगी के दर्द से बैरागी होकर रोने लगते हैं। उनके आंसू धरती पर गिरने से पहले ही मोरनियां अपनी-अपनी चोंचों में उन्हें लपक लेती हैं और...और...वे गर्भवती हो जाती हैं... । इस अंतिम वाक्य पर, बाऊजी, वह थोड़ा-सा अटक जाता था। मेरे ख्याल में वह कुछ संकोच कर जाता था।। चाचा की ऐसी बातें सुनकर मैं बापू को बड़े ध्यान से देखता तो वह मुझे कोई औलिया लगता। मैं बापू को बेहद प्यार करने लगा। जब वह घर में होता मैं टिक्की बनाकर बड़े प्यार से चिलम में तंबाकू डाल उपले की आग रखता। नेचे में तार घूमाता और हुक्का ताजा करता। पांच-सात घूंट खींचकर हुक्का चला भी देता। बेबे बड़बड़ाती रहती। मगर बापू उस ओर अधिक ध्यान नहीं देता था। जब भी वह कोई बात करता तो सारंगी की ही बात करता या हाथों को खड़ताल की तरह बजाता रहता। मेरे पूछने पर बताता—ऐसा करने से हाथों की लचक नहीं मरती। मैं बहुत प्रेम से उसकी अंगुलियों के पटाखें निकालता रहता। बापू के हाथ फूलों जैसे नरम थे।"

अब, अमली बेहद स्थिर था। मैंने पूछा, "तूने सारंगी क्यों नहीं सीखी? एक तेरे तो घर में गंगा थी।"

"दो बातों के कारण।" वह बोला, "एक तो शुरू से ही मेरा दिमाग कुछ ऐसा ही था कि बात मेरे सिर में देर से घुसती थी, दिल पर डंक पहले मारती थी। बहुत कमजोर दिल का था मैं। बहुत जल्दी से रो पड़ता था। सारंगी बीन जैसी चीज है बाऊजी, सीधे दिल में उतर जाती है। वैसे, मैंने शुरुआत सारंगी से ही की थी पर बात नहीं बनी। बापू कहता तो कुछ नहीं था, बस उदास हो जाता था। दूसरी बात यह हुई कि एक बार पूरनमासी की रात को बापू आंगन में सारंगी बजाने लगा। वह इतना मस्त हो गया कि पगड़ी का सिरा खुलकर गले में पड़ गया। वह रुका नहीं। बस, गर्दन को झटककर उसने पगड़ी दूर फेंक दी। पूरा चांद बदली के नीचे जा छिपा। तब से लड़कों ने बोली ही बना ली—

"पाखर जब सारंगी बजाने लगा
बदली नीचे चांद आने लगा..."

बापू और अधिक मस्ती में बजाने लगा। चांद का फिर दीदार हुआ। पर ईश्वर की करनी कि कहीं से सांप निकला और बापू के सामने बल खाकर रेंगने लगा। भय के मारे मैं सुन्न हो गया। मुंह सूख गया मेरा और दस कदम दूर जा खड़ा हुआ। बेबे ने शोर मचाना शुरू कर दिया और अंदर से लाठी निकाल लाई। बापू ने चीखकर बेबे को दीवार से लगा

दिया। फिर सांप खुद ही कहीं चला गया। मैं सारी रात कांपता रहा। एक-दो बार घबराकर अचानक उठा भी। बापू ने उस रात मुझे अपने संग सुलाया। सुबह उठकर बोला—सारंगी तेरे वश का रोग नहीं। नगोजे सीखना तू...।

मेरे अंदर से सांप का भय निकालना चाहता था बापू इसलिए छपार के मेरे में मिट्टी निकालने के लिए मुझे तीन-चार दिन लगातार 'गुग्गे की मढ़ी' पर ले जाता रहा।"

"फिर सांपों का डर निकला कि नहीं?" मैंने पूछा।

"उम्र के साथ-साथ सांपों का डर तो खत्म हो गया पर पुलिस और सरदारों का डर पड़ गया। किसी की बेटी-बहन की शर्म नहीं। बंदे तो जैसे कीड़-मकोड़े हैं। इनके लिए।"

सूरज और ऊंचा हो गया था। नीम की छाया ने जगह बदल ली थी। अमली ने मेरी कुर्सी घसीटकर छाया में कर दी और स्वयं नीम के साथ पीठ टिकाकर बैठ गया।

"तेरे बापू के समय तो तुम्हारा गुजारा अच्छा चलता होगा।"

"तब समय अच्छा था, बाऊजी! मेलों-त्योहारों पर वह अखाड़े लगाते तो अच्छी भीड़ जुट जाती थी। गांव में लोगों को बहुत शौक था। बापू ज्यादातर बाहर ही रहता था। गुजारा हो जाता था। मगर चलती का नाम गाड़ी है, बाऊ जी...बापू की बीमारी के वक्त बेहद तंगी काटी। मैं सारंगी तक बेचने चला गया...।"

"सारंगी?"... किसे?..." मुझे अत्यंत दुख हुआ।

"डाक्टर के पास... जब बापू का सांस उखड़ता था, तब वह लंबी-सी एक सिगरेट पिया करता था। मैं डाक्टर के पांव पड़ गया मगर वह सूअर की हड्डी था पूरा। ठोकर मारकर सारंगी की किल्ली तोड़ दी। बोला—सारंगी लेकर आया है, मैं कोई मिरासी हूं? ...मैं वही पैरों टूटी सारंगी लेकर लौटा तो मंडी से निकलते ही मीटू चमार मिल गया। वह पूरा दिन घास खोदता और शाम को मंडी में बेचने के लिए जाया करता था। मेरी बात सुनकर उसने कमाए हुए बारह आने मुझे पकड़ा दिए। भगवान उसे स्वर्ग दे... पर, बाऊजी, बापू को अधरंग हो गया। बेहद कष्टों में मरा बापू। जिन हाथों से वह धरती-आकाश गुंजा देता था, वह हाथ मुंह पर से मक्खी भी नहीं उड़ा सकते थे।... बहुत कष्ट में मरा मेरा बापू।"

अमली दहाड़ मारकर रो पड़ा। फिर अंगोछे से आंखे पोंछता हुआ नल की ओर बढ़ गया।

मेरी दृष्टि उसका पीछा करती रही। लगा, जैसे अरजन अमली नहीं, पाखर का आधा हिस्सा चला जा रहा हो। दूर खेतों में गेहूं की गांठों का तांबा दहक रहा था। सीले चुगने वाली स्त्रियां यों भटक रही थीं जैसे मरुस्थल में पानी की तलाश में काले साए तड़प रहे हों। तपते सूरज के रथ से फुलझड़ियों की भांति तारे टूट-टूटकर उन सायों को बिना स्पर्श किए इस प्रकार व्याकुल हो रहे थे जैसे घूमते हुए भी वे न घूम रहे हों...जैसे रोशनी में

भी रोशनी न हो। तभी, एक चक्रवात उठा, घूमा-तड़पा और दौड़ पड़ा...पर, कुछ भी बर्बाद किए बिना, नहर के किनारे को छूए बिना लुप्त हो गया। कोई लोहा नहीं खड़का, कोई कत्ल नहीं हुआ। मां के स्तनों से फव्वारा फूटा और डी. एस. पी. के चेहरे को भिगो गया। सरदार को उसके चेहरे के खराब होने का बेहद दुख हुआ। उसने सफेद रुमाल से पोंछकर डी. एस. पी. का चेहरा गंदा होने से बचा लिया। किसने उठाया होगा वह रुमाल? कोई चक्रवात उसको उड़ाकर किसी बाड़ में फंसा देगा। फिर कोई सांप उसके भीतर से दूध की खूशबू चाट लेगा और नशे में भरकर पाखर की सारंगी के सामने नाचने लगेगा। पाखर की सारंगी बजती रहेगी, बजती रहेगी। पूर्णमासी का चांद बदली के नीचे जा छिपेगा। बादलों के घिरे बिना, जगेड़े की कोठी वाले आमों में मोर बोलेंगे, नाचेंगे, रोएंगे, जिनके आंसू मोरनियां चाट जाएंगी। पाखर कैसे यह सब कुछ बिना बोले कह जाता था, जिसको अशोका होटल वाली नृत्यांगना व्याख्या करने के पश्चात् ही समझा सकती थी। क्यों पाखर की सारंगी से एक सिगरेट भी नहीं खरीदी जा सकी? और उधर नर्तकी के आटोग्राफ लेने वालों की बारी भी नहीं आ रही थी। क्यों... हे खुदा! मंजिलों को सर करने वाले काफिले कहां गए...?

अरजन के लौट आने पर मेरी सोच और गुस्सा दोनों मर चुका था।

उसके चेहरे पर आंसुओं की धारें नहीं थी। किंतु आंखें अभी भी लाल थीं। उदासी की शिद्दत, वातावरण की शिद्दत को मात दे रही थी। मैं इसके लिए तैयार नहीं था। दर्द तो हम इंग्लैड में भी बहुत ओढ़ते हैं चुपचाप। दर्द सुनने के लिए किसके पास फुर्सत है? 'रानी' के मशीनी राज में आदमी भी मशीनी हो चुका है। लोहा तो दर्द सुनता नहीं। बस, शरीर सहता रहता है और सहते-सहते दमा, शुगर, ब्लड-प्रेशर और जोड़ों के दर्द के साथ एक दिन थककर हारकर खत्म हो जाता है। बस एक 'हाय'-सी निकलती है—बेचारा। दो गज जमीन भी न मिली कुए-यार में।... कुए-यार में तो हम प्लाट खरीदने आते हैं या वे पैसा जमा करवाने जो पांच-सात सालों में दुगने हो जाते हैं या मां-बाप के मरने पर मोह और रस्मों में जकड़े हुए या विलायत की अनुकंपाओं की डींगे हांककर अपनी बैटरियां चार्ज करवाने आते हैं।

मैंने अमली को सौ रुपए का नोट पकड़ाया।

"इसका क्या लाना है, बाऊजी?"

"कुछ नहीं, अपने बेटे को जूता ले देना। और अगर कुछ बचे तो कुछ और जैसे साबुन-सोडा ले लेना।"

"मेहरबानी। महाराज बहुत दे... पर ये कष्ट क्यों करना था!" उसने नोट को तहाकर खीसे में डाल दिया।

अब, वह कुछ सहज होकर बैठ गया। सिगरेट लगाई। चेहरे पर चमक आ गई। आंखों

में से लाली भी लुप्त हो गई।

"तूने फिर सांरगी तो सीखी नहीं। फिर कौन-सा साज सीखा?..."

अमली अपने आप में लौट आया।

"बापू ने कहा—अरजन, नगोजे बजा। दिल की बात नगोजे से सुना। सरस्वती देवी से संगीत विद्या का वरदान मांग और बेटा, कोटले वाले शफी उस्ताद के पैरों में पगड़ी-रुपया रख दे जाकर। उन दिनों आदमी के तीन साज सारे पंजाब में मशहूर थे—पाखर की सारंगी, शफी के नगोजे और नगीने का तूंबा। बापू खुद गया मुझे गुरुजी के पास लेकर। उस्ताद ने बापू से सिर्फ बातें पूछीं—पाखर, लड़के को शौक भी है न?'

'हां, बहुत।'

'और लड़का मेहनत से डरकर मां को तो नहीं छोड़ देगा?'

'नहीं, शफी!'

'अच्छा फिर, अब तब मिलेंगे जब अरजन के नगोजों से राख की आंच में से लपटें उठने लगेंगी।'

"... बस, बाऊजी, मैंने उस्ताद की मन लगाकर खूब सेवा की। वह बहुत सवेरे, तड़के चार बजे वाली डाक गाड़ी की आवाज पर उठ जाया करता था और साथ ही मैं भी दातुन-कुल्ला करने के बाद नगोजे की जोड़ी के सम्मुख धूप-बत्ती करते थे पहले। चाय पीकर दो घंटे उजाला होने तक रियाज करते थे। तीन घंटे शाम को। अगर अखाड़ा नहीं लगाना होता था तो यह रोजाना की तपस्या थी।"

"कितना समय लगा पूरा माहिर होने में?"

"तीन साल में उस्ताद ने मुझे सिद्धि दे दी। वैसे तो बाऊजी, किसी भी साज के लिए एक उम्र भी थोड़ी है।...इसी समय बापू मर गया था...सारंगी बेचने की बात जब मैंने उस्ताद को बताई तो वह उदास हो उठा और खफा भी। बोला—पाखर तभी जल्दी मर गया।

'खैर, बापू ती चला गया। मरने से पहले उसकी आवाज बंद हो गई थी। उसने बस, बहुत मुश्किल से मेरे कंधे पर हाथ रखा और फिर हाथ की अंगुलियां होंठों से जोड़ लीं। मैं इसे बापू की अंतिम इच्छा समझकर और भी अधिक मेहनत करने लगा। फिर एक दिन, मुझे लगा जैसे मेरे फेफड़े हैं ही नहीं, उनकी जगह नगोजे ही हैं। मैंने उस्ताद को बताया तो उसने मुझे बांहों में भर लिया। बोला—तूने सरस्वती माता सिद्ध कर ली है। इस बार फलोंड के मेले में नगीने के साथ मैं नहीं, तू जोड़ी बजाएगा। फलोंड के मेले में अपार भीड़ थी। पहले तो मैं थोड़ा-सा भयभीत हुआ। लेकिन फिर मन कड़ाक़र जोड़ी बजाने लगा। नगीना मेरे ऊपर वाले हिस्से में था। उससे ऊपर सामने की ओर गाने और उसका अर्थ करने वाला उसका मामा था—माहोराणे वाला शौंकी। सबसे नीचे की ओर मैं। हमने बारी बांध ली। मैंने शौंकी से कह दिया था कि 'पूरन भगत' पहले शुरू न करे, मुझे कहीं रोना

न आ जाए। शौंकी मान गया। उसने पहले 'दुल्ला भट्टी' शुरू किया। बाऊजी, जब भुल्लर दुल्ले को ताने मारने लगी तो मैं मस्त हो उठा। जब शौंकी ने दोनों हाथों से दामन फैलाकर कहा—वे लक्ख मरदां नूं मामले, दुलिया खैर खुदा तो मांग...'[1] मैंने घुटनों के बल बैठकर होंठों से लगे नगोजे आसमान की ओर उठा दिए तो शफी उस्ताद बोला उठा—अरे, जबाब नहीं अरजन, तुझे पैदा करने वाली का!...

"बाऊजी, मैं मस्ती में आ गया। दुल्ले की घोड़ी सामने हिनहिनाने लगी। बस, पूरे सांदल-बार[2] में मेरे नगोजे गूंज रहे थे।

"फिर शौंकी ने 'पूरन भगत' छेड़ दिया। मैं चढ़ता ही जा रहा था। शौंकी ने हवा में उड़ते अपने हाथ छाती पर टिकाकर टेर लगाई—

'उदों जाण लीं बच्चे नूं आ गया,
जदों दुद्धियां च पै जू शीर...'[3]

"मुझे लगा जैसे मेरे नगोजे में से दूध की पतली धारें बहने लगी हैं। लोग रोने लगे।

"शौंकी हुक्के का कश खींचने के लिए एक ओर हो गया था। नगीने के तूंबे ने उड़ते पंछी रोककर खड़े कर लिए। मैंने नगोजे तूंबे के तारों से मिला दिए। शौंकी मामा बोल उठा—वाह, क्या बात है नगीने बेटे, अरजन तेरी कोई बराबरी नहीं। तभी शौंकी ने एकाएक सारा दर्द उलीच दिया—

'दूरों आऊंदा वेखिया, पीर दुलदुल दा असवार,
उहने भज्ज के वांगा फड़ लीयां, नाले रौंदी जारो जार...'[4]

"मैंने अपनी रुलाई को बमुश्किल रोका। वह रंगा बंधा कि कुछ न पूछो। लगा, बूढ़ी मां ने नहीं, मेरे नगोजों ने दुलदुल की रास पकड़ ली हो। शौंकी ने अखाड़ा खत्म कर दिया। मुझे बांहों में कसकर बोला—बेटे, तूने पाखर को अमर बना डाला। शफी उस्ताद के पैरों में गिर पड़ा मैं। सिर उठाया तो क्या देखता हूं—उस्ताद रो रहा था।..."

अमली चुप हो गया। मुझे कुछ होश ही नहीं रहा था कि अखाड़ा तो उठ चुका था। मैं तो फलोंड के मेले का एक दर्शक और श्रोता था। कोई स्टेज नहीं, कोई वाद्ययंत्रों का

---

1. प्रेम-प्रसंगों, पावन कथाओं और वीरों की लोककथाओं पर आधारित पंजाब में कुछ लोकप्रिय किस्से हुए हैं। इन किस्सों को भाट मेले-अखाड़ों में गा-गाकर सुनाया करते थे। 'दुल्ला भट्टी' भी उनमें एक प्रसिद्ध किस्सा है। ये पंक्तियां इसी किस्से की हैं जिसका अर्थ है 'अरे मर्दों को तो लाख काम हैं, दुल्ले! तू खुदा से खैर मांग...'
2. रावी और चिनाब नदियों के मध्य का जंगली इलाका।
3. 'पूरन भरत' भी पंजाब का एक प्रसिद्ध किस्सा है। इन पक्तियों का अर्थ है—'जब स्तनों में दूध आ जाए तो समझ लेना कि बच्चे का आगमन हो गया है।'
4. दूर से आते दुलदुल घोड़े पर सवार पीर को जब उसने देखा तो उसने घोड़े की लगाम पकड़ ली और फूट-फूटकर रोने लगी।

बोझ नहीं, एअर-कंडीशंड हाल नहीं, कोई टिकट नहीं, कोई प्रबंधक नहीं, वन पीस कार्पेट के स्थान पर मिट्टी और धूल...भंगिमाओं—मुद्राओं की व्याख्या नहीं...शौंकी की आवाज हवा में गूंज रही थी, नगीने का तूंबा बज रहा था, अरजन के नगोजों ने आकाश में उड़ते पंछियों की कतारें रोक ली थीं।

मैं कल्पना-लोक से लौट आया था। भूख और अभावों का मारा अरजन नीम के पेड़ के साथ पीठ टिकाए मेरे समीप बैठा था।

"फिर तो तेरा गुजारा अच्छा चलने लगा होगा?"

"बस, कुछ नहीं, बाऊजी! फिर लाउड-स्पीकर चल पड़े। मर्दों-औरतों की पार्टियां चल पड़ीं, कानों को खा जाने वाले लुच्चे गीत। नचनियों की तरह नाचती औरतें। मुझे तो बहुत शर्म आती थी। पर लोगों की भीड़ तो आपको पता ही है। सारी उधर ही मुड़ गई।"

अमली उदास हो उठा।

"शफी उस्ताद कहां है अब?"

"भूख से मरता पकिस्तान चला गया था। वहां किसी मस्जिद में दिन काट रहा है।"

"नगीना और शौंकी?"

"नगीना, बाऊजी, भट्ठे पर ईंटें निकालता है और शौंकी गधी पर सब्जियां लादकर उन्हें गांव-गांव बेचता है।"

बलबीर और परमिंदर छुट्टी होने के बाद मेरे पास आ गए थे। उनके संग अमली का बेटा भी था। उसे मेरी कुर्सी को उठाकर बलबीर के घर ले जाना था। जब लड़का कुर्सी उठाने लगा तो अमली ने भी हाथ लगाया। उसकी सांस फूल गई। सांसों को संयत कर वह बोला, "पता नहीं किस चीज की बनी हुई है! लोहे जैसी भारी लगती है साली!... आपको शायद मालूम नहीं होगा कि यह कुर्सी इस बलबीर सिंह के रिसालदार[1] दादा को उसके अंग्रेज अफसर ने दी थी। जब रिसालदार पेंशन पर गांव लौटा तो चौपाल में इसी कुर्सी पर बैठा करता था और मेरे बुजुर्ग इसे उठाकर लाया करते थे। बलबीर के बापू के वक्त मैं ही इसे झाड़-पोंछ कर रखा करता था। लोग तो चले गए बाऊजी, पर कुर्सी इतनी मजबूत है कि मजाल है कि इसकी कोई चूल भी हिली हो। बस, जरूरत पड़ने पर सीट को नई बेंत से बुनवा लेते है।..."

अब, कुर्सी अमली के लड़के के सिर पर थी जो उपलों जैसे नंगे पैरों से आग-सी तपती मिट्टी को रौंदता हुआ हमारे आगे-आगे चला जा रहा था।

---

1. भारतीय सेना में एक छोटे रैंक का अफसर।

रोटी

गुरदेव सिंह रूपाणा

पांच साल बाद बख्तियारे ने कसम तोड़कर पुनः पीना आरंभ कर दिया। पांच साल उसने शराब को हाथ नहीं लगाया। दोस्तों ने ताने मारे। यारी का वास्ता दिया। लेकिन, उसने शराब मुंह न लगाई। किसी मेहमान-रिश्तेदार को लाकर नहीं दी। इस कारण, कुछ तो उससे नाराज भी हो गए, कुछ ने यहां तक कहा कि बख्तियारा कंजूस हो गया है।

लेकिन, अब रात-दिन आंख नहीं खोलता। पीता रहता है, पिलाता रहता है। सब हैरान हैं, इसे हो क्या गया? कोई दुख नहीं, कोई सदमा नहीं। बेटियां-बेटे उसके अच्छे स्वभाव के थे। उसकी आज्ञा मानने वाले। अच्छी फसल होती आ रही थी। बड़े बेटे मक्खन का विवाह कर दिया। किसी किस्म की तंगी नहीं। चार पैसे भी जुड़ गए थे और मक्खन ट्रैक्टर खरीदने के लिए विचार-विमर्श करता घूमता था कि अचानक बख्तियारे ने पीना शुरू कर दिया।

जिस दिन से कसम तोड़ी, घर में नहीं घुसा। खेत वाले कोठे में ही डेरा डाल लिया। कहारों का दूना सेवा-टहल के लिए रख लिया। चार-पांच खाऊ किस्म के यार हमेशा उसके पास बैठे रहते। उसके पीने के ढंग की तारीफें कर-कर उसे आसमान पर चढ़ाते रहते। उसकी 'हां' में 'हां' मिलाते रहते। कमरे बराबर मुर्गियों के लिए दड़बा बना लिया। दूने ने मुर्गे लाकर छोड़ दिए। जितने रोज खाए जाते, दूने को आदेश था, उतने ही और लाकर छोड़ दे। घरवाले कहते थे, बख्तियारे ने घर को बरबादी की राह पर मोड़ दिया है।

घर वालों को चिंता करते उसने सुना तो हाथ और भी खुला कर दिया। भांति-भांति के मंहगे कपड़े सिलवा लिए। कोट, पैंट, अचकनें जिन्हें उसके बाप-दादा ने भी नहीं देखा था, जिन्हें पहनना भी बख्तियारे को नहीं आता था। नए-नए फैशन बताने वाले आ जुटे। पटियाला शाही, टो वाली पगड़ियां बांधना सिखाने वाले आ गए। बख्तियारे को तरह-तरह के परामर्श दिए जाने लगे। जिनका परिणाम यह हुआ कि बख्तियारे ने काले-भूरे बूट खरीद लिए। गुरगाबियां ले लीं। कई प्रकार की तिल्ले वाली जूतियां खरीद लीं—कसूरी खुस्से, मुक्तसरी घोनियां, फाजिल्का की झालर वाली।

किसी ने खुशबूदार तेल का जिक्र कर दिया। फिर क्या था, जो भी शीशी दुकान पर

देखी, खरीद ली। क्रीम, पाउडर, शैंपू। बख्तियारा पूरे नवाबी ठाठ से रहने लगा। उसका रुमाल ठेके पर जाता और बोतलें चली आतीं। कुछ पी ली जातीं, कुछ को लोग कमर में खोंसकर ले जाते। यही हाल उसके दूसरे सामान का था। जिन लोगों ने नहाने वाला साबुन कभी सूंघकर भी नहीं देखा था, वे उसे तीन-तीन बार मलते। मूंछों को खुशबूदार तेल से चपड़ते। बख्तियारे के कपड़े पहनकर ले जाते।

इन्हीं खाऊ यारों ने अफवाह फैला दी कि मक्खन बख्तियारे को जिंदा नहीं छोड़ेगा। अपने दोस्तों के संग मक्खन को सलाह करते हुए उन्होंने अपने कानों से सुना है।

हमदर्द दोस्तों ने समझाने की कोशिश की। रिश्तेदार आए। बड़ी बहन ने मिन्नतें कीं। साले ने पैरों पर पगड़ी रखी। लेकिन, बख्तियारे ने किसी की नहीं मानी। हर एक को एक ही उत्तर देता रहा, "मैंने भी बहुत समझाया था। मेरे कहने पर तो कोई नहीं समझा।"

"कौन नहीं समझा?" उससे पूछा जाता।

"अपने आप आएगा। जिसे समझ आ गई, वह खुद आएगा, खुद।" वह कहता और बात करने वाले को और अधिक बोलने से रोकने के लिए ऊंची आवाज में कहता, "चो...प!"

महीने भर के अंदर-अंदर ट्रैक्टर के लिए रखी हुई रकम वह पी गया।

फिर उसने घोषणा की कि वह अपनी पक्की नहर वाली जमीन बेचने को तैयार है। कोई ग्राहक हो तो उसके अड्डे पर आ जाए।

यह सुनकर तो घर वालों को चिंता ही लग गई। मक्खन रोटी छोड़कर बैठ गया। उसे समझ नहीं आ रहा था, बापू को क्या हो गया है? पहले भी तो पीता रहा है पर जमीन पर कभी इस प्रकार दांत नहीं गड़ाए थे। और न ही, इस तरह नवाबों वाले तौर-तरीके अपनाए थे। क्या किया जाए? जब भी वह उसे मिलने के लिए गया था, दूर से देखकर ही बख्तियारे ने चिल्लाना शुरू कर दिया था, "आ गया मक्खन, मुझे मारने आ गया...!" मक्खन बिना बात किए ही लौट आता।

और फिर, अगले दिन एक अन्य खबर सुनने में आई तो सारा परिवार ही जैसे जमीन पर आ गिरा। बख्तियारे ने रुलिए चौकीदार की विधवा रख ली थी। घर में जवान बेटी थी। नई-नई बहू आई थी। यह क्या हो गया इसको? मक्खन ने सोचा, अब इस घर की खैर नहीं। कुछ बेचकर पी जाएगा और कुछ चमारिन के नाम करवा देगा और वे रह जाएंगे लोगों के खेतों में मजदूरी करने को। शर्म के मारे उनका घर से निकलना कठिन हो गया।

'अपने आप आएगा।' मक्खन ने बापू की बात याद की। 'कौन आएगा? और अब चमारिन ले आया है। हो न हो, बेबे (मां) के साथ ही कोई झगड़ा हो।' उसने सोचा।

मक्खन और बख्तियारा इकट्ठा ही खेत में काम किया करते थे। भाइयों जैसे लगते थे और दोस्तों की तरह रहते थे।

काम बंद करने से पहले बख्तियारे ने चुप्पी साध ली थी। चुपचाप वह खोई हुई गाय की तरह घूमता रहता। एक दिन वह चादर तानकर लेट गया। सारा दिन खेत पर नहीं गया और अगले दिन पता चला, उसने पीना आरंभ कर दिया है। मक्खन ने याद किया।

यह उन दिनों की बात है जब मक्खन की बीवी गौने में दूसरी बार लौटी थी। पूरा परिवार खुश था। एक-दूसरे को बहुत प्यार-सत्कार से पेश आते। छोटे बच्चे भाभी की खुशी में सब काम हंसते-हंसते कर लेते। स्कूल जाते समय रूठते नहीं। एक-दूसरे से झगड़ा नहीं करते। बख्तियारा बड़े ध्यान से आती-जाती बहू को देखता रहता। उन दिनों वह मक्खन की मां को नए साफ कपड़े पहनने के लिए कहते सुना गया था, "तू भी कभी ढंग की कुर्ता-चुन्नी ले लिया कर।" सवेरे-सवेरे सभी के लिए दातुनें लाकर देता और मक्खन की मां से भी दातुन करने के लिए कहता।

उन दिनों ही एक और परिवर्तन घर में हुआ था। खेत से लौटकर बख्तियार बैठक में बैठ जाता। उसके नहाने के लिए पानी पहुंच जाता। धुले हुए कपड़े दिए जाते। नहाकर, कपड़े बदलकर वह लेटे-लेटे ही रोटी की प्रतीक्षा करता। सबको अपनी-अपनी जगह पर रोटी परोसकर मक्खन की मां बख्तियार को रोटी खिलाने जाया करती थी। वह खाता रहता और वह समीप बैठकर छोटी-मोटी बातें करती रहती। गांव के समाचार बताती रहती। घर के बारे में विचार-विमर्श भी इसी वक्त होता।

एक शाम, मक्खन की मां रोटी खिलाने नहीं गई। उसने मक्खन से छोटे बेटे बीरे को कहा, "ले ओ बीरे, अपने बापू को रोटी दे आ।"

दूध गरम हुआ तो लोटा भरकर मक्खन की मां ने बीरे के हाथ भेज दिया।

"तेरी बेबे आज ठीक नहीं?" बख्तियारे ने पूछा।

"ठीक है।"

वह चुप रहा।

मक्खन को याद था, पहले दूध भी उसकी बेबे ही देने जाया करती थी। और काफी समय लगाकर लौटा करती थी। वहां से आकर बिना किसी के पूछने पर कहा करती थी, "मैंने सोचा, लोटा लेकर ही जाऊं, नहीं तो रात को कुत्ते-बिल्ली मुंह मारते फिरेंगे, दूध से सने लोटे में।"

उसके बाद, हर रोज कभी कोई तो कभी कोई बख्तियारे के लिए रोटी और दूध लेकर जाता। उनकी बेबे स्वयं न जाती।

एक रात, बख्तियारे ने दूध पीने से इंकार कर दिया। मक्खन की मां ने स्वयं जाकर दूध पीने के लिए नहीं मनाया। दूसरी रात भी...और फिर हर रोज दूध वापस कर देता और चुप्पी साधे आता-जाता खोई हुई गाय की तरह।

इन्हीं दिनों मक्खन ने मां और बापू को दो-तीन बार खुसर-पुसर करते भी सुना। उसे

देखकर वे चुप हो जाते जैसे कोई भेद वाली बात पर बहस कर रहे हों। जहां बख्तियारे अकेला होता, वह वहां जाने से कतराती।

दो हफ्ते तक चुप्पी साधने के बाद बख्तियारे ने कसम तोड़कर पीना आरंभ कर दिया। दिन-रात पीता रहता। पिलाता रहता। कहारों का दूना सेवा-टहल के लिए रख लिया। वह उसके सारे काम करता, रोटी बनाता, कपड़े धोता और दारू लाकर देता। आवश्यकता पड़ने पर गाकर भी सुनाता।

अब वह रुलिए चौकीदार की विधवा को ले आया तो मक्खन को घर की बर्बादी दिखने लगी। ट्रैक्टर के लिए जोड़ी गई रकम खत्म हो गई तो जमीन बेचने पर उतर आया...।

"मां, मेरी उम्र कितनी है?" मक्खन ने अकस्मात पूछा।

"आती भादो को बीस का हो जाएगा।"

"बीस और बीस चालीस।" मक्खन ने मां को सुनाते हुए सोचा, "चालीस या एक-आध साल अधिक होगा।"

"बेबे, तुझे ब्याहकर आई को कितने साल हो गए?" मक्खन ने दूसरा प्रश्न किया।

"मैं कोई बही खोले बैठी हूं! जाकर पूछ ले उससे जो लेकर आया था।" मां ने चिढ़कर कहा।

"बही भी अब खोलनी पड़ेगी...एक और लाए बैठा है वो।"

"एक ही जगह दस ले आए, मेरी जूती से...।" गुस्से में वह कह तो गई, पर साथ ही उसकी रुलाई भी फूट पड़ी।

"तेरी जूती से क्यों? मैं पूछता हूं, तेरी जूती से क्यों?" मक्खन ने खीझकर पूछा।

"मैंने कहा था उसे लाने के लिए..." रुककर वह बोली, "मेरा दिल जानता है या रब कि कितना मेरा कलेजा जलाया है इस बंदे ने। कहीं बाहर मुंह दिखाने लायक नहीं छोड़ा।"

मक्खन कुछ कहते-कहते चुप हो गया।

रात को मक्खन ने पत्नी से बात की। उसी से मालूम हुआ कि बेबे अभी कपड़ों पर है, इसलिए डरती है। बापू जी से तो बेबे जी को समझाने की अधिक जरूरत है। मगर वह खुद अभी कल आई है, सास को कैसे समझाए? मां-बेटे का रिश्ता ही ऐसा है, बेटा बेशर्म कैसे बने?...

सिर से पानी गुजरता देखकर, चौथे दिन मक्खन ने कुछ रिश्तेदार एकत्र कर लिए। कुछ बापू के नजदीकी, कुछ मां के।

अब समस्या थी कि बख्तियारे को सबके सामने पेश कैसे किया जाए? हर वक्त वह नशे में धुत पड़ा रहता है। उसके साथ अक्ल की बात कैसे की जा सकती है? मक्खन ने इसका हल सोच लिया।

आधी रात को मक्खन का मामा, फूफा और छोटा भाई मक्खन के साथ खेत पर पहुंचे। बख्तियारे बेसुध पड़ा था। मक्खन ने चौकीदारिन की गर्दन पर दो हाथ रखे तो वह वहीं ढेर हो गई। दूना मौके की नजाकत समझ चुप होकर पड़ा रहा। चारों ने बख्तियारे की चारपाई को उठाया और घर के दालान में लाकर रख दिया।

अच्छी धूप निकल आई थी, जब बख्तियारे की आंख खुली। आसपास देखकर उसने रजाई दूर फेंक दी और उछलकर जमीन पर खड़ा हो गया। एकत्र हुए लोगों को देखकर वह डर गया, 'आज नहीं छोड़ेंगे।' वह कांप रहा था।

"बैठ जा, बेटा!" मक्खन की नानी ने उसके सिर पर प्यार भरा हाथ फेरते हुए कहा। फिर बाहर आवाज लगाई, "लाओ री लड़कियो, चाय, बख्तियार सिंह के लिए।"

चाय और पानी के गिलास आ गए। बख्तियारे ने पीने से इंकार कर दिया। 'ढंग से खत्म करना चाहते हैं।' उसने मन ही मन सोचा।

"ले, मेरे कहने पर पी ले।" नानी ने कहा, "मुझे तो तू बेटों से भी प्यारा है। बेटी देकर बेटा बनाया है तुझे।" नानी का गला भर आया।

"बनाया होगा, वह बैठी है तेरी बेटी, ले जा।" बख्तियारे ने दिल कड़ा करते हुए कहा।

मक्खन ने नानी की ओर देखकर उसे और बात करने से रोक दिया।

"ला रे, मुझे पकड़ा दोनों गिलास।" मक्खन ने दोनों गिलास पकड़ लिए। आधा पानी और आधी चाय पीकर बोला, "ले बापू, अब तो पी ले। अगर इसमें कुछ मिलाया होगा तो दोनों ही मरेंगे।" मक्खन की आवाज भारी हो उठी, "अब जीकर करना भी क्या है?"

"मरें तुम्हारे दुश्मन! कैसी पागलों जैसी बातें मुंह से निकालता है।" नानी ने कहा। फिर बख्तियारे को कहने लगी, "ले बेटा, पी ले। अरे पागल, तेरा अपना लहू तेरी जान लेगा?... तेरी चिंता में तो लड़के ने कितने दिन से रोटी नहीं खाई।"

सभी चुप हो गए। बख्तियार बैठ गया। पहले पानी पिया और फिर चाय पीने लगा। मक्खन ने आसपास देखा, उसे बेबे दिखाई न दी।

"अब यहां किस लिए बैठी है, बेबे? अंदर नहीं आना?" मक्खन ने इस तरह कहा जैसे सारा मामला उसकी मां के आने पर ही सुलझना हो।

"ले, आ गई।" मक्खन की मां ने दरवाजे में से गर्दन अंदर करते हुए कहा, "बता, क्या करना है मेरा? क्यों शोर मचा रहा है?" मक्खन की मां ने यूं कहा जैसे उसे मालूम ही न हो कि झगड़ा क्या है।

"तुझे नहीं पता, क्या करना है तेरा।" मक्खन ने कहा, "तू ही तो सारे बखेड़े की जड़ है। कहती है, क्या करना है मेरा।" मक्खन ने प्रारंभ से ही बापू का पक्ष लेना शुरू कर दिया, जैसे उसे बता रहा हो जो कुछ भी उसने इस हालत में किया है, ठीक ही किया

है। ट्रैक्टर की रकम से उसको जमीन की अधिक चिंता थी।

"चुप होकर बैठा रह," मां बोली, "मैंने शुरू किया है बखेड़ा?"

"इनको चुप होकर बैठने के लिए इकट्ठा किया है?" मक्खन ने सभी की ओर संकेत करते हुए कहा।

"अच्छा, मचा ले शोर। न कर चुप, कोठे पर चढ़कर बजा ढोल।"

"ढोल बजाने में कोई कसर रह गई है जो अभी और बजाना चाहती है!" मक्खन बोल उठा।

"तू बापू से बात कर, मक्खन! इस बेचारी पर क्यों उछल रहा है?" मक्खन के मामा ने बहन की बेइज्जती होते देखकर कहा।

"दोनों से करनी पड़ेगी और बेबे से तो ज्यादा ही।" मक्खन ने दृढ़ता से कहा।

"कर बेटा, कर।" नानी ने ताकीद की, "तू अब ईश्वर की कृपा से सियाना हो गया है। दोनों को समझाने लायक।" फिर रुककर बोली, "ये तो ठंडे दूध को फूंकें मार-मारकर पीते हैं। ऐसा गुणवान तुम्हारा बेटा निकला है जिसने पैदा होते ही सारे परिवार की जिम्मेदारी अपने सिर उठा ली और तुम्हें खाली छोड़ दिया—लड़ने के वास्ते।... मां-बाप औलाद को समझाते तो देखे थे, यहां तो उल्टा ही रवैया चल पड़ा।"

एक बार फिर चुप्पी फैल गई।

"क्या झगड़ा है तुम्हारा?" मक्खन के फूफा ने चुप्पी को तोड़ा।

"क्या होना था, भाई? यूं ही फालतू में रोटी हजम नहीं होती।" मक्खन की बेबे बोली।

"बेबे, बात सुन सियानी बनकर।" मक्खन को सूझ नहीं रहा था कि बड़ी उम्र के लोगों के बीच कैसे बात करे। "तू हम लोगों को गुलाम बने देखना चाहती है या सरदारी करते?"

"यह भी पूछने वाली बात है? मां डायन भी होगी तो औलाद के लिए तो नहीं," बेबे ने कहा।

"फिर तू बापू को रोटी-पानी क्यों नहीं पकड़ाती? क्यों बहते पानी में रुकावट डालती है?" मक्खन जिस बात को बहुत मुश्किल सोच रहा था, वह बड़ी सहजता से कह गया।

"मैंने डाली है, बहते पानी में रुकावट?" मक्खन की मां ने हठ करने की तरह कहा।

"तूने ही सारा काम खराब किया है।" मक्खन ने गर्म होकर कहा, " ले ओ बीरा, बापू को रोटी दे आ... ले ओ छिंदे, बापू को दूध दे आ...।" मक्खन ने मां की नकल उतारी और अपनी बात का प्रभाव जानने के लिए सबके मुंह की ओर देखा।

"तेरे से नहीं पकड़ाई जाती रोटी अब। कहती है, बहू आ गई है... मैं पूछता हूं, बहू के आने से यह (बख्तियार) एक दिन में ही सत्तर-बहत्तर का हो गया? छिपती फिरती है जैसे कंजक हो।" मक्खन गरजा।

मक्खन की मां के आंसू बह निकले। सभी चुप हो गए।

नानी बोली, "बेटी, लड़का ठीक कहता है। रस्सा तुड़ाकर जिधर चाहे दौड़ते फिरना, कोई भी टके सेर नहीं पूछेगा। आदमी के सिर पर ही औरत राज किया करती है...और आदमी तूने कर दिया दूर...ऐसे कैसे बात बनेगी?"

मक्खन की मां उठकर बाहर जाने लगी तो मक्खन ने रोक लिया, "अब बात को किसी नतीजे पर पहुंचाकर बाहर जाना। तुझे कुछ समझ में आया कि नहीं?...तुझे कोई एतराज है तो अभी बता दे।" मक्खन ने नरम होकर कहा।

शर्मसार हुई वह नजरें झुकाकर बैठी रही।

"इसे क्या ऐतराज होगा।" नानी ने बेटी की ओर से विश्वास दिलाया," इसका डर मैं दूर कर दूंगी। इसका डर भी सच्चा है पर भाई बीबी, अपना घर संभालो, जग-हंसाई न करवाओ... बख्तियार सिंह की उम्र के लोग तो, किसी ने कहा है, अभी कुंआरे घूमते हैं।"

"मगर यह बोलती क्यों नहीं?" मक्खन ने गुस्सा दबाकर कहा।

"बोलूं क्यों?... तू तो बेशर्म हो गया है। मुझसे तो तेरी तरह जीभ नहीं हिलाई जाती।" मक्खन की बेबे ने असहमत होते हुए भी सहमति प्रकट कर दी, "मैं जिनका भला सोचती थी, वही आंखें दिखाते हैं।"

एक बार फिर सब चुप हो गए। शायद, यह सोचने के लिए कि मक्खन की मां कैसा भला सोचती थी?

मक्खन को मां पर तरस आ गया। फिर वह बापू पर बरस उठा, "अच्छा साहिब पिताजी!" मक्खन ने तीखा नश्तर चुभाया, "मेरा यार बेटा, मेरा भाइयों जैसा बेटा, कहते हुए तुम्हारा मुंह नहीं थकता था। मैं पूछता हूं, यार बेटे से एक बार भी बात नहीं की गई, इस बारे में। मोल की औरत लाकर लोगों को दूल्हा बन-बनकर दिखाता है। अपने टब्बर से रोटी न ली गई।" मक्खन उबलती कालगेट की तरह बुलबुले छोड़ने लगा, "अगर बहुत ही तंग हो तो दूसरा विवाह कर देते हैं तुम्हारा...। सीधी तरह घर लाकर रख। जिससे इसको (मां को) अक्ल आए।"

बख्तियार रजाई लेकर लेट गया।

चुप्पी बहुत सघन हो उठी। मक्खन की नानी ने मक्खन को नरम होने के लिए संकेत किया। तनाव कम करने के लिए मक्खन ने छोटे भाई से कहा, "जा बीरा, खेत से साहब के कोट उठा ला। संदूक में संभाल कर रख दे। बेबे ने रोटी न पकड़ाई तो फिर काम आएंगे।"

सभी हंस पड़े। नानी भी हंस पड़ी। बख्तियार की रजाई हिली। रसोई में से मक्खन की पत्नी की हंसी सुनाई दी।

"कैसी बातें बनानी आती हैं बेशर्म को!" मक्खन की मां का मुंह रक्तिम हो उठा, "एकदम ही सियाना बनने लगा है।" वह मुस्कुरा उठी।

बख्तियार रजाई लेकर पड़ा रहा।

"ले पकड़!" मक्खन की मां बाहर से रोटी वाली थाली लाकर बोली, "ले खा ले, अगर मेरे हाथों ज्यादा ही मीठी लगती है तो मैं–खिला दिया करूंगी।"

बख्तियार उठकर बैठ गया। थाली पकड़कर तिपाई पर रख दी।

"बुरकी तो आप डाल लेगा या बेबे ही डाले?..." मक्खन ने व्यंग्य किया।

सभी ने हंसते-हंसते बख्तियार की ओर देखा तो चुप हो गए।

वह रो रहा था!

औरतजात

एस. साकी

चंदनदास की घरवाली भाग गई। बहुत बेइज्जती हुई बेचारे की। मुहल्ले में मुंह दिखाने लायक नहीं रहा। तीन दिन गुजर गए, घर से बाहर ही नहीं निकला। ठीक भी था, इतनी बेइज्जती के बाद कैसे होता लोगों के सामने! लेकिन, सारी उम्र घर के अंदर तो बैठा नहीं जा सकता था। काम-धंधे वाला आदमी। प्राइवेट नौकरी। जानता था, अगर दो दिन और बीत गए तो सेठ दहलीज पर नहीं चढ़ने देंगे। घर से निकलकर सड़क पर चलता तो यूं महसूस करता जैसे सब उसे ही ताड़ रहे हों। चोर निगाहों से किसी के चेहरे पर बिखरी हंसी देखता तो लगता जैसे उसने जहर बुझी बरछी सीने में घोंप दी हो।

मगर फिर आहिस्ता-आहिस्ता सब भूल गए कि चंदनदास की घरवाली किसी पराए मर्द के साथ भाग गई थी। किसी को भी याद न रहा। लेकिन, मैंने यूं ही गुस्सा आने पर कहा था—साली वह औरत कैसी जो बेचारे चंदनदास जैसे सीधे आदमी को अकेला छोड़कर किसी और के साथ मुंह काला कर गई! कई बार मन में आता उससे कहूं—'क्यों उस कमजात के पीछे अपनी जान सुखा रहा है? साली भाग गई तो अच्छा हुआ तेरी जान छूटी।'

लेकिन, मन में डरता। कहीं वह यह न सोचे कि मैं भी उसके कटे पर नमक छिड़कने आ गया। उधर उसका बुरा हाल। जब रात को थका-टूटा सेठों की दुकान से लौटकर ताला खोलता तो घर काटने को दौड़ता। घर में अकेले जैसे भूत बनकर घूमता दिखाई देता। बहुत याद आती उसे पत्नी की।

चंदनदास का जीवन एक अजीब कहानी था। मुहल्ले में हमारे साथ कंचे खेलता वह बचपन से जवानी तक जा पहुंचा। मां-बाप की इकलौती संतान। पैदा होते ही बाप गुजर गया। मां ने बहुत दुख झेले, बेटे को बड़ा करने के लिए। यह तो अच्छा हुआ, जहां पति काम करता था, मृत्यु के बाद उन्होंने इकट्ठा रुपया दे दिया। पति समझदार था। अपना बीमा करवा रखा था। मरने पर बीस हजार का क्लेम मिल गया। सारी रकम बैंक में फिक्स्ड-डिपाजिट करवा दी। जिसका उचित ब्याज मिलने लगा। दूसरा, मां ने कभी कपड़े सीने का काम सीखा था। मुश्किल के समय वही काम आया। मुहल्ले वाले तरस खाकर उससे कुछ न कुछ सिलवाते रहते, भले ही उन्हें जरूरत न भी होती। धीरे-धीरे आराम से

रोटी चलने लगी।

चंदनदास अधिक नहीं पढ़ा था। हाई-स्कूल पास किया तो अठारह का था। एक दूर के रिश्तेदार ने कह-सुनकर सेठों के पास लगवा दिया। बिन बाप का लड़का देखकर बड़े सेठ को दया आ गई। काम करने वाले अन्य मुनीम को वह आरंभ में जबकि दो सौ रुपए देता था लेकिन चंदनदास की तनख्वाह तीन सौ रुपए बांध दीं। हाई-स्कूल पास कर चुका था। लगन और मेहनत से धीमे-धीमे सारा काम सीख गया।

चंदनदास को नौकरी मिल जाने के बावजूद मां लोगों के कपड़े सिलती रही। बेटे को जवान हुआ देखकर मां के मन में बहू की इच्छा जाग्रत हो उठी। सोचती, किसी तरह उसका घर बस जाए। मगर यह काम इतना सरल नहीं था। एक तो पीछा कमजोर, दूसरे चंदनदास का शरीर इतना दुबला और पतला था जैसे हड्डियों पर मांस ही न हो। भले ही बंदा वह ईश्वर का ही था पर उसने उसे ऐसे गढ़ा गया था कि सूरत देखकर ग्लानि उत्पन्न होती थी। मां के मुख से बहू की बात कानों में पड़ने से पहले चंदनदास के मन ने कभी औरत की कमी महसूस नहीं की थी। लेकिन जिस दिन मां को पड़ोसन के साथ बहू लाने की बात करते सुना, उसके मन में खुशियों के दाने खिलने लगे। जब भी वह अकेला बैठता, आंखें मूंदकर पत्नी के सपने देखने लगता। लेकिन, कौन देता उस जैसे को लड़की?

एक बार, एक दुकान पर काम करते हुए दैवयोग से एक घटिया-सा साप्ताहिक अखबार हाथ पड़ गया। उसमें मोटे अक्षरों में छपे एक विज्ञापन पर उसकी दृष्टि पड़ी--

"रिश्ते ही रिश्ते! बिना दहेज, बिना खर्च के, खूबसूरत लड़कों और लड़कियों के विवाह।"

कहीं कोई देख न ले, उसने अखबार चोरी से कपड़े के थैले में छिपा लिया। फिर सारा दिन यूं ही गुजर गया। काम करने को मन नहीं हो रहा था। हिसाब लिखते-लिखते चोर आंखों से झोले में पड़े अखबार को पढ़ने की कोशिश करता।

उसने बमुश्किल दिन गुजारा। पांच बजे छुट्टी कर घर लौटकर बैठक में चारपाई पर लेट गया। जानता था, मां अनपढ़ थी, अतः उसके सामने ही अखबार हाथ में लेकर बार-बार विज्ञापन पढ़ता रहा। पढ़ते-पढ़ते आंखें मूंदकर अपने मन के सामने एक खूबसूरत लड़की का चित्र खींच लेता। उसके अंगों को निहारता। बिस्तर पर लेटे-लेटे रात बीतती जाती, मगर उसकी आंखों में नींद न आती। पहले मन में आया कि मां को सारी बात बता दे। फिर सोचा, सारी जानकारी लेकर ही मां से बात करेगा। आधी रात बीत जाने के बाद वह सो गया।

दूसरे दिन, घर से यह कहकर कि काम पर जा रहा हूं, वह विज्ञापन वाले दफ्तर में जा पहुंचा। दफ्तर एक संकरे बाजार के चौबारे पर था। वह सीढ़ियां चढ़कर ऊपर पहुंचा।

बेहद सजा-धजा कमरा, जिसकी दीवारों पर कई नव-विवाहित जोड़ों की फोटो लगी हुई थी।

चंदनदास ने दफ्तर के व्यक्ति से अपने विवाह की बात की। वह शीघ्र ही ताड़ गया कि मुर्गा सीधा है, आसानी से झटका जा सकता है। बातचीत करने के बाद उसने चंदनदास को अगले दिन आने के लिए कहा। उसके जाने से पहले उसने यों ही एक-दो बार कैमरे की फ्लैश मार दी। यह कहकर कि तेरी फोटो लड़की वालों को दिखाकर बात पक्की की जाएगी। उसने वैसे भी चंदनदास को पूरा विश्वास दिला दिया था कि उसके पास तीन-चार लड़कियां हैं। काम बना ही समझो।

चंदनदास ग्यारह बजे तक सेठों की नौकरी पर जा पहुंचा। दूसरे दिन फिर उसी आफिस में गया। आज आफिस में एक ही जगह तीन-चार लोग बैठे थे। उन्होंने चंदनदास को एक लड़की की फोटो दिखलाई जिसे देखकर उसकी तो जैसे बांछें ही खिल उठीं। पलों में उसने लड़की को अपने दिल के एक कोने में बिठा लिया।

"क्यों जी, कैसी है?"

आफिस वालों के पूछने पर चंदनदास के मुंह में जैसे जुबान नहीं रही थी। बस, कुर्सी पर बैठा वह अपने आप में शरमाता रहा।

"देखो, चंदनदास जी, लड़की वाले बिलकुल राजी हो गए हैं। हमने आपकी फोटो दिखाकर बात की थी। उन्हें लड़का तो पसंद है, पर एक बात... ।" बोलते-बोलते वह व्यक्ति कुछ पलों के लिए रुक गया जैसे बात के क्लाईमैक्स को इतनी जल्दी हाथ से नहीं छोड़ना चाहता था। कुछ देर तक वह चुपचाप चंदनदास के चेहरे को निहारता रहा और फिर अपनी बात पूरी करता हुआ कहने लगा–

"काम तो आपका बन गया। अब इसमें एक ही अड़चन है। लड़की की मां बहुत गरीब है। लड़की का बाप भी नहीं है। मां को कमाकर रोटी खिलाने वाली वही है। अब अगर आप इसे ब्याह कर ले गए तो मां बेचारी रोटी कहां से खाएगी? मैंने उससे कहा कि लड़के वालों से बारह हजार दिला देंगे। वह तो पंद्रह मांगती थी लेकिन बात मुश्किल से बारह में तय हुई, वह भी यह कहने पर कि लड़का बहुत अच्छा है। लड़की सारी उम्र बैठकर राज करेगी। अब आप बारह हजार का प्रबंध करो, लड़की आपके घर पहुंच जाएगी।"

इतना कहकर वह व्यक्ति चंदनदास की आंखों में ऐसे झांकने लगा जैसे अपने छोड़े हुए तीर का असर देख रहा हो कि चंदनदास के सीने के आरपार हुआ है कि नहीं।

कई बार तो चंदनदास बारह हजार की बात सुनकर डोल गया। रकम बहुत मोटी जो थी। लेकिन फोटो में दिखती खूबसूरत लड़की को अपने दिल की मलिका बनाकर यह रकम उसने एक ओर रख छोड़ी। बात बारह हजार में तय हो गई।

"पर देखो चंदनदास जी, यह विवाह बहुत सीधे-सादे तरीके से होगा। लड़की वाले

गरीब हैं। हम नहीं चाहते कि उनका फालतू का पैसा खर्च करवाएं। फिर इसमें आपका भी फायदा है। न बारात होगी, न बैंडवाला। किसी मंदिर में पंडित से फेरे पढ़वा देंगे। जो कुछ थोड़ा-बहुत लड़की वालों का बचेगा, उसी दहेज में कांटें-मुंदरी बन जाएंगे।"

फोटो लेकर चंदनदास घर क्या लौटा जैसे लड़की की डोली ही बाहर दरवाजे पर आ खड़ी हुई हो। उसने मां को सारी बात बताई। एक बार तो मां भी बारह हजार सुनकर चुप लगा गई, किंतु लड़की की फोटो देखकर वह तैयार हो गई। फोटो को फ्रेम करवाकर मेज पर रख दिया गया और उसी दिन से मां विवाह की तैयारी में लग गई। अपने चांदी और सोने के कांटें तुड़वाकर नए कांटें बनवाए और बहू को चढ़ा दिए।

विवाह दिन के समय मंदिर में हुआ। चंदनदास ने सेहरा बांधा। उधर लड़की वालों की ओर से भी पांच-सात लोग आए। पंडित ने फेरे पढ़वाए, फोटोग्राफर ने फोटो खींची और चंदनदास बारह हजार रुपए देकर लड़की को घर ले आया। चंदनदास की मां ने दहलीज पर तेल टपकाया। आस-पड़ोस में लड्डू बांटे। बहू और बेटे के सुख की दुआएं मांगीं। लेकिन, एक दुखद बात हो गई। चार-पांच दिन भी नहीं हुए थे कि मां रात को चारपाई पर ऐसी सोई कि सुबह उठी ही नहीं। नई ब्याही लड़की ऐसे चीखी जैसे उसकी अपनी मां मर गई हो।

चंदनदास के दो माह खूब आराम से गुजरे। पत्नी सुबह नौकरी पर जाने से पहले उससे किसी न किसी चीज की फरमाइश करती। आहिस्ता-आहिस्ता बैंक में पड़े सारे पैसे खत्म हो गए। चंदनदास ने इसकी कोई परवाह न की। स्त्री-सुख ने उसे सब कुछ भुला दिया था किंतु एक सुबह...

उसकी आंख और दिनों के मुकाबले कुछ देर से खुली थी। सिर बहुत भारी लगा। उसने चारपाई पर लेटे-लेटे एक-दो बार करवट बदली। फिर पत्नी को आवाज लगाई। लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला। उसने जब बिस्तर छोड़कर अंदर नजर घुमाई तो वह कहीं भी दिखाई नहीं दी। जब उसने ट्रंक देखे तो वे सब खुले हुए और खाली दिखाई दिए। यही नहीं, रसोई में कोई बरतन तक न था। वह किसी से कुछ न बोला। सीधा विवाह वाले आफिस गया। मगर वहां उनकी यह धमकी सुनकर कि उसने लड़की को मारकर फेंक दिया है, पुलिस केस बनेगा, वह चुप्पी साधकर घर लौट आया।

बस, फिर क्या? पल भर में पूरे आस-पड़ोस में खबर फैल गई। चंदनदास की घरवाली भाग गई। उस बेचारे की इतनी बदनामी हुई कि किसी को मुंह दिखलाने के योग्य न रहा। तीन दिन घर से बाहर न निकला। सारे मुहल्ले में मर्द यही कह रहे थे, "औरतजात होती ही ऐसी है। क्या जरूरत पड़ी थी सीधा शेर के मुंह में हाथ देने की? क्यों किया उस औरत पर भरोसा?"

इस घटना के बाद, चंदनदास चुप रहने लगा। कुछ दिन मन बहुत उदास रहा। पत्नी

की बहुत याद आती रही। भुलाने की कोशिश करता, मगर न भुला पाता। हर समय आंखों के सामने घूमती रहती। यह तो भला हो एक पड़ोसी का जिसने बताया कि उसने दूसरा मर्द कर लिया है और इसी मुहल्ले में रहती है। ऐसा तो वह पहले भी कई बार कर चुकी है। तब कहीं जाकर चंदनदास का मन ठहरा। फिर जैसे उसने अपने मन से समझौता कर लिया। धीमे-धीमे जीवन स्वयं एक ऐसी लीक पर चल पड़ा जहां मनुष्य संसार के सारे रिश्ते तोड़कर वैरागी बन जाता है और वह अपने आप में जीने के लिए विवश हो जाता है।

चंदनदास के जीवन के कई वर्ष इसी प्रकार गुजर गए। वह सुबह रोटी खाकर सो जाता। कपड़े धोने से लेकर बर्तन मांजने तक का सारा काम वह खुद करता। मुहल्ले में सभी के संग रहता हुआ भी जैसे वह अकेला हो। उसको कोई भी अपना दिखाई न देता। औरतजात से ही नहीं बल्कि उसको अपने आप से भी नफरत हो गई। फिर एक दिन ऐसी बात हुई जिसके होने का चंदनदास ने कभी सोचा भी न था।

वह अभी सुबह काम पर नहीं गया था। रोटी खाकर बर्तन मांज रहा था। उसे ऐसा लगा जैसे किसी ने दरवाजा खटखटाया हो। उसने राख से सने हाथों से ही कुंडी खोली। दरवाजे के पाट खुले तो उसने दहलीज पर एक औरत को खड़ी पाया। उम्र कोई अधिक नहीं। सीधी-सादी धोती बांध रखी थी। कुछेक पल तो चंदनदास उस औरत की ओर देखता ही रह गया।

"किससे मिलना है?" उसने ड्योढ़ी पर खड़ी औरत से पूछा।

"तुम्हारे घर कोई काम करने वाला है? मैं बर्तन मांज सकती हूं। सफाई कर सकती हूं। और कपड़े भी धो सकती हूं। मेरा कोई नहीं है।"

औरत की बात सुनकर चंदनदास पल भर के लिए खड़ा रह गया। मगर फिर दरवाजे में से एक ओर हट गया। औरत अंदर आ गई। चंदनदास ने राख से सने हाथ धोए। औरत उसके सामने जमीन पर बैठ गई। कुछ ही देर में तय हो गया कि वह दोनों वक्त की रोटी और साठ रुपया महीना पर उसके घर का सारा काम करेगी। उसने चंदनदास को यह भी बताया कि उसका आगे-पीछे कोई नहीं है। पति ने उसे कई साल पहले घर से निकाल कर दूसरा विवाह कर लिया था। अब तो उसकी अकेली जान है जिसको चलाने के लिए वह लोगों के घर के बर्तन मांजती है या उनका छोटा-मोटा काम कर देती है। निकट ही मुहल्ले में एक छोटा-सा कमरा लेकर रहती है।

उस औरत के आने से चंदनदास को फिर सुख मिल गया। दोनों वक्त का चूल्हा फूंकना बंद हो गया। पकी-पकाई रोटी मिलने लगी। वह औरत फिर चंदनदास की इतनी अपनी बन गई कि वह काम पर जाता तो घर की चाबी तक उसको दे जाता। कभी-कभार वह रात को चंदनदास के घर में ही सो जाती। सब जानते थे, चंदनदास एक बहुत नेक इंसान था। और, संसार में उसका कोई नहीं था। वह औरत भी अकेली थी। अगर उस औरत

का चंदनदास के संग कोई ऐसा-वैसा रिश्ता बन भी गया था तो किसी को क्या फर्क पड़ता था? कुछ समय बाद वह उसके घर ही रहने लगी।

आहिस्ता-आहिस्ता, कमा-कमाकर चंदनदास ने फिर घर जोड़ लिया। वह बर्तन मांजने वाली औरत की हर बात मानता। उसकी तुलना अपनी विवाहिता स्त्री से करता, जो एक दिन उसका घर ही साफ कर गई थी। जो हमेशा चंदनदास से अपनी चीजों की फरमाइश करती रही। लेकिन, एक यह भी थी जिसने अपने लिए कभी कुछ न मांगा और न ही अपनी कोई इच्छा जाहिर की।

वक्त गुजरते-गुजरते बीस साल गुजर गए। उस औरत ने बिना कोई सामाजिक रिश्ता जोड़े चंदनदास के साथ इतना लंबा समय बिता दिया। जो कि उसकी कुछ भी नहीं लगती थी। बस, एक दिन यूं ही उसके घर पर आ खड़ी हुई थी।

फिर, एक बार चंदनदास को बुखार हो गया। ऐसा कि उतरा ही नहीं। वह बिस्तर पर ऐसा गिरा कि उठने का फिर नाम ही नहीं लिया। बर्तन मांजने वाली औरत ने उसकी खूब सेवा की। न रात देखी, न दिन। हर समय उसकी चारपाई के पाए से बंधी रहती। लेकिन, उसकी सेवा का कोई फल न मिला। एक दिन, सुबह चंदनदास हमेशा के लिए चलता बना। उस औरत की चीख-पुकार सुनकर पहले आस-पड़ोस और फिर पूरा मुहल्ला ही इकट्ठा हो गया। घर में शव पड़ा था। उसे ठिकाने लगाने के लिए मुहल्ले वाले सलाह-मशविरा करने लगे। सब जानते थे, चंदनदास का कोई नहीं था।

आखिर, मुहल्ले के कुछ खास लोग आगे आए। मुर्दे को नहलाकर श्मशान-घाट ले जाने की तैयारी करने लगे। उस औरत का बुरा हाल था। वह तो चंदनदास के शरीर को छोड़ ही नहीं रही थी। लोग उसे खींचकर अलग करते, मगर वह चीखती हुई फिर उससे लिपट जाती।

लेकिन, यह क्या? अभी वह दाह-संस्कार कर लौटे ही थे कि एक तांगा चंदनदास के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ। उसमें से वही औरत बाहर निकली जो चंदनदास की विवाहिता थी। जो बीस वर्ष पहले उसको अकेला छोड़कर किसी दूसरे मर्द के साथ भाग गई थी, और कहीं समीप ही रहती थी। उसके साथ पांच-छह बदमाश किस्म के आदमी भी थे। वे चंदनदास के घर में घुसकर उसका सामान बांधने लगे।

मुहल्ले वालों से भला यह कैसे सहन होता? वे आगे बढ़कर उन्हें रोकने लगे। मगर उन्होंने चंदनदास और उस औरत की शादी के फोटो दिखा दिए। बोले, "जब चंदनदास का आगे-पीछे कोई नहीं तो उसके मरने के बाद इन सब पर उसकी विवाहिता का ही हक है।" जब मुहल्ले वालों ने उस बर्तन मांजने वाली की बात की तो उन्होंने उनके रिश्ते का सबूत मांगा।

मुहल्ले वाले चुप थे। क्या बताएं कि चंदनदास के साथ क्या रिश्ता था उस औरत

का? ब्याहता औरत के संग आए बदमाशों ने धीरे-धीरे सारा सामान बांध लिया। वे गठरियां उठा-उठाकर तांगे पर रखने लगे। मुहल्ले वाले देखते रहे। उनमें वह औरत भी थी जो एक दिन चंदनदास के द्वार पर आ खड़ी हुई थी, जो बर्तन मांजने आई थी और बिना कोई रिश्ता जोड़े उसके साथ बीस वर्ष बिता दिए थे।

लोगों का ख्याल था कि वह चंदनदास के सामान को किसी दूसरे को हाथ नहीं लगाने देगी। लेकिन, ऐसा नहीं हुआ। लोगों की सोची हुई बात झूठी पड़ गई। ब्याहता औरत के साथ आए लोग सामान उठा-उठाकर तांगे में रखते जाते, मगर वह औरत कुछ भी न बोलती। चुपचाप एक ओर धरती और दीवार के सहारे बैठी सब कुछ होता हुआ देखती रही। लोग सोचने लगे—कैसी है यह औरत जो उस सामान के लिए कुछ नहीं बोल रही जिसे उसने कितनी मुश्किलों से बनाया था!

"क्या इन चीजों से इसका कोई मोह नहीं? कोई प्यार नहीं? फिर कैसी है यह औरत?"

लेकिन, वे क्या जानें उस औरत के बारे में? उसके मन की बात कैसे समझें? उन्हें क्या मालूम कि उसे कुछ नहीं चाहिए था। न सामान और न ही घर। उस औरत का रिश्ता तो केवल चंदनदास से जुड़ा हुआ था, जो बीस वर्ष तक चलता रहा। मोह का रिश्ता, प्यार का रिश्ता, जो चंदनदास के इस दुनिया से उठते ही हमेशा के लिए टूट गया था।

आखिरी बार

राजिंदर कौर

बुखार की बेहोशी के कारण कुछ देर के लिए मीती की आंख लग गई, किंतु कुछ देर बाद ही कमर और सिर में दर्द के कारण उसकी नींद खुल गई। सुबह गाड़ी पकड़ने की चिंता भी सता रही थी। मीती की मां और उसके भाई ने उसे रुक जाने के लिए बहुत कहा था।

"तू बुखार उतरने पर चली जाना।"

"बच्चों की पढ़ाई का सवाल है, स्कूल खुल रहे हैं।"

"तू रुक जा। जगबीर बच्चों को लेकर जाता है। तू बाद में चली जाना। अपना मेडीकल भेज देना।" भाई ने कहा।

लेकिन मीती नहीं मानी। वह जानती थी कि जगबीर बच्चों की देखभाल नहीं कर सकता। जगबीर तो दफ्तर से सीधा घर भूले-भटके ही आता है। उसके बच्चों की बेकद्री हो जाएगी।

वह बोली, "आजकल, गाड़ियों में बहुत रश है। पहले ही मुश्किल से रिजर्वेशन हुआ है, महीना भर पहले करवाने के बावजूद मनपसंद गाड़ी नहीं मिली। बिना रिजर्वेशन सफर करना तो बहुत मुश्किल है।"

इस सुपर-फास्ट गाड़ी में दो रातें खराब होती हैं। पहली रात तो चिंता में नींद नहीं आती कि बहुत सुबह गाड़ी पकड़नी है, सुबह चार बजे उठो, तैयार हो, टैक्सी का प्रबंध करो, स्टेशन पहुंचो।

इस बरसात में टैक्सी का मिलना कौन-सा आसान है! अगर टैक्सी मिल भी जाए तो स्टेशन पहुंचाना कौन-सा सरल है! राह में कई नदियां-नाले पार करने वाली बात है। दो वर्ष पूर्व भी ऐसी ही तेज बरसात में मीती वापस गई थी। टैक्सी जिस सड़क की ओर मुड़ती, वह घुटने-घुटने पानी में डूबी होती। ड्राईवर टैक्सी को कहीं और से मोड़ता। मोड़ काटते-काटते कितना समय लग गया था। रात में बहुत-सी सड़कें नई थीं। थोड़ी तेज बरसात होने पर उन पर पानी भर जाता। ट्रैफिक जाम हो जाता। जब वे स्टेशन पहुंचे थे तब गाड़ी छूटने में सिर्फ दस मिनट रह गए थे। कितनी हबड़ा-तबड़ी में डिब्बे में सामान फेंका था।

इस बार भी बारिश कई दिनों से हो रही थी। मीती को यह चिंता सता रही थी कि

वे लोग सुबह समय से स्टेशन पर पहुंच सकेंगे या नहीं।

मीती के बुखार के कारण सारा परिवार चिंतित था। मीती की छोटी बहन ने दवाई का प्रबंध कर दिया था। भाभी साथ ले जाने वाले भोजन का प्रबंध कर रही थी। मां इधर-उधर बेचैन घूम रही थी। बाऊजी 'हरे राम, हरे कृष्ण' का जाप कर रहे थे।

मीती को बार-बार यह बात खाए जा रही थी कि उसके सभी घरवाले कितनी चिंता कर रहे थे, मगर एक जगबीर है जिसे कोई फिक्र ही नहीं। उसने एक बार भी नहीं कहा—मीती, टिकटें वापस कर देते हैं। इतने बुखार में न जा। न ही उसने आकर एक बार भी उसके माथे पर हाथ रखा है।

सुबह बरसात कुछ रुक गई थी और टैक्सी ढूंढने में अधिक मुश्किल नहीं हुई थी। स्टेशन पर भी वे लोग समय पर ही पहुंच गए थे। गाड़ी चढ़ाने के लिए आए भाई की आंखें भर आईं। उन्होंने बिस्तर खोलकर मीती को लेट जाने को कहा। प्लेटफार्म से चाय ले आए। तभी गाड़ी सरकने लगी। भाई ने मीती और बच्चों के सिर पर प्यार-भरा हाथ फेरते हुए जगबीर से कहा, "पहुंचते ही खबर करना।"

घर से चलते समय मां, बाऊजी, छोटी बहन, भाभी—सभी के चेहरे बेहद उदास थे। मां की भरी हुई आंखें देखकर उसने नजरें घुमा ली थीं। बाऊजी ने उसका सिर चूम लिया था। बहन, भाभी, मां—सब गले लगकर उससे मिली थीं। सुबह के झुटपुटे में सबको सबके छलकते आंसू नजर आ रहे थे।

गाड़ी ने अचानक ही तेज गति पकड़ ली थी। जगबीर ने खिड़की का शीशा बंद कर दिया। मीती खिड़की से टेक लगाकर अधलेटी-सी हो गई। समीप ही बैठी उसकी बेटियां—गुड्डू और प्रीती—पापा से ऊपर वाली बर्थ पर चढ़ाने के लिए जिद्द करने लगीं। जगबीर उनको ऊपर चढ़ाकर स्वयं उसके पांव के पास आकर बैठ गया और एक फिल्मी मैगजीन के पन्ने पलटने लगा।

मीती को बहुत थकावट महसूस हो रही थी। उसकी झपकी लग गई। उसकी आंख खुली तो जगबीर उसके समीप बैठा एक उपन्यास पढ़ने में मस्त था। दोनों लड़कियां ऊपर बर्थ पर कोई कामिक्स पढ़ रही थीं। कुछ देर वह बिना हिले-डुले पड़ी रही। उसका गला सूख गया। उसने जगबीर से पानी मांगा, मगर जगबीर ने कोई ध्यान नहीं दिया। वह पढ़ने में ही डूबा रहा। उसने अधरों पर जीभ घुमाई और कुछ पल वैसे ही लेटी रही। उसने बांह आगे बढ़ाकर हल्के-से जगबीर को छुआ। जगबीर ने चौंककर उसकी ओर देखा तो उसने पानी की ओर संकेत किया। पानी देकर जगबीर बोला, "दवाई कितने बजे लेनी है?"

मीती ने 'न' में सिर हिला दिया। उसे याद ही नहीं था कि बहन ने दवाई के लिए क्या हिदायतें दी थीं। वह 'हां-हूं' करती रही थी। मीती का ख्याल था कि जगबीर ने दवाई के बारे में सब समझ लिया होगा।

जगबीर फिर अपनी जगह पर बैठकर पढ़ने में डूब गया। मीती की नजर सामने वाली बर्थ पर पड़ी। वहां एक जोड़ा बैठा था। अधलेटी-सी हालत में जैसे एक-दूसरे पर गिरे जा रहे हों। एक-दूसरे को स्पर्श करने वाले पोज में बैठे थे। अधमुंदी आंखों से वह उनकी ओर देखती रही और अंदाजा लगाने लगी—ये नव विवाहित होंगे। मगर उम्र तो नव विवाहितों वाली नहीं लगती। फिर एक-दूसरे से इतना लिपटने की लालसा कैसे? क्या ये पति-पत्नी नहीं? शायद, बड़ी उम्र में विवाह हुआ हो। पर...

गुड्डू ने अपने हाथ में पकड़ी हुई किताब बंद कर दी, "मम्मी, भूख लगी है। कुछ खाने को दो न।" प्रीती ने भी कामिक्स की किताब बंद करते हुए यही वाक्य दोहराया। जगबीर ने बच्चों की बात नहीं सुनी थी। गाड़ी का शोर भी बहुत था। जगबीर शायद उपन्यास के किसी बहुत ही रोचक हिस्से में डूबा हुआ था। मीती ने हल्का-सा छूकर जगबीर की तंद्रा भंग की। उसने टोकरी उठाकर लड़कियों के आगे रख दी, इस अंदाज से जैसे कह रहा हो—लो, जो मन में आए खा लो। मुझे तंग न करो।

कुछ देर बाद, लड़कियों की तरफ से फिर आवाज आई, "पापा, पानी!"

मीती ने आंखें खोलकर देखा, जगबीर उन्हें पानी तो दे रहा था मगर उसके चेहरे पर खीझ के चिह्न स्पष्ट थे।

गाड़ी बहुत तेज गति से दौड़ रही थी। प्रीती ने पापा को आवाज देकर समय पूछा।

"साढ़े दस!" जगबीर ने आंखें ऊपर उठाए बिना ही उत्तर दिया।

"मम्मी, ग्यारह बजकर पांच मिनट पर पहला स्टेशन आएगा।" प्रीती ने फ्राक की जेब से कागज निकालकर मम्मी की ओर देखते हुए कहा।

इस सुपर-फास्ट गाड़ी को सिर्फ पांच स्टेशनों पर ही रुकना था। गुड्डू और प्रीती इस गाड़ी के बारे में बहुत उत्साहित थीं। गुड्डू तो अधिकतर चुप रहती है और कामिक्स में डूबी रहती है, परंतु प्रीती हर बात में बहुत उत्साह दिखाती है, उछल-कूद, दौड़-भाग, शोर, चंचलता उसमें से फूट-फूट पड़ती है।

प्रीती ने अपने मामा के पास बैठकर सुपर-फास्ट गाड़ी का टाइम-टेबल समझा था। फिर वह स्टेशन का नाम और टाइम अपनी डायरी में नोट किया। घर में आए हर व्यक्ति को वह बार-बार बताती, "हमारी गाड़ी बड़ी तेज चलेगी, सिर्फ पांच स्टेशनों पर रुकेगी। बड़ा मजा आएगा।"

गुड्डू उसे बड़ी होने के नाते कई बार डांट चुकी थी, मगर प्रीती किसी से डरने वाली नहीं थी।

मीती की दृष्टि फिर सामने वाले जोड़े पर पड़ी। दोनों ने एक-दूसरे के हाथ पकड़ रखे थे। दोनों की आंखें एक-दूजे को मोह लेने वाली नजरों से देख रही थीं। अधर कुछ लुभावने शब्द भी बोल रहे होंगे।

कुछ देर मीती उन्हें देखती रही। फिर खिड़की से पीठ टिकाकर बैठ गई। उसका कंठ सूख रहा था। मीती कुछ पल जगबीर की ओर देखती रही कि शायद वह किताब रखकर उसके साथ कोई बात करे, उसके बुखार के बारे में पूछे या उसे दवा ही दे। किंतु वह तो बेखबर है। एक सामने वाला जोड़ा है जिसकी बातें ही खत्म नहीं हो रहीं। शायद, वे प्रेमी-प्रेमिका हों। एक साथ सफर कर रहे हों। यही सोचकर मीती के पूरे बदन में सिहरन-सी दौड़ गई।

उसकी आंखों के सम्मुख बारह साल पहले का गाड़ी का सफर घूम गया। तब जगबीर था और वह थी। गाड़ी में बैठे किसी और यात्री का उनकी ओर ध्यान नहीं था। वह विवाह के बाद हनीमून पर जा रहे थे। वापसी पर उन्हें रिजर्वेशन नहीं मिला था। वे अपने बिस्तर पर ही पूरे रास्ते बैठकर आए थे—साथ-साथ सटे हुए। रास्ते में वे एक-दूसरे की गोद में सिर रखकर ही बारी-बारी से सो जाते थे। कितनी भीड़ थी डिब्बे में! कितना शोर था! कई लोग लड़-झगड़ रहे थे। लेकिन, वे सब ओर से बेखबर अपने बिस्तर-बंद पर बैठे, कंबल में एक-दूसरे का हाथ थामे यात्रा कर रहे थे। कितनी ही बातें थीं उनके पास, वह प्यार भरी नजरों से देखना, एक-दूजे का हाथ दबाना...!

मीती ने पुनः आंखें खोलीं, आगे बढ़कर जगबीर का कंधा हिलाया...!

"क्या पढ़ रहे हो?" उसने मरियल-सी आवाज में पूछा।

"एक नावेल है, बड़ा मजेदार। इसका हीरो...।" जगबीर नावेल के हीरो के विषय में बताने लगा था, वह खीझ उठी थी।

"मुझे दवा तो दो।" वह बोली।

"मैं क्या दूं? तेरे पर्स में है, निकालकर ले लो।" उसने टालने के अंदाज में कहा।

जगबीर शायद किताब में पूरी तरह से उलझा हुआ था। मीती के मन में कसक-सी उठी। उसने गुड्डू को इशारे से नीचे बुलाया, गुड्डू ने पर्स में से दवा निकालकर मम्मी की हथेली पर रखी और पानी भी दिया।

मीती उठकर बाथरूम जाने लगी तो गुड्डू ने मम्मी का हाथ पकड़ लिया। आहिस्ता-आहिस्ता चलकर वह बाथरूम तक पहुंच गई। उसने अपना चेहरा एक पल को शीशे में देखा। उफ्फ! कितना अजीब लग रहा था चेहरा! न कोई चमक, न कोई आकर्षण। होंठ सूखे हुए, आंखें सूजी हुईं। उसे अपना ही चेहरा बहुत बदसूरत लगा। 'तभी तो जगबीर मुझसे दूर-दूर रहता है। मेरी ओर आंखें उठाकर देखता भी नहीं। मगर इसमें मेरा क्या कसूर? मैं तो बीमार हूं, बीमारी में तो आदमी की शक्ल-सूरत ऐसी ही हो जाती है?' उसने सोचा।

बाथरूम से लौटते वक्त वह हांफ रही थी। उसमें चलने की ताकत नहीं रही थी। गुड्डू मम्मी का हाथ पकड़कर ले आई थी।

गाड़ी की गति कम हो रही थी। स्टेशन आ गया था। प्रीती बहुत उत्तेजित थी, वह खिड़की के पास बैठकर प्लेटफार्म का दृश्य देखने लगी। जगबीर किताब रखकर प्लेटफार्म पर चला गया था। प्रीती पापा से आइसक्रीम और कोल्ड ड्रिंक की फरमाइश करने लगी। जगबीर कोल्ड ड्रिंक की तीन बोतलें ले आया।

"तुम क्या लोगी? चाय ले आऊं?" जगबीर ने मीती से पूछा तो उसने 'हां' में सिर हिला दिया। उसने चाय के दो-चार घूंट भरे ही थे कि गाड़ी सरकने लगी। तुरंत ही गाड़ी ने तेजी पकड़ ली।

प्रीती अपनी जेब में से डायरी निकालकर बोली, "मम्मी, अब तीन बजे अगला स्टेशन आएगा।"

मीती ने मुस्कुराने का यत्न किया, लेकिन उसके होंठों ने उसका साथ नहीं दिया। बस, केवल आंखों से वह प्रीती की ओर देखती रही। जगबीर साथ वाले मुसाफिर से बातें कर रहा था। मीती को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि किस विषय पर बात कर रहे हैं। गाड़ी की तेज गति और शोर के कारण उसे कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था।

जगबीर की पीठ उसकी ओर थी। मीती ने गुड्डू को अपने पैरों के पास बिठा लिया और प्रीती सामने वाले जोड़े के पास जाकर बैठ गई। वह जोड़ा प्रीती के साथ मालूम नहीं क्या बातें कर रहा था। प्रीती उन्हें अपनी डायरी दिखा रही थी। वह अवश्य उनको पांचों स्टेशनों के नाम और समय के बारे में विस्तार से बता रही होगी।

गुड्डू को मीती ने टांगें दबाने के लिए कहा। हल्के-हल्के हाथों से वह उसकी टांगें दबा रही थी। कुछ देर बाद वह वहां से उठकर खिड़की ओर ओर चली गई और बाहर देखने लगी। दोनों एक-दूसरे को बाहर के नजारों के बारे में कुछ बता-समझा रही थीं।

सामने वाला जोड़ा अपनी बातों में खो गया था। जगबीर अभी भी मुसाफिर के साथ बातें कर रहा था।

'जरूर राजनीति की ही बातें होंगी।' मीती ने सोचा, 'दो अजनबियों के लिए साझा विषय और भला क्या हो सकता है? राजनीति पर जगबीर घंटों लगातार बोल सकता है।'

मीती ने अपना ध्यान नींद में लगाना चाहा पर नींद तो उसके साथ लुका-छिपी का खेल खेल रही थी। उसका ध्यान फिर जगबीर की ओर चला गया।

जगबीर की नौकरी ही कुछ इस प्रकार की थी कि उसके विभाग में लड़कियों-स्त्रियों की संख्या अधिक होती है, पुरुष इक्का-दुक्का ही होते हैं। पिछले दफ्तर में उसकी हमउम्र औरतें थीं। किसी के दो बच्चे थे, किसी के तीन। उनके घरों की अपनी समस्याएं थीं।

उनमें से एक तो जगबीर की 'साली' बन गई थी। एक दिन एक अफसर की बेटी की शादी पर जगबीर मीती को लेकर गया था तो वह उस साली को बाहुपाश में कसकर मिला। मीती हक्की-बक्की होकर देखती रह गई थी।

"मीती, यह है मेरी साली, मिसेज कालरा।"

वह मीती की ओर बढ़ आई थी। उसने, मीती के साथ जोर से हाथ मिलाया, "तू इसी रिश्ते से मेरी बहन हुई।" फिर वह जोरदार ठहाका लगाकर हंसती रही। मीती ने भी उसकी हंसी में शामिल होने की पूरी कोशिश की।

उस दफ्तर में जगबीर कई वर्ष रहा था। वह अपने सभी साथियों के साथ खूब घुल-मिल गया था। सबके एक प्रकार के पारिवारिक संबंध बन गए थे, सुख-दुख सबके साझे थे। साली को लेकर जगबीर के साथी कई मजाक किया करते। लेकिन, मिसेज कालरा बड़ी बेबाक थी। वह किसी की परवाह न करती। जगबीर से कहती, "साली को कनाट-प्लेस ले जाकर किसी रेस्तरां में काफी नहीं पिलाएगा? कोई पिक्चर नहीं दिखाएगा?"

वह सोफ्टी खाने की बहुत शौकीन थी। वह प्रायः जगबीर को खींचकर क्नाट-प्लेस ले जाती।

जगबीर घर जब देर से लौटता तो कहता, "आज तेरी बहन ले गई खींचकर क्नाट-प्लेस। कहती थी—सोफ्टी खानी है।"

मीती मन ही मन कुढ़ती, यह सोचकर कि साली की बहन को ले जाने की तो उसको फुर्सत मिलती नहीं थी या फिर बजट तंग हो जाता था। मगर वह चुप्पी लगा जाती। वह जगबीर का उत्तर जानती थी। उसने तो एक ही वाक्य रटा हुआ था, "तेरे अंदर तो औरतों वाली ईर्ष्या भरी पड़ी है। जहां आदमी-औरत मिलकर काम करते हैं, सबके साथ बनाकर रखनी पड़ती है। मिसेज कालरा को मैंने कोई मुंह में तो नहीं डाल लेता? न ही वह मुझे निगल जाएगी। अगर मैं उसे न ले जाऊं तो वह कहेगी—कितना कंजूस है!"

धीरे-धीरे मीती जगबीर के स्वभाव को समझती चली गई। वह औरतों से ही ज्यादा खुलता था। अपने सहयोगी पुरुषों के साथ कम। इसका कारण शायद यह था कि वह साझे परिवार में अधिक समय रहा। उस परिवार में स्त्रियों और लड़कियों की भरमार थी। चाचा-ताऊ की बेटियां, भूआ (फूफी), दादी, परदादी, चाचियां, ताइयां...।

मिसेज कालरा की जब उस दफ्तर से बदली हो गई तो जगबीर का ध्यान फिर घर की ओर लौट आया —उसका प्यार, मजाक, हंसी, मीती के बालों के साथ खेलना, मीती की गर्दन को अचानक पीछे से चूम लेना, सब पहले की तरह हो गया था।

"मम्मी-मम्मी" की आवाज से मीती की तंद्रा भंग हो गई। उसे प्रीती आवाजें लगा रही थी। वे दोनों टोकरी में से कुछ निकालकर खा रही थीं। 'मरीं, इनको खाने के अलावा कोई काम नहीं। बिलकुल बाप पर गई है। सारा दिन कुछ न कुछ चरती रहती हैं।'

जगबीर ने राजनीति पर बहस करनी बंद कर दी थी और उन लोगों के पास ही बैठा फिल्मी पत्रिका के पन्ने पलट रहा था। इधर मीती को कई बार बहुत गुस्सा आता है, जब कभी भूले से जगबीर रात को उसको अपने बाहुपाश में कसने की कोशिश करता है तो

उसका दिल करता है कि वह फूट-फूटकर रो पड़े या फिर गुस्से में जगबीर की छाती पर मुक्के मारे और कहे–'तू बार-बार मेरे साथ ऐसा छलावा क्यों करता है?'

गाड़ी धीमी हो गई थी। उसने घड़ी की ओर देखा–तीन बज गए थे। अगला स्टेशन आने वाला था। दोनों लड़कियां ऊपर की बर्थ से नीचे आ गई थीं और खिड़की के पास बैठने के लिए झगड़ रही थीं। गाड़ी रुकी तो जगबीर नीचे उतर गया, वापस आया तो उसके हाथ में खाने-पीने का सामान था। उसने मीती से कुछ खाने के लिए पूछा।

"कोई कोल्ड ड्रिंक ले आओ।" वह बोली।

"कोल्ड ड्रिंक? चाय ही ठीक रहेगी तेरे लिए।"

"नहीं, मुझे चाय नहीं पीनी है। मेरा अंदर-बाहर तप रहा है।"

जगबीर पुनः जाकर कोल्ड ड्रिंक ले आया। मीती को कोल्ड ड्रिंक पीना बेहद अच्छा लगा।

सुपर-फास्ट गाड़ी के अंदर भी कभी चाय आ रही थी, कभी कोल्ड ड्रिंक, कभी कुछ और। सारे डिब्बे आपस में जुड़े हुए थे।

गाड़ी के चलने पर सभी यात्री फिर अपनी-अपनी जगह आकर बैठ गए। सामने वाला जोड़ा ताश खेल रहा था। जगबीर नावेल में डूब गया था। लड़कियां भी ऊपर की बर्थ पर पहुंच गई थीं। मीती फिर लेट गई।

एक दिन, जगबीर दफ्तर से लौटा और बोला, "मीती, ईश्वर बड़ी बेइंसाफी करता है।"

"क्यों? क्या हो गया?"

"हमारे दफ्तर में एक लड़की क्लर्क आई है। इतना प्यारा-भोला चेहरा पर बेचारी का एक हाथ टेढ़ा है। वह भी दायां हाथ।"

"फिर काम कैसे करती है?" मीती ने सहानुभूति के साथ पूछा।

"बाएं हाथ से।"

"बेचारी!"

कुछ दिन पश्चात् जगबीर कहने लगा, "वह जो नई लड़की आई है न, अजीब है, कइयों से एक साथ इश्क लड़ा रही है।"

"तुम्हें कैसे पता?"

"एक तो अक्सर ही दफ्तर आ जाता है, उसे लेने के लिए और एक अन्य के साथ मैंने उसे एक दिन अचानक घूमते हुए देखा था। मुझे देखकर उसने आंखें चुरा लीं।"

"तुम क्यों दुखी होते हो? उसे अपना काम करने दो।"

"तू अगर उसका चेहरा देखे तो कभी न माने कि यह लड़की ऐसी फ्लर्ट हो सकती है। बहुत ही भोली लगती है। उसके हाथ के कारण मुझे उससे हमदर्दी थी लेकिन अब

तो मुझे उस पर गुस्सा आ रहा है।"

"क्यों, तुम्हें क्यों गुस्सा आ रहा है? वह तुम्हें लिफ्ट नहीं देती इसलिए?" मीती ने हंसते हुए कहा।

"तू बहुत शरारती है, मीती!" जगबीर ने मीती को अपनी बांहों में कसते हुए कहा।

इसके बाद जगबीर ने कई महीने तक उस लड़की के विषय में कभी कोई बात नहीं की।

एक दिन उत्सुकतावश मीती ने जगबीर से उसके बारे में पूछ ही लिया।

"वह बेचारी बहुत दुखी है। उसके घर के अजीब-से हालात हैं। उसके मां-बाप इकट्ठा नहीं रहते। बाप कोई दूसरी औरत रखे हुए है। यह बेचारी प्यार की भूखी है। एक हाथ की समस्या है, विवाह इसके साथ कौन करेगा? हाथ के कारण सब ठुकरा देते हैं।"

मीती का मन भी पसीज उठा।

"उसके साथ एक बार मिलवाओ तो सही।" मीती ने दिली सहानुभूति जताई।

जगबीर तो जैसे उतावला बैठा था, मिलाने के लिए। दूसरे दिन ही अपने संग ले आया। मीती को लड़की बेहद प्यारी लगी। अगर उसका हाथ कोई न देखे तो वह बहुत ही खूबसूरत थी। वह लड़की मीती को 'भाभीजी' कहकर संबोधित करने लगी। मीती भी उसको उसके नाम दया से ही बुलाने लगी।

वह प्रायः ही जगबीर के साथ घर आ जाती, कभी लेट हो जाती तो जगबीर उसे घर तक छोड़ आता। दया की मां भी दो-चार बार उनके घर आई। वह मीती और जगबीर को दया के लिए कोई लड़का ढूंढने को कहती। मीती का परिवार कहीं बच्चों के संग घूमने जाता या पिक्चर देखने जाता तो दया भी अक्सर साथ जाती।

एक दिन, जगबीर और दया के हावभाव से मीती का माथा ठनका। जब जगबीर से इस बारे में पूछा तो वह गुस्से में तमतमा उठा। उसने मीती को ईर्ष्या और शक की मारी, तंगदिल आदि दुनियाभर के विशेषणों से विभूषित किया। कई दिन उसने मीती से बात नहीं की। घर में अजीब-सा तनाव था। दया का घर में आना बंद हो गया। जगबीर अक्सर ही लेट आता। पलंग पर एक ओर मीती खामोश पड़ी रहती। वह न उसको छूता और न ही उसके साथ कोई बात करता।

मीती के लिए यह सारी स्थिति असहनीय हो गई तो एक दिन उसने जगबीर से माफी मांग ली। उसने सोचा कि शायद उसका शक बेबुनियाद था। बात कुछ भी नहीं थी, तभी तो जगबीर के दिल को इतनी चोट लगी थी।

इसके बाद भी जगबीर का देर से घर आना एक आम बात हो गई थी। वह मीती की तरफ से बिलकुल ठंडा रहता।

एक दिन, एक रिश्तेदार ने आकर मीती को बताया, "जगबीर आजकल एक लड़की

के साथ अक्सर ही घूमता रहता है। कौन है वह लड़की? उसका एक हाथ टेढ़ा है।"

मीती पत्थर बनी उसे देखती रही। क्या कहती? मन ही मन कलपती, तिलमिलाती रहती। कई बार सोचती—इस आदमी को छोड़कर चली जाए। वह भी तो कमाती है, पर अपनी बेटियों और अपने मां-बाप के विषय में सोचकर चुप हो जाती।

मीती अपना चेहरा शीशे में देखती। उम्र की लकीरें, सोच और चिंता की परछाइयां, अपनी नौकरी की जिम्मेदारियां, गुड्डू और प्रीती की देखभाल, घर की जिम्मेदारियां, सबकी झलक उसको शीशे में नजर आती। वह जवान मीती, लापरवाह, बेफिक्र, मस्त-मौला, चमकती मोटी आंखों वाली, काले चमकदार बाल! सब कहां लोप हो गए थे? जगबीर तो अभी भी अच्छा बना-ठना अपने आप में चेतन ही नजर आता। उसकी उम्र के निशान भी जैसे मीती के चेहरे पर ही उकेर दिए गए थे। वह घर आता तो मीती बच्चों को पढ़ाने, रसोई में या बाजार से राशन-सब्जी लाने में ही व्यस्त रहती।

कभी-कभी, मीती का ध्यान तैयार हो रहे जगबीर की ओर चला जाता। कितनी बार वह शीशा देखता। बाल संवारते हुए न थकता।

मीती की एक सहेली कहा करती थी—इश्क करके आदमी या औरत हमेशा जवान और स्मार्ट रहते हैं। दूसरों के सामने अच्छा लगने की ललक, दूसरों को जीतने की लालसा उन्हें अपने प्रति अधिक चेतन बनाए रखती है।

एक दिन, जगबीर ने मीती के सम्मुख विवाह का एक कार्ड लाकर रखा। दया के विवाह का कार्ड था।

"तू मुझे हमेशा नीच और बुरा आदमी समझती है, देख ले, मैंने ही उसके लिए वर ढूंढने में मदद की है। बेचारी कितनी दुखी थी। अगर किसी दुखी व्यक्ति को हमदर्दी के दो-चार शब्द बोल दो तो तुम्हारे पेट में क्यों दर्द होने लगता है? अगर मेरी उसमें जरा-सी दिलचस्पी होती, तो क्या मैं उसके लिए लड़का ढूंढ़ता? उसके लिए इतनी दौड़-भाग करता? तेरे दिमाग में तो शक का कीड़ा है।"

मीती सुन्न होकर सब सुनती रही।

दया के विवाह पर साथ चलने के लिए जगबीर ने मीती पर कोई खास जोर नहीं दिया। उसने जगबीर को बन-ठनकर बड़ा-सा तोहफा लेकर घर से जाते हुए देखा। वह यह भी पूछने का साहस नहीं कर सकी थी कि तोहफा क्या था।

विवाह के शुरुआती दिनों में जगबीर हर काम मीती की सलाह से करता था।

दया विवाह के बाद शहर से बाहर कहीं चली गई थी उसके खत कभी-कभी आते। जगबीर खत मीती के आगे रख देता। उसके खतों में नए शहर, अपने पति और नए माहौल के बारे में बहुत कुछ लिखा होता।

'शायद बात तो कुछ भी नहीं थी। मैं यूं ही शक करती रही, जगबीर पर।' मीती

कई बार सोचती। अपने आप को धिक्कारती। 'मैं शायद खुद ही अपनी बातों से, हरकतों से जगबीर को अपने से दूर कर लेती हूं।'

जगबीर अब फिर बेहद सहज हो गया था। कभी मीती के घर के काम में हाथ बंटा देता, कभी गुड्डू, कभी प्रीती के साथ खेलता या उनका होमवर्क करवा देता।

मीती सोचती, 'जगबीर फिर से मेरे पास, घर में, बच्चों के पास वापस आ गया है।'

गाड़ी धीमी हो रही थी। बच्चे नीचे उतर आए थे। मीती ने आंखें खोलकर देखा। जगबीर शायद हाथ-मुंह धोकर आया था। उसका चेहरा बेहद ताजा लग रहा था। मीती का मन हुआ कि वह भी उठकर मुंह-हाथ धो आए, बालों में कंघी करे। शायद चेहरे पर भी कुछ चमक आ जाए। बुखार होने के कारण उसका चेहरा तो मुरझाया पड़ा था। स्टेशन आ चुका था। जगबीर दोनों बेटियों को लेकर नीचे उतर गया था। वह उठकर बाथरूम तक गई। उसने हाथ-मुंह धोया, कंघी की। होंठों पर हल्की-सी लिपिस्टिक भी लगाई। उसे अपने आप कुछ हल्का-हल्का लगा। उसका बुखार भी कुछ कम हो गया था। वह अपनी सीट पर बैठकर बाहर प्लेटफार्म की चहल-पहल देखने लगी। तभी, सामने वाली सीट की औरत ने कहा--

"आपको इतना बुखार था तो सफर नहीं करना चाहिए था।"

"बस, कुछ मजबूरियां ही थीं।"

बस, फिर बातों का कुछ सिलसिला चल पड़ा। कहां जा रहे हैं, कहां से आ रहे हैं, आदि-आदि। मीती का मन हुआ कि वह पूछे--उसका साथी उसका क्या लगता है? अगर पति है, तो इतना प्रेम अभी तक कैसे है? लेकिन वह चुप रही। गाड़ी सरकने लगी थी। जगबीर के हाथ में केले थे। गुड्डू ने मम्मी की ओर एक केला बढ़ाया। मीती ने 'न' में सिर हिला दिया। उसका मन सेब खाने को कर रहा था। मीती जब भी बीमार होती है, उसके मन में सेब खाने की इच्छा जाग्रत हो उठती है। बुखार अब कुछ कम हो गया था और उसे सेब खाने की इच्छा हो रही थी। लेकिन अगला स्टेशन अभी बहुत दूर था। उसने बेटी से पूछा तो उसने फ्राक की जेब में से डायरी निकालकर बताया कि अगला स्टेशन तो सात बजे आएगा। उस समय साढ़े पांच बज रहे थे। उसके दिल में घबराहट-सी होने लगी। सुबह से कुछ खाया नहीं था। उसने गुड्डू को टोकरी में से बिस्कुट निकालने के लिए कहा।

"कुछ और चाहिए?" जगबीर ने पूछा।

वह अवाक् नजरों से उसे देखती रही। फिर बोली, "सेब।"

"सेब? मगर यहां सेब? गाड़ी रुकेगी तो पता करूंगा। पहले क्यों नहीं कहा?"

यह कहकर वह फिर पढ़ने में व्यस्त हो गया। मीती ने सोचा था कि वह कुछ खाने के लिए पूछेगा। उसकी भाभी और मां ने बहुत कुछ खाने के लिए दिया था, मगर जगबीर

अपने आप में मस्त था। उसका कंठ भर आया। उसे लगा, अभी उसके आंसू बह निकलेंगे।

'मेरी यही कद्र है, मेरी इतनी ही परवाह है! मेरी बीमारी में भी जरा-भी हमदर्दी नहीं। सामने वाला जोड़ा था कि उनकी बातें ही खत्म नहीं होने को आ रही थीं। ऐसी कौन-सी बातें होंगी... ।'

उसे अपने आरंभिक दिन स्मरण हो आए। वे दिन जब जगबीर कितना प्यार करता था, कितना अपनापन था उसकी बातों में! उसे बात-बात पर हंसाता रहता। जगबीर दफ्तर से लौटता तो वह चाय बना लाती, दोनों मिलकर चाय पीते। कितनी-कितनी देर जगबीर उसे अपने पास से उठने न देता। दफ्तर की बातें, अखबार की बातें, नई पढ़ी किताबों की बातें...पर अब कहां गए वे पल, वे शामें...वह अपनापन! क्या इसकी जिम्मेदार वह है? जगबीर है? या वे दोनों? जगबीर तो हर बात का दोष उसके ही सिर पर मढ़ता है।

विवाह के कुछ साल बाद सारे अर्थ ही क्यों बदल जाते हैं? बोरडम क्यों आ जाती है? दोनों अपने संबंधों में ताजगी क्यों नहीं कायम रख सकते?

वह अपने मन में बहुत सोचती है, इन सब के विषय में। अपने व्यवहार को जांचती-परखती है। उसे अपने आप में कहीं दोष नजर नहीं आता। वह सोचती है, वह तो पूरी वफादार है, जगबीर की ओर, इस घर की ओर। पूरी ईमानदारी से गृहस्थी निभा रही है, जगबीर ही समय-समय पर दूसरी लड़कियों के साथ घूमता रहता है। घर की ओर से लापरवाह हो जाता है।

वह अपने मन को बहुत समझाती है कि जहां पुरुष-स्त्रियां एक साथ मिलकर काम करेंगे, अपने काम को, अपने वातावरण को सहज बनाए रखने के लिए आपस में सहयोग, सद्भावना तो रखेंगे ही। लेकिन, उसके लिए आज रोमांस इसके साथ, कल उसके साथ...जगबीर का इस प्रकार लापरवाह, बेरुख हो जाना, उसको बहुत चुभता है। जैसे उसका अस्तित्व हो ही न! पति जो कहे, प्रत्युत्तर में सत्य-वचन कह दो, हां में हां मिला दो। वह अपने दफ्तर में काम करती मिसेज खन्ना के बारे में सोचती। वह तलाकशुदा थी। न वह पति के साथ रहकर खुश थी और अब भी कहां खुश थी! हर पुरुष की ललचाती नजरें उसे पूरी तरह डकार जाने के लिए लार टपकाती फिरतीं।

मिस वोहरा पर तो सभी आस लगाए बैठे हैं कि कब वह उनमें से किस पर मेहरबान होती है।

विवाहितों में अधिकतर पुरुष औरतों के सख्त विरोधी होते हैं।

"अजी, देश पर भी औरतों का राज है और घर में भी। आजकल तो औरत की आज्ञा के बिना घर में पत्ता भी नहीं हिल सकता।"

मि. कपूर उस दिन कह रहे थे, "भाई-भाई में मनमुटाव पैदा करने वाली औरत ही होती है, मां-बेटे में ममता का धागा तोड़ने वाली बीवी औरत ही होती है। ससुर-बहू के,

देवर-भाभी के झगड़े के बारे में भी कभी सुना है? और दूसरी ओर बहू-सास, ननद-भाभी, देवरानी-जेठानी, की कभी नहीं बनती। औरत, औरत को काटती है... ।''

मि. महेन्द्र कहते, ''हार्ट-फेल से निन्यानवे प्रतिशत आदमी पत्नियों के जुल्म के कारण मरते हैं और मजे की बात यह है, हार्टफेल आदमियों का ही ज्यादा होता है, औरतों का नहीं... ।''

पास बैठी कोई महिला सहकर्मी बात काट देती, ''क्यों? बहुत सारी औरतें भी हार्ट-फेल से मरती हैं।''

''वह तो बस एक प्रतिशत ही होती हैं। उनके पति जालिम होंगे। कहां निन्यानवे प्रतिशत और कहां एक प्रतिशत!''

''औरतों में सहनशक्ति अधिक होती है इसलिए उनके दिल पर असर नहीं होता।''

''नहीं जी, वे झट आंसू बहाने लगती हैं...दस लोगों के आगे दिल का गुबार निकाल आती हैं और आदमी बेचारा अपने अंदर ही अंदर कुढ़ता रहता है... ।''

मि. गुप्ता को सब 'ऐंटी-बीवी' के खिताब से बुलाते हैं। वह अक्सर ही पत्नी-विरोधी चुटकले सुनाता रहता है और लोगों को हंसाता रहता है।

एक दिन बोला– एक जनाजा जा रहा है। पीछे तीन-चार हजार आदमी थे। जनाजे के आगे-आगे एक कुत्ता था, जिसे हार डाल रखा था। एक आदमी अपने घर की खिड़की में से इतनी भीड़ देखकर हैरान हुआ। वह घर से बाहर आ गया और जनाजे के साथ चलते हुए एक आदमी से पूछने लगा–यह किसका जनाजा है?

जब कोई जवाब नहीं मिला तो उसने आगे बढ़कर एक और आदमी से पूछा–यह किसका जनाजा है? बहुत भीड़ है। जरूर कोई बड़ा आदमी मरा होगा?

आगे जाकर पूछा। जवाब नहीं मिला।

वह अजनबी बहुत हैरान था। कोई जवाब ही नहीं देता। यह कोई सीमेंट का परमिट लेने तो मैं नहीं आया जहां सब कहते हैं–अगली खिड़की पर... अगली खिड़की पर... ।

आखिर, वह अजनबी सबसे आगे पहुंच गया, वहां सब एक सुर में बोल रहे थे–राम नाम सत्य है।

उसने एक व्यक्ति से पूछा, यह किसका जनाजा है?

-मेरी पत्नी का।

-बहुत अफसोस हुआ। दुख जतलाते हुए वह बोला, क्या हुआ था?

-यह कुत्ता देख रहे हो न, जनाजे के आगे, इसने ही काटा था–एक घंटा पहले।

-ओह! बहुत बुरा हुआ।

अजनबी बोला। कुछ पल चुपचाप जनाजे के साथ चलता रहा। फिर झिझकते हुए धीमे स्वर में उसके कान में बोला, भाई साहब, यह कुत्ता कुछ देर के लिए उधार दे

सकते हैं?

"मुझे तो कोई एतराज नहीं। मगर मेरे पीछे चलते तीन-चार हजार आदमियों ने पहले ही इसे बुक किया हुआ है। आप भी अपना नंबर लगा लो।"

सभी ठहाका लगाकर हंस पड़े, पर औरतों में से एक बोली, "मि. गुप्ता, आप तो जरूर यह कुत्ता बुक करवाने गए होंगे?"

फिर एक और जोरदार ठहाका!

दूसरी बोली, "आप सब तो ऐंटी-बीवी हैं। आपका बस चले तो..."

तीसरी ने कहा, "मि. गुप्ता, यह चुटकला सुनाकर आपने हमारा दिल तोड़ दिया है।"

मि. महेन्द्र बोले—इसमें दिल तोड़ने वाली क्या बात है? एक बच्चे ने अपने बापू से पूछा—बापू, तुम सांप से डरते हो?

बापू बोला—नहीं।

-शेर से?

-बिलकुल नहीं।

-डाकू से?

-उससे क्या डरना भला?

-फिर बापू, तुम मम्मी से क्यों डरते हो?

एक जोरदार कहकहा गूंज उठा।

ऐसे चुटकले मीती अक्सर ही दफ्तर में सुनती रहती। वह अपनी स्त्री सहकर्मियों के बारे में सोचती—गीता का घरवाला अक्सर इसे मारता था, शराब पीकर। अगर गीता शराब पीने से मना करती तो कहता—तू मुझे शराब-सिगरेट से मना करने वाली कौन होती है? तू अपनी कमाई की हेंकड़ी दिखाती है, जा कर ले जो करना है, मैं और पिऊंगा...।

गीता कमाती है। पति से गालियां और मार भी खाती है। फिर क्यों नहीं वह अलग हो जाती?

प्रेम का पति अपनी किसी छात्रा के चक्कर में घरवाली को छोड़कर अलग रह रहा है। प्रेम बच्चों को अकेली पाल रही है, किंतु दिल में फिर से पति की वापसी की कामना है। यही मनौतियां मांगती, व्रत रखती, तावीज बनवाती, जन्म-पत्रियां दिखाती घूमती है कि किसी तरह ईश्वर उसके पति को सुमति दे और वह वापस आ जाए।

हम औरतें क्यों इतनी जिल्लत सहती हैं? क्यों मर्द की छांव को तरसती हैं? एक जालिम मर्द की?

इस विषय में दफ्तर में प्रायः ही बहस होती, किंतु परिणाम कुछ न निकलता।

मीती का मन कई बार विद्रोही हो उठता, लेकिन फिर साबुन के झाग की तरह गुस्सा नाली में बह जाता। आदमी के बिना हम अधूरी हैं...वह सोचती।

पिछले वर्ष जगबीर का तबादला नए दफ्तर में हो गया था। वहां तीन-चार लड़कियों से घिरा यह अकेला मर्द था। सुधा और उमा तो एकदम जवान और कुंआरी थीं। अन्य दोनों का अभी हाल ही में विवाह हुआ था। सभी बेहद स्मार्ट, बहुत सोफेस्टिकेटेड, बहुत चंचल...उनकी बातों का विषय होता—कपड़े, पिक्चरें, हीरे-हीरोइनें, पैसा, हीरों का सैट। बात-बात पर कहकहे। एक खास तरह की नजाकत थी उनमें। हर एक का मजाक उड़ाना, हर बात को बहुत सहज ढंग से लेना...।

आरंभ के दिनों में जगबीर इस माहौल से घबरा गया था। वे लड़कियां आपस में कानाफूसी करतीं और हंस पड़तीं। जगबीर को लगता, वे उसी पर हंस रही हैं। उन लड़कियों ने दूसरे सेक्सन के बड़ी उम्र के आदमियों और औरतों के बहुत से नाम रखे हुए थे।

"वह 'बेबे' जा रही है।" एक मोटी औरत की ओर संकेत कर उमा बोली।

"आज उसका 'लाला' कहां है?"

कुछ ही दिनों बाद जगबीर को मालूम हुआ कि उसका कोड नाम उन्होंने 'बुड्ढा' रखा हुआ है। वह गुस्से से तिलमिला उठा—इन लड़कियों की यह मजाल!

वह हर बात आकर मीती को बताता। मीती दिलासा देती या कहीं और ट्रांसफर करवा लेने को कहती।

एक दिन जगबीर क्रोध में आकर बोला, "मीती, ये लड़कियां बहुत बदतमीज हैं। बड़ी पढ़ी-लिखी बनती फिरती हैं। सलीका नाम की चीज नहीं हैं इनमें। हर वक्त कानों में खुसर-पुसर और खी-खी...।"

"तुम साथ वाले किसी सेक्शन में कोई पुरुष दोस्त बनाओ न। मारो गोली इन लड़कियों को।" मीती गंभीर होकर सलाह देती।

"तू नहीं समझती। काम तो वहीं करना है न...उसी कमरे में मेरा टेबल है।"

"फिर इस चैलेंज को स्वीकार करो।"

"क्या मतलब?" उसने मीती की ओर हैरान होकर देखा। मगर मीती कुछ न बोली।

इधर मीती ने गौर किया कि जगबीर अंग्रेजी की कुछ किताबें खरीद लाया था—'हाऊ टू रिमेन यंग?' 'हाऊ टू मेक फ्रैंड्स?' और कुछ चुटकलों की किताबें।

मीती मन ही मन मुस्कुराती। यह सब उस सेक्शन की जवान लड़कियों का चैलेंज स्वीकार करने की तैयारियां थीं।

एक दिन, वह हंसकर बोली, "हर समय यूं किताबों में डूबे रहते हो, जैसे कोई परीक्षा देनी हो। कोई ऐसी भी किताब ले आओ न—'हाऊ टू प्लीज योर वाइफ?' या 'हाऊ टू बी ए गुड हसबैंड?'

"दुनिया में बीवी को खुश करना बहुत कठिन काम है। हां, इन किताबों का दफ्तर की लड़कियों पर असर जरूर हो रहा है। बस, देखना, मैं अब कैसे उनका दिल जीतता

हूं। मैं आजकल दो-चार चुटकले सुनाकर उन्हें हंसा देता हूं। वे भी मेरे साथ खुल रही हैं। मुझे भी अपने सर्किल में मिला रही हैं।''

''यह न हो कि तुम उनके सर्किल में मिलते-मिलते मुझे अपने सर्किल से निकाल दो।'' मीती कहकहा लगाकर बोली।

''तूने फिर वही दकियानूसी बातें शुरू कर दी। तू तो पागल है, शक्की मिजाज। जहां काम करो, वहां सबसे घुलना-मिलना पड़ता है। तेरी तरह नहीं, काम पर जाओ और बस काम में ही लगे रहो।''

मीती का चेहरा एकदम बुझ गया। वह रुआंसी हो उठी और वहां से उठकर रसोई में चली गई। लेकिन, जगबीर उसके पीछे ही रसोई में आ गया और उसे बांहों में भरकर बोला–

''अरे मेरी मीती! तू तो नाराज हो गई। लड़कियां तो बेवकूफ हैं, बिलकुल बेअक्ल! मगर क्या करें, जहां रहना है, उस वातावरण में अपने आप को ढालना ही पड़ता है।''

''मैं भी कितने सालों से काम कर रही हूं। मैं तो अपने पुरुष सहकर्मी के साथ अकेली कभी कहीं सोफ्टी खाने या कनाट-प्लेस घूमने नहीं जाती।''

''भई, सभी तेरे जैसे साधु-संत तो नहीं हो सकते हैं। फिर जो हूं, तेरे सामने हूं, तुझसे कभी कुछ छिपाया नहीं। अगर मेरे मन में मैल हो तो बाहर जो मन में आए करता रहूं, तुझे सुराग तक न लगे। हमारे कई सहकर्मी बाहर बहुत मुंह मारते हैं...।''

''बाकी लोगों से मेरा मतलब नहीं है। मुझे तो तुम्हारी फिक्र है।''

''मेरी फिक्र करने की जरूरत नहीं, मीती! तू बहुत कड़े स्वभाव की औरत है। तेरा वश चले तो तू अपने छोटे बटुए में मुझे डालकर साथ में लिए घूमे। वो जादूगरनियों की बातें तो सुन रखी हैं न...आदमी को मक्खी बनाकर दीवार पर चिपका लेती थीं। पत्नियां चाहती हैं, पति किसी के संग हंसकर बातें न करे, किसी की ओर आंख उठाकर न देखे। किसी की तारीफ न करे। तुरंत ईर्ष्या करने लगती हैं। अगर एक औरत के आगे दूसरी की बुराई कर दो तो बहुत खुश होती हैं। अब देखो न, उमा और सुधा पक्की सहेलियां होने का दंभ भरती हैं। लेकिन, मुझसे दोनों एक-दूजे की बुराई करती हैं। एक दिन मैंने सुधा से कहा—तू बहुत स्मार्ट है। तेरे सामने उमा तो कुछ नहीं। बस फिर क्या था... वह लगी, उमा की बखिया उधेड़ने। यही गुर मैंने उमा के साथ अपनाया।''

''मैं तुमसे सहमत नहीं। सिर्फ औरतें ही ईर्ष्यालु स्वभाव की नहीं होतीं। आदमी औरतों से भी अधिक शक्की, ईष्यालु और दंभी होते हैं। उनकी पत्नी किसी के साथ बात तो कर ले! झट उसे घर से निकाल देंगे। अगर बहुत ही गुस्से में आ जाएं तो बीवी को जान से ही मार देंगे।... यही नहीं, अपने दोस्तों से भी बेहद ईर्ष्या होती है उन्हें। वे भी एक-दूसरे की पीठ पीछे बुराई करते हैं।''

ऐसी बहस मीती पति के साथ कई बार कर चुकी थी, लेकिन पानी में मथानी मारने के समान।

जब से जगबीर सुधा के साथ घूमने लगा है, उसका व्यवहार घर में फिर बदल गया है। सुधा अभी खाली है, वर की तलाश में। खाली बैठी क्या करे? दिल लगाने को शुगल-मेला ही सही। जगबीर को साथ लिए घूमती है, बदनामी से बचने के लिए अपनी सहेली उमा को साथ ले जाती है। तीनों कभी कनाट-प्लेस, कभी किसी रेस्तरां में चाइनीज खाना खाने, कभी हनुमान मंदिर में कोई मन्नत मानने। और कुछ नहीं तो सड़कें ही नाप लीं। सुधा को कोई शॉपिंग करनी है तो जगबीर साथ जाएगा।

आरंभ में तो जगबीर सब बता देता था, वह लड़कियों के संग कहां गया। उनकी बेवकूफियों को बता-बताकर मीती को हंसाता रहता।

एक दिन जगबीर बोला, "सुधा को तेरे बनाए करेले बहुत पसंद आए थे। बड़ी तारीफ कर रही थी।"

"क्यों? उनमें क्या खास बात थी?" मीती ने पूछा।

"दरअसल, उसकी मां तो उसके लिए कभी कुछ बनाकर देती नहीं। उसकी मां तो सोशल-वर्कर है। घर में कभी टिककर नहीं बैठती। नौकर ने जो बना दिया, खा लिया। इसलिए, तेरी बनाई हुई सब्जियां बड़े चाव से खाती है।"

मीती आगे कुछ नहीं बोली। वह कई दिनों से देख रही थी कि लंच के लिए जगबीर पहले से अधिक सब्जी लेकर जाता था।

"वह बेचारी बहुत ही अकेली है। घर में न कोई बहन, न भाई। मां-बाप के साथ कोई बात नहीं। बाप राजनेता है और मां सोशल-वर्कर। दोनों घर से गायब रहते हैं।"

"हूं" मीती ने हुंकार भरी।

"उसके मां-बाप को उसके विवाह की कोई चिंता ही नहीं।" जगबीर बोला।

"दफ्तर में उसे कोई नहीं जंचा?" मीती ने टोहती हुई दृष्टि से पति की ओर देखा।

"दफ्तर में? वह तो अमीर मां-बाप की लड़की है। नौकरी तो वक्त काटने के लिए करती है। उसके सपने तो बहुत ऊंचे हैं। वह तो विदेश जाने के सपने देखती है।"

"फिर तुम क्या मदद कर रहे हो?"

"मैं क्या मदद कर सकता हूं? बस थोड़ा-बहुत दुख-दर्द बांट लेता हूं। कभी-कभी घूमने के लिए साथ चला जाता हूं।"

एक दिन, मीती ने जगबीर को घर जल्दी लौटने के लिए कहा। गुड्डू और प्रीती के पेपर थे। जगबीर तुनककर बोला, "क्यों? तू किस मर्ज की दवा है? तू भी तो पढ़ा सकती है, उनकी तो पी-एच. डी. की पढ़ाई नहीं है!"

"तुम जल्दी क्यों नहीं आ सकते?" मीती ने हक जताते हुए पूछा।

"मैं आज सुधा वगैरह के साथ पिक्चर जा रहा हूं। टिकटें आई पड़ी हैं।"

"अच्छा जी! अब उनके साथ पिक्चरें देखनी भी शुरू कर दी हैं। हमारे साथ तो छह-छह महीने कभी कोई पिक्चर नहीं देखते। हमारी कोई अहमियत ही नहीं। बच्चों की पढ़ाई की कोई कीमत ही नहीं। वाह! सुधा ही सब कुछ हो गई!"

"तुझे मेरे हर संबंध में इश्क की गंध आती है।... तेरे दिमाग में शक भरा पड़ा है।"

उस दिन, वह जी भरकर बोली थी। किंतु जगबीर टस से मस नहीं हुआ था। रात को बहुत देर से घर लौटा था। मीती ने रो-रोकर आंखें सुजा ली थीं। जगबीर कई दिनों तक उसके साथ नहीं बोला था। उसे चिढ़ाने के लिए ही शायद रोज लेट आता था। मीती अपना खून जलाती रहती। अपनी खीझ वह बच्चों पर उतारती। कभी वह सोचती, बच्चों को लेकर कहीं चली जाए। पर कहां? यही सोचकर मन मारकर रह जाती।

"मम्मी, अगला स्टेशन आ गया।" प्रीती चिल्लाई। मीती चौंककर उठ बैठी। गाड़ी रुकी हुई थी। अंधेरा पसर रहा था। प्लेटफार्म और गाड़ी की बत्तियां जल रही थीं।

जगबीर सेब ले आया। उसने मीती के पास बैठकर सेब काटा और उसको खिलाने लगा। बीच-बीच में एक-आध टुकड़ा बच्चों को भी दे देता।

सेब खाकर मीती के मन को कुछ राहत-सी मिली। अब उसकी आंखें भी खुल गई थीं। बुखार कम हो गया था।

उसने जगबीर से कोई बात करनी चाही लेकिन जगबीर चुपचाप सेब काटता रहा। आखिर, मीती ने ही बात छेड़ी, "कल तो तुम दफ्तर नहीं जा सकोगे। एक तो रात भर की अनिद्रा, दूसरा, घर में सारा सामान बिखरा पड़ा होगा। मुझे बुखार भी है...।"

"बस, तेरी फिक्र करने की आदत नहीं गई। घर तो पहुंच लें। फिर देखेंगे। अभी सारे फिक्र गिना दोगी।" जगबीर की आवाज में खीझ थी।

मीती का गला भर आया। सेब का हाथ वाला टुकड़ा हाथ में ही रह गया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह जगबीर से सहज रूप में बात कैसे करे। जगबीर ने सेब काटकर आगे बढ़ाया तो मीती ने और लेने से इंकार कर दिया।

"क्यों? अब क्या हो गया? बिल्ली छींक गई?" जगबीर ने व्यंग्य किया।

मीती कुछ नहीं बोली। गाड़ी बहुत तेजी से आगे बढ़ी जा रही थी। बाहर अंधेरा फैल रहा था। अगला स्टेशन रात के ग्यारह बजे आना था और उसके बाद डेढ़-बजे अपना शहर दिल्ली। फिर टैक्सी और फिर अपना घर।

'अपना घर' शब्द जैसे ही मीती के जेहन में घूमा, उसका दिल बैठ-सा गया। अब कुछ दिन मां के घर रहकर वह बहुत खुश थी—बहनों, भाइयों, भतीजियों में। अब 'अपने घर' में जगबीर की वही बेरुखी, वही लापरवाही, वही उदास शामें, पति की प्रतीक्षा में बिछी आंखें...रोज की रुटीन।

उसका कंठ फिर भर आया। वह खिड़की से बाहर दौड़ते दरख्तों और तेजी से पसरते अंधेरे को देख रही थी। कुछ देर बाद ही उसको थकान महसूस होने लगी, वह फिर से लेट गई।

जगबीर को कटे हुए बाल बहुत पसंद थे। मीती को अपने लंबे बालों पर गर्व था, उन्हें कटवाने को वह कभी तैयार नहीं हुई। एक दिन, जगबीर आकर बोला, "आज उमा और सुधा दोनों ने बाल कटवा लिए।"

"क्यों?"

"मैंने उन्हें राय दी थी कि बाल कटवाकर वे ज्यादा स्मार्ट लगेंगी और उन्हें वर भी जल्दी मिल जाएंगे।"

"वे तुम्हारी बात मान गईं?"

"और क्या? तेरी तरह जिद्दी नहीं हैं।"

"मुझे क्या जरूरत है बाल कटवाने की? मैंने तो वर ढूंढ ही लिया है।"

"ढूंढ तो लिया, पर उसे रिझाना तुझे नहीं आता।"

"तुम्हें रिझाना तो बहुत कठिन है। सारा दिन गधों की तरह काम में लगे रहो। घर संभालो, नौकरी करो। बच्चों को देखो। साहब तब भी खुश नहीं। दौड़ेंगे उन तितलियों के पीछे, हूं!" वह बहुत गुस्से में आ गई थी।

"तुझे अपनी जुबान पर नियंत्रण नहीं, जो मुंह में आए, बक देती है। जलन कूट-कूटकर भरी हुई है तेरे अंदर। पता नहीं क्यों मैं तेरे साथ रह रहा हूं? दिल तो कर रहा है, आज ही घर छोड़कर कहीं चला जाऊं।"

मीती का दिल जैसे किसी ने मुट्ठी में भींच लिया हो। वह शक्तिहीन हो गई और खामोश-सी जगबीर की बातें सुनती रही। उस दिन के बाद, उसने सुधा के बारे में जगबीर से कोई बात नहीं की।

बच्चों की छुट्टियां हुई तो वह भी छुट्टी लेकर मां के पास आ गई। मीती के पिताजी ने जगबीर को आने के लिए लिखा था तो वह हफ्ते की छुट्टी लेकर आ गया था।

यह सब सोचते-सोचते उसे पता नहीं कब उसकी आंख लग गई। वह गहरी नींद में सो गई।

प्रीती ने जगाया, "मम्मी उठो, हमारा स्टेशन आ रहा है।"

वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। वह कई घंटे सोई रही थी। जगबीर ने सारा सामान संभाल लिया था। दोनों लड़कियां भी तैयार खड़ी थीं। उसने पानी के दो घूंट भरे और चेहरे पर हाथ फेरा।

प्लेटफार्म पर उतरे तो मीती को लगा कि उसका सिर चकरा रहा है और वह गिर पड़ेगी। टैक्सी में वह निढाल होकर बैठ गई। जगमग करती सड़कें सुनसान थीं। उसे डर

लग रहा था कि उनकी टैक्सी सड़क के बीच रोककर कोई उन्हें लूट ही न ले। टैक्सी उन सुनसान सड़कों पर सरपट दौड़े जा रही थी। इक्के-दुक्के स्कूटर या टैक्सी सड़कों पर दिखाई दे रहे थे।

घर के दरवाजे खोले। सामान रखा। मीती का गला प्यास से सूख रहा था। लेकिन रात के ढाई बजे किसको जगाकर पानी मांगा जाए? मीती चुप रही। दोनों बेटियां तो बिस्तर पर लेटते ही सो गईं। जगबीर दरवाजे पर लगे लैटर-बाक्स में से डाक निकाल लाया था और पढ़ रहा था। उसने एक लिफाफा मीती के आगे रख दिया।

वह सुधा के विवाह का कार्ड था। उसने प्रश्नसूचक नजरों से जगबीर की ओर देखा।

''मेरे जाने से पहले उसकी बात एक जगह पक्की हो गई थी। वह लड़का स्टेट्स से विवाह करवाने आया है।''

जगबीर का स्वर बेहद उदास था। मीती कुछ न बोली। जगबीर बिजली बंदकर लेटा तो उसने अपना हाथ मीती के जलते हुए हाथ पर रख दिया। वह जगबीर की बांहों में सिमट गई। मन में यही सोचकर कि बस अब इसके बाद अगर फिर जगबीर ने ऐसा ही किया तो वह माफ नहीं करेगी, यह आखिरी बार है।

मरा नहीं जाता

सुखवंत कौर मान

दूर से स्त्रियों के रोने-पीटने की आवाज आ रही है। दोनों हाथों से खुद को पीटती वे अब आंगन में प्रवेश कर गई हैं। घेरा बनाकर खड़ी हो गई हैं। एक औरत घेरे में से निकलकर बीच में आ खड़ी हुई है। हवा में बांहें उठाकर उसने आलाप दी है। "हाय ओ शेरा..." की दर्दनाक पुकार आसमान को चीर गई है। कभी जांघें, कभी छाती और कभी गालों को पीटती स्त्रियां हाल-बेहाल हो रही हैं। चलती हवा जैसे ठहरकर खड़ी हो गई है। आंगन में घूमते-फिरते बच्चे एकाएक ठिठककर रह गए हैं।

आस-पड़ोस की पांच-सात औरतें सफेद वस्त्रों से सिर-माथा ढककर उस घेरे में शामिल हो गई हैं। एक बार फिर जैसे गला फाड़कर सभी ने अपनी जांघों, छातियों और गालों को पीटना शुरू कर दिया है।

थक-हांफकर वे अब बैठ गई हैं। बाहर से आई हुई औरतें कभी मरने वाले की मां, कभी बहन और कभी पत्नी के गले लगकर लंबे-लंबे 'वैण'[1] डालती हुई देखी नहीं जातीं। पास बैठी हुई औरतों की आंखों में से भी लगातार आंसू बहे जा रहे हैं। किसी को अपना भाई तो किसी को पुत्र याद आ रहा है।

धड़ाम से मृतक की घरवाली जमीन पर आ गिरी है। सभी के हाथ-पैर फूलने लगे हैं। कोई उसकी तलियों को मल रही है, कोई पिंडलियों को दबा रही है और कोई चम्मच से उसकी भिंची हुई बत्तीसी खोल रही है।

"इस बेचारी ने भी क्या देखा?... न जिंदों में, न मरों में।"

"आप खुद जग-जान से गया, ये वैसे ही जीते-जी चिता में पड़ गई।" कहनेवाली ने एक लंबी आह भरी है। बहू ने अब आंखें खोल ली हैं। दौड़कर कोई अंदर से तकिया ले आया है। पीठ टिकाकर वह बैठ गई है।

मृतक की मां अब सिसकते स्वर में बता रही है, कैसे बस मोटर-साइकिल से आकर टकराई और कैसे वहीं के वहीं दोनों जने... बताते हुए उसका अपना गला भर आया है। पास बैठी बेटी ने मां के कंधे पर हाथ रख दिया है। नजदीक बैठी हुई औरतों की आंखों

---

1. मृतक के गुण गा-गाकर किया जाने वाला विलाप।

से भी आंसू टपकने लगे हैं।

"ये देखो, बेबे के जीने का अब कोई स्वाद है?... बहू का गम अलग है, अपने अंदर अलग आग लगी हुई है, ऊंचे-लंबे जवान बेटे को अपने हाथों विदा कर बैठी है।"

"बीबी, रब ऐसा किसी के साथ न करे। बड़ा भी ऐसे ही गया था, न चारपाई पकड़ी, न सेवा करवाई। बस, घड़ी-पलों में...। अभी तो पहले वाले जख़्म ही नहीं भरे थे।"

"इनके घर का तो, बीबी, नाश ही हो रहा है।"

"बहन, आजकल मौत का क्या कहना...ये देख, मेरी देवरानी का भाई बस सोते-सोते ही सो गया। न खांसी, न बुखार।"

"हाय री, परसों दीपो का भाइया अखबार पढ़ रहा था कि भई एक बंदे का बस में बैठे-बैठे ही हार्ट-फेल हो गया!"

"री बहन, ये नहीं टलती...हमारी बहू का बाप कुंए पर से चला आ रहा था, यूं ही हल्की-हल्की बूंदे पड़ीं तो दरख्त के नीचे जा खड़ा हुआ। ऊपर से कड़ककर जो आई बिजली, वहीं ढेर हो गया, बेचारा!"

"... और हमारे नाती का दामाद, लफटैन था फौज में, देखे भूख उतरती थी, अपने काके जैसा ही अच्छा तगड़ा था। पहले हल्ले ही मारा गया।" कहने वाली ने सिसकी भरी।

"वहां भी अच्छे लोगों की ही जरूरत है बहन, अपने दलबीर जैसा कौन था!"

"दो दिन पहले मुझे बाजार में मिला, हंसते-हंसते खुद मोटर-साइकिल से उतरकर मेरे पैरों को हाथ लगाया था।"

"एक दिन पहले संगरांद वाले दिन बड़े गुरुद्वारे में मिला, चेहरा खूब दग-दग करता था। कोई अनोखा ही नूर था बीबी उसके मस्तक पर!"

"रहना जो नहीं था उसे।"

"वैसे भी बड़ा भला और नेक था।"

अब, सभी चुप्पी साधे सिर झुकाए बैठी हुई हैं। बीच-बीच में सिसकने की आवाज आ रही है। बहुत नजदीक से दो जहाज आसमान से गुजरे। समीप ही खेलता हुआ बच्चा सहमकर मां की गोद में आ छिपा। मृतक का बेटा है।

"जल्दी-जल्दी बड़ा हो जा अब।" पास बैठी एक बुर्जुग-सी औरत लड़के के सिर पर हाथ फेरते हुए कहती है।

"हां जी, अब उसकी उम्मीदें भी बेचारी को इस पर ही हैं।"

मां की गोद में बैठा बच्चा अब हंस रहा है। बच्चे को हंसता देखकर मां के मुंह पर भी एक उदास-सी मुस्कान फैल गई।

अब, दो और जहाज पहले से भी अधिक नजदीक से गुजरे।

"इस आग-लगी लड़ाई ने तो घर के घर उजाड़ दिए हैं। करम कौर का पोता, वह

भी पहलौठी का, अब कोई बीस साल बाद दूसरे का मुंह देखा उन्होंने, पर जितने में रब रखे...तब इक्कीस दिनों का था छोटा।" बात जैसे कहने वाली के गले में फंसकर रह गई है।

"तुमने नहीं सुना, यहां नजदीक ही एक ही दिन, एक ही घर इकट्ठी चार तारें आई हैं...आठ बेटे थे जट्ट के। जमीन थोड़ी थी इसलिए छह को नौकरी करा दी। ऐसा तो बहन, रब किसी दुश्मन से भी न करे।"

"हमारी जीतो का देवर बताता है कि वो चार दिन भूखे-प्यासे टैंकों में छुपे रहे, कहीं सिर निकाला नहीं कि उड़े।..."

"हमारे गांव के भी एक लड़के की अस्थियां आ गई हैं। अभी परसाल ही तो ब्याह हुआ था। फाहे जैसी बहू है... रोती हुई देखी नहीं जाती। मां को अलग गश आ रहा है।"

"हां, बीबी मरने वाले तो मर जाते हैं, पिछले वैसे ही जीते-जी आग में पड़ जाते हैं। कहते हैं—लेने आया आप और नाम लगाया ताप...कल बहू के मायके से खत आया है, उसकी मौसी का बेटा नमूनिए से..."

"आठ-दस रोज से बहुत ठंड पड़ रही है।"

"हमारे दरशे को भी कल से ठंड लगी हुई है। छाती रुकी हुई है उसकी। नाक-मुंह से सांस भी नहीं निकल रहा।"

"बीबी, लापरवाही न करना, ठंड लगना बड़ा खराब। बनक्शा, मुनक्का और मुलैठी दे उसे काढ़कर, एक दवा होती है यह जुशांदा।"

"सूखी ठंड पड़ भी बहुत रही है बहन, मेरे तो खुद पसलियों में दर्द हो रहा है। शहर भी पास कहां है, बहन? दवा दारू तो बहुत की है। जब से पिछले साल का नमूनिया हुआ है, हल्की-सी ठंड लगी नहीं कि पसलियों में चीसें उठ जातीं।"

"मुझे तो बीबी, रब का आसरा है। कई सालों से, आग लगी ये जोड़ों की दर्द हो रही थी। जोड़-जोड़ दुखता था। अंग-अंग टूटता रहता था। दवाइयां कर-कर हार गई थी। आराम आना हो तो धेले की अजवाइन से आ जाता है। मुझे तो दवाई बताई हमारी राज के मामा ससुर ने। बस, चवन्नी का अखरोट का छिलका, कूट-छानकर शहद में मिला लो... तुम मानोगी नहीं, रात को दूध से गोली ली और दिन में बिलकुल ठीक। मैंने तो बहुतों को बांटी हैं ये गोलियां। बस, थोड़ा गरम जरूर है।"

यह मृतक की मां है।

एकाएक, ठंडी हवा का झोंका जैसे पूरे शरीर में कंपकंपी पैदा कर गया है। एक-दो स्त्रियां तो पेशाब के बहाने उठकर गुसलखाने में भी हो आई हैं। लगता है, जैसे मुंह भी धो आई हों। वे आकर बैठ गई हैं, स्थिर। सभी चुप हैं। सिर्फ सांस लेने की आवाज आ रही है। या कभी-कभी कोई दबी-सी सिसकी मृतक की पत्नी के मुंह से उभरती है। आंखों

ही आंखों में एक-दूजी के कपड़ों को टोहती-परखती दृष्टि। बस, कभी-कभार हाय जैसी उबासी हवा में मिल जाती है।

"कितनी ठंडी हवा बह रही है!"

"जब से ओले पड़े हैं, पूरा शरीर ही जैसे जम गया है, चाहे जितने भी कपड़े पहन लो, पाला ही नहीं उतरता।" कहने वाली अपने गरम सूट में भी जैसे सिकुड़-सिकुड़ जा रही है।

दूसरे बरामदे में दरी पर बैठे पुरुषों की आवाजें स्पष्ट सुनाई दे रही हैं। राजनीति पर बातें हो रही हैं। एक-दो औरतों ने ऊब भरी उबासियां लीं।

मृतक की फूफी और गांव से आई स्त्रियां उठ खड़ी हुईं। बहू को दिलासा दे, बेटे के सिर पर प्यार भरा हाथ फेर और वाहेगुरु का हुक्म मानने के लिए कहकर वे धीरे-धीरे बाहर चली गईं। मृतक की फूफी और मौसी अंदर चली गईं। थकी होने के कारण आराम करना चाहती हैं।

दुग-दुग करता एक ट्रैक्टर आंगन में घुस आया है। नौजवान ड्राईवर ने जैसे ऊपर से ही छलांग लगा दी। आंगन में खेलते बच्चे अब ट्रैक्टर की ओर हो लिए। एक दसेक साल का लड़का उछलकर ट्रैक्टर की सीट पर जा बैठा।

पुरुषों की दरी पर से बोलने की ऊंची-ऊंची आवाजें आ रही हैं। मुरगी-फार्म और डेयरी-फार्म के बारे में बातें हो रही हैं। बीच-बीच में बहस भी चल रही है। "कुकड़ू-कूं..." आंगन में खड़े मुर्गे ने छाती तानकर जोर से बांग दी। "टीं-टीं" करती तोतों की कतार आंगन में लगे नीम के दरख्त पर बैठ गई। मृतक की फूफी उठकर चौके में चली गई। दरी पर बैठी औरतों ने एक-दूसरे को भावपूरित दृष्टि से देखा।

दिन ढल रहा है, ठंड बढ़ रही है।

"गरम सूट अब की मैं भी बनाती-बनाती रह गई।" कहने वाली अब पास बैठी औरत का सूट अपनी अंगुलियों से टटोलने लगी।

"कितना मुलायम है!"

"भला, क्या भाव आया है, बेबेजी?" पास बैठी एक अन्य स्त्री ने पूछा।

"बेटा लाया था, कहता था, पच्चीस लगे हैं मीटर के।"

"कपड़ा भी बेबे आज गहनों के भाव है।" अब सभी की निगाहें मृतक की बड़ी भाभी की नई बनवाई चूड़ियों पर टिक गईं।

"अभी बनवाई हैं क्या? नमूना बड़ा सुंदर है।" एक ने झिझकते-झिझकते पूछ लिया।

"नहीं, बनी तो पहले ही थीं।" चूड़ियों वाली झेंपती हुई-सी किसी काम के बहाने उठ खड़ी हुई। एक-दो ने तो नाक भी चढ़ाया, खुसर-पुसर शुरू हो गई। एक औरत ने अपनी टांगें फैलाते हुए लंबी-सी उबासी ली।

बरसीम की भरी-भराई रेहड़ी खड़-खड़ करती हुई आंगन में आ खड़ी हुई। कामगार इधर-उधर दौड़ रहे हैं। गांठें उठा-उठाकर चारे की मशीन के पास फेंक रहे हैं। पुरुषों की दरी पर आने वाले चुनावों के बारे में बहस-सी छिड़ गई है। ऊंची-ऊंची दलीलें दी जा रही हैं। एक-दो व्यक्ति उतावले-से उठकर भी चल दिए। मृतक की बड़ी भाभी जैसे अभी-अभी कपड़े बदलकर चौके में आई, छोटे-से गिलास में अपने बेटे के लिए दूध डलवाकर फिर अंदर चली गई। घूरती हुई-सी कुछ औरतें उसकी ओर देख रही हैं।

आंगन में लगी बकायन पर से हवा के कारण कितने सारे सूखे पत्ते झड़कर दूर तक फैल गए।

अब, विलायती गाय की नई बछिया आंगन में उछल-कूद करती आ घुसी। बच्चे उसके पीछे दौड़ते हुए उसकी पूंछ मरोड़ रहे हैं। हंस-हंसकर लोट-पोट हो रहे हैं। सभी का ध्यान उधर ही चला गया।

"बिलकुल हिरनी का बच्चा है।" उमंगित-सा कोई कह रहा है।

"गाय इतनी भली है, चाहे दिन में चार बार दुह लो।"

महरी ट्रे में चाय रखकर ले आई। बारी-बारी से ट्रे सबके आगे करती रही। कुछ औरतें गिलास पकड़ने में झिझक रही हैं।

"पकड़ो बीबी, छूट तो उसका गया जो चला गया। उस दिन का क्या कुछ छूटा हुआ है?" मृतक की चाची एक-दो औरतों के आगे चाय का गिलास रखते हुए कह रही है।

बच्चे अभी भी बछिया के पीछे दौड़ रहे हैं।

बरामदे में बैठे भोली और पप्पू एक-दूसरे से मसखरी कर रहे हैं। पप्पू तो भोली को चिकोटी काटने के लिए भी उतावला हो रहा है पर औरतों की ओर देखकर झिझक रहा है।

कुछ औरतों ने नाक चढ़ाते हुए चाय पीना आरंभ कर दिया। दो-तीन ने तो आधी चाय बीच में ही छोड़ दी। शायद मीठा कम है।

"बी बीरो! मीठा लाना कटोरी में।" मृतक की मां ने चौके में बैठी महरी को आवाज दी।

"कोई नहीं, रहने दो...।" दो औरतों ने रस्मी तौर पर कहा।

पुरुषों की दरी पर से एक दबा हुआ-सा कहकहा उभरा। भोली ने पीछे से आकर बरामदे में खड़े पप्पू के हाथ से गिलास छीन लिया है। अब पप्पू भोली के पीछे-पीछे दौड़ रहा है। दोनों हंसते जा रहे हैं और दौड़ते जा रहे हैं।

अंदर से फूफी के खुर्राटों की आवाज आ रही है। रोने-कलपने के बाद थककर सो गई है।

रात में बिजली की मशीन से दबादब पटूठे कुतरे जाने लगे। कामगारों के सिरों पर

खल के भरे हुए तसले देखकर एक-दो विलायती गायें जोर-जोर से रंभाने लगीं। रात में गोबर में से दाना ढूंढकर एक देसी मुर्गा जोर-जोर से पैर मारता हुआ हांफता-सा कुड़-कुड़ करता, कभी दाना चोंच में पकड़, कभी नीचे रखकर मुर्गियों को बुलाने लगा।

"अरी बीरो, चीनी नहीं लाई?" मृतक की भाभी ने बहुत जोर से आवाज लगाई।

"आई, आई बीबी जी..." धीमे-धीमे महरी चीनी वाली कटोरी लेकर आई, सभी ने मीठे का एक-एक चम्मच और डलवा लिया।

चौके में बैठी महरियां, लड़कियां, कुछ दिन पहले पहनी नई चूड़ियां एक-दूसरे को दिखाने लगी। मृतक की बड़ी बहन ने चौके में जाकर बीरो से कुछ कहा, बीरो दूध का गिलास एक ओर छिपाकर उसके पीछे-पीछे उसके कमरे में ले गई। पुरुषों की दरी पर से तीन आदमी उठकर विलायती गायों की नांद के निकट जा खड़े हुए। मृतक के बड़े भाई ने आकर उसके बेटे को गोद में उठा लिया। उसकी गुलगुली गाल पर छोटी-सी चपत लगाकर बच्चे के साथ वह स्वयं भी हंस पड़ा। सभी औरतों का ध्यान उस ओर चला गया। उनके चेहरों पर हल्की-सी मुस्कराहट फैल गई।

"हां जी, अब तो इनके ही सिर पर हाथ रखना है!" कोई औरत भर्राए हुए गले से कह रही है।

"हां बहन, खून जो एक हुआ।" दूसरी अपनी थकी हुई टांग को सीधा करते हुए कह रही है।

दौड़कर आती भोली ने ताऊ के हाथों में से अब लड़के को ले लिया। गुदगुदी करती हुई अब वह उसे लेकर बरामदे में बिछी हुई चारपाई पर बैठ गई।

एक-दूसरे की ओर मुंह कर, अपने माथों को ढकते हुए, कभी गालों और कभी ठोड़ियों पर अंगुलियां रख, अब सभी औरतों ने टोलियां बना ली और आपस में बातों में उलझ गईं। अजीब तरह के भाव उनके चेहरों पर आ-जा रहे हैं—उदास चेहरों के पीछे छिपी हुई-सी तीव्रता, आंखों में चमक... हल्की-सी मुस्कान!

पुरुषों की दरी लगभग खाली हो गई। सिर्फ तीन-चार निकट के संबंधी बैठे हुए हैं। चौके में से सब्जी को छौंक लगाने की खुशबू सारे आंगन में फैल गई, जाती हुई धूप में बकायन की खाली टहनियों में से छोटे-छोटे अंकुर दिखाई देने लगे।

"जा तो बेटी, तू आराम कर।" मृतक की घरवाली को उसकी मौसी उठाकर कमरे के अंदर छोड़ आई। एक-दो औरतों ने बेहद तरस भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"हाय रे, मेरी याददाश्त भी काम नहीं करती, किसी बच्चे को ही पक्का कर आती। सुबह भैंस ब्याई है—छोटा-सा बच्चा है, कच्चे खुर हैं उसके... क्या पता कौओं ने क्या हाल किया हो?" यह सरपंच की औरत है। लंबरदारनी को बीच-बीच में अपने बेटे की चिंता लगी हुई है।

"लड़के को ठंड लगी हुई है, वैद्य ने दूध में छुहारा काढ़कर देने को कहा था।" वह जैसे घर के लोगों को सुनाते हुए कहती है।

हवा पहले से ही अधिक ठंडी हो गई है।

"फागुन चढ़ आया है, पर ठंड कम नहीं हुई।" कोई औरत बात करने की खातिर कह रही है। एक अजीब-सा, अदृश्य-सा उतावलापन और हलचल-सी औरतों में पैदा हो गई। उतावली-सी होकर वे अब करवटें बदल रही हैं। उठने के लिए गुप्त-से इशारे कर रही हैं। आंखों से एक-दूसरी को समझा रही हैं।

बाहर से चरकर आए पशुओं के झुंड गली से गुजर रहे हैं। घरों में से बछड़े-बछियों के रंभाने की आवाज आ रही है...गली में बच्चे छुआ-छुई का खेल खेलते हुए एक-दूजे को ढूंढते आंगन में आ घुसे हैं।

फिर पशुओं के कोठे से एक लड़के के दौड़कर बाहर आने पर सभी बच्चे खुशी में किलकारियां मारते हुए उसे छूने के लिए उसके पीछे गली में दौड़ पड़े।

"अरी, मेरा तो ससुरा बाहर पाले में ठिठुरता होगा, बूढ़ा शरीर है, घर में भी कोई नहीं है, अकेले उससे चारपाई भी अंदर नहीं की जाएगी। कल से वैसे ही ठिठुरा पड़ा है, ठंड लग गई है उसे।" यह भारी शरीर और पक्के रंग वाली बंतो है।

"अरी, छुहारा-चाय देनी थी उसे जाकर।" सभी हंस पड़ती हैं, लेकिन तभी शरमाकर मुंह के आगे चुन्नी रख लेती हैं।

"देखो री, गठरी की गठरी, न बैठा जाए, न उठा जाए। रब इस बहाने कोई नसीहत ही तो दे रहा है!"

लंबरदारनी ने एक तरह से सभी को उठने का संकेत कर दिया।

इधर-उधर देखते हुए, दुपट्टों को ठीक करती और लंबी-लंबी सांस भरती हुई वे उठ खड़ी हुई, "चलो बहनो, इसने ससुर को भी संभालना है जाकर।" एक बार फिर सभी हंस पड़ती हैं।

"ससुर भी संभालने ही पड़ते हैं, बहन!"

"अरी, उसे अफीम का गोला दे।"

"ना री, बहनो, मेरे ससुर को ऐसे मत कहो, मरने को तो उसका दिल ही नहीं करता।"

"अरी बहन, यह सच कहती है। कल मैं गई थी इनके घर। मैंने देखा, आंखें फाड़कर आंगन में झाड़ू लगाती चूहड़ी की ओर देखे जाता था।"

पप्पू और भोली दूर बरामदे में खड़े होकर अपने-अपने स्कूल की बातें करते हुए हंस रहे हैं, चाय पी रहे हैं और आंखें मटका रहे हैं। गली में बच्चे अभी भी छुआ-छुई का खेल खेल रहे हैं।

"जान तो उसकी कहीं अटकी पड़ी है। चलता है तो ऐसे लगता है, अब गिरा कि

तब गिरा।" तीखे नाक पर जड़ाऊ लौंग वाली औरत अब बुड्ढे की चाल की नकल उतारते हुए टांगें फैलाकर चल रही है।

"अभी तो वह इस बार दशहरे के मेले में जाने की जिद्द कर बैठा।" यह ससुर वाली है।

"उठा लेना था गोद में फिर।" हंसी की एक लहर उठती है, फिर एक और... फिर एक और...।

एक और हैमिंग्वे

रविंदर रवि

ऐसा ही हुआ था। बूंद-बूंद कर जिंदगी बह गई थी। इन बूंदों के पारदर्शी आकारों में जो सूरज, चांद, सितारे, सतरंगी पींगें और उड़ते हुए क्षण उसने पकड़े थे, वे भी बूंद में से भाप की तरह हवा हो गए थे। एक घना खालीपन शेष रह गया था। अपने अंदर के शून्य में वह अपने भिन्न-भिन्न किरदारों को, अलग-अलग हस्तियों की तरह, विखंडित होकर दूर-दूर घूमते और लटकते हुए देख रहा था। इनके अंदर भी अनंत का आकर्षण था।

इस विचार से वह एक क्षण को मुस्कुराया। इस फीकी-सी मुस्कुराहट को अपने आसपास पसरे घने सन्नाटे में गिरते-डूबते देखते हुए उसने अपने अंदर इसकी मौन दस्तक की तेजाब में भीगी सुइयों की तरह बींधने-चीरने वाली अनेक प्रतिध्वनियों को अपने समूचे अस्तित्व के आर-पार होते हुए महसूस किया। उसका अस्तित्व जैसे महीन छेदों वाली एक अमूर्त छननी था। दर्द के चुभनशील आंसू प्रदत्त मौन-रुदन में डूबे अहसास के नीचे भी उसने अपनी चेतना को जाग्रत रखा और तीनों छेदों में से अपने और अपने इर्द-गिर्द व्याप्त वातावरण के प्रसारों को आर-पार देखने का यत्न करने लगा।

अतीत की ओर एक सघन धुंध थी। बीच-बीच में चिनगारियों की भांति फूटते कुछ चमकदार जर्रे-से थे, रोशनी के। उनके पार गहरा अंधेरा था। कुछ दिखाई नहीं देता था। भविष्य की ओर भी यही कुछ था। एक सघन स्याही और बस, स्याही की एक सीमा के उस पार जैसे उसकी नजर में से किसी ने सारी रोशनी को पी लिया था। इस पार, उस पार चारों दिशाओं में पसरे इस अंधेरे में विचरते हुए उसने नीचे-ऊपर देखने का यत्न किया। ठंडी बर्फ-सी धरती। उसका अपना अस्तित्व जैसे बर्फ की सिल्ली काटकर पोलर आइस-कैप का भाग बन गया हो। आकाश जिसे उसने कभी निर्मल, बादलों से आच्छादित, चन्द्रमा, सूरज और सितारों से युक्त तथा सतरंगी जाना था, आज वही जैसे अत्यधिक गाढ़ा, काला, भयानक और ठोस अंधकार बनकर उस पर गिर पड़ा हो।

वह जैसे चक्की के दो भारी पाटों के बीच आ गया था। एक पाट गांव का, एक ब्रह्मांड का। न गांव अपना, न ब्रह्मांड तक पहुंच। बीच में उसकी चेतना—एक विफल यत्न, फिर भी जिंदा।

चेतना क्या है? कई अमूर्त और मूर्त बिंब उसके जेहन के आगे उभरे और फिर कंप्यूटराइज्ड वीडियो टी.वी. खेलों के प्रतियोगी मुकाबले के घमासान में नष्ट होकर मशीन में डाले गए पैसों का समय समाप्त होने के बाद, मशीन में ही लोप हो गए। मशीन में डाले गए पैसों के साथ अस्तित्व का एक चक्कर भोगा और एक जून और एक उम्र गुजारकर खत्म कर ली।

अस्तित्व और चेतना—बिजली के दो सिरों की भांति दोनों जुड़े हुए—बहते दरिया पर बरसते पानी में पल भर को बुलबुलों की तरह उभरते, अपने अस्तित्व की उपस्थिति का अहसास करवाते और फिर अपने आप को नष्ट कर पानी की निरंतर गति में गुम होते हुए देखते। ऐसी दृष्टि लगातार बुलबुले से धारा और धारा से बुलबुले की ओर जाती और लौटती, चेतना और अस्तित्व के बिंब ढूंढने का प्रयास करती मायूसी में गुम हो जाती। न बूंद का ताप, न बुलबुले का अंग, न धारा की नियति, यह अब का क्षण, उसको, पानी के तल के ऊपर सुगंधित कपूर की लप-लप जलती छोटी चौरस या गोलाकार टिकिया की भांति चलता दिखाई देता और फिर इसके जलकर नष्ट होने के पश्चात एक गहन अंधेरा!

अंधेरे में लप-लप जलती सुगंधित कपूर की इन छोटी-छोटी टिकियों की जगती-बुझती रोशनियों की निरंतरता पर लगी उसकी दृष्टि उसके जेहन के अंदर लगातार चल रहे कुल्हाड़े का अहसास पैदा करती। उसको ऐसा महसूस होता जैसे वह जन्म से लेकर अब तक इस एक दरख्त के गिरने की प्रतीक्षा में खत्म होता रहा था। यह दरख्त कब गिरेगा?

इसी समय उसको राइफल के चलने की आवाज सुनाई दी। और वह अपने ख्यालों में से चौंककर बाहर निकला। राइफल की आवाज, घने जंगल और ऊंचे पर्वत की चोटियों के मध्य प्रतिध्वनियों को पैदा करती हुई, उसको अपने हाथ में पकड़ी हुई राइफल से जोड़ गई। उसने देखा कि उसकी अंगुली राइफल के घोड़े पर थी और राइफल की नली उसकी कनपटी को छू रही थी। पल भर को वह मुस्कुराया।

"अब चलना चाहिए।"

वह अपने आप में बुदबुदाया। उसने अपने दूसरे हाथ में पकड़े हुए मग में से बर्फ-सी ठंडी काफी को गटागट पिया। पत्थरों के चूल्हे की ठंडी राख के नीचे बुझने के करीब पहुंचे दगते हुए कोयलों को पास रखी मिट्टी के नीचे दबाया और कैंपिंग का सारा सामान एकत्र कर अपने रकसैक में पैक किया।

हाथ में राइफल और पीठ पर रकसैक उठा, इस कैंप-साइट को अलविदा कह, चुस्त, होशियार और चौकन्ने शिकारियों की भांति शुरुआत से ही शिकार की तलाश में उसने अपना सफर शुरू किया।

इस जंगल में वह अनेक बार शिकार कर चुका था। हिरन, पहाड़ी बकरे, मूस (बारह

सिंगे जैसा जानवर), रीछ और अनेक अन्य जंगली जानवर उसकी गोली का निशाना बन चुके थे। कैनेडा गीज, डक्स, गराऊज व अन्य कई माइग्रेटरी बर्ड्स के शिकार का शौक भी उसको था।

शौक कैसा? एक प्रकार से समय ने शिकार को भी उसके गले में एक जरूरत की तरह डाल दिया था। जिस छोटे-से गांव में वह पढ़ाता था, शहर वहां से सत्तर मील दूर था। अपनी नौकरी के पहले चार वर्षों में वह हर सप्ताहांत पर शहर जाया करता था। शहर की झिलमिलाती हुई रोशनियों और रंगीन शामों से उसको धीरे-धीरे ऊब-सी होने लगी थी। वही कुछ बार-बार, चाहे-अनचाहे हर बार। इस दोहराव में जैसे वह अपनी तलाश का अहसास खो बैठा था।

तलाश कैसी? पदार्थ, परमार्थ, प्रसिद्धि, अमीरी...समय-समय पर इन सब शब्दों के पीछे के अर्थों के जंगल को वह भोग-भुगत चुका था। यह सब कुछ उसकी मंजिल नहीं थी।

कभी-कभी 'तलाश' उसको 'भटकन' की पर्याय भी लगी थी। इसलिए शायद इन दोनों के मध्य में से तीसरी दिशा की ओर मुड़कर उसने अपनी तलाश का नाम मन की शांति रख लिया था। जैसे भी, जहां भी, जिस अवस्था में भी यह पाई जा सके। कुछ प्राप्त कर अथवा कुछ खोकर। क्या फर्क पड़ता था?

यह तीसरी दिशा ही शायद उसके लिए शिकार की प्रेरणा बनी थी। उसने 'प्वाइंट थ्री-नाट-थ्री' और 'प्वाइंट टू टू' आटोमैटिक राइफलों के अलावा बारह बोर की एक शॉट-गन भी खरीद ली थी। शुक्रवार की शाम को स्कूल की छुट्टी के उपरांत वह कैंपिंग और शिकार का सारा सामान इकट्ठा कर अपनी फोर व्हील ड्राईव फोर्ड बरोको में जंगल की ओर निकल जाता और इतवार की शाम को लौट आता। ऐसा पिछले दो वर्षों से जारी था। इस दौरान कई रातें उसने जंगल, धरती और खुले आकाश के साथ बिताई थीं। सूरज, चांद, सितारों, बहती नदियों, सुरीले झरनों, वन में पास-पास लेकिन अकेले अपने ही अकेलेपन की एक-दूजे से दूरी में खड़े पेड़ों के साथ बातें करते हुए उसने अनेक पल व्यतीत किए थे।

अपने अंदर बसते मौत के भय को मारने के लिए उसने भयानक जंगल में ही वास नहीं किया था, वरन अनेक जंगली जानवरों को मारकर 'सरवाइवल आफ द फिटेस्ट' के रहस्य को भी अपने निजी तजुर्बे से पाया था।

ज्ञान जब पुस्तकों में निहित है तब मनुष्य के अंदर इस निजी अनुभव की भटकन क्यों? वह सोच रहा था। शायद इसलिए कि यदि हम स्वयं को पुस्तकों तक ही सीमित कर लेंगे तो ज्ञान का निरंतर विकास रुक जाएगा। आज का प्रकाश ही कहीं कल का अंधेरा न बन जाए।

"यह सच है।"

वह बुदबुदाया और फिर उसके विचार उसको बड़ी शक्तियों के मध्य तनाव में विचरते शक्ति-संघर्ष की ओर ले चले। आज की प्राप्ति अगर टेकनालाजी द्वारा हमारे लिए प्राप्त सभी सुविधाएं हैं, तो इन जंगों-युद्धों की बरबादी को, इस तकनीकी और वैज्ञानिक युग की प्रकाश-पुस्तक में कौन-से अध्याय के रूप में लिखेंगे? तीसरे महायुद्ध के भय के नीचे पल-पल आजीवन भुगत रहे प्राणियों और उसके उपरांत संभावित महाप्रलय को आप क्या कहेंगे? क्या यह सब भी किसी तलाश का मार्ग है?

—मन की शांति की तलाश?

हां, मन की शांति की तलाश ने ही उसके आगे-पीछे उसके द्वारा शिकार कर मारे गए जानवरों के अस्थि-पिंजरों का अंबार लगा दिया था। एक-एक गोली ने एक-एक क्षण का लहू बहाया था। उसकी सारी पहचान उसके दहकते हाथ में सिकुड़ गई थी। उसको इस हाथ से ही 'कसाई-छुरी' और जिबह होते बकरों का निजी अनुभव हुआ था। गोली खाकर तड़पते शिकार को उसने शिकारी-चाकू के एक ही वार से खत्म कर दिया था।

'शिकार के लिए गोली चलाओ और फिर मन की शांति के लिए प्रार्थना करो।' वह बुदबुदाया।

'वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक वातावरण भी एक शिकारगाह ही है। जहां हर कोई, हर समय, हर किसी का शिकार करने की ताक में है।'

'मन की शांति?'

मन की शांति—उसके जेहन में एक स्थिर प्रश्न बनकर लटक गई और उसके कदम रुक गए।

उसने रकसैक के फीतों को कंधों से उतारा और नीचे रख दिया। पत्थर की एक चट्टान पर बैठकर अस्त होते सूरज की ओर देखते हुए वह गहरे विचारों में डूब गया। ये विचार ऊंचे अर्थ लिए थे।

'मन की शांति के लिए मौत के भय से मुक्त होना जरूरी है।'

'मौत के भय से मुक्ति, किसी को मारने का निजी अनुभव प्राप्त करने के पश्चात ही प्राप्त हो सकती है।'

एक-एक कर विचार उसके जेहन में तरतीब ले रहे थे।

—पूर्ण स्वतंत्रता?

'अपनी मौत?'

'आत्महत्या?'

अनेक प्रश्नों के सम्मुख वह निरुत्तर खड़ा था।

उसकी स्मृति में 'मास्टर आफ गो' के रचयिता जापानी उपन्यासकार कावा बाटा का बिंब उभरा, जिसने आत्महत्या को भी वीरता का प्रतीक बनाने का यत्न किया था।

—अपने लिए, सबके लिए आदर्श का सृजन करना और फिर खुद ही उन आदर्शों

के अनुसार जी न सकना। उनको समस्त संसार में व्याप्त रूप न दे सकने की असमर्थता को पल-पल, क्षण-क्षण जीती हुई मृत्यु के रूप में सहन करना, स्वीकार करना...यह सब कुछ असह्य हो जाना और फिर वीरतापूर्ण आत्महत्या को एक नायक की अदा देने वाली बात...जैसे जीना तो कठिन है ही, मरना उससे भी दुष्कर हो!

वह सोच रहा था—हैमिंग्वे के विषय में, उसके बूढ़े मछेरे के बारे में और समुद्र के बारे में। हैमिंग्वे के इस कथन के बारे में कि मनुष्य बर्बाद तो हो सकता है, पर हार कभी नहीं सकता... उसके उपन्यास 'ए फेयरवैल टू आर्म्ज' के नायक हैनरी के विषय में और उसके इस कथन के बारे में यह जंग, यह सब कुछ उसकी प्रियतमा के बिना उसके लिए कुछ अर्थ नहीं रखता, निरर्थक है। हैमिंग्वे के उपन्यासों में विद्यमान विरोधों के विषय में जहां जीवन का समूचा संघर्ष मरी हुई मछली के पिंजर में सिकुड़कर व्यर्थ हो जाता है...जहां युद्ध से भगोड़ा होकर भी कोई अपनी प्रियतमा को नहीं बचा सकता।

'क्या कारण है इन सोचों का?'

वह फिर अपने आप में बुदबुदाया।

कल ही तो उसने रेडियो पर यह सूचना सुनी थी कि हैमिंग्वे के भाई ने भी अपने आप को गोली मारकर आत्महत्या कर ली थी, बहुत समय पहले हैमिंग्वे के बाप ने भी अपना यही हश्र किया था। क्यों?

—मन की शांति?

—पूर्ण स्वतंत्रता?

—वीरता?

इन्हीं विचारों के आगे खुद-ब-खुद ही राइफल की नली उसकी पुड़पुड़ी से आ लगी। मैगजीन में चार और नली में एक, कुल मिलाकर पांच गोलियां थीं। उसने सेफ्टी को हटाया और घोड़े के ऊपर उसकी पकड़ मजबूत होती गई।

सूरज डूब चुका था। आकाश में डूबते सूरज की लाली अभी भी खून की तलैया और छींटों की भांति फैली हुई थी।

उसके अंदर कोई घोड़े के लगातार दबने और गोली के चलने की प्रतीक्षा कर रहा था। समय जैसे पल भर को रुक गया था। सांसें जैसे उस क्षण रुक गई थीं। धड़कन जैसे घड़ी भर को बंद हो गई थी।

और फिर...उसको महसूस हुआ, जैसे वह हैमिंग्वे का ही एक और भाई हो...और हैमिंग्वे के बूढ़े मछेरे और काबा बाटा के बारे में सोचते हुए घोड़े के दबने और राइफल के चलने के मध्य प्रतीक्षा-बिंदु पर लगातार बीतते हुए समय की निरंतरता में व्यर्थ हो रहा हो। न गोली चली, न खून ही बहा। पश्चिम की लालिमा पत्थरों के चूल्हे में कोयलों की भांति दहक रही थी।

दीए-सी जलती आंख

गुरबचन सिंह भुल्लर

उनके आंगन में धीरे-धीरे काफी भीड़ जुट गई थी। गांव के कुछ पंच और नजदीकी लोगों को उन्होंने स्वयं बुला लिए थे। बाद में रोज-रोज के झगड़ों-झमेलों से बचने के लिए फैसला उन्हीं के सामने हो जाना ही ठीक था। जिन लोगों के साथ उनके काम-धंधे, हल-गाड़ी, खेती-बाड़ी का सरोकार था, उनको तो बुलाना ही था। ऐसे लोग पंचायतों से न खुलने वाली गांठें भी, सभी भाई लोगों पर प्रभाव होने के कारण सहजता से खोल देते हैं। चौधरी किस्म के लोग बिना बुलाए खुद ही आ गए थे। उन्हें तो कहीं चार लोगों के जुटने की, कोई झगड़ा या झगड़े की संभावना होने की भनक पड़नी चाहिए, फिर उन्हें बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। अपनी चौधराहट दिखाने के लिए सबसे पहले हाजिर हो जाते हैं। उनके पीछे-पीछे आ गए थे कुछ तमाशबीन, ठूंठों पर बैठे निठल्ले लोग, अधिक समय घर से बाहर बिताने वाले बूढ़े और अमली। इनका 'न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर' वाला हिसाब होता है। किसी को घाटा हो या किसी को लाभ, उन्हें तो बस बीच-बीच में चुस्की लेनी होती है। और पीछे-पीछे गली-पड़ोस के कुछ छोटे-बड़े बच्चे भी आ गए थे। कहीं कुछ बुरा घटित हो रहा हो या अच्छा, बात खुशी की हो या दुख की, वे आंखों में आश्चर्य और मन में उत्सुकता भरकर दबे पांव पहुंच ही जाते हैं। पहले झिझककर एक ओर खड़े रहते हैं, फिर धीरे-धीरे करीब होते चले जाते हैं और अंत में भीड़ में जुटे लोगों की टांगों के बीच से दबे पांव निकलकर सबसे आगे आ खड़े होना अपना हक समझते हैं।

आंगन में काफी बड़ी भीड़ तो जुट गई थी, किंतु अभी असल बात नहीं चली थी। सब अपनी-अपनी हांक रहे थे। कौवों की कांव-कांव मची थी, जिसमें से कभी-कभी किसी के मुंह से किसी बात का कोई टुकड़ा सुनाई दे जाता, "क्यों ओए कमबख्त... मैं कहता हूं, मेरी भी मान...अरे भाई, यह तो जगत-व्यवहार है...संबंध की बराबरी नहीं...ले तू मेरी सुन...मान लेते हैं बात, पर मौके रहे भी...जमाना कहां है भाई..."

पंच-सरपंच चारपाइयों पर बैठ गए थे। कुछ लोग खुरलियों पर और आंगन में पड़े ठूंठ पर बैठ गए थे। बाकी इधर-उधर खड़े हुए थे। तीनों में से बड़ा भाई दयाला और छोटा

भाई पाला दो अलग-अलग चारपाइयों पर अन्य लोगों के बीच बैठे थे। चारों तरफ कुछ न कुछ बोल रहे लोगों के मध्य वे चुप थे। उनमें से कोई दोनों में से किसी एक को सीधे कुछ कहता तो वह 'हूं-हां' कर संक्षेप में उत्तर देकर चुप हो जाता।

थोड़ा हटकर चूल्हे-चौके की कच्ची छोटी दीवार के पास आस-पड़ोस के घरों की पांच-सात औरतें बैठी और खड़ी थीं। दूर-पास कहीं भी घटित हो रही अच्छी-बुरी घटना में शामिल होने की, उसे अपनी आंखों से देखने की, और अगर संभव हो, पंचायत करने की लालसा तो आखिर उनको भी होती ही है। अगर पंचायत गुरुद्वारे, धर्मशाला या चौपाल में जुटे, उनको बेबस होकर घर में ही रहना पड़ता है। किंतु जब इकट्ठा किसी के घर में हो, वे भी एक-एक कर इकट्ठी होती रहती हैं और पुरुषों की पंचायत से अलग अपनी पंचायत जोड़कर बैठ जाती हैं। औरतों की इस पंचायत में दयाले की घरवाली गुरनामो और पाले की घरवाली महिंदरो भी थीं।

"मैंगल सिंह कहां है?" सरपंच ने पूछा, "बुलाओ भाई उसको अब, बात किसी किनारे लगे। अब तो सब सियाने बंदे भी आ गए।"

"यहीं घर ही में था अंदर, बड़े कमरे में।" दयाला बोला और फिर उसने पाले को कहा, "बुला तो उसे अंदर से। क्या करता है अब अंदर वह?"

पाला अंदर बड़े कमरे में से मैंगल को लेने चला गया। पंच गुरबख्श सिंह ने सोहन अमली को जो सरपंच वाली चारपाई पर उसके बराबर डटा बैठा था, कहा, "सोहन सिंह, कही गई बात सुनने नहीं देते ये...भगा तो जरा इस सारी लड़कों की टोली को यहां से! इनका यहां क्या काम?"

सोहन अमली ने कंधे पर रखा तौलिया चिड़ियों को उड़ाने के अंदाज में घुमाते हुए धरती पर अपने पैरों का खड़का दिया और बोला, "चलो ओ बच्चो, भागो यहां से।" और फिर उसने बड़े लोगों में छिपते हुए एक लड़के को बाहर खींचकर कहा, "छिपता कहां है? भाग बाहर!... तेरी दादी को मेले ले जाऊं..."

"देखो तो, भरी पंचायत में ऐसी बात बोलते शर्म नहीं आती।" छोटी कच्ची दीवार के पास से नामी बूढ़ी तीखी आवाज में बोल उठी।

सोहन अमली एक बार तो ठिठककर लज्जित-सा हो उठा। उसे क्या पता था कि लड़के की दादी करीब ही बैठी हुई है। लेकिन, पंचायत में आने से पहले वह अफीम की एक बड़ी-सी गोली अंदर सटककर आया था और अब पूरे सरूर में था। खीझने के बदले वह हंसकर बोला, "क्यों भई लंबरदारनी, अगर कोई कुछ कहे तो तू कहती है—ऊंचा सुनाई देता है, ऊंचा सुनाई देता है। मेले जाने की बात झट सुनाई दे गई तुझे!"

सारे आंगन में खिलखिलाती हंसी बिखर गई। औरतें भी हंस-हंसकर दोहरी हो गईं। लज्जित-सी होकर नामी ने पुनः कुछ कहा लेकिन अब उसकी कौन सुनता था! वह खीझकर

जल्दी-जल्दी हाथ हिलाकर कुछ कह रही थी, पर बाजी तो सोहन अमली मार गया था।

इतने में अंदर से आकर मैंगल भी एक चारपाई की बाही पर झिझकता-सा बैठ गया। सरपंच ने सबको शांत कर असल बात आरंभ करनी चाही। जिस काम की खातिर वे सब एकत्र हुए थे, वह तो अभी शुरू भी नहीं हुआ था। लेकिन, सोहन अमली ने सरपंच की बात बीच में ही टोककर व्यंग्य किया, "अरे मैंगल सिंह, भागने वालों की तरह बाही पर क्यों बैठा है? ठीक होकर बैठ जा, कमबख्त! भाइयों में बराबर का भाई है। बराबर की ढेरी का मालिक।"

"बराबरी में कोई झूठ तो नहीं, बाबा जी! उसी मां के पेट से जन्मा है जिसके पेट से दूसरे जन्मे थे।" छोटी कच्ची दीवार के पास इकट्ठा हुई औरतों के समूह में से आगे बढ़ती हुई महिंदरो बोली। उसने अपना छोटा लड़का गुरजंट नहला-धुलाकर और क्लिप वाला जूड़ा कर अपनी गोद में उठा रखा था। घूंघट में ढके हुए उसके सारे चेहरे में से जरी हुई उसकी बाईं आंख दीए की भांति जल रही थी।

सोहन अमली को इस प्रत्युत्तर की बिलकुल भी उम्मीद नहीं थी। इस कल्पनातीत वार से नामी बूढ़ी वाली बात के कारण बनी उसकी हाजिर-जवाबी की सारी साख जाती रही। वह कुछ कहना चाहता था, पर कह न सका। कुछ सूझा ही नहीं उसे। आखिर, कोई और व्यक्ति उसकी मदद के लिए आगे बढ़ा। पंचायत में से किसी ने कहा, "तुम बूढ़ियो, चुप हो जाओ। आदमियों को बात करने दो।"

"तू बीच में जाकर क्यों मगज-पच्ची करती है? बड़ी आई पंचायतन! इधर आ जा चुप होकर।" मैली चादर का लंबा-सा घूंघट काढ़े बैठी उसकी जेठानी गुरनामो बोली, "पंचायत में परमेश्वर होता है। जो फैसला करेंगे, दूध में से पानी निथारकर ही करेंगे।"

"अरी तू आदमियों में क्यों बोलती है?" कई अन्य बूढ़ी औरतों ने भी एक साथ महिंदरो को समझाया।

"न, मैं क्यों बोलती हूं!" महिंदरो एक कदम पीछे हट गई, "यह तो अमली बुड्ढा बेसिर-पैर की बात करता था।... छोटे भाई जी की बरोबरी से कौन इंकार करता है? बराबरों से भी बढ़कर है बल्कि इस घर में यह!"

हां, आज तो मैंगल ठीक ही बराबर वाले से भी अधिक गोरा-तंदरुस्त लगता था। दादा के बाद बीस किल्ले जमीन पर तीनों भाइयों का बराबर का हक था। बड़ा दयाला और छोटा पाला बाल-बच्चे वाले थे, पर मंझला मैंगल छड़ा रह गया था। जब आंगन में जुड़े लोग मन ही मन में तीनों भाइयों को परखते, कई-कई बच्चों की ओर देखते तो दयाला और पाला जायदाद के मामले में कमजोर लगते, पर बराबर की ढेरी का मालिक मैंगल अकेली जान होने के कारण मजबूत लगता। आखिर जट्ट का अपना वजन तो कोई होता ही नहीं। जब भी कोई जट्ट को परखता है, तराजू के पलड़े में उसके साथ ही उसकी जमीन

रखकर ही परखता है। जमीन के बिना जट्ट का कैसा वजन! जमीन बिना जट्ट का क्या अस्तित्व?

दयाला तो बिना किसी दौड़-भाग के ब्याहा गया था। उन दिनों में मस्तान सिंह की खेती बढ़िया चलती थी। मोटे तगड़े नगौरी बैल उसके हल के आगे जुड़ते थे। तीनों लड़के काम में उसके साथ हाथ बंटाने लगे थे। किसानों के घर अपने चार लोग खेत जाने वाले हों, उसे फिर दूसरों की क्या जरूरत! आदमी भी वह नेक-नाम था। लेकिन, इस सब कुछ के बावजूद बात मैंगल पर आकर अड़ गई थी।

मैंगल सिंह के दुर्बल-से चेहरे पर चेचक के दाग किसी बेटी वाले का मन टिकने ही न देते थे। बची खुची कसर उसकी पगड़ी का आखिरी सिरा पूरी कर देता जिसे बिना खोंसे ही वह पूरी पगड़ी के ऊपर से कंधों पर गिरा लेता था। कुरूप होने के साथ-साथ वह कुछ मूर्ख-सा भी लगता था। बिचौलियों के माध्यम से अगर कोई मैंगल को देखने आता भी तो वह जाते हुए कान में फूंक मार जाता, "छोटे का तो रुपया चाहे अभी पकड़ लो, पर यह लड़का तो...।"

कई वर्ष मस्तान सिंह और किशनो मैंगल के विवाह के लिए हाथ-पैर मारते रहे। मस्तान सिंह सगे-संबंधियों को कहता और मित्रों-परिचितों पर जोर डालता। किशनो रिश्ते करवाने वाली गांव की मशहूर औरतों के घर के चक्कर लगाती। वह बिचौलिए के लिए भारी अंगूठियां, बढ़िया सूटों और पश्मीने की मोटी चादरों का लालच देती। वह झुककर याचना भरे स्वर में कहती, "बहन, मैं तो तेरा अहसान सारी उम्र नहीं भूलूं। एक बार लड़के की रोटी पकने लग जाए। एक बार बहू घर आ जाए। उठते-बैठते तेरे गुण गाऊंगी। कच्चे धागे से पानी भरूंगी तेरा।" लेकिन भगवान जाने, मस्तान सिंह और किशनो की किस्मत में कोई कमी थी या मैंगल की किस्मत में, कहीं भी कोई चारा न चला। अंत में, यह सोचकर कि इसे ब्याहते-ब्याहते कहीं छोटा भी न रह जाए, उन्होंने पाले के लिए रुपया पकड़ लिया।

छोटे भाई के विवाह के बाद बड़े को कौन पूछता है? और लोगों के इस संदेह का आधार भी तो होता है कि बड़ा अनब्याहा छोड़कर छोटा ब्याहा गया, उसमें कोई कसर, कोई कमी, कोई खोट तो होगा ही। यूं ही तो नहीं कुआंरा रह गया। अब वह कुआंरा नहीं, छड़ा था।

मस्तान सिंह की मृत्यु के बाद अकेली किशनो खुशामदें करती रहती। अब तो वह जट्ट वाली अकड़ को भी एक ओर छोड़कर बहुत नीचे उतर आई थी। अब तो वह सोचती, कहीं से कोई मोल की औरत ही मिल जाए। लेकिन अगर कोई बात कहीं चलती थी, मालूम नहीं कौन कान भर आता। बात बनते-बनते रह जाती। किशनो माथे पर हाथ मारती, "मेरे भाग खराब हैं और खराब हैं इस अभागे के।" और वह रब को उलाहना देती, "उसी कोख से पैदा करके तूने इसे क्यों कर्मों का मारा रखा रे कठोर!"

मैंगल को किशनो के इस रोज-रोज के रुदन से बहुत ही शर्म आती। भाभियों के सामने इस प्रकार वह स्वयं को और भी हीन समझता। कई बार वह खीझकर और गुस्सा-सा होकर बोलता, "बेबे, तू शाम-सवेरे यूं न रोया कर। मुझे नहीं जरूरत तेरे लाए ऐसे डोलों की।" और वह उठकर घर से बाहर निकल जाता।

किशनो जाते हुए मैंगल की पीठ की ओर देखकर आह भर उठती, "अरे अभागे, सारी उम्र दो बुरकी रोटी की खातिर दूसरों के हाथों की ओर देखेगा रे!... कोई नहीं होगा रे बेटा!..."

एक-दो रिश्ते महिंदरो भी लाई। एक बार उसका मामा अपने गांव से किसी बेटी वाले को लेकर आया। लड़का उसे पसंद था, बस उसे अपने बहनोई और साले की नजरों से निकालना चाहता था। लेकिन, उसने लौटकर कोई पता ही न दिया। महिंदरो की मामी के टे की ओर से लाए गए लड़की वाले का तो कोई साला-बहनोई भी न था। लड़का उसे जंच गया था। बस, उसने सब कुछ बताकर घरवालों की सहमति लेनी थी। वह भी चुप्पी साध गया। महिंदरो के फूफा के साथ आया बेटी वाला तो कोई अच्छा दिन निकलवाकर आने का वायदा तक कर गया था। मगर कुछ दिन बाद हर रिश्तेदारी में से यही जवाब आ जाता कि लड़की वाले से किसी ने चुगली कर दी है। सोच-सोचकर किसी को समझ में नहीं आ रहा था कि उनके परिवार का इतना दुश्मन कौन बन गया था जो चुगली करने के लिए हर जगह जा पहुंचता था। महिंदरो बेचारी तो पूरा जोर लगा रही थी कि मैंगल का चूल्हा भी जलने लग जाए, पर पता नहीं किसी चुगलियों के कारण सब के सब भाग गए।

जितने दिन किशनो बैठी रही, साझा घर किसी न किसी तरह चलता रहा। किशनो के आंख मूंदते ही सब कुछ बिखर गया।

गुरनामो रोज रात को दयाले से महिंदरो की ज्यादतियों की कथा ले बैठती। घर का अधिकतर काम गुरनामो को करना पड़ता, हर भारी काम उसके हिस्से आता, हल्का काम महिंदरो के। महिंदरो घर में झाड़ू लगाकर गोबर-कूड़े के टोकरी भरती, गुरनामो उठाकर कूड़ेदान में फेंकने जाती। महिंदरो आटा गूंथती और चूल्हे में उपले डालकर दाल का पतीला रखती, गुरनामो रोटियों का ढेर पकाती। महिंदरो टोकरे में रोटियां, दाल और लस्सी रख और प्याज के छिलके जैसा दुप्पटा, जंजीर वाली कुर्ती, पटों से चिपकती सलवार और कढ़ी हुई जूती पहनकर गांव में अपनी जवानी का प्रदर्शन करती हुई खेत की ओर चली जाती, गुरनामो सारे टब्बर के कपड़े धोने बैठ जाती।... गुरनामो दयाले से कहती, वह काम तो महिंदरो के हिस्से का भी खुद कर ले, पर उससे उसकी चुस्त-चालाकियां नहीं सही जातीं। वह काम कम करती थी, अच्छा पहनती थी और अच्छा खाती थी, पर मंदा बोलती थी और अकड़ बहुत दिखलाती थी।

महिंदरो समझती थी कि दयाले की औलाद बड़ी हो रही थी। कल जेठ की लड़की का विवाह करना होगा। वह साझे घर से क्यों हो? उसके अपने बच्चों के जवान होकर ब्याहे जाने तक तो घर की साझ निभ ही नहीं सकती थी। रात को वह पाले को उसके बुद्धू होने का अहसास कराती रहती। वह कहती कि उसे आगे आने वाला वक्त दिखाई क्यों नहीं देता? आदमी तो वही होता है जो कल की सोचे। काम में तो वे दोनों, दयाले और गुरनामो की तरह ही हड्डियां तुड़वा रहे थे, पर परिवार पल रहा था बड़ों का। वह पाले को अलग हो जाने के लिए उकसाती रहती। वह समझती थी कि वह अलग होकर सरदारी कर सकते थे।

मैंगल को तो मां के बाद घर में से अपना अस्तित्व ही खत्म हो गया लगता था। वह तो जैसे अचानक फालतू होकर रह गया था। रिश्तेदारों की गुलामी करे और दो वक्त की रोटी छके। क्या था उसका इस घर में अब जिसकी खातिर वह जी तोड़ मेहनत करे? उसका काम में दिल न लगता। वह खेत जाने से कतराता।

क्लेश सबके दिलों में अंदर ही अंदर, दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था।

मैंगल कभी किसी भतीजे-भतीजी को गोद में उठाकर या अंगुली पकड़कर घर से बाहर निकलता तो लोग अलग से कीलें चुभाना शुरू कर देते, "यूं ही कमर तुड़वाता है कि भाभियां रोटी-पानी भी ढंग से देती हैं?"

मैंगल का थूक ऐसे अवसर पर गले में अटक जाता। उसे कोई जवाब न सूझता।

गुरनामो के सामने तो बड़ी होने के कारण, मैंगल पहले दिन से ही गर्दन झुकाकर रखता था। वह दयाले से कई वर्ष छोटा था। जब गुरनामो ब्याह कर आई थी, मैंगल तब बच्चा ही था। तब से बस यूं ही एक झिझक-सी पड़ गई थी और वह पड़ी ही रही। गुरनामो की जवानी भी पहले वर्षों में साझे घर में जी-तोड़ काम करते हुए ढल गई थी। वैसे भी उसका रंग पक्का और शरीर ढीला-सा तथा फूला हुआ था। अब तो कई बार पीछे से वह मैंगल को बेबे जैसे ही लगती।

छोटी महिंदरो मैंगल को लोमड़ी की भांति पूंछ पर नचाती थी, लेकिन पकड़ में नहीं आती थी। उसका मक्की की रोटी जैसा रंग और गठा हुआ शरीर दोनों ही मैंगल के दिल में एक चाह पैदा कर देते। जब वह घर में काम करती हुई अंदर-बाहर आती-जाती, उसके पैरों की धमक नगाड़े की तरह पड़ती। घूंघट में से झांकती उसकी बाईं आंख दीवट पर पड़े तेल से भरे दीए की भांति दिप-दिप जलती। ऐसे समय में मैंगल को लगता जैसे उसकी अपनी काया सूखे घास-फूस की बनी हो।

एक दिन, किसी कारण से जेठ-भाभी दोनों ही घर पर थे। मैंगल कितनी ही देर तक आती-जाती महिंदरो को देखता रहा। उसके अंदर कोई चिनगारी भड़क उठी थी। महिंदरो भी अनकढ़े-से घूंघट में से चोर निगाहों से मैंगल को ताड़ रही थी। छोटे-मोटे काम करते

हुए इधर-उधर घूमती महिंदरो के दुप्पटे का पल्ला जैसे मैंगल की चिनगारी को हवा देकर भड़का रहा था। मैंगल ने एक-दो मूर्खों वाले मजाक भी किए और फिर बड़े कमरे में से कुछ उठाने गई महिंदरो के पीछे जाकर उसने उसकी बांह पकड़ ली।

"ओ सीतो आ गई!" महिंदरो ने बाहर वाले दरवाजे की ओर दूसरा हाथ बढ़ाते हुए कहा।

जवान हो रही भतीजी के आ जाने की बात सुनकर मैंगल का हाथ ढीला पड़ गया और उसमें से महिंदरो की कलाई खुद-ब-खुद फिसल गई। वह हिरनी की तरह छलांग लगाकर बड़े कमरे के बाहर जा खड़ी हुई। सीतो कहीं नहीं थी। मैंगल ठगा-सा रह गया था। लज्जित-सा होकर कमरे से बाहर निकलते हुए मैंगल को महिंदरो ने समझाया, "भाई जी, पागल हो गए हो? अभी कोई बाहर से आ जाता तो क्या होता?"

बात मैंगल को भी ठीक लगी। इतने बड़े परिवार में से कोई कभी भी बाहर से घर में आ सकता था। महिंदरो की प्यार-भरी झिड़की ने मैंगल को यह तसल्ली करवा दी कि उसने मैंगल की हरकत का बुरा नहीं मनाया। बल्कि मैंगल द्वारा आगा-पीछा सोचे बिना की गई मूर्खता घर में झमेला खड़ा कर सकती थी। महिंदरो ने समझदारी दिखाकर बात को संभाल लिया था। चलो बात किसी किनारे तो लगी, महिंदरो ने इकरार तो कर लिया था।

बाहर निकलते मैंगल को महिंदरो ने पीसने के लिए बरामदे में रखी गेहूं की ढाई मन की बोरी की ओर हाथ करते हुए कहा, "भाई जी, यह एक तरफ करवा जाना।"

मैंगल ने बोरी खींचकर एक ओर करनी चाही, पर उससे हिली नहीं। कुछ तो बोरी ही भारी थी, कुछ मैंगल का शरीर दुबला-पतला था। पास खड़ी महिंदरो बोली, "ठहरो भाई जी, मैं लगती हूं तुम्हारे साथ।"

उन दोनों ने पहले बोरी को खड़ा किया। फिर महिंदरो ने मैंगल की बाईं कलाई अपने दाएं हाथ में पकड़कर कहा, "लो, भाई जी, बोरी को बांहों के सहारे उठाओ।"

जब मैंगल ने बोरी बांहों के ऊपर फेंकी, महिंदरो ने झटके से मैंगल की पूरी बांह को बोरी के नीचे खींचते हुए बोरी उसके ऊपर छोड़ दी। स्वयं वह एक ओर होकर हंस पड़ी, "तेरा भाई आए तो पूछेगा, यह ऐसे क्यों बैठा है? खुद बता देना सारी बात।"

मैंगल की तो घबराहट में जान ही निकल गई। अन्य काम पर लगने से पहले महिंदरो ने तेल निकलवाने के लिए रखी सरसों की बोरी भी गेहूं की बोरी के ऊपर रख दी। मैंगल ने बहुत जोर लगाया, पर वह अपनी दबी हुई बांह को निकाल नहीं सका। दम निकलता देख वह मिन्नतें करने लगा।

अगर पाला सचमुच अभी आ गया, मैंगल उसको क्या उत्तर देगा? अगर परिवार का कोई अन्य प्राणी आ गया तो वह कहीं का नहीं रहेगा। वह तिनके से हल्का और पानी

से पतला हुआ बैठा था। बोरी के नीचे दबा हुआ उसका बायां बाजू तो सो ही गया था, बाहर रह गए दाएं हाथ से भी वह चेहरे पर से मक्खी तक नहीं उड़ा पा रहा था। महिंदरो कितनी ही देर इधर-उधर की बातें करते हुए अपने कामधंधे में लगी उसके इर्द-गिर्द मोरनी की भांति चक्कर लगाती रही। आखिर, जब मैंगल ने खुले हुए हाथ से उसके पैर पकड़ लिए तब उसने बोरी के नीचे से बाजू निकालकर उसकी जान बख्शी।

उसके बाद, मैंगल कभी महिंदरो को आंख उठाकर भी नहीं देखता था। जब कोई उससे व्यंग्य में कहता, "भाभियां रोटी-टुकड़ा भी ढंग से देती हैं कि नहीं?" तो उसकी थूक गले में ही अटक जाती। लेकिन अपने आप को न तीन में, न तेरह में बताने के लिए वह खांसकर गला साफ करते हुए और झूठी-सी हंसी हंसकर कहता, "रोटी-टुकड़े को क्या बेचारी भागी हैं!"

और उसके हम-उम्र आनंद लेते हुए कहते, "वाह ओए सरदार मैंगल सिंह, खुश कर दिया तूने।"

"क्यों भाई लड़को? किसी तरह तुम इकट्ठे नहीं रह सकते क्या?" सरपंच ने छड़ी से जमीन पर लकीरें खींचते हुए पूछा। उसने इस विश्वास या निश्चय के साथ नहीं बल्कि सरपंच और बुजुर्ग होने के नाते एक रस्मी फर्ज के तौर पर तीनों भाइयों को एक बार फिर यह याद दिलाना उचित समझा कि एकता में बहुत बरकत होती है, वास्तव में, बहुत शक्ति होती है।

तीनों भाई गर्दन झुकाए चुप बैठे थे। मामला जहां पहुंच चुका था, वहां एकता बनाए रखने की बात करना वैसे भी बेतुका और बेमौका थी। और, अलग-अलग रहने के लिए अपने मुंह से पहले कौन कहे? सो, तीनो की चुप्पी ही उनकी ओर से सही उत्तर थी।

उनके उत्तर की प्रतीक्षा में अन्य सभी भी चुप हो गए। सारे आंगन में ही चुप्पी छा गई।

एक पल पहले एक कदम पीछे हटी महिंदरो इस चुप को चीरती हुई दो कदम आगे बढ़कर बोली, "साझ नहीं रही अब, बाबा जी! एक बार फटा हुआ दूध कभी फिर दूध बना है? आप खुद सयाने हो।"

"क्या बकवास कर रही है औरतों वाली!" पाला लज्जित-सा होकर बोला। तीनों भाइयों के चुप रहने और गुरनामो के कुछ न बोलने की सूरत में महिंदरो का ऐसे बोलना उसको बहुत खला। पंचायत के सामने महिंदरो का बार-बार बोलना यह सिद्ध कर सकता था कि उसकी चतुराई और पाले की उसके साथ मौन सहमति ही झगड़े की असली जड़ थी। परेशान होकर वह गुर्राया, "जा, चुप होकर बैठ जा औरतों में चैन से।"

"चल ठीक है। मैं नहीं बोलती। पर तेरी चुप ने ही सारा बखेड़ा पैदा किया है।" महिंदरो की आंख के दीए की बत्ती जैसे और तेज हो गई थी।

"आ जा री पगली, आ जा..." कच्ची दीवार के पास से कुछ औरतें झिड़कती हुई-सी बोल उठीं।

"न, मेरी अक्ल में यह बात नहीं पड़ती, अलग होने का कोई उलाहना है? कोई जग से अलग बात तो हमारे टब्बर में हो नहीं रही। सारी दुनिया ही अलग होती है। अगर सुख से भाई होंगे, तो वे अलग होंगे ही। अगर कोई किस्मत का मारा छड़ा होगा, वही तो अलग न होगा। फिर इन समझौतों की क्या जरूरत?" महिंदरो के स्वर में पहले वाली ही कड़क कायम थी।

"अरी तू दो घड़ी तसल्ली रख। अलग होकर उतार लेना चाव।" गुरनामो ने अपने स्वभाव के विपरीत व्यंग्य किया।

"हमें तो न कोई चाव है, बहने, और न कोई अफसोस! दुनिया जहान अलग होती है, अपने होते हैं तो क्या हुआ?" महिंदरो बात को समाप्त कर देना चाहती थी।

ज्यों-ज्यों अलग होने की बात आगे बढ़ती थी, आंगन में तनाव-सा तनता जा रहा था। कई बुजुर्ग समझदार लोग अभी भी एकता करवाने के पक्ष में थे।

उनका परिवार था कि साधारण से इस घर के बीच में अगर दो दीवारें निकाली गईं तो तीनों भाइयों के घर तो वैसे ही दड़बों जैसे बन जाएंगे। वे दलीलें देते थे, तीनो भाई मिलकर काम करें तो बरकत रहे। जट्ट के बेटों को तो सिर के ऊपर गांठ उठाने के लिए भी दूसरे बंदे की जरूरत होती है। अकेले-अकेले क्या करेंगे? बंटाईदारों, नौकरों का मुंह देखेंगे।

बंटवारा करने की बात पक्की होती देख सरपंच ने फिर कहा, "क्यों भाई लड़को, अगर किसी भी तरह से एकता नहीं होती, तो फिर करें बंटवारा?"

अब तो चुप रहना भी अखरता था। बिना बोले कितनी देर निभ सकता था? सो, तीनो भाइयों ने धीमे-से जीभ हिलाकर हामी भर दी।

"क्यों मैंगल सिंह, तेरी क्या राय है?" पंचायत ने पूछा।

और यही सारी बात की धुरी थी—मैंगल की राय। अगर आज वह भी ब्याहा होता, उसकी राय अलग से पूछने की आवश्यकता न पड़ती। लेकिन, अब तो उसकी बात ही और थी।

अगर मैंगल दोनों विवाहित भाइयों में से किसी एक के साथ हो जाता, तो उसके हिस्से की जमीन अंत में, उसी भाई की हो जानी थी। मैंगल के जीते-जी उसकी जमीन की फसल उस भाई को खानी ही थी, लेकिन दूसरे घर को आधी तो उसके मरने के बाद भी नहीं मिलने वाली थी। जमीन के एक-एक चप्पे की खातिर जट्ट सौ-सौ पापड़ बेलते हैं और मैंगल जैसों के अंगूठे तो रोटे देने वाले भतीजे पहले ही बही पर अपने नाम लिखत करवाकर लगवा लेते हैं। किसी एक भाई के साथ मैंगल के रहने की सूरत में दोनों हिस्सों का इकट्ठा

घर भी खूब अच्छा खुला रहता था। तंग घर में तो जट्ट के हल का जुआ ही नहीं टिकता और जट्टी का दरी बुनने वाला अड्डा भी नहीं गाड़ा जा सकता।

और अगर, मैंगल दोनों भाइयों से अलग हो जाता तो उसे लोग ही नोंच-नोंचकर खोखला कर देंगे। नशों और एबों में फंसाकर जमीन क्या, लोग उसका घर-मकान भी हड़प लेंगे। अपनी जिंदगी में वह बेचारा अभी मैंगल सिंह तो बना ही नहीं था, फिर तो उसे मैंगल से मैंगल अमली बनकर रह जाना था। जीते जी ही उसके घर-जमीन को गले से नीचे उतार देता और अपने भाइयों के परिवारों के लिए केवल बदनामी पीछे छोड़ जाती।

अगर मैंगल सिंह नशे की राह न भी पड़े वह किसी खरीदी हुई औरत को रखने की कोशिश कर सकता था। घर-जमीन तो हाथ से जाती ही, बराबर की शरीकन छाती पर पीतल बनकर बैठ सकती थी। आज उसे औरत खरीद कर लानी थी और कल उसके बच्चे हो जाने थे—उसकी ढेरी के वारिस!

"मेरी क्या राय है? जो भी पंचायत फैसला करेगी, ठीक है।" मैंगल ने पगड़ी के फिसलते सिरे को ठीक करते हुए कहा।

"फिर भी, तू अपनी राय तो बता। तेरे दिल में जो कुछ है, कह दे। पंचायत तो भगवान का रूप होती है पगले! पंचायत से झिझक या शर्म कैसी?" पंचायत के कुछ और लोग बोल उठे।

सोहन अमली फिर रौ में आ गया था। अब जब बात ऐन शिखर पर पहुंच गई थी, वह चुप कैसे रह सकता था। उसने तौलिया बाएं कंधे से दाएं कंधे पर बदलते हुए कहा, "क्यों भई पंचो, भोली बातें क्यों करते हो? बात करो तरीके की। ढेरियां लगाओ तीन। बाद में मैंगल सिंह खुद जो मरजी करे।"

भीड़ में से कुछ और लोगों ने हामी भरी, "बात तो भई, सोहन सिंह की लाख रुपए की है। निथार कर रख दिया एकदम! राय पूछने का हमारा क्या काम? तीन भाई है, तीन हिस्से करो। यही पंचायती तरीका है। फिर बाद में, मैंगल सिंह जैसे चाहे करे।"

"हां भई, हम इससे खड़े पांव फैसला क्यों मांगें? दिल करेगा, तो अपनी दो रोटियां खुद सेंक लिया करेगा। अगर कहीं से बेचारो को दो रोटियां आदर-सम्मान से ढंग की मिलेंगी, अपने आप उधर हो जाएगा। जैसा वक्त होगा, विचार लेगा। जैसी हवा होगी, वैसी ओट कर लेगा। एक बार तो दूसरे भाइयों के बराबर का करो" कुछ अन्य लोगों ने राय दी।

"अरे भाई, हमने तो कभी लिप-लिप की नहीं, न ही सच कहने से डरे हैं।" सोहन सिंह अमली बहुत से लोगों को अपने पक्ष में बोलते हुए सुनकर शेर हो गया। "पंचायत का धर्म है, सबको एक आंख से देखना। कोई भाई तगड़ा हो, कोई कमजोर, कोई ब्याहा हो, कोई छड़ा, अपने लिए तो सब एक हैं।" वह पूरा पंच बना खड़ा था।

एक बार फिर आंगन में तनावभरी चुप्पी छा गई। गुरजंट की गोदी में उठाए एक

हाथ से घूंघट को कसकर पकड़े महिंदरो कुछ और आगे बढ़ी। आंगन में इकट्ठा हुए सभी लोगों ने जैसे यह देखने के लिए सांसें तक रोक लीं कि अब वह ताश का कौन-सा पत्ता फेंकती है? जैसे-जैसे वह आगे पैर रख रही थी, उसकी आंख के दिप-दिप जलते दीए की लौ और ऊंची उठती जा रही थी।

"मेरी भी एक बात सुन लो, पंचो!" उसकी आवाज की तीखी नोक से चुप्पी का शीशा चूर-चूर होकर बिखर गया। "पंचायत मां-बाप होती है। तुम मेरे मां-बाप! छोटे-बड़े की तो बात दूसरी है... लेकिन सच की शर्म कैसी?... पंचायत के सामने शर्म नहीं।"

सबकी आंखें महिंदरो की ओर मुड़ गईं, लेकिन कोई कुछ नहीं बोला। किसी से कुछ बोला ही नहीं जा रहा था। सबकी जीभ जैसे ठुक गई थी।

पाले ने गुस्से में दांत पीसे। उसका मन किया, वह महिंदरो को गले से जा पकड़े और चीखकर पीछे हटा दे। लेकिन, उसके ऊपर भी जैसे टोना हो गया था। उसने खा जाने वाली दृष्टि से महिंदरो की ओर देखा तो सही, मगर बोल वह भी कुछ नहीं पाया।

"मैंगल की जमीन जाएगी, मैंगल की औलाद को!" महिंदरो ने दो टूक फैसला दे दिया।

"मैंगल की औलाद?" सभी के मुंह खुले के खुले रह गए।

"वह दिखाई दे रहा है बड़े महाराज का झंडा," महिंदरो ने दीवार के ऊपर से दिखाई देते गुरुद्वारे के ऊंचे निशान साहिब की ओर हाथ से संकेत किया, जो धीमी गति से चलती हवा में लहरा रहा था।" उसको हाजिर-नाजिर जानकर मैंगल उठे। अगर यह बच्चा इसका है तो इसे गोद में उठा ले, नहीं तो...।"

और महिंदरो ने यह कहते हुए भौंचक्क से गुरजंट को गोद से उतारकर पंचायत के बीच जा बिठाया।

आंगन में जोरों की खुसर-पुसर शुरू हो गई। सब के मुंह से खुद-ब-खुद कुछ न कुछ निकल रहा था।

अजीब 'भिन-भिन' हो रही थी। जैसे किसी ने शहद की मक्खी के छत्ते में ढेला मार दिया हो।

मैंगल ने आंखें उठाकर लोगों की ओर देखा। पंचायत के कुछ लोग गर्दन झुकाकर जमीन पर लकीरें खींच रहे थे। कुछ हैरान होकर कभी मैंगल की ओर और कभी महिंदरो की ओर देख रहे थे। सोहन अमली जैसे मजा लेने वाले लोग हंस रहे थे और एक ओर खड़े मैंगल के हमउम्र साथी मूंछों को ताव देते हुए कह रहे थे, "वाह री मर्द की बच्ची... शेरनी का दूध पिया है भई भाभी ने शेरनी का... वाह रे मित्तर मैंगल सिंह, हम तो यूं ही गप्पू समझते रहे, एच में बेटा तू तो सूरमा निकला।... बड़ी मर्द औरत है भई महिंदरो और बड़ा सूरमा है भई मैंगल सिंह!"

महिंदरो की तीखी आवाज से चुप्पी फिर छा गई। मैंगल को उलझा हुआ देखकर वह ललकारते हुए बोली, "मैंगल! जान ऊंचे झंडे वाले महाराज को हाजिर-नाजिर! सच बोल भरी पंचायत में। सच से कैसा डरना?"

मैंगल ने महिंदरो की ओर देखा तो उसे लगा जैसे घूंघट में से झांकती उसकी बाईं आंख के दीए की लौ सूखे घास-फूस की बनी उसकी काया को छू गई हो। पगड़ी का गिरता हुआ सिरा ठीक से पकड़ते हुए उसने भीड़ में भौंचक्क हो रहे गुरजंट को अपनी छाती से लगा लिया!

रामो चंडी

चंदन नेगी

गली के मोड़ पर छज्जे वाले घर में रहती उस औरत को सभी रामो चंडी कहकर बुलाते थे। इस गली का दस्तूर ही था कि जिस नाम से गली में अधिक औरतें या मर्द होते, उन्हें उनके नामों के आगे कोई उपयुक्त विशेषण जोड़कर बुलाते। हमारी गली में रामो नाम की चार-पांच औरतें थीं--रामो बिल्ली, रामो दंदलो, रामो पुछल्ल, रामो चरखी और रामो चंडी। मैं हमेशा यह सोचकर खुश होती थी कि शुक्र है—मेरे नाम की गली में अन्य कोई लड़की नहीं। नहीं तो, मेरे किसी अवगुण को ढूंढकर मेरे नाम के साथ भी जोड़ दिया जाता। अन्य सभी रामो के नाम के साथ जोड़े गए विशेषण तो फबते थे, लेकिन रामो चंडी के नाम की मुझे समझ नहीं आती थी।

रामो के घर के बाद गली स्कूल की ओर मुड़ जाती थी। स्कूल जाती लड़कियों, अध्यापिकाओं, आयाओं सभी से रामो की जान-पहचान थी। वह आते-जाते सभी से हंस-हंसकर बातें करती। कभी किसी से लड़ती भी नहीं थी, नहीं तो यह गली हर रोज एक-आध लड़ाई की गवाह होती। लड़ाई के शोर को सुनकर सभी अड़ोसिनें-पड़ोसिनें अपने हाथों के काम छोड़कर, खिड़कियों-दरवाजों में आ खड़ी होतीं। घर का काम भुला दिया जाता, कपड़े भीगे पड़े रहते, अंगीठियां जलती रहतीं, बच्चे रोते रहते, दाल-सब्जी जल जाती, मगर वे स्वयं लड़ाई के चटखारे लेती हुई कई बार दूसरों की लड़ाई में खुद भी उलझ जातीं। फिर एक-दूसरे के बच्चों को गालियां दी जातीं, बेटों-खसमों के मरने की बद्दुआएं दी जातीं। सखीपन के समय रोए गए अपने-अपने दुखड़ों के ताने-उलाहने दिए जाते, पूरी गली में एक-दूसरी के 'राज' खोले जाते। अजीब तमाशा होता। कई बार तो सारी गली उलझ जाती थी और फिर कितने ही दिनों तक लड़ाई की बातें ही चलती रहतीं।

रामो तो कभी भी ऐसे लड़ाई-झगड़ों में हिस्सा नहीं लेती थी। न कभी किसी से उसका अधिक भाईचारा था, न कभी उसने चुगली की थी। ऊंची-लंबी, गोरी-चिट्टी, सुंदर शहजादी रामो! वह लंबी शायद इसलिए भी अधिक लगती थी क्योंकि उसका पति जीवन दुबला-पतला, मरियल और नाटा-सा था।

गली में बड़ा विशाल चबूतरा था—गली से तीन फुट ऊंचा, आसपास रास्ता और चारों

ओर घर—ऊंचे-ऊंचे, पंचमंजिले, छज्जे-बालकनियों वाले। यह विशाल चबूतरा पूरी गली के दुख-सुख का साझीदार था। विवाह भी यहीं पर ही होते थे, मरने-धरने भी। हमारे बच्चों का खेल का मैदान भी यही था और कांग्रेस के जलसे का मैदान भी। गर्मियों में मिशर तंदूर भी यहीं पर लगता था। हम सारी सहेलियां 'घर-घर' खेलतीं, गुड्डी-गुड्डे का विवाह भी यहीं पर रचातीं, जन्म से मृत्यु तक के सभी खेल पलों में खत्म कर देती थीं।

बड़े चबूतरे के चारों ओर अपने-अपने घरों-धड़ों के सामने शाम के वक्त औरतें चारपाइयां बिछाकर बैठती थीं और सुई, सिलाई, किनारी, तिल्ले-सिलमे का काम करती थीं। पेशावर में तो उस समय लड़की पैदा होते ही उसका दहेज बनना शुरू हो जाता था। रामो को न अपनी बेटी का दहेज बनाने की फिक्र थी, न वह कभी गली में संगी-साथियों के पास आकर बैठी थी। वह सदैव अपने छज्जे पर ही चारपाई बिछाकर बैठी रहती। गली में से गुजरते हुए कोई पल-दो पल रुककर उसके साथ बात कर लेती, "पता चला कुछ जीवन का? तू मिलने गई थी? कितने दिन की कैद हुई? सच्चा पातशाह उसके बंधन काटेगा।... खुद सहायता करेगा...तू ठीक है न? बेटी ठीक है?" और रामो के उत्तर देने से पहले ही छज्जे के नीचे से गुजर जाती।

इसी चबूतरे के अंतिम कोने की अंतिम गली में रामो के ससुराल वालों का घर था। रामो स्कूल जाती लड़कियों को देख, अपनी बेटी से बेहद लाड़-प्यार जताने लगती—मेरी डड स्कूल जाएगी।...मैं नया बस्ता ले दूंगी।....ठुमक-ठुमक चलेगी मेरी डड...जाएगी तू भी बहन के साथ स्कूल? उस समय मैंने कच्ची-पहली में स्कूल जाना आरंभ ही किया था। जब मैं स्कूल जा रही होती, वह मुझे रोककर अपनी बेटी कांता से बातें करने, लाड़ जताने और कांता को स्कूल भेजने के स्वप्न संजोने लग जाती थी।

शायद, रामो का अंदर कमरे में दिल घबराता था। तभी वह सारा दिन छज्जे में ही बैठी रहती। पूरी गरमी, ऊमस, हवा, बरसात वह कमरे के बाहर ही गुजारती। पूरी सर्दी कोहरे वाली ठंड में भी वह यहीं पर ही ठिठुरती थी और गुनगुनी धूप भी यहीं पर देह सेंकती थी।

रामो कैसे गुजारा करती? कहां से खाती? दो पेटों की जीवनधारा अन्नदाने से कैसे जुड़ी थी? पूरी गली के निवासी तरस तो खाते किंतु उसकी सास के डर से कोई कुछ न कर पाता। उसकी सास गालियां देती हुई लोगों के बच्चों को कोसती रहती थी।

"बेचारी ने कभी घर से बाहर पैर नहीं निकाला। जब से उम्र-कैद हुई है, एक आप, एक छज्जा, एक कांता और एक रब का आसरा पकड़े बैठी है।"

"बेचारी को तो सास दम ही नहीं भरने देती। फटा भी पहना, थिगड़ियां भी लगाई, पर किसी के आगे हाथ नहीं पसारे।"

"कब पूरे होंगे सात साल?... कब बेचारी की जून कटेगी? सात साल... जवानी तो

गल जाएगी बेचारी की।"

गली की औरतें बैठकर आपस में बातें करती थीं।

जून ही तो भोग रही थी रामो। उसकी सास कोठे वाले जंगले से हर समय उस पर नजर रखती थी। अगर रामो कुछ अच्छा खा ले तो शामत, अगर धुले कपड़े पहन ले तो पूरी गली को वह सिर पर उठा लेती, "मेरा बेटा जेल की चक्कियां पीस रहा है। इसके चस्के ही खत्म नहीं होते। बन-ठनकर मालूम नहीं कौन से यारों का दिखाती है? एक उतारा, एक पहना, पोशाकों का ही मान नहीं होता।" और रामो के अगले-पिछले सभी को गालियां निकालती। उसकी सास जीवन की कैद के लिए भी रामो को ही जिम्मेदार ठहराती तो रामो छज्जे पर ही सारी गली के सामने दोनों हाथों से खुद को पीटने लगती। ऊंची, लंबी, चौड़ी कद-काठी वाली रामो, बूढ़ी के अन्य बेटों-भाइयों का स्यापा करती बहुत अजीब-सी लगती। उसका गोल, सफेद चेहरा लाल सुर्ख हो उठता, बित्ता-बित्ता भर लंबी लटें उसके चेहरे पर झूलने लगतीं। पूरी गली की औरतें एकत्र हो जातीं। कोई रामो से हमदर्दी जताती, कोई उसकी सास से।

"हे री, बूढ़ी हड्डियों के लिए यह चोट कम तो नहीं कि उसका जवान-जहान बेटा जेल में सड़ रहा है।"

"हाय-हाय री! बहू को तो औरत कलेजे से लगाती, उसकी भी छोटी-सी जिंदगी...पीछे कोई है नहीं, आगे वालों ने पूछा नहीं, दुत्कारते रहे। कहां जाएगी बेचारी?"

"सच है, औरत की जिंदगी तो आदमी के साथ है। आदमी पर कोई विपदा आए, औरत की कुत्ते जैसी हालत हो जाती है। कभी किसी ने चार पैसे भी पूछे हैं उसको?"

फिर इस गली की सभी औरतें आपस में ही खुसर-पुसर करतीं, "अरी, तुझे नहीं पता है क्या? जीवन पैसे भेजता है, चोरी-चोरी...हां।"

"अरी, कैद थोड़े ही है। छुपा हुआ है कहीं, सरकार से डरकर। हां।"

"नहीं री। राख पड़े तुझ पर। कैद है। कहते हैं–रामो तो मिल भी आई है उससे जेल में। बताती नहीं। वह कौन-सी कम है, चार कदम ज्यादा ही होगी।"

"ये तो खुद बता रहे थे कि जर्मनों को अपने मुल्क के राज बता आया है। बड़ा पैसा खाया है इसने। फिर सरकार छोड़ती है ऐसों को? सात पुश्तों तक वैर पड़ जाता है। उनके खिलाफ कोई बोले तो सही! वो यूं ही तो नहीं सात समुन्दर पार से आकर राज कर रहे!"

"ऐसा पैसा कहीं पचता है? अब देखो न, बेचारी बहू के गोद वाले बच्चे का क्या हाल हो गया। भुगत तो वही रही है न? किस मोरी में चला गया पैसा? होता तो ऐसे ही ,नी?"

तरह-तरह की लोग बातें करते, रामो के बारे में, जीवन के बारे में।

तीन वर्ष यूं ही गुजर गए। रामो भी अच्छी तरह लड़ना सीख गई। अब सास से लड़ने

के बाद, खुद ही सारा दिन बड़बड़ाती रहती, सास के बेटों को कोसती रहती। कभी ऊंचे स्वर में सास को सुनाकर, कभी होंठों में बुदबुदाकर। कभी-कभी तो उसको जैसे कोई दौरा पड़ जाता। खुद ही रोती, खुद ही चुप हो जाती। बहुत गुस्सा चढ़ता तो कांता को दोनों हाथों से पीट देती, छज्जे से नीचे फेंक देती।

"तेरे सिर में राख पड़े...मरती भी नहीं...तू न हो तो मैं जहर खाकर मर जाऊं। इस जिंदगी से तो मरना अच्छा है...उसको सरकार ने बेड़ियां डाल रखी है, तूने मुझे डाल रखी है।"

न कोई रामो को दिलासा देता, न चुप होने को कहता। कांता गली में औंधे मुंह पड़ी रोती रहती। जब रामो के अंदर का गुबार निकल जाता तो किसी आने-जाने वाले से कांता को पकड़ा देने के लिए मिन्नत-चिरौरी करती और छज्जे से ही हाथ लटकाकर पकड़ लेती।

तुंगी-तुर्शी, लड़ाई-झगड़े, रोने-धोने में तीन वर्ष और गुजर गए। रामो को जीवन के बारे में कुछ पता नहीं चला था कि उसका कसूर क्या है? उसने कौन-सा ऐसा काम किया है कि सरकार उसके साथ मुलाकात करने की भी इजाजत नहीं देती? औरत की जून--घर के अंदर से पैर निकालना भी वर्जित। पढ़ी-लिखी वह थी नहीं। देवरों ने कभी जीवन के विषय में कुछ बताने की आवश्यकता ही नहीं समझी थी।

एक बार उसे थोड़ी-सी भनक पड़ी थी। कोई आदमी आया था और कांता को उसका देवर पहली बार उठाकर कोठे पर ले गया था। कांता को उसने कपड़े के खिलौने दिए थे। रामो भी पीछे-पीछे सीढ़ियां चढ़कर दरवाजे के पीछे खड़ी होकर चोरी-चोरी उनकी बातें सुनती रही, "लो... लाले की जान। यह तो हू-ब-हू जीवन है। बिलकुल सूखी, पतली, सांवली।" कांता को उठाकर प्यार करना चाहा, मगर पराए आदमी को देखकर वह रो पड़ी थी।

रामो का शक उस आदमी की आवाज सुनकर पक्का हो गया। यह आदमी तो जीवन को मिलने बहुत बार आया था। कभी कोई सरदार आता, कभी मौलवी, कभी पंडित, कभी पठान और कभी टोपी वाला साहब। एक ही आदमी अलग-अलग रूपों में आता था या अलग-अलग आदमी आते थे, रामो को कुछ समझ में नहीं आया। अब भी उनकी बातें सुनने की उसने लाख कोशिश की, मगर जीवन शब्द के अलावा उसके पल्ले कुछ न पड़ा।

रामो की जुबान अब खूब चलने लगी थी। रामो की जुबान आग के शोले उगलती थी। सास को गालियां निकालती। वह जीवन को भी बीच-बीच में कोसने लग जाती। जिसने जो भी काम किया ऐसा ही काम क्यों किया? जिसकी सजा अब वह भी भुगत रही है। क्यों उसने उसको तबाह किया? अब अपनी खैर-खबर भी अपने भाइयों को ही भेजता है। भाई, जिन्होंने रामो की कभी खबर नहीं ली, कभी दुख-सुख नहीं पूछा, कभी कुछ दिया नहीं। छज्जे पर से गिर-गिरकर कांता की टांगें टेढ़ी हो गईं, कांता की बांहें टेढ़ी हो गईं।

न वह दौड़ती, न खेलती, न बोलती। अपने छज्जे पर ही बैठी रहती और गली में बिटुर-बिटुर देखती रहती थी। बैठे-बैठे उसका पेट फूलता जा रहा था।

रामो को मालूम नहीं था कि जीवन को पुलिस क्यों पकड़ कर ले गई थी? एक दिन, अभी भोर की पहली किरन भी नहीं फूटी थी, गली के गुरुद्वारे में अभी सुखमनी साहब का पाठ शुरू ही हुआ था, मंदिर में से अभी आरती और घंटों की आवाज आई ही थी कि उनके घर की कुंडी बजी थी। जीवन तो गहरी नींद में सोया पड़ा था। रामो ने खिड़की में से देखा तो घबराहट में उसकी जान ही सूख गई। बंदूकें थामे, ऊंचे-ऊंचे तुर्रों वाली पगड़ियां बांधे पुलिस के कितने ही जवान दरवाजे पर छज्जे के नीचे खड़े थे।

कुंडी खड़कती रही। रामो क्या करे? क्यों आई है पुलिस? जीवन तो लंबे-लंबे खर्राटें भरता बेखबर सोया पड़ा है। वह नंगे पैर कोठे के ऊपर देवर को बताने गई। सभी की सांसें रुक गईं। जीवन को उठाया। उसने स्वयं तसल्ली से दरवाजा खोला और खुद ही दोनों हाथ पुलिस अफसर के आगे कर दिए। जीवन के चेहरे पर कोई गम नहीं था, न ही चिंता। बड़ी आशा से अपने भाई को सिर्फ इतना ही कहा, "इन दोनों का ख़्याल रखना।" और स्वयं पुलिस अफसर के संग चल पड़ा।

रामो हतप्रभ, जहां की तहां खड़ी रह गई। किसी को कुछ पता न चला, जीवन को पुलिस क्यों पकड़कर ले गई है? गली में पुलिस के बूटों की दगड़-दगड़ से पूरी गली जाग उठी थी। आदमी गली में इकट्ठे हो गए, अजीब भिनभिनाहट थी। बात का सिरा तो किसी के हाथ आया नहीं, बस कयास ही लगते रहे।

"दफ्तर में गबन किया होगा।"

"नहीं यार! सुना है, दुश्मन से मिला हुआ है, छावनी की सारी खबरें उन्हें भेजता रहा है। कहता है, अंग्रेजों की हार होनी चाहिए।"

"कई बार तो कहते भी सुना है, जर्मन के पास बहुत ताकत है। हिटलर ने इनकी नींद हराम कर रखी है। एक बार अंग्रेज हारे तो हमारा भारत आजाद हो जाएगा। हमारी गुलामी की जंजीरें कट जाएंगी। हम भी एक-एक का बदला लेंगे। फांसी के तख़्तों पर लटकाएंगे, कितनों को लटकाएंगे और कितनों को मारेंगे गोलियां?"

"बेशक नौकरी तो सरकारी करता है लेकिन भगत है, पूरा देशभगत। हमेशा सुभाष चंदर बोस के गुण गाता रहता है। एक बार तो कहता था—रब ने मेरे से कैसा बदला लिया है?... मुझे हड्डियों का ढांचा बना दिया है। नहीं तो मैं भी आई. एन. ए. में चला गया होता... चला तो अब भी जाऊं, क्या करूं, बूढ़े मां-बाप और इस टब्बर का?...किसी काम तो आ ही सकता हूं। अंग्रेजों को, सरकार को मोटी-मोटी गालियां निकालकर अपना दिल ठंडा करता रहा है।"

"अब कहां छूटेगा वह जल्दी? इनके शिकंजे में कोई चढ़े तो सही।"

''फौजियों को कहता रहा है--ओए, जान गवानी है तो अपने देश पर कुर्बान हो जाओ। क्यों बलि के बकरे बनते हो सालो! इन अंग्रेजों की खातिर? डूबने दो इनके राज्य का सूरज... भारत हमारी सोने की चिड़िया को कैद कर उसके पंख नोच लिए और भर लिए अपने खजाने। बंब और गोलियों से मरने से तो अपने घर, अपने मुल्क में भूखे मरना अच्छा।''

''यार! आहिस्ता बोल। क्यों मरवाता है? कोई सुन लेगा। मेरे तो छोटे-छोटे बच्चे हैं, न कोई आगे, न पीछे। वे तो भूखे मर जाएंगे। तुझे तो अपने भाइयों की बांहों का सहारा है न, तभी उछल रहा है।'' कोई यार-दोस्त उसकी बातें सुनकर कहता।

और कयास बढ़ते-बढ़ते बातों के पहाड़ बन गए। रामो छज्जे पर बैठी रोती रही। सभी उसी से बार-बार पूछते थे मगर वह तो यही रटती रही थी, ''मुझे तो कुछ पता नहीं है...घर में तो बात भी कभी नहीं की। घर देर से आते थे तो कहते थे, दफ्तर में बहुत काम है। देर हो जाती। हाय, मेरा अब क्या होगा?'' और वह रोने लगती।

कोई उसको धीरज दिलाता, ''रो न, यूं ही अपशकुन क्यों करती है? डाका तो मारा नहीं है। कत्ल तो किया नहीं है... सभी बैठे हैं पता करने को।''

पुलिस इंस्पेक्टर से मुहल्ले के एक बुजुर्ग ने पूछने की कोशिश भी की, लेकिन वह बिलकुल सीधा खड़ा होकर दाएं हाथ में डंडा घुमाता रहा और फिर उसने आंखें घुमा लीं। पच्चीस-तीस सिपाहियों की टुकड़ी में घिरे दुर्बल-से जीवन को बाहर खड़ी पुलिस की जीप तक गली के सभी लोग छोड़ने गए थे।

सारा दिन रामो के घर आस-पास वाली गलियों के लोगों का आना-जाना लगा रहा था। रामो रो-रोकर बावली हो गई, ''हाय! मुझे क्या मालूम... बाहर क्या करता रहा है।'' रटते-रटते उसका गला भी बैठ गया।

रात में गली के चबूतरे पर सभी लोग इकट्ठा हो गए, लेकिन किसी के कान में भनक न पड़ी कि जीवन को पुलिस क्यों पकड़ कर ले गई है? उसने क्या कसूर किया है?

जीवन के भाइयों को दिन भर की दौड़धूप करने, दर-दर भटकने, अफसरशाही के दरवाजे खटखटाने के बावजूद पता नहीं चला था कि जीवन को कौन-सी जेल में कहां ले गए हैं?

''जरूर राज्य की सीमा से बाहर ले गए होंगे, जहां से उसका अता-पता न मिले।''

लोगों में फिर और ही बातें छिड़ गईं। जंग की, तबाही की, मंहगाई की, हिटलर की, नजरबंद फौजियों की। सुभाष चंद्र बोस के नजरबंदी के दौरान भेष बदलकर भाग जाने की खबर लोगों की जुबान पर आनी शुरू हो गई थी।

रामो को कुछ दिन तो सास ने अपने पास रखा और नीचे की छत को ताला लगा दिया। कभी किसी वक्त किसी काम से रामो नीचे उतरती तो घर काटने को दौड़ता। वह तुरंत ही कोठे पर चली जाती। देवरानियों ने अपने-अपने बच्चों को संभालने-संवारने का

बहाना बना लिया। रामो का साईं कैद में था, हो सकता है उसे फांसी की सजा हो जाए, या उम्र-कैद या काला पानी। वह तो बिलकुल ही कंगाल हो गई थी।

जीवन पर मुकदमा चला। सारी गली जैसे कचहरी पर टूट पड़ी। जीवन ने बड़े गर्व से अपने जुर्म का इकबाल कर लिया था।

''हां... मैं पेशावर रेलवे स्टेशन पर गाड़ी में से एक पठान को बाहर लेकर आया था।'' फिर जीवन ने सजल आंखों और भर्राए हुए गले से कहा था, ''मेरी बदकिस्मती यह है कि मुझे पता ही नहीं था कि वह सुभाष चंद्र बोस था। जिसकी मैं दिन-रात पूजा करता रहा था, जिसकी फौज में भर्ती होने के लिए मैं तरसता रहा। कितनी बार घर से भागने की कोशिश भी की लेकिन घर के बंधनों की कड़ियों को तोड़ना तो क्या, मैं ढीली भी न कर सका। शायद, मैं किसी परीक्षा में पूरा नहीं उतर सका। तभी तो मुझे बताया नहीं था, सुभाष चंद्र बोस को पहचानने से वंचित रखा गया था मुझको। मुझे तो यही मालूम था कि एक पठान को गाड़ी के डिब्बे में से बड़े आदर और सम्मान से बाहर टांगे तक लाना है। टांगे में दो आदमी और भी बैठे थे, लेकिन मुझे उन्होंने रास्ते में ही उतार दिया था। मुझे तो कैद होने के बाद ही मालूम हुआ कि वह पठान कौन था। मैंने कौन-सा जुर्म किया था? जो चाहो सजा दे दो।''

जीवन को सात साल की सजा हुई थी। सजा सुनकर जीवन का चेहरा तो खिल उठा था, लेकिन रामो सात साल काले कुएं में गिरी रही।

घर आते-आते, गली-पड़ोस, दूसरी गलियों के लोग भी जीवन की प्रशंसा करते न थकते, ''न बहू का ख्याल किया, न बेटी का... बदनामी अलग, क्या-क्या बातें बनाई थीं लोगों ने।'' जब लोग जीवन की कुर्बानी की तारीफें करते तो रामो के पैर जैसे धरती से दो कदम और ऊंचे हो जाते। जीवन के कारण ही सही, उसका अपना भी तो भारत को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने में कुछ योगदान है। उसने जो मुसीबतें झेली हैं, सार्थक हुईं... वह क्यों घर की नौकरानी बने? क्यों दिन से लेकर रात तक चूल्हे के आगे बैठी रहे?

सुबह होते ही उसने कांता को उठाया और नीचे वाली छत पर आ गई। वहां जहां वह जीवन के साथ रहती थी। अब रोज लड़ाई होती। रोज उठा-पटक। बात-बात पर लड़ाई। रामो लड़ाई में इतनी निपुण हो गई कि गली वालों ने उसका नाम ही रामो चंडी रख दिया। देवरानियां सज-संवरकर उसके छज्जे के पास से गुजरतीं तो वह गालियां निकालती, उनके बच्चों को कोसने लगती जो दूध-मलाई खा-खाकर सांढ़ की भांति पलते जाते थे और कांता को कभी दूध भी नसीब नहीं हुआ था। फिर वह कांता को गोद में उठा कितने लाड़ जताते हुए कसकर छाती से लगाकर बेइंतहा रोती थी। खुद ही रोती, खुद ही चुप हो जाती। भले दिनों को याद कर रोती रहती, अच्छे दिनों के सपने देखते हुए चुप हो जाती। कभी

सोचती—जीवन ने अपने देश के किसी काम आकर अपना नाम सुनहरे अक्षरों में लिखा लिया है, वह क्यों मरे हुओं की तरह जी रही है? अकेलापन, उदासी, ऊब, मानसिक कष्ट, निराशा, बेचैनी, तंगी... साथ हैं तो गली की कमर से लगकर खड़े छज्जे की जहां बैठकर वह सारा दिन काटती है, आते-जाते लोगों को देखती है, बोलती है।

इसी प्रकार, जिंदगी का सफर जारी रहा। इसी तरह सारा कार्य-व्यवहार। दिन-रात के चक्कर, लड़ाई-झगड़े, तंगी-तुर्शी, रूठना-मनाना और छज्जे की सांझ के साथ सात साल गुजर गए।

जीवन की कैद समाप्त होने का समाचार पूरी गली में फैला था। सारी गली के पुरुष सुबह से ही एक-दूजे को आवाजें लगाते हुए सचेत कर रहे थे। गली भर के पुरुष मालाएं लेकर जीवन को लेने सेंट्रल जेल गए। रामो चंडी भी सुबह से ही नहा-धोकर सज-संवर कर बैठी थी। उसके चेहरे पर सात साल पहले का जलाल और रौनक थी। मुर्झाया हुआ चेहरा खिला हुआ था। उसने भी तो आजादी की भट्ठी में अपने रक्त-सने जज्बों की आहुति दी है। बेशक, उसकी कुर्बानी की कोई कद्र नहीं।

मैंने पहली बार अपने होश में रामो को हार-शृंगार किए देखा था। उसकी किनारी वाली चुन्नी, बालों की फूल-चिड़ियां, रंगे होंठ, बिंदी। रामो मुझे बेहद पराई-पराई लगी थी। जैसे वह रामो हो ही न। वह खुश-खुश छज्जे पर बैठ गई और लोगों की बधाइयां लेने लगी।

गली में शोर हुआ। बच्चे आगे-आगे दौड़ पड़े। जीवन मालाओं से लदा हुआ, लोगों से घिरा हुआ गली का मोड़ मुड़ा। अच्छा-खासा जुलूस उसके आगे-पीछे था। वह अपने छज्जे के निकट पहुंचा। रामो उसको देखकर पहले तो मुस्कुराई और फिर कांता को छाती से चिपकाकर रुआंसी हो उठी। खामोश बैठी रामो के आंसू उसकी कमीज को भिगोते रहे, "देख कांता... वह सेहरों वाला तेरा बापू..."

जीवन ने एक नजर छज्जे की ओर देखा और फिर लोग उसको घेरकर बड़े, ऊंचे और खुले चबूतरे पर ले गए जहां सेहरों से लदे-फदे जीवन को तख्तपोश पर रखी बीच वाली कुर्सी पर बैठाया गया। छज्जे, खिड़कियां, दरवाजों, कोठियों पर लोगों के सिर ही सिर उग आए, जीवन को देखने के लिए। रामो अपने छज्जे पर से देखती रही जैसे ये पल, ये इज्जत, यह सम्मान जो जीवन को मिल रहा है, उस पर से तो कई साल कुर्बान किए जा सकते हों। उसका मन हुआ, वह भी दौड़कर जीवन के पास खड़ी हो जाए।

चूरू मूरू

भूपिंदर सिंह

बनिहाल से श्रीनगर की ओर काले नाग-सी बलखाती जाती हुई सड़क के दाईं ओर एक गांव है छोटा-सा और घृणित-सा। यह वही गांव है जहां जाने के लिए मेरे मित्र अब्दुल गफूर ने मेरी बेहद मिन्नत-खुशामद की थी।

पूछते-पूछते मैं एक छोटे-से झोंपड़ेनुमा घर में घुसा। अंदर आंगन में एक बच्चा अपने दो मेमनों के संग खेल रहा था। बच्चे का रंग कश्मीरी सेबों से भी अधिक लाल था और चेहरा मेमनों से अधिक भोला और मासूम! उसके बदन पर मैले-कुचैले चीथड़े और पांव में सूखी मूंज के मौजे चीख-चीखकर यह कह रहे थे कि आओ, देखो, जिसे कश्मीर में गंदी सुंदरता और मासूमियत की नंगी तस्वीर देखनी हो।

मैं अंदर गया। मुझे देखकर बच्चा और उसके दोनों मेमने सहम गए। जैसे चील को देखकर मुर्गी अपने चूजों को तुरंत अपने परों के नीचे छिपा लेती है, वैसे ही इस मासूम बच्चों ने दोनों मेमनों को अपनी बगलों के नीचे छिपा लिया था। मेमने भी उसकी बगलों के नीचे सहमकर ऐसे दुबक गए थे जैसे एक अजनबी व्यक्ति से बचने के लिए बच्चे की ये बगलें ही एकमात्र सही ठिकाना हो।

मैं उस बच्चे के समीप गया। वह और सहम गया। मैं भी चुप था और वह भी चुप था। इस बर्फ-सी चुप को तोड़ते हुए मैंने पूछा–

"मुहम्मद गफूर का घर यही है, बेटा?"

मेमनों को बगलों में दबाए हुए उसने यों ही 'हां' में धीमे से सिर हिलाया और मेरी ओर गौर से देखता रहा। अब उसकी आंखों में अपनत्व की आंच चमक रही थी। वह चेतन हो उठा। मैंने फिर पूछा–

"ये मेमने तेरे ही हैं, बेटा?"

उसने सफेद मुलायम ऊन जैसे अपने दोनों मेमनों को आगे सरकाया और बोला, "हां, इसका नाम चूरू, इसका नाम मूरू है।"

मेमनों को देखकर भूख मिटती थी। इतने सुंदर कि राह जाते राहगीरों का दिल करे कि घड़ी भर रुककर इनका रूप निहार लें। मैंने अपने चेहरे पर चमक लाते हुए कहा–

"बहुत अच्छे नाम हैं। जितने अच्छे तेरे मेमने हैं, उतने ही अच्छे इनके नाम हैं। अच्छा, इसका नाम चूरू और इसका नाम मूरू।"

"नहीं, इसका नाम चूरू, इसका नाम मूरू," उसने बारी-बारी अंगुली रखकर समझाया।

मुझे भी अपनी गलती का अहसास हुआ। मैं नाम उल्टे बोल गया था। क्या पता चलता था? एक जैसे तो थे दोनों।

"और तेरा नाम क्या है?"

"लूटा," उसने कहा।

"बहुत अच्छा नाम है तेरा भी। तेरे अब्बा से कई बार सुना है। मैं पंजाब से आया हूं। तेरे अब्बा के पास से। वह लकड़ियां चीरता है वहां। मेरा गहरा दोस्त है।"

मालूम नहीं, बच्चे ने मेरी पंजाबी पूरी तरह समझी कि नहीं। बिना कुछ बताए वह बाहर दौड़ गया। पीछे-पीछे उसके चुरू-मुरू आगे-पीछे दौड़ पड़े। बहुत सुंदर लगते थे दोनों, रूई के गोलों की तरह उड़ते जाते। पांचेक मिनट के बाद बच्चा मां को खींच लाया।

मां भी बेहद सुंदर थी। अंधेरे में बैठी उजाला करने वाली। गुलाबी चेहरा, मोटी भूरी आंखें, सुडौल और ठोस शरीर। स्त्री थी कि लाजवंती का बूटा! कमान की तरह दोहरी हुई बगल को झुकाकर वह एक कोठरी में जा घुसी। बच्चा भी खुशी में कूदता हुआ अंदर चला गया। कुछ क्षण बाद वह बाहर निकला और मेरी अंगुली पकड़कर मुझे दूसरी कोठरी की ओर खींचने लगा। कोठरी वास्तव में छोटी-सी थी। हवा का निकास कहीं से नहीं था। फर्श कुछ साफ-सुथरा था लेकिन दीवारें धुआंई हुई थीं।

बस, यही दोनों कोठरियां उनका घर थीं। साथ वाली कोठरी में से बच्चा निकला और मिट्टी के एक बर्तन में किसी मीठे झरने का पानी ले आया। बेहद भोले मुख से उसने मुझे बताया–

"सरदार, अम्मा कैती, अब्बा काई हाल?"

मैंने उसके मासूम गालों पर हाथ फेरा और बिल्लौरी आंखों को चूमते हुए कहा, "बहुत अच्छा। ये कपड़े के बूट तेरे लिए भेजे हैं और ये काला लंबा परांदा तेरी अम्मा के लिए।" मैंने दोनों वस्तुएं बैग में से निकालकर उसके हवाले कर दीं।

वह तुरंत अपनी अम्मी के पास दौड़ गया। खुशी में उसके पांव धरती पर नहीं पड़ रहे थे। कुछ पल बाद वह फिर आया। उसके अंग-अंग में बिजली की-सी फुर्ती थी। शरीर उसका उमंग में नाच रहा था। वह फिर मेरे पास आ गया। मैंने उसका मुंह चूम लिया। दो होठों की प्यार भरी तरल छुअन से जैसे मैंने उसके अंदर का सारा परायापन चूस लिया हो। वह मेरा ही हो गया। अपनी मां का दूसरा सवाल उसने फिर मुझसे किया–

"सरदार, अम्मा कैती, अब्बा बड़ी देर हाई गई, नाही आया। काई बात हाई? काब आएगा?"

"आ जाएगा तीन महीने तक। बहुत खर्चा होता है। तीस रुपए लग जाते हैं आने में।"

यह संदेश देने के लिए वह स्वयं ही मां की ओर भागा, लेकिन मां तो पहले ही सुन रही थी। मैंने देखा, कश्मीरी झुमकों वाला अनार के फूल जैसा उसका लाल कान पहले ही दोनों कोठरियों को जोड़ती बीच की खिड़की से सटा हुआ था।

इतने में, मुहम्मद गफूर का छोटा भाई आ गया। बेहद तपाक से उसने मेरा स्वागत किया। वह श्रीनगर में किसी शिकारे पर काम करता था, सुबह से शाम तक। मगर हालत उसकी पंजाब में लकड़ी चीरते मजदूर-पेशा काश्मीरी मुसलमान जैसी ही थी—गरीब-सी। बातचीत के जरिए उसने अपने भाई की खैर-खबर पूछी। रोटी तैयार थी। बड़े प्यार और सत्कार से खिलाई। रूखी-मिस्सी भी बेहद स्वादिष्ट लगी। दोनों चाचा-भतीजा देर रात तक बातें करते रहे और पंजाब के बारे में बहुत कुछ पूछते रहे। कई बार बड़े ही भोले प्रश्न करते। बोली थोड़ी-बहुत ही मेरे पल्ले पड़ती थी, लेकिन वे पंजाबी काफी समझते थे। मैं सोच रहा था कि कितना प्यार है इन लोगों में। कितनी मासूमियत है इनकी आंखों में। कितने अच्छे हैं इनके दिल। गरीबी में दबे हुए अपने बच्चों की आशाओं और अपनी पत्नी की इच्छाओं को कुचलकर ये देश-परदेश में घूम रहे हैं। मगर खाने को वही रूखा-मिस्सा और पहनने को वही फटा-पुराना। कई किस्म के संदेश दिए इन तीनों ने, अब्दुल गफूर के लिए। सबसे प्यारा संदेश लूटे का था अपने बाप के लिए।

"सरदार, अब्बा को कायना, लूटे का चूरू-मूरू बहोत आछा।"

नंगी चारपाई पर बहुत मीठी और गहरी नींद आई।

सुबह हाथ-मुंह धोने के पश्चात् उन्होंने मीट की बहुत बड़ी कुंडी मेरे सम्मुख लाकर रख दी, जैसे मैं कोई दानव होऊं। मैंने दो बुरकियां ही तोड़ी थीं कि लूटा आ गया। उसकी आंखें किसी गर्म पानी के चश्मे की भांति उमड़ रही थीं। नन्हें-नन्हें आंसू लड़ी बनकर उसके गालों पर बह रहे थे। वह आते ही मेरी टांगों से लिपट गया और बड़ी-बड़ी सांसें भरता हुआ पूछने लगा—

"सरदार, अब्बा के पास जाइगा?"

"हां बेटा, जाऊंगा।"

"अब्बा से कायना, अम्मा ने मूरू को मारी डाला।"

मैंने बच्चे को एक रुपए का नोट पकड़ाते हुए भरोसा दिलाया कि मैं उसके अब्बा को जरूर बताऊंगा।

नोट पर उकरी तीन शेरों वाली तस्वीर लूटे को उसका मूरू कहां से देता? वह फिर अपनी चीखती आत्मा के साथ अपनी अम्मा की ओर भाग गया। इस बार शायद उसकी अम्मा ने बता दिया हो कि उसके मूरू को काटकर सरदार के लिए खाना बनाया गया है।

वह फिर मेरे पास आया और मेरे सामने रखी मीट की कुंडी में देखने लगा। आंसुओं की रफ्तार भले ही अब पहले से तेज थी, लेकिन अब वह आंखें नहीं झपका रहा था। उसकी बिल्लौरी आंखें लाल-सुर्ख हो चुकी थीं। मासूम गाल हिंसक रूप धारण कर चुके थे। और गुस्से में उसका सारा शरीर कांप रहा था। मैंने मीट की एक बोटी बुरकी के साथ तोड़ते हुए कहा, "रो मत बेटा, मैं तुझे शिकारे पर सैर कराने ले चलूंगा।"

"नाही जाइगा।" उसने चीखकर कहा और साथ ही अपनी जेब से मेरा दिया नोट निकालकर मेरी ओर उछाल दिया। उसका चाचा इस गुस्ताखी से खीझकर उसको मारने के लिए दौड़ा। मेरी समझ में आ चुका था कि बच्चे की कौन-सी रग दुखती है। समझ में आते ही मेरे सामने पड़ी मीट की कुंडी मेमने की नहीं बल्कि कपिला गाय के मांस से भरी हुई प्रतीत हुई और बीच की लाल-लाल तरी लूटे की भोली और सच्ची प्रीत का खून!

मुझसे फिर मीट नहीं खाया गया। लूटे के चाचा द्वारा हजार मिन्नतें करने के बाद भी नहीं। मैंने उसको समझाया कि उन्होंने बहुत बड़ी गलती की है। कसूर असल में उनका अपना था जिन्होंने लूटे की नींद का लाभ उठाकर उसके प्यारे मित्र का खून कर दिया था।

मैं बच्चे को ढूंढने लगा। वह कोठरी में नहीं था। आंगन में भी नहीं था। मैं बाहर निकला। फिर एक ढलवां-सी छोटी पहाड़ी पर वह और उसका चूरू बैठे दिखलाई दिए। दबे पांव मैं उन तक पहुंचा। वह किसी पहाड़ी देवता की सफेद मिट्टी के आगे फरियाद कर रहा था, "अम्मा ने मेरा मूरू मारी डाला और सरदार ने खाई डाला।" समीप ही उसका अकेला रह गया साथी चूरू सिर झुकाए बैठा था। दोनों को बिछड़ गए साथी का दुख था। दोनों के दिल घायल थे। जख्मों पर मरहम लगाने के लिए मैंने कहा, "मैं तुझे बहुत सारे पैसे दूंगा, लूटे! तू और मूरू ले लेना।" मेरी आवाज सुनकर वह चौंक उठा। उसने मेरी ओर देखा और अपने चूरू को बांहों में दबाकर उसने पीठ घुमा ली। उसने कहा, "नाही लेगा। माय अब्बा को कहूंगा—अम्मा ने मूरू को मारी डाला और सरदार ने खाई डाला।" यह कहते हुए वह ढलवां पहाड़ी के नीचे की ओर दौड़ने लगा। ढलान बिलकुल सीधी थी। मैं डर रहा था कि कहीं उसका पैर फिसल न जाए। वह अपने चूरू को छाती से चिपकाए ऐसे दौड़ रहा था जैसे मैं कोई भेड़िया होऊं और उसके साथी को खाने को आया होऊं।

मुझे अपने आप से घृणा होने लगी। ऐसा लगा जैसे मैं मनुष्य की जगह कोई दरिंदा बन गया होऊं और मेरे नाखूनों पर कुत्ते-बिल्लियों सरीखे नाखून उग आए हों। अभी तक बच्चे के कहे शब्द मेरे कानों में गूंज रहे थे—

'माय अब्बा को कहूंगा, अम्मा ने मूरू को मारी डाला और सरदार ने खाई डाला।'

दुश्मन

रणजीत सिंह

टेरीटोरियल आर्मी को जब आफीसर्स ट्रेनिंग स्कूल, भुवनेश्वर प्रशिक्षण के लिए पहुंचने का आदेश हुआ तो मुझे तो खुश होना ही था, हमारे घर ने भी जैसे सुख की सांस ली। मेरी निरंतर असफलताओं के कारण घर का वातावरण उदास और परेशान था। परीक्षाएं मैं सभी पास किए जा रहा था, लेकिन नंबर इतने नहीं आते थे कि कहीं मैरिट में आ पाता। दो बार नेशनल डिफेंस अकादमी, खड़गवासला के लिए बैठा। दोनों बार परीक्षाएं पास कर लीं, मगर इंटरव्यू में सफलता नहीं मिली। इंडियन मिलेटरी अकादमी, देहरादून में भी इसी तरह न पहुंच सका। मेडीकल और इंजीनियरिंग कालेज भी मेरी पहुंच से बहुत दूर रहे।

जो भी मिलता, कहता, ''कोई लाइन पकड़... कोई लाइन पकड़...।'' मैंने विवश होकर कहना प्रारंभ कर दिया, ''अगर और कोई लाइन न मिले तो क्या मैं गाड़ी की लाइन पकड़ लूं? और अगर कहो तो बिजली की लाइन पकड़ लेता हूं।''

न हंसी आती, न रोना आता।

सही बात यह थी कि मेरा बचपन से ही रुझान साहित्यिक था। कविता, कहानी और उपन्यास पढ़ने वाला साइंस और गणित के लिए कितना समय निकाल सकता था? कविता-कहानी लिखने वाला खेलों में कितने मैदान मार लेता? अब छोटे भाई को भी फौज में अफसर बने कई साल बीत गए थे। मेरे किसी निश्चित नौकरी पर न लगने के कारण उसका विवाह भी रुका हुआ था।

टेरीटोरियल आर्मी की नौकरी की अवधि केवल पांच साल ही होती है, लेकिन कार्य के अच्छे प्रदर्शन पर यह अवधि बढ़ जाती है और कई बार नौकरी पक्की भी हो जाती है।

चलो, पांच-सात साल के लिए तो भूख और परेशानी के भेड़िए दरवाजे पर से हटे।

दो वर्ष, भुवनेश्वर में ट्रेनिंग के बाद मुझे महार रेजिमेंट में अफसर बनाकर नागालैंड भेज दिया गया। वहां मैं लगभग दो वर्ष ही रहा होऊंगा कि हमारी रेजिमेंट दिल्ली आ गई। दिल्ली कुछ समय ही गुजरा था कि पूर्वी पाकिस्तान जो अब बांग्लादेश कहलाता है, में गड़बड़ शुरू हो गई। पाकिस्तान में हुए आम चुनावों में कौमी असेंबली के लिए मुजीबुर

रहमान की आवामी पार्टी बहुमत लेने में सफल हो गई, लेकिन न राष्ट्रपति याहिया खान और न ही स्वयं प्रधानमंत्री बनने के इच्छुक भुट्टो साहब ने उन्हें पाकिस्तान का प्रधानमंत्री बनने दिया। पूर्वी पाकिस्तान में हालात बहुत खराब हो गए। मुजीब साहब को गिरफ्तार कर लिया गया और फिर यातनाओं और दमन का दौर आरंभ हुआ।

लाखों की गिनती में लोग पूर्वी पाकिस्तान छोड़कर हिंदुस्तान आ गए। भारत सरकार के द्वारा पाकिस्तान को अपना घर संभालने की सलाह पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। मुक्ति-वाहिनी वजूद में आ गई। और इस तरह उन्नीस सौ इकहत्तर में हिंद-पाक जंग शुरू हो गई। साफ जाहिर था कि लड़ाई पूर्वी अखाड़े तक ही सीमित नहीं रहनी थी। सो, हमारी रेजिमेंट को जम्मू-कश्मीर में कारगल के इलाके में भेज दिया गया।

कारगल सेक्टर में ही मेरी उससे पहली मुलाकात हुई। वह जो मेरा दुश्मन था। उसने मेरी भूमि नहीं संभाली थी। मेरे घर की किसी औरत पर बुरी दृष्टि नहीं डाली थी। न ही मेरा उसके साथ पहले कभी कोई वास्ता पड़ा था। मगर वह मेरा दुश्मन था। एक युद्ध था–हमारे दोनों देशों के बीच। और युद्ध का एक ही उसूल होता है, अगर पहले हल्ले में मैंने उसको न मारा तो अवसर मिलने पर वह मुझे मार देगा। यही हमें सिखलाया गया था। आंखों में खून, राइफल पर संगीन और नीचे-ऊपर चार...र...ज! या वह नहीं या मैं नहीं।

लेकिन, ऐसा नहीं हुआ।

कहने को तो यह इलाका धरती के स्वर्ग कश्मीर का ही एक हिस्सा है। सर्दी के मौसम में बहुत सर्दी पड़ती है, यह भी सभी जानते थे। मगर देखने और सुनने में बहुत अंतर होता है। और समझ की सीढ़ी तक पहुंचते-पहुंचते असलीयत और कयास में फासला और भी बढ़ जाता है।

ठंडा, सफेद, रेतीला नर्क है यह। मुलतान्न होगा गरम नर्क। लेकिन यह ठंडा नर्क है। पहाड़ियों पर बर्फ, मैदानों में बर्फ और बर्फ के दरिया। ग्लेशियर कहते हैं इन बर्फ के बहते दरियाओं को। दो-दो गरम जुराबें, ऊपर बूट। फिर भी अंगुलियां-अंगूठे गल जाते। कई बार तो किसी-किसी की अंगुलियां काटने की आवश्यकता हो जातीं। गरम बनियान, गरम कमीज, जर्सी और ओवर-कोट में भी हड्डियां कंपकंपाने लगतीं। पगड़ियों के नीचे छोटी गरम पगड़ी बांधनी पड़ती थी। सर्दी का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि मुंह से निकलता श्वास धुंध बन जाता और धुंध बर्फ के छोटे-छोटे मोती बनकर दाढ़ी-मूंछों पर जम जाती। इस पर तुर्रा यह कि घंटों तक किसी बंकर या खंदक में दुबककर या घात लगाकर बैठे रहना पड़ता था। कई बार तो जिंदगी से मौत और नौकरी से बेकारी अच्छी लगने लगती थी। वहां तो घास का एक तिनका भी बर्फ की सफेद चादर पर दाग नहीं लगाता था। न कोई पंछी कूकता था, न कोई जानवर फटकता था। बंकर में से बाहर

निकलकर ठंड से जुड़े अंगों को गरम करने के लिए, उन्हें खोलने के लिए कसरत करने को मन तरसता। लेकिन यह तो दुश्मन की गोली को स्वयं बुलावा देने वाली बात थी।

हमारी तरफ लड़ाई अधिक हुई नहीं थी। फौजें न आगे बढ़ीं, न पीछे हटीं। लेकिन मोर्चाबंदी बहुत सख्त थी। आदेश था कि सामने होती किसी भी तरह की हरकत को नजरअंदाज न किया जाए। तुरंत ऐक्शन लेने का आदेश था।

एक दिन, मैं सुबह-सुबह ही अपने रिहायशी बंकर में से निकलकर खंदकों के बीच कहीं झुककर चलते हुए, कहीं हाथ-पैरों पर सरकते हुए, कई चौकियों का मुआयना करने के बाद पहाड़ी काटकर बनाई गई पिकेट पर पहुंचा। एक फौजी सिपाही सफेद मैदान की ओर बड़े ध्यान से देख रहा था। मैं उसके निकट जाकर खड़ा हो गया। सामने कोई डेढ़-सौ गज के फासले पर एक पाकिस्तानी पिकेट था। उधर भी कोई हलचल नहीं थी। हमारी ही तरह वे भी अपनी इच्छा को मारकर हमारी ओर देखते होंगे।

आहिस्ता-आहिस्ता सर्दी पैरों के रास्ते ऊपर चढ़ रही थी। राइफल की नाल गरम दस्तानों में से भी हाथों को ठंडा कर रही थी।

सिपाही ने मेरी ओर घूमकर कहा, "साहब, वो देखो।"

सामने एक काली टोपी खंदक में से निकलकर बाहर आ गई थी। फिर कंधे उभरे और फिर बाकी जिस्म। सिपाही ने राइफल कंधे पर लगा ली और निशाना बांध लिया। मैंने उसको इशारे से गोली चलाने से रोका। दूरबीन में से मैं उस आदमी की हर हरकत को देख रहा था। दूरबीन से वह साफ नजर आ रहा था। मध्यम कद-काठी। हल्का शरीर। ढलवें कंधे। उसके गले में कौड़ियों वाले सांप जैसा ऊन का मफलर था। सफेद जमीन पर काले भूरे खाने।

उसने आमने-सामने देखा। उबासी ली। अंगड़ाई लेकर शरीर की सुस्ती दूर की। फिर हमारे आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब हमने देखा, उसने उछल-उछलकर, कूद-कूदकर कसरत करनी आरंभ कर दी।

जी, हां। वह अपने जिस्म को, अकड़ी पड़ी टांगों और बांहों को, जमे हुए रक्त को, सर्दी में सिकुड़ी अंगुलियों को गरम कर रहा था, खोल रहा था, रवां कर रहा था।

हमारे दोनों देशों के बीच जंग चल रही थी। आदेश सख्त थे। तरस या लिहाज की कोई गुंजाइश नहीं थी। और, वह था कि डेढ़-दो सौ गज के फासले पर खड़ा कसरत कर रहा था। बहुत आसान-सा निशाना!

बेवकूफ! दीवाना! या फिर सच्ची मानवता में विश्वास रखने वाला!

मेरे सिपाही ने फिर मेरी ओर देखा। वह मेरे हुक्म की प्रतीक्षा कर रहा था। मेरे संकेत भर से राइफल के घोड़े पर थोड़ा-सा दबाव पड़ना था। हल्का-सा जोर। और फिर जोरदार धमाका। और उसकी कसरत बीच में ही रह जानी थी। जिन अंगों को वह गरम कर रहा

था, जिस खून को वह गति देने की कोशिश कर रहा था, और जिन हाथों-पैरों और अंगुलियों को वह रवां कर रहा था, उन्हें हमेशा के लिए ठंडा पड़ जाना था। और...बस...एक मनुष्य हमेशा के लिए खत्म हो जाना था।

मेरा सिपाही, मेरे आदेश की प्रतीक्षा करता रह गया और वह आदमी अपनी कसरत पूरी कर वापिस अपनी खंदक में उतर गया।

वह कौन था? कोई अफसर? कोई सिपाही? न मैंने जाना, न जानने की कोशिश की और न ही जान सका।

इस घटना को गुजरे कई वर्ष हो गए। इस दौरान, मैंने अपनी फौजी नौकरी की अवधि पूरी कर ली थी। एम. ए. कर लेने के बाद दिल्ली के एक कालेज में प्रोफेसर लग गया। मेरी साहित्यिक रुचियों को परवान चढ़ने का अवसर मिल गया। कविता, कहानियां पढ़ना, लिखना, पढ़ाना यही मेरा पेशा बन गया। कहीं कान्फ्रेन्स, कहीं सेमिनार, कहीं अदबी बैठक और कहीं साहित्यिक गोष्ठी।

पंजाबी भाषा की बहुत-सी संस्थाओं ने मिलकर दिल्ली में विश्व पंजाबी कान्फ्रेन्स करने की योजना बनाई। इस कान्फ्रेन्स में शामिल होने के लिए इंग्लैंड से, कैनेडा से प्रवासी पंजाबी लेखक आए। पाकिस्तान से भी पंजाबी लेखक पहुंचे।

आलेख पढ़े जा रहे थे। कविताएं सुनाई जा रही थीं। नाटक खेले जा रहे थे। लेकिन मेरी आंखें तो जैसे कील दी गई थीं। पाकिस्तान से आए एक साहित्यकार पर से मेरी दृष्टि हटती ही नहीं थी।

वही कद-काठी, वही ढले हुए कंधे, वही ओवर-कोट और गर्दन लपेटकर छाती और पीठ पर लटकाया गया कौड़ियों वाले सांप-सा वही मफलर...।

सैशन समाप्त होने पर मैं उसके पास गया। चौड़ा माथा, चमकती आंखें, तीखा नाक, जहीन किताबी चेहरा, कंपकंपाते होंठ—वह पाकिस्तान का मशहूर पंजाबी शायर मुश्ताक बट्ट था।

मैंने उसके साथ हाथ मिलाते हुए कहा, "बट्ट साहब, तुमसे एक जरूरी बात करनी है।"

"जरूर, जरूर।" उसने मुस्कुराते हुए कहा।

"तुम कभी फौज में रहे हो?"

"जी हां, पर..."

"उन्नीस सौ इकहत्तर की लड़ाई के समय कारगल सेक्टर में?"

"जी हां।" वह हैरान हो रहा था।

"तुम साइकिन ग्लेशियर के उस पार थे।"

"कमाल है... कमाल है..."

"फिर तुम अपनी खंदक में से बाहर निकलकर कसरत करने लगे थे।"

"ठीक, बिलकुल ठीक। मगर तुम?" उसकी हैरानी परेशानी में बदलती जा रही थी।

"तुम्हारे गले में यही चितकबरे सांप-सा मफलर था।"

"तुम ठीक कह रहे हो। मगर यह सब कुछ तुम किस तरह जानते हो?" वह मेरे सम्मुख एक प्रश्न-चिह्न बना खड़ा था।

"बट्ट साहब! मैं उस वक्त तुम्हारे सामने था। कोई सौ-डेढ़ सौ गज के फासले पर। मेरा सिपाही निशाना बांधकर मेरे इशारे की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन मुझसे गोली चलाने का हुक्म न दिया गया। उस सर्दी में सिर्फ एक पल पहले मैं भी बंकर में से निकलकर अपने जमे हुए रक्त को और ठंडे हुए अंगों को गरम करने के लिए कसरत करने की सोच रहा था।"

उसकी आंखों में नमी आ गई। उसने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिए और अपने माथे से लगाए, होंठों से छुआए और बोला, "पंजाबी के इस गरीब-से शायर को अल्लाह ने कुछ ज्यादा ही उम्र बख्शी हुई थी।"

मैंने उसके हाथों को अपनी आंखों से लगाया, अपनी छाती से दबाया।

यह मेरी अपने दुश्मन के साथ दूसरी मुलाकात थी।

शर्मा सर

जगदीश कौशल

अपनी बस्ती के स्कूल में स्थानांतरित होकर आने के बाद, दूसरे दिन ही शर्मा सर ने कांड कर दिया। अपनी कक्षा को काम करवा चुकने के बाद वह ड्राईंग-मास्टर की कक्षा में जा घुसे। कमरे में घुसते ही हाथ में पकड़ी हुई टूटे डैस्क की फट्टी को मेज पर मारते हुए वे गरजे, "तू सो रहा है?... बच्चे शोर मचा रहे हैं।"

अकस्मात हुए हमले से घबराए सभी बच्चे आदर हेतु शांत होकर खड़े हो गए। ड्राईंग मास्टर हड़बड़ाकर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। शर्मा सर के हाथ वाली फट्टी मेज पर बज रही थी और नजला ड्राईंग मास्टर पर गिर रहा था।

"तू हरामखोर है। मुफ्त की तनख्वाह लेता है। बच्चों का बेड़ा गर्क कर रहा है।"

ड्राईंग मास्टर ने स्थिति को संभालने के प्रयास में अत्यंत नम्रतापूर्वक कहा, "शर्मा जी, आप ठीक तरह से बात करें। मैं आपकी बुजुर्गी का लिहाज कर रहा हूं।"

"बुजुर्गी की ऐसी की तैसी! बुजुर्गी कई जहन्नुम में। मैं तुमको हरामखोरी नहीं करने दूंगा।"

"हरामखोर है तू। मेरी क्लास से बाहर हो जा।" ड्राईंग मास्टर ने नरमी की राह त्याग दी, "मैं प्रिंसिपल के प्रति जवाबदेह हूं।"

"प्रिंसिपल की ऐसी की तैसी! वह भी हरामखोर है। हर महीने दो हजार जेब में डालकर दफ्तर में सोता रहता है। इधर तुम लोग हरामखोरी करते हो।"

"हरामखोर होगा तू।" ड्राईंग मास्टर ने जवाबी हमला किया।

और फिर वाक्‌युद्ध तेज हो गया। सभी कक्षाओं के अध्यापक और बच्चे कमरों से निकलकर बरामदों में आ खड़े हुए थे। प्रिंसिपल दौड़ता हुआ आया। मेज पर, फर्श पर, दीवारों पर फट्टी मार-मारकर पटाखे छोड़ते शर्मा सर को बहुत मुश्किल से समझा-बुझाकर दफ्तर में लाया गया। आगे के लिए यह विश्वास दिलाकर कि सब काम ठीक ठाक होगा, उनको उनकी कक्षा में भेजा गया।

इस कांड पर विचार करने के लिए शाम को एक स्टाफ मीटिंग बुलाई गई। शर्मा सर की हरकत की मद्धम स्वर में निंदा की गई। स्कूल में अमन-चैन कायम रखने की संयुक्त

अपील की गई। प्रत्युत्तर में शर्मा सर ने बोलना आरंभ किया।

"प्रिंसिपल साहब और साथियो! मैं इस स्कूल में परसों आया हूं लेकिन इसके साथ मेरा प्यार तब से है, जब से यह स्कूल शुरू हुआ था। मैं इसी बस्ती का रहने वाला हूं। यहां के बच्चों का नुकसान होता देखकर मुझसे चुप नहीं रहा जाता। सारे देश में कहीं भी किसी को हरामखोरी करते हुए नहीं देख सकता। प्रिंसिपल लोग दो-दो हजार लेकर भी काम नहीं करते।"

प्रिंसिपल नजरें झुकाकर अपने दाएं-बाएं देखने लगा। और फिर मेज पर रखे कागजों पर कुछ लिखने लगा। शर्मा सर का स्वर ऊंचा हुआ, "जरा सोचिए! हम बच्चों को क्या दे रहे हैं? अरे यारो, जिंदगी में उनको कुछ तो बनने योग्य बना दीजिए। हम स्टाफ रूम में बैठकर कुढ़ते तो हैं कि देश तरक्की नहीं कर रहा। मगर हम स्वयं क्या करते हैं? अगर हम हरामखोरी करते रहें तो देश तरक्की कर लेगा? कैसे करेगा? बताइए मुझे! कोई समझाइए!"

शर्मा सर का जोश धीमे-धीमे बढ़ने लगा। वह और भावुक हो उठे। मेज पर दोनों हाथों से मुक्के मारकर बोले, "समझाइए मुझे! है कोई माई का लाल जो छाती ठोक कहे—मैं ईमानदारी से काम करता हूं। अरे यारो, मेरा यह देश वही है न, जिसे सोने की चिड़िया कहते थे। जिसके बारे में इकबाल ने कहा था—सारे जहां से अच्छा, हिंदोस्तां हमारा।"

यहां आकर शर्मा सर बुल्ले शाह की भांति रौ में आ गए और ऊंचे स्वर में गाने लगे—"सारे जहां से अच्छा, हिंदोस्तां हमारा, हम बुलबुलें हैं इसकी..."

अपने सुर्ख होते जाने मुख को छत की ओर उठाकर, सिर हिला-हिलाकर और ऊंचे सुर में गाते हुए शर्मा सर अपने आसपास को भूल गए। सामने पड़े मेज से उन्होंने तबले का काम लेना आरंभ कर दिया। सारा स्टाफ कभी शर्मा सर और कभी प्रिंसिपल के मुंह की ओर देख रहा था और प्रिंसिपल शर्मा सर के मुंह की ओर। उन्हें चुप कराने का साहस कोई नहीं कर रहा था।

झूम-झूमकर गाते हुए वह बाहर की ओर चल पड़े। बाकी स्टाफ को प्रिंसिपल ने उठने का संकेत किया।

सबने बाहर बरामदे में आकर देखा, शर्मा सर गाते हुए नल की ओर जा रहे थे। नल से उन्होंने ओक से पानी पिया। मुंह पर छींट मारे। अपने थैले में से तौलिया निकालकर मुंह पोंछा। स्कूल के आंगन में बिखरे पड़े तिनके-पत्ते, रद्दी कागज-पत्र उठा-उठाकर कूड़ेदानों में फेंकते हुए दफ्तर लौट आए, जहां अन्य सभी टीचर आज की घटना के विषय में खुसर-पुसर कर रहे थे और स्कूल छोड़ने की हाजिरी भर रहे थे। शर्मा सर के पहुंचते ही सभी ने चुप्पी साध ली।

इस स्कूल में शर्मा सर के तबादला होकर आने से कई साल पहले की कहानियां यहां

पहले की पहुंच गई थीं। कहा जाता था कि शर्मा सर जिस स्कूल में भी गए, कोई न कोई हरकत करने के बाद ही वहां से निकले। इन बातों की सूचना यहां के प्रिंसिपल को भी थी। लेकिन क्योंकि प्रिंसिपल और शर्मा सर किसी समय में एक साथ पढ़े थे, इसलिए प्रिंसिपल का विचार था कि शर्मा सर उसका अवश्य लिहाज करेंगे।

"मैं हरामखोरी करने वाले किसी भी व्यक्ति का लिहाज नहीं करता। अगर करता होता तो आज प्रिंसिपल बनकर ऐश कर रहा होता।" शर्मा सर अक्सर कहते, "मैं काम चाहता हूं, काम।"

और, काम शर्मा सर का ईष्ट था। सुबह की प्रार्थना वह अपने सामने खड़े होकर करवाते। बच्चों के अपनी-अपनी कक्षाओं में चले जाने के बाद वह स्कूल के मैदान का चक्कर लगाते और जो भी रद्दी कागज, कील, तिनका-पत्ता पड़ा देखते, उठाकर कूड़ेदान में फेंकते।

फूलवाड़ी के किसी पौधे के नीचे पड़ा कोई फूल देखते तो उसे उठा लेते और पत्ती-पत्ती कर सारे स्टाफ में बांट देते तथा कहते, "लो यारो, इस फूल से आभा और सुगंध लेकर बच्चों में जाकर बांटो।" इधर-उधर पड़ी कोई कुर्सी, मेज या डैस्क शर्मा सर की दृष्टि से बच नहीं सकती थी।

इस प्रकार के काम करते हुए घूमना शर्मा सर की नित्य क्रिया में शामिल था। इंडिया गेट के पास अध्यापकों के एक बड़े समूह ने भी एक बार देखा था कि शर्मा सर बाएं कंधे पर थैला लटकाए हुए, घास के मैदान में से रद्दी कागज के टुकड़े उठाते घूम रहे थे।

विजय चौक तक जाकर वह सफाई कर आए। अध्यापकों का जलसा शुरू होने से पहले स्टेज खामोश पड़ा था, किंतु पंडाल में शोर था। शर्मा सर समूह के बीच जा खड़े हुए और दोनों बांहें ऊपर उठाकर घूमते हुए गाने लगे–

"न किसी की आंख का नूर हूं,
न किसी के दिल का करार हूं..."

जलसा आरंभ होने पर नेताओं के भाषणों के बीच कई बार उठकर शर्मा सर ने नारे लगाए–"अध्यापक एकता–जिंदाबाद!"

दूसरे दिन, स्कूल खुलने पर शर्मा सर ने फूल की पंखुड़ियां सिर्फ उन्हीं अध्यापकों को पेश की जो जलसे में पहुंचे थे। दूसरों के बारे में उन्होंने कहा, "मैं उन लोगों को आज़ फूल भेंट नहीं करूंगा जो कल जलसे में नहीं पहुंचे।" फिर उनका सुर एकाएक ऊंचा हो गया, "अरे यारो! अपने हक की खातिर जो नहीं लड़ सकते वे अपने बच्चों को क्या खिलाएंगे–खाक?" और साथ ही उन्होंने अपने थैले में से टाफियां निकालीं और एक-एक टाफी हक की खातिर लड़ने वाले अध्यापकों को दी।

उनके थैले के विषय में किसी ने पूछा, "तुम्हारा यह थैला वही भानमती वाला तो

नहीं जिसका अक्सर आम लोग जिक्र किया करते हैं?"

"वही है, वही है..." शर्मा सर ने मुस्कुरा कर कहा, "इसमें से काफी चीजें मैं तुम्हें दे सकता हूं।" और उन्होंने थैले के अंदर हाथ डालकर उसमें से चाक के कई टुकड़े निकाले और पास खड़े अध्यापकों को एक-एक टुकड़ा थमाते हुए बोले, "कक्षाओं में जाओ! इनकी मदद से बच्चों का कुछ भला करो।"

शर्मा सर के इस विनती भरे आदेश को न मानने की हिम्मत कोई नहीं करता था। अगर कोई कर बैठता तो उसका हश्र उपाध्याय जैसा होता। उपाध्याय रजिस्टर का कोई काम लेकर दफ्तर में गया हुआ था। क्लास खाली थी। बच्चे बैठकर शोरगुल कर रहे थे। शर्मा सर डंडा घुमाते कक्षा में जा घुसे।

"किसका पीरियड है, बच्चो?" उन्होंने बड़े प्यार से पूछा। उत्तर सुनकर एकदम भड़क उठे, "ये लोग हरामखोरी से बाज नहीं आते। स्कूल में तो पढ़ाते नहीं और ट्यूशन करने में सबसे आगे।" और फिर अपनी आवाज में नरमी भरकर बच्चों को आदेश दिया, "चलो बच्चो! बाहर चलकर तीन कतारों में खड़े हो जाओ।"

कमरे के सामने बरामदे के नीचे बच्चे तीन पंक्तियां बनाकर खड़े हो गए। शर्मा सर ने बरामदे में ऊंची जगह पर खड़े होकर हुक्म दिया, "बोलो बच्चो! उपाध्याय... हाय-हाय! ट्यूशनिस्ट उपाध्याय... हाय-हाय! हरामखोर उपाध्याय... हाय-हाय!"

कुछ बच्चे डर के कारण नारे नहीं लगा रहे थे। शेष दबे स्वर में 'हाय-हाय' कर रहे थे। शर्मा सर डंडा लेकर बच्चों पर बरस पड़े, "हरामखोर! तुम अपने हक की खातिर बोल नहीं सकते। जोर से बोलो, उपाध्याय तो क्या, उसका बाप भी तुम्हें पढ़ाने के लिए दौड़ा आएगा। प्रिंसिपल के बहरे कानों में आवाज डालो... हाय-हाय! बड़े दफ्तर के चौधरियों तक आवाज पहुंचाओ... हाय-हाय! हाय-हाय!!"

डंडे के भय से लड़कों ने 'हाय-हाय' की आवाज ऊंची कर दी। शेष सभी कक्षाएं बाहर आकर खेलने लगीं। सभी अध्यापक बरामदों में आ खड़े हुए। प्रिंसिपल के लिए मुसीबत आ गई। वह दफ्तर में से दौड़ा आया। उपाध्याय को मालूम हुआ तो आकर सफाई देने लगे। मगर शर्मा सर नारे लगवाते रहे। स्टाफ के कुछ लोगों ने मिलजुलकर उनको मनाया। प्रिंसिपल उनको अपने संग दफ्तर में ले गया। शर्मा सर का गुस्सा ठंडा नहीं हुआ था। वे कह रहे थे, "मुझे गली-मुहल्ले से निकलते हुए शर्म आती है। लोग शिकायत करते हैं कि टीचर पढ़ाते नहीं। लोगों को समझाने के लिए मुझे घर-घर जाना पड़ता है। वे मुझसे शिकायतें करते हैं जो मुझसे सुनी नहीं जातीं। मैं निकम्मों की हरामखोरी बर्दाश्त नहीं कर सकता। मैं हर महीने नकद नौ सौ सैंतालीस रुपए बीस पैसे लेकर जेब में रखकर जाता हूं तो मेरा कर्तव्य है, बच्चों का भला सोचूं।"

और, सचमुच शर्मा सर बच्चों का भला करने के लिए उनके घर तक जाया करते

थे। सुबह-सुबह मंदिर से लौटते हुए सीधे किसी न किसी बच्चे के घर में जा घुसते। "क्यों भाई! तू अभी तक सो रहा है। मूर्ख! तेरी दसवीं की कक्षा है, उठ, काम कर, पढ़। तेरे जैसे जवान लड़के इतनी-इतनी देर सोए रहें तो देश प्रगति कैसे करेगा? ऐं... समझा ?"

लड़का एकदम छलांग लगाकर बिस्तर से उठ खड़ा होता, शर्मा सर के पैर छूता और फिर मुंह-हाथ धोने के लिए नल की ओर बढ़ जाता। पीछे से शर्मा सर उसका बिस्तर तह करते। घर वालों के रोकते-रोकते कमरे की थोड़ी-बहुत साफ-सफाई कर देते। फिर, लड़के को किताबें लेकर बैठने के लिए कहकर स्वयं किसी दूसरे घर की ओर चल पड़ते। घरवालों की ओर से, पीछे से, चाय-पानी के लिए लगाई गई आवाजें शर्मा सर को सुनाई ही न देतीं।

एक दिन, शर्मा सर माथे पर पट्टी बांधकर आए। पूछने वालों को बताया, "मैं राधा के मंदिर में जाया करता हूं। वहां बगीची में सैर आदि करने के बाद कसरत करता हूं। मंदिर की कमेटी का चुनाव होना था। मैं भी मेंबर हूं। मैंने भोले पहलवान के चुनाव में खड़े होने का विरोध किया। मैंने शोर मचा दिया कि भोले पहलवान ने पिछली बार मंदिर का पैसा खाया था। कई लोग मेरे गले पड़ गए। पर मैंने 'हाय-हाय' के नारे लगा दिए। भोले पहलवान के गुंडों ने धक्के देकर मुझे मंदिर की दीवार से दे मारा। मेरा माथा फट गया। मगर भोले पहलवान का चुनाव मैंने फिर भी नहीं होने दिया।" और फिर, जैसे शर्मा सर अपने आप से बात कर रहे हों, "ससुरे, मंदिर जैसी जगह पर भी हरामखोरियां करने से बाज नहीं आते। और जगहें कम हैं मुंह मारने को। कोई जगह तो पवित्र रहने दो।"

बात करते-करते जोश में आ गए वे, "मैं इनको क्या समझता हूं? ये सब काने हैं। इन्होंने देश का बेड़ा गरक कर छोड़ा है।... मैं एक-एक को देख लूंगा। मैं गुरुनानक का भक्त हूं, नानक ने कहा था—राजे, शीह, मुक्कदम, कुत्ते, जाई जगाइन बैटे सुत्ते। मैं राजाओं-मुक्कदमों को बख्शने वाला नहीं। इन्होंने अपनी मनमर्जी कर गांधी के भारत को सोने से मिट्टी बना दिया। अरे यारो, कुछ तो करो, कुछ तो सोचो।"

बात करते हुए शर्मा सर अचानक रुक गए। उनकी दृष्टि सामने बरामदे की ओर चली गई थी। वहां सतपाल वर्मा अपनी कक्षा को छोड़कर बाहर खड़ा था। "मैं अभी आया।" कहकर शर्मा सर सतपाल की ओर दौड़ गए और उसके पास पहुंचते ही बरस पड़े, "तू यहां पहरा देने की तनख्वाह लेता है?"

"मैं पढ़ा रहा हूं।" सतपाल ने धैर्यपूर्वक कहा और कृष्ण की बांसुरी बजाने वाली मुद्रा में एक टांग पर दूसरी टांग चढ़ाकर एक पैर के पंजे पर दीवार से टेक लगाकर खड़ा रहा।

"तू झूठ बोलता है।"

"झूठ तू बोलता है, निठल्ला तू घूमता है। आंगन में खड़े होकर गप्पें तू मारता है।" सतपाल वर्मा ने कृष्ण की बांसुरी वाली मुद्रा छोड़कर महाभारत काल वाला रूप धारण कर लिया।

शर्मा सर अपने ऊपर हुए वार से खुद को बचाते हुए बोले, "मैं जानता हूं, मुझे कब, क्या करना है। मुझे तेरे जैसों को सीधा करना है।"

"तू आ ही जा। आज देखते हैं, कौन किसको सीधा करता है?" और सतपाल वर्मा ने अपनी घड़ी और कोट उतारकर पास खड़ी भीड़ में से किसी को थमाया और कमीज की बांहें ऊपर चढ़ानी आरंभ कर दीं।

शर्मा सर ने भी कोट उतारकर क्लास की एक डैस्क पर पटक दिया। स्कूल में एक हंगामा खड़ा हो गया। प्रिंसिपल अपने दफ्तर से दौड़ा आया। जैसा कि ऐसे अवसर पर होता है, कुछ अध्यापकों ने शर्मा सर को समझाया और कुछ सतपाल वर्मा को धकेलकर एक ओर ले गए।

लेकिन, सतपाल वर्मा ने आज किसी परिणाम पर पहुंचने का निर्णय कर ही लिया था। उसने बाकी समय के लिए छुट्टी की अर्जी दे दी और एक लंबे मजबूत डंडे का प्रबंध कर गेट के पास खड़ा हो गया। स्टाफ के कई लोगों ने उसे समझाया, स्कूल के अमन-चैन और शर्मा सर की बुजुर्गी का वास्ता दिया। वह थोड़ा ढीला पड़ता, मगर कोई न कोई जलती आग पर तेल डाल देता, "परवाह न कर दोस्त, हम तेरे पीछे हैं। आज दो लगा ही दो तो भविष्य में स्कूल में अमन-चैन रहेगा।"

इधर, शर्मा सर को भी चिंता हुई। उन्होंने भी एक मजबूत-सा डंडा हाथ में पकड़ लिया और स्कूल में इधर-उधर चक्कर काटने लगे। इस तनाव की स्थिति में भी वह अपनी नित्य क्रिया को नहीं भूले—आंगन में इक्का-दुक्का बिखरे पड़े तिनके-पत्ते, कागज-पत्थर, कील आदि उठाते रहे। वह कभी-कभी गेट के समीप खड़े सतपाल वर्मा की ओर देख लेते और हाथ में पकड़ा हुआ डंडा जोर से जमीन पर मारकर सफाई के काम में जुट जाते।

दसवीं-ग्यारहवीं कक्षा के छात्र भी शांत नहीं बैठे थे। पीरियड लेने आए दूसरे अध्यापकों की परवाह किए बिना वे शर्मा सर की सहायता के लिए कमर कस रहे थे। वे कह रहे थे कि शर्मा सर को कोई हाथ तो लगाकर देखे।

अंदरखाने, लड़कों ने डैस्कों की टूटी हुई फट्टियों को अपनी नजर में कर लिया था। उन्होंने शर्मा सर को कह दिया था कि वे बिलकुल चिंता न करें।

ऊपरी तौर पर शांति थी, लेकिन अंदर ही अंदर हलचल हो रही थी। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कुछ देर बाद छुट्टी होने पर कुछ न कुछ दुर्घटना हो जाएगी। शर्मा सर हर रोज आधी छुट्टी के समय घर जाया करते थे और गेट पर सतपाल वर्मा डंडा पकड़े खड़ा था। दफ्तर में प्रिंसिपल सिर पकड़े बैठा था। स्टाफ के कई मेंबर चिंताग्रस्त थे। छात्रों के

बेकाबू हो जाने का पूरा भय था। छात्र शर्मा सर का आदर करते थे और उनकी आज्ञा मानते थे। सतपाल वर्मा भी टलना नहीं चाहते थे। समझदार व्यक्ति सोच रहे थे—इस अवसर को कैसे संभाला जाए? शरारती चुप थे कि आज शर्मा सर की ठुकाई हो ही जाए ताकि आगे के लिए उनकी ज्यादतियां खत्म हो जाएं।

संकट की घड़ी आ पहुंची। आधी छुट्टी की घंटी बजी। कुछ अध्यापक सतपाल वर्मा के पास जा खड़े हुए ताकि स्थिति को संभाल सकें। छात्रों ने महाभारत वाले चक्रव्यूह की रचना कर ली। शर्मा सर को चक्रव्यूह के बीच में लेकर छात्रों की फौज गेट की ओर बड़ी। छात्रों के जत्थे में शर्मा सर अपने डंडे को ऊंचा किए ऐसे चल रहे थे जैसे कोई सियासी नेता अपने जत्थे के साथ झंडा ऊपर उठाए दफा एक सौ चवालीस तोड़ने के लिए आगे बढ़ रहा हो।

सतपाल वर्मा के लिए कठिन घड़ी आ गई। उसके समीप पहुंचकर शर्मा सर ने जत्थे के बीच में चक्कर चलाया और डंडा ऊपर उठाते हुए नारा लगाया, "भारत माता की... जै।" फिर वह सतपाल वर्मा की ओर मुंह कर डंडा दिखलाते हुए बोले, "क्यों भाई? तेरा डंडा मजबूत है या मेरा? हम दोनों अपने डंडे प्रिंसिपल के पास जमा करवाकर इस बात का फैसला कर ही क्यों न लें?"

शर्मा सर ने यह बात ऐसे अंदाज में कही थी कि अन्य लोगों के साथ-साथ सतपाल वर्मा की भी हंसी छूट गई। उसने डंडा जमीन पर फेंक कर, दोनों हाथ सिर के ऊपर उठाकर जोड़ते हुए कहा, "महाराज! तुम्हारा ही डंडा मजबूत है।"

और, शर्मा सर छात्रों के जुलूस के साथ बाहर निकल गए।

आधी छुट्टी खत्म होते ही शर्मा सर के साथ उनकी पत्नी भी स्कूल में आ पहुंची। उसने सतपाल वर्मा को कहा, "काका! तू हमारे बेटों जैसा है। इनके स्वभाव से तो हम खुद डर-डरकर दिन काटते हैं। पता नहीं कब, किसके साथ झगड़ा मोल ले लें। कल ही मंदिर से सिर फड़वाकर आए हैं। भोला पहलवान अभी भी धमकियां देता घूमता है। हमें चौबीसों घंटे इनकी ही चिंता खाए जाती है। तू इनका गुस्सा न करना। इनके मन के भीतर कुछ नहीं। इनकी जगह मैं माफी मांगती हूं।"

सतपाल वर्मा ने गुस्सा पहले ही थूक दिया था। दूसरे अध्यापकों ने भी शर्मा सर की पत्नी को विश्वास दिलाया कि स्कूल में कोई गलत बात नहीं होने दी जाएगी, वे बेफिक्र होकर घर लौट जाएं। मगर शर्मा सर ने पत्नी को रोक लिया और कहा, "मैं हर महीने पहली तारीख को नौ सौ सैंतालीस रुपए बीस पैसे इसकी हथेली पर जा रखता हूं। अब इसका भी फर्ज है कि सिर फड़वाने के लिए मेरे बराबर खड़ी हो।"

और, पतिव्रता स्त्री छुट्टी होने तक स्कूल में बैठी रही।

इस घटना के कई दिन बाद तक शर्मा सर शांत रहे। लेकिन, उनकी दिनचर्या जारी

रही। स्कूल लगने पर फूल की एक-एक पंखुड़ी अध्यापकों में बांटते। स्कूल में इधर-उधर सफाई करते घूमते। साथ ही दलील देते, "बेचारा स्वीपर इतने बड़े स्कूल की सफाई कैसे कर सकता है? अगर हम थोड़ा-बहुत हाथ-पैर हिला लेंगे तो कुछ घिस नहीं जाएगा। गुरु नानक का मैं भक्त हूं। नानक ने कहा था—'नींचां अंदर नीच जात, नीची हूं अत नीच!' हम सब नीच हैं। महात्मा गांधी अपने हाथों से अपनी गंदगी उठाते रहे। अरे यारो! हम अपने आपको क्या समझने लगे हैं? हम हैं ही किस खेत की मूली!"

फिर, इस बात से जैसे उन्हें शाह हुसैन याद हो आता। वह गाने लगते, "कै बागे दी मूली हुसैना, तू कै बागे दी मूली..." गाते-गाते वे कक्षाओं की ओर चल पड़ते और थैले में से निकाल-निकालकर चाक बांटने लगते। कभी किसी खाली पीरियड में पानी का जग और गिलास ले जाकर कक्षाओं में पढ़ा रहे अध्यापकों को कहते, "तुम बहुत काम कर रहे हो। लो, पानी पिओ!" इन अध्यापकों में सतपाल वर्मा भी होता, ड्राईंग मास्टर भी और वे भी जो अपने हक की खातिर लड़ने के लिए इंडिया गेट पर अध्यापकों के जलसे में नहीं गए थे।

कोई अध्यापक कह देता, "शर्मा जी, आप क्यों तकलीफ करते हैं? जरूरत पड़ने पर खुद वाटरमैन को आवाज दे देंगे।"

"वाटरमैन बेचारा अकेला आदमी। कितनों को पानी पिला सकता है वह? अगर हम थोड़ा-बहुत हाथ-पैर हिला लेंगे तो कुछ घिस नहीं जाएगा।" और शर्मा सर पानी लेकर अगले कमरे की ओर बढ़ जाते।

एक दिन, सबको शर्मा सर की एक नई बात का पता चला। वह हफ्ते में दो-चार बार स्कूल के चौकीदार को दूध की बोतल दे जाते थे। किसी ने कह दिया, "शर्मा जी, इसकी क्या जरूरत है?"

"जरूरत क्यों नहीं?" शर्मा सर गले पड़ने की तरह बोले, "इस बात से वह कुछ शर्म करेगा और स्कूल का अधिक ध्यान रखेगा।" फिर कुछ पल रुककर धैर्य से बोले, "उस बेचारे की तनख्वाह ही कितनी है? अगर इतना भर मैं उसके काम आ सकूं तो कुछ घिस नहीं जाएगा।"

कभी कोई अध्यापक शर्मा सर को सलाह दे बैठता, "शर्मा जी, आप क्यों परेशान होते रहते हो? मस्त रहा कीजिए। अपना काम कीजिए, किस-किस का सुधारेंगे? यहां तो ढांचा ही खराब है।"

शर्मा सर को ऐसी बात अच्छी न लगती। वह शुरू हो जाते, "अरे यारो! इस खराब ढांचे को ठीक कौन करेगा? बताओ मुझे। कोई समझाओ! मैं क्या गुनाह करता हूं? जाट स्कूल का मैं दस साल हैडमास्टर रहा। अकड़बाज जाटों की मैनेजिंग कमेटी से मैं टक्कर लेता रहा, लेकिन स्कूल में पत्ता नहीं हिल सकता था। मैं अपने अंदर से हैडमास्टरी की

बू नहीं निकाल सकता। तुम चाहे दोष दो, पर मैं कहने से नहीं रह सकता। मैं अंग्रेजों के समय स्कूल इंस्पेक्टरों और डाइरेक्टरों को सांस नहीं लेने देता था। आज वाले मेरे सामने क्या चीज हैं? मेरा कोई क्या बिगाड़ लेगा?"

"बिगाड़ने की बात नहीं, शर्मा जी! मेरा मतलब है कि जिसका काम, उसी को साजे, आपने गधे और कुत्ते वाली वह कहानी तो सुनी होगी।"

"हां, हां, मैंने सब सुन रखा है। ये बाल धूप में सफेद नहीं किए। मैं वह कुत्ता नहीं बनना चाहता जो मालिक का नमक खाकर भी चोरों के आने पर न भौंके। मैं उस गधे को अच्छा समझता हूं जिसके रेंकने से कम से कम चोरों के कान तो खड़े हो जाते हैं, बेशक पीछे से डंडे ही खाने को मिलें।"

"लेकिन आदरणीय बुजुर्ग जी, आप अकेले किस-किस से टक्कर लेंगे?"

"तुम किस मर्ज की दवा हो? तुम मेरे साथ क्यों नहीं मिल जाते? बुजुर्गी का खिताब देकर तुम मुझ पर यह अहसान दिलाना चाहते हो कि मैं अब गया-बीता हो गया हूं। मगर याद रखो, मैं तुम्हारे जैसे कई नौजवानों से तगड़ा हूं। अगर मेरे साथ कुछ हमदर्दी है तो आओ, मेरे संग मिलकर इन करप्ट लोगों के साथ टक्कर लो।"

और फिर, शर्मा सर को परामर्श देने वाला सज्जन कुछ और बोलने के योग्य न रहता। पांच वर्ष पूर्व एक स्कूल के प्रिंसिपल ने अफसरों से मिलकर शर्मा सर को पागल बताकर पागलखाने भी भिजवा दिया था। लेकिन, मनोविज्ञान के माहिर डाक्टर ने जब प्रश्न पूछे तो वह दंग रह गया। उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि यह व्यक्ति तो असाधारण रूप से समझदार है।

लेकिन, शर्मा सर की इस असाधारण समझदारी ने कइयों को परेशानी में डाल दिया था। भोला पहलवान सबसे अधिक परेशान था।

उस दिन, स्कूल के 'अध्यापक-अभिभावक एसोसिएशन' का चुनाव होना था। बच्चों के अभिभावक स्कूल पहुंच रहे थे। भोला पहलवान भी आया। शर्मा सर उसे गेट पर ही मिल गए। उन्होंने हाथ जोड़ते हुए सीधा वार किया, "पहलवान जी, इस विद्या मंदिर को तो बख्श दो।"

"मास्टर जी, व्यर्थ की बातें न किया करो। भला अपना किस बात का विरोध?" भोले पहलवान ने राजनीतिक दांव फेंका।

"विरोध इसी बात का है भाई कि तुम अपनी गंदी राजनीति स्कूल में लाने की कोशिश कर रहे हो और मैं लाने नहीं दूंगा।"

"यह तो अपनी-अपनी ताकत की बात है, मास्टर साहब!" भोले पहलवान ने अखाड़े वाला दांव इस्तेमाल किया।

शर्मा सर ने भी जैसे लंगोट कसकर कहा, "ठीक है फिर, आज ताकत भी आजमा

लेते हैं।"

और, उस समय यह बात वहीं ठप्प हो गई। कुछ देर बाद मीटिंग शुरू हुई। अन्य कार्रवाई पूरी करने के पश्चात चुनाव किया जाने लगा। नियमानुसार एसोसिएशन के प्रधान का पद प्रिंसिपल को मिलना था, मिल गया। उप-प्रधान के लिए भोले पहलवान का नाम पेश हुआ।

शर्मा सर हाथ जोड़कर खड़े हो गए, "सज्जनो! मैं विनती करता हूं कि दूध के पहरे पर बिल्लियों को बैठाने की कोशिश न कीजिए। अपने बच्चों पर तरस खाइए। उप-प्रध ाान के लिए मैं राम सरूप का नाम प्रस्तावित करता हूं।"

"शर्मा साहब! मीटिंग के नियम-कानून सीखो और तरीके से बात करो।" भोले पहलवान का नाम पेश करने वाले ने विरोध प्रकट किया।

"मुझे ऐसे नियम-कानून और तरीके तुम लोगों ने ही सिखाए हैं। हरामखोरों के लिए मैं इससे अच्छे शब्द प्रयोग नहीं कर सकता।" शर्मा सर ने कुछ धैर्य और जोश के मिले-जुले स्वर में कहा।

"अपने शब्द वापस लो। यह तोहमत बर्दाश्त नहीं की जाएगी।" दूसरे धड़े में से एक व्यक्ति उठ खड़ा हुआ।

"हां, तुम जिसका चाहो नाम पेश करो, पर ऐसे शब्द प्रयोग नहीं कर सकते। तुम्हें शब्द वापस लेने पड़ेंगे।" एक और व्यक्ति ने ऊंचे स्वर में कहा।

और फिर, कुछ और लोग खड़े हो गए। भोले पहलवान की टोली माफी मांगने के लिए शर्मा सर पर जोर डालने लगी। शर्मा सर और अधिक विशेषण इस्तेमाल करने लगे। झगड़ा बढ़ गया। प्रिंसिपल तथा कुछ अन्य समझदार लोग झगड़ा रोकने की कोशिश कर रहे थे। कांव-कांव मची हुई थी--शर्मा माफी मांगे! ... माफी की ऐसी की तैसी... छोड़ो, जाने दो... सब हरामखोर... यह बात कही कैसे... तुम ही चुप रहो पहलवान जी... स्कूल जैसी पवित्र जगह... माफी मंगवाओ... गंदगी फैलाने आ गए... जाने भी दो अब... गुंडों का टोला--हाय-हाय।... क्यों झगड़ा बढ़ाते हो... शब्द वापस... एक-एक को देख लूंगा. .. आ फिर... अरे भाई, समझ की बात करो... ऐसी की तैसी... हरामखोर... तू हरामखोर..."

और फिर, बात झगड़ा खत्म करवाने वालों के वश से बाहर हो गई। भोले पहलवान की टोली ने शर्मा सर को घेर लिया। घूंसे चलने लगे। शर्मा सर का कालर लटक गया। कंधे पर लटका थैला नीचे गिरकर लोगों के पैरों के नीचे रौंदा जाने लगा। थैले के भीतर रखे चाक और फूल इधर-उधर बिखर गए। किसी ने शर्मा सर को बालों से पकड़कर घुमाया और नीचे जमीन पर पटक दिया। उनका सिर कुर्सी से जा टकराया। छुड़ाने वालों ने साहस दिखाया। शर्मा सर के गिरने पर ही दूसरा धड़ा कुछ संभला। मुक्केबाजी रुकी। भोले पहलवान

की टोली मीटिंग में से 'वाक-आउट' हो गई। गिनती के लोग शेष रह गए।

शर्मा सर कोहनियों के बल धीरे-धीरे उठे और कुर्सी से पीठ टिकाकर बैठ गए। किसी ने सहारा देना चाहा तो उन्होंने हाथ के संकेत से रोक दिया। प्रिंसिपल ने चपरासी को पानी लाने के लिए भेजा। सभी भौंचक्क-से खड़े थे।

चपरासी पानी का जग और गिलास लेकर आया। "रहने दो।" शर्मा सर ने हाथ के इशारे से धीमी आवाज में कहा, "मैं अभी जिंदा हूं। जब मर गया तो बेशक नहला देना।"

फिर, शर्मा सर आहिस्ता-आहिस्ता उठकर खड़े हो गए। अपना थैला और थैले के बीच का सामान संभाला। कपड़ों पर से मिट्टी झाड़ते हुए बोले, "हरामखोर, मंदिरों का फंड डकार अब बच्चों का खाने आ गए।" थैले में से तौलिया निकाल कर सिर और मुंह में से निकलता रक्त पोंछते हुए बड़बड़ाए, "मैं नहीं खाने दूंगा।... मैंने बड़े-बड़ों से टक्कर ली है। ये मेरे सामने क्या चीज हैं!... मैं किसी को क्या समझता हूं?... हरामखोर... मेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है?..."

और वह बड़बड़ाते हुए, कुर्सियों को तरतीब देने लगे। फिर उन्होंने थैले को बाएं कंधे पर ठीक से टांगा और स्कूल के आंगन में से तिनके-पत्ते, रद्दी-कागज के टुकड़े, कील आदि उठाते हुए पानी के नलों की ओर चल दिए।

पूरा आदमी

साधू सिंह

"सर, आप श्याम प्रसाद को जानते हैं?" क्लासरूम से बाहर निकलते ही एक लड़की ने थोड़ा-सा झिझकते हुए अचानक मुझसे यह प्रश्न किया तो मैं क्षण भर के लिए सोच में पड़ गया।

"श्याम प्रसाद? हां-हां, श्याम लाल, श्याम को मैं अच्छी तरह जानता हूं। श्याम मेरा दोस्त है। कालेज में हम एक-साथ पढ़ते रहे हैं।"

कुछ-कुछ परिचित-से चेहरे वाली उस छात्रा द्वारा अकस्मात् पूछे गए प्रश्न से मैं चिंतित-सा हो उठा था!

कई महीने पहले मेरी अनुपस्थिति में कोई सज्जन दफ्तर में यह संदेश छोड़ गए थे कि श्याम लाल की सेहत ठीक नहीं। वह डी. एम.पी. अस्पताल में दाखिल था। कमरा, वार्ड अथवा बेड नंबर के विषय में मुझे कोई जानकारी नहीं थी। बताने वाला सिर्फ इतना ही कह गया था कि सीढ़ियां चढ़ते ही पहले कमरे में श्याम लाल का बेड था।

संदेश मिलते ही मैं अस्पताल गया । सीढ़ियों से लगे हुए सभी कमरे देखे। अस्पताल का कोना-कोना छान मारा। पूछताछ दफ्तर से मालूम किया। श्याम लाल नाम के किसी आदमी का मुझे अता-पता न मिला। दूसरे दिन फिर अस्पताल पहुंचा। लेकिन मुझे उसका कोई ठौर-ठिकाना न मिला। आगामी कई दिनों तक मैं इस प्रतीक्षा में रहा कि शायद उसका किसी के हाथ फिर संदेशा आ जाए। मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ। कई दिन तक मन में एक संशय-सा लगा रहा।

उन्हीं दिनों रोजाना के कामों के अलावा अपनी किसी परीक्षा के सिलसिले में पढ़ने-लिखने में इतनी व्यस्तता थी कि मैं श्याम के गांव जाकर उसकी खोज-खबर लेने के लिए समय न निकाल सका। और धीरे-धीरे मेरी चिंता काम-काजों के बोझ के तले दब गई। कभी श्याम के संदेश की याद आती तो ऐसा महसूस होता जैसे कांटे-चुभी एंड़ी के ऊपर अचानक दबाव पड़ गया हो। एक टीस-सी उठती और कामों के बोझ तले विस्मृत हो जाती।

उस दिन, उस लड़की ने जब श्याम का जिक्र किया तो मुझे लगा जैसे कांटे-चुभी एड़ी

किसी लोहे के ढेर के ऊपर पड़ गई हो।

"जी, श्याम लाल की बहन का घर मेरे नाना के घर के पड़ोस में है। जब उसे मालूम हुआ कि मैं इस यूनीवर्सिटी में पढ़ती हूं तो उसने मुझे आपका पता करने के लिए कहा। कई दिनों से आपको ढूंढ रही थी। आपके नाम से और भी कई प्रोफेसर हैं। शांता आपका पता मांग रही थी।"

मैंने जल्दी-जल्दी अपना पता लिख दिया था और उसको ताकीद की कि वह मुझे श्याम की कुशलता के बारे में कल ही शांता से पूछकर बताए।

लेकिन इतवार से पहले वह गांव नहीं जा सकती थी और उस दिन बृहस्पतिवार था। मुझे श्याम की कुशल-क्षेम का संदेश सोमवार को ही मिल सकता था।

नहीं, नहीं। सोमवार बहुत दूर है अभी। सोमवार तक कौन सूली पर लटका रहे? इतवार को मुझे फगवाड़ा तो जाना ही था। इतवार के बदले शनिवार को आधी छुट्टी होने के बाद ही चल पड़ूंगा। मिठड़ा कोई दिल्ली-दक्खिन तो नहीं। फलौर से सत्रह-अट्ठारह किलोमीटर की दूरी है। सीधा फगवाड़ा जाने के स्थान पर फलौर से मोटर-साईकिल का मुंह उधर घुमा दूंगा। आध घंटे में श्याम के पास पहुंच जाऊंगा। शनिवार रात को उसके पास ठहरूंगा और इतवार को फगवाड़ा चला जाऊंगा। बस, इतनी-सी ही तो बात थी। लेकिन मैं हैरान था कि इतनी-सी बात को पिछले नौ-दस महीनों से क्यों टालता आ रहा था? इतनी भी क्या व्यस्तता थी आखिर! पर चलो, अब मैं और लेट नहीं होऊंगा।

क्या सोचता होगा श्याम मेरे बारे में? कैसी दोस्ती है मेरी श्याम से? वह मेरे शहर में बीमार होकर अस्पताल में दाखिल रहा और मैं उसकी खैर-खबर तक लेने नहीं जा सका। बहुत कोशिश की थी मैंने श्याम का अस्पताल में ठौर-ठिकाना ढूंढने की। घंटों पागलों की तरह पूछताछ करता रहा था। हर किसी से मिठड़े से आए किसी मरीज श्याम के विषय में पूछता रहा था। लेकिन, इस बात का तो मुझे पता है, सिर्फ मुझे ही।

अब जब उसके गांव जाऊंगा तो अपनी स्थिति स्पष्ट करने से पहले मुझे उसकी आंखों का सामना करना मुश्किल हो जाएगा। कैसे झांक सकूंगा उसकी आंखों में? जब वह कहेगा, "कोढ़ी! बस इतने से भी गया।" धरती मुझे निगल नहीं जाएगी? उसे क्या मालूम कि मैं उसको कितना ढूंढता रहा हूं, उसके विषय में कितना चिंताग्रस्त रहा हूं! मन में आया, वह तो यह भी कह सकता है कि "दो दिन रोटी पहुंचानी पड़ जाती अस्पताल में तो प्रलय नहीं आ जाती। पाव भर गेंहू की ही बात थी। साले शहरिए, गेंहू की कमी से तो पंजाब में कुत्ते भी भूखे नहीं मरते।" ऐसी बात सोचकर मैं अंदर तक कांप उठता हूं।

ऐसी बातें मेरे मन की ख्याली भय ही नहीं हैं। ये हो सकती थीं। एक बार पहले भी हो चुकी थीं। मुझे अभी तक याद है। अब फिर होंगी। अवश्य होंगी। मेरा भय सच्चा था।

लेकिन, कोई बात नहीं। श्याम मेरा यार है। दरियाओं जैसा जिगर है उसका। मेरी बात सुनेगा तो मुझे माफ कर देगा। शोर मचाती बाढ़ शांत हो जाएगी। गुस्से की लाल-सुर्ख मिट्टी नीचे बैठ जाएगी। नीले पानियों वाली दोस्ती की निर्मल नदी बहेगी फिर हमारे बीच और देर रात तक इस नदी के किनारे बैठकर जी भरकर बातें करेंगे—मैं और श्याम!

मन ही मन, श्याम की कुशलता की प्रार्थना करता हूं। ठीक ठाक हो। बस। उसके गुस्से का क्या है? आंधी की तरह आएगा, बारिश की तरह बरसेगा और थम जाएगा। उसकी सेहत के बारे में मुझे अपने मन के सब संशय निर्मूल प्रतीत होते हैं, इन्हें दूर फेंक देता हूं। नौ-दस महीने पहले मुझे उसके बीमार होने की खबर मिली थी और इतने लंबे समय तक वह बीमार ही पड़ा होगा? ऐसा होता तो मुझे खबर न करता। उसके पास तो मेरा पता है ही। संतो मेरे शहर से दसेक मील दूर किसी गांव में ब्याही हुई है। मिलने को मन हुआ होगा, या छोटा-मोटा काम होगा। उसको पता मिल जाएगा। फिर वह चली जाएगी। अपने घर में उसके आने के विषय में मैंने ताकीद कर दी है। मेरी पत्नी उससे कभी नहीं मिली। श्याम को तो वह अच्छी तरह जानती है। वह मेरे विवाह के बाद एक रात मेरे घर पर रहकर भी गया है। घर में इतना बताना ही काफी था कि संतो श्याम की बहन है। मिलने आएगी। शायद उसका पति भी साथ हो। मैं घर में न भी हुआ, घर के बाकी सब सदस्य उसको आंखों पर बिठा लेंगे।

वृहस्पतिवार-शुक्रवार दोनों दिन श्याम का वजूद मेरे जेहन में खौलना रहा।

पच्चीस-छब्बीस वर्ष पूर्व हम दोनों रामगढ़िया कालेज में दाखिल हुए थे। वह नूर महल के समीप के अपने गांव से बाहर-तेरह मील साइकिल चलाकर कालेज पहुंचता था। मुझे दूसरी ओर से इतनी ही दूरी पैदल चलकर पढ़ने के लिए आना पड़ता था। घर वाले समझते थे कि दस जमातें बहुत होती हैं। लेकिन मुझे इतनी जमातें अपनी पढ़ाई की शुरुआत ही लगी थीं। वह मुझे पटवार स्कूल में भेजना चाहते थे, मगर मैंने आगे पढ़ने के लिए ठान ली थी। प्रिंसिपल साहब को किसी अच्छे मूड में मिला होऊंगा। उन्होंने मुझे लगभग मुफ्त ही दाखिला देना स्वीकार कर लिया था। मैंने घर वालों से बेफिक्र होकर कालेज आना आरंभ कर दिया था। बाद में मेरी थोड़ी-सी जिद्द पर फगवाड़ा के निकट एक गांव में आकर मेरे रहने के बारे में वे मान गए थे। छोटे भाई से इस विषय में सरसरी-सी सलाह की थी। उसका उत्तर अभी तक मेरे दिल पर अंकित है। सहज रूप में ही उसने कहा था, "लंडे को तो पट्ठे ही चुनने हैं। यहां क्या और फगवाड़ा क्या!" गुजारे के लिए चार भैंस रख ली थीं। छोटा भाई कालोनी में दूध बेच आता था। वक्त-बेवक्त मैं भी घास-चारे में हाथ लगा देता था। लेने-देने का हिसाब-किताब रखकर उगाही के दिन उसके साथ कालोनी के दो-चार चक्कर लगा आता था। गाड़ी सरकती जाती थी।

एक दिन, कालेज टाइम से पंद्रह मिनट पहले पहुंचा तो श्याम गेट के बाहर पेड़ के

नीचे खड़ा होकर सिगरेट पी रहा था। कपड़े पसीने से भीगे हुए थे। समीप ही साइकिल स्टैंड पर खड़ी कर रखी थी। अपनी दाईं टांग पर पायजामे के इर्द-गिर्द बांधी हुई रस्सी को उसने अभी खोला नहीं था। मुझे देखकर उसने उसकी गांठ खोली और रस्सी को गुच्छा-मुच्छा कर जेब में ठूंसते हुए बोला, ''आ जा ज्ञानी, घंटी बजने में अभी काफी समय है। थोड़ा दम ले ले।'' दस-पंद्रह मिनट हम इधर-उधर की बातें करते रहे। उस दिन हम क्लास रूम में पहली बार बैंच पर एक साथ बैठे थे। फिर जब तक श्याम कालेज आता रहा, हमारे बैंच तो बदलते रहे किंतु सीटें साथ-साथ ही रहीं। ग्रामीण पृष्ठभूमि, बहुत मोटे खद्दर का पहनावा और शायद पढ़ने की लगन कुछ ऐसी ही थी कि हम एक-दूसरे की जिंदगी में वास्तव में ही घुल-मिल गए थे।

हिस्ट्री और इकोनोमिक्स के विषय में श्याम की पकड़ इतनी मजबूत थी कि कई अकड़बाज खुशपोश पढ़ाकू लड़के पूरा जोर लगाते रहे, उसने कभी भी किसी को अपने से आगे नहीं निकलने दिया। अपने आप में ही जिच हुए शहर के शौकीन लड़के राह चलते श्याम को मजाक में कहा करते थे, ''पंडित, कौन-से पहाड़ से ब्रह्मी-बूटी मंगवाकर पिया करता है, जरा हमें भी तो बता दे।''

''ब्रह्मीबूटी कैसी, भाई! साली लस्सी ही मुश्किल से जुटती है।'' श्याम धीमे से कहते हुए नजरें झुका लेता।

''मैं तो जिस दिन लस्सी पी लूं, सुस्ती ही चढ़ी रहती है। आंख जमूरे से भी नहीं खोली जाती।'' कोई कहता तो साथ के सभी लड़के खिलखिलाकर हंस पड़ते।

''किसी को उरद माफिक, किसी को बादी।'' श्याम मुंह में ही बुदबुदाता और साइकिल के पैडिल पर दाएं पैर का दबाव देकर मिठड़ा वाली राह पर एक पल में ही 'यह जा, वह जा' हो जाता।

एफ. ए. की परीक्षा समीप आई। इतनी दूर से परीक्षा देने आने में कभी-कभार लेट हो जाने का खतरा था। याद नहीं, हमने इस विषय में कोई विचार-विमर्श किया था या नहीं। इतना अवश्य याद है कि एक दिन घर से बाहर निकला तो सामने साइकिल पर श्याम आता दिखाई दिया। उसके हैंडिल पर दोनों ओर किताबों से भरे हुए झोले लटके हुए थे। पीछे कैरियर पर एक बोरी बंधी हुई थी।

अंदर आकर बोरी खोली तो उसमें से मक्की का आटा, उरद-छोलिया की दालें और गुड़ की पोटलियां निकली थीं। अभावों भरे दिन थे। लेकिन किसी चीज का अभाव कभी विशेष रूप से अखरा नहीं था। जरूरतें ही बहुत कम हुआ करती थीं। ख्वाहिशों के पर कुतरने की कभी जरूरत ही नहीं पड़ती थी। घर से कालेज, कालेज से घर और फिर मिस्त्री मेहर सिंह से परीक्षा के दिनों में एक चार शहतीरों वाला कमरा छह रुपया महीना किराए पर ले लिया। लकड़ी के स्टूल के आसपास मूंज की चारपाइयां, किताबें-कापियां। यही

छोटी-सी दुनिया थी हम दोनों की।

परीक्षा के दिनों में श्याम की 'ब्रह्मी-बूटी' अच्छा रंग लाई थी। हिस्ट्री और इकोनोमिक्स में उसकी डिस्टिंक्शन आई। शेष विषयों में भी अच्छे नंबर थे।

बी. ए. में प्रवेश लिया तो श्याम कुछ बदला-बदला था। वह शायद समय से कुछ पूर्व ही जवान हो गया था। उसके माथे की रेखाएं अचानक गहरी हो गई प्रतीत होती थीं। आंखों के बीच की स्वाभाविक गंभीरता, गहन उदासी में परिवर्तित हो गई लगती थी। अब वह फिर से रोज अपने दूर-दराज गांव से कालेज आया करता था और मैं अपने घर से।

"इस बार शनिवार को गांव चलना है।" एक दिन श्याम ने मुझसे कहा। मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी? लेकिन मेरे चेहरे पर शायद किसी उत्सुकता या हैरानी के भाव रहे होंगे।

"मुंह कैसे फाड़े खड़ा है? गांव में जलसा है पार्टी का। रात को ड्रामा भी है बाहर वालों का।" उसने साथ ही अगले फिकरे दाग दिए।

गांव में दिन या रात में क्या होना है, क्या नहीं, मुझे इस बात से बहुत फर्क नहीं पड़ता था। मेरे लिए इतना ही बहुत था कि श्याम के घर जाना है—उस घर में, जहां मैं पहले कभी नहीं गया था। लेकिन फिर भी उस घर की कल्पना में मुझे कुछ भी पराया और बेगाना नहीं लगता था। कुछ दिन, इस तरह का अहसास था मेरे जेहन में। जैसे मैं शहर रह रहा होऊं और मुझसे मिलने आया बड़ा भाई यह कह रहा हो कि कई हफ्तों से तू घर नहीं आया। उधर मां हर शनिवार तेरी प्रतीक्षा करती रहती है। बापू भी इस बार कहता था। बंदे का बेटा बनना और इस शनिवार को ऐसा न करना। और ठीक ही तो कहता था श्याम!

हम गांव गए। उस रात बहुत ही व्यस्त था श्याम। बहुत लोग आ-जा रहे थे उसके पास। उसकी एक टांग कहीं और दूसरी टांग कहीं होती थी। वह सिर पर मफलर बांधकर फिरकी की तरह घूम रहा था और मुझे उस रात ज्ञात हुआ कि ड्रामे वालों की तैयारी और देखभाल का झमेला किसी विवाह के काम से कम नहीं होता।

उस रात के अनुभव का एक अस्पष्ट-सा प्रभाव भी मेरे मन के ऊपर अंकित है। उस दिन, अकस्मात मुझे यह प्रतीत हुआ कि श्याम की उस समय की संगत के दौरान मेरी नजर का घेरा पहले से कुछ व्यापक और मेरी रुचि पहले से अधिक गहरी हो गई थी।

बहुत रात गए ड्रामा खत्म हुआ। सबको अपनी-अपनी जगहों पर ठहराकर घर को लौट रहे थे। गांव की एक संकरी और अंधेरी-सी गली में दाएं हाथ से संकेत करते हुए श्याम मेरे कानों में फुसफुसाया, "यह घर है रूप रानी का।"

"रूप रानी!"

मैं इस बात की पृष्ठभूमि से पूरी तरह अनभिज्ञ था। मैं भौंच्चक-सा रूप रानी के घर

का नक्शा पहचानने की कोशिश करता रहा। मेरे लिए रूप रानी किसी किताबी और निरोल अंतर्मुखी अहसास का ही नाम थी, मगर श्याम किसी हाड़-मांस की रूप रानी की बात कर रहा था। मालूम नहीं वह कितने दिनों से अपने सीने में यह राज दबाए घूमता था। मैं उस दिन से आज तक इस बात का फैसला नहीं कर सका कि उस दिन श्याम ने मुझे पार्टी का नाटक देखने के लिए गांव में बुलाया था कि अपने तन-मन के इर्द-गिर्द हुई रासलीला का हमराज बनाने के लिए।

रोटी खाकर साथ-साथ बिछी चारपाइयों पर टेढ़े हुए तो श्याम ने रूप रानी के साथ रची अपनी दास्तां सुनाई थी।

पड़ोस की लड़की, गांव का गरम माहौल, कदम-कदम पर पसरे खतरे की संभावना में झांकती निर्दयी दहशत, श्याम के तन-बदन में समाया उस लड़की के लिए अंधा, अस्थिर मुंहजोर जुनून और एक रात रूप रानी के आंगन में श्याम द्वारा संभाल-संभालकर रखे पांवों की पदचाप सुनकर बिल्ली की भांति उछलकर उठ बैठे उसके भाई का खांसना, श्याम लाल की उल्टे पांव दौड़, चीते-सी फुर्ती से छलांग लगाकर उस घर की दीवार वह कूदा ही था कि दीवार पर मोटा डंडा बजने की आवाज हुई और डंडे की चोट से टूटी ईंट के टुकड़े से पड़ा निशान अभी भी श्याम की पिंडली पर अंकित था। 'चोर-चोर' की आवाजों से रूप रानी का आंगन गूंज उठा था और फिर ये आवाजें सारे गांव की गलियों में फैल गई थीं। श्याम गांव की सीमा से लगे अपने कुंए पर रखे एक बड़े-से काठ के गोल बर्तन में भट्टी के सामने पड़े ईंटों के चूरे पर बेसुध पड़ा था। उस रात का कोहराम अभी भी मेरे समीप लेटे श्याम के दिल की धड़कन में स्पष्ट सुनाई दे रहा था।

अजीबो-गरीब अखाड़ा बन गया था, श्याम का मन उन दिनों। जलते-बुझते दीयों के कब्रिस्तान में उसको अपना आपा किसी प्रेत जूनी में पड़ा हुआ प्रतीत होता।

कुछ ही दिनों में 'खट्टी लस्सी' में से 'ब्रह्मी बूटी' का जादू मालूम नहीं कौन-से पर लगाकर उड़ गया। एक उधेड़बुन-सी छाई रहती उसके जेहन में। रोशनियों की आभा धुंधले अंधेरों में बदलती चली गई।

उसकी उपस्थितियों में नागे पड़ने लगे। एक बार श्याम लगातार दो सप्ताह कालेज से गुम रहा। मेरे मन को चिंता-सी हुई। मैं श्याम के गांव गया। श्याम के लिए गांव उजड़ चुका था। रूप रानी की शादी हो चुकी थी। श्याम की उदासी झेली नहीं जाती थी मुझसे। रात को आधे मन से मैंने श्याम को पढ़ने के लिए कालेज आने को कहा। मैंने चाहा कि वह गांव छोड़कर मेरे संग रहने लगे। इस प्रकार, शायद, वातावरण बदलने से उसकी पढ़ाई की टूटी हुई तांत जुड़ सकती थी। लेकिन, मालूम नहीं, मैं किस अंधे कुएं से बोल रहा था। मेरी बात श्याम तक नहीं पहुंची। उसकी आंखें दूर देश में चली गई शहजादी की तलाश में खोई हुई लगती थीं।

एक दिन मुझे खबर मिली कि श्याम ने एक ट्रांसपोर्ट कंपनी में नौकरी कर ली है। मैं उससे यों ही मिलने चला गया। वह सामान से भरी पत्ती-बंद पेटियों, चारा कुतरने की मशीनों के अंबारों, ट्रक ड्राईवरों के शोर, बिल्टियों, वाऊचरों और रसीदों के घेरे में खोया हुआ था। मेरे लिए उसने चाय मंगवाई और जल्दी ही अपने काम से मुक्त होकर मेरे पास आ बैठा। मुझे उदास दुखी-सा बैठा पाकर वह बोला, "ज्ञानी, हौसला रख। दुखियों की तरह क्यों बैठा है? मेरी चिंता यों ही न करना। अब मैं ठीक-ठाक हूं। हफ्ता भर बाद गांव का चक्कर लगा आता हूं। बूढ़ा-बूढ़ी से मिल आता हूं। चार पैसे भी दे आता हूं। छोटे ने दसवीं के बाद प्रभाकर कर लिया है, ओ. टी. करने इसके बाद करनाल भेजा है। खुद ही घर संभाल लेगा। अपना क्या है, आवारा चिड़ियों का...।"

"यार, मैं तुझसे मिलने आ ही नहीं सका। गुस्सा न करना। कोई रुपए-पैसे की तंगी हो तो बता दे। यों ही परेशान न होना।"

श्याम प्रगति के पथ पर बढ़ने की पूरी कोशिश कर रहा था। लेकिन उसके शब्दों के बीच का वैराग्य मुझसे छुपा न रह सका।

उस रात, मैं श्याम के पास ही रहा। बेहद गहरी दिलचस्पी के साथ उसने मेरी पढ़ाई का हाल-चाल पूछा। पढ़ाई मेरे लिए निरा शौक अथवा दिन काटने का साधन नहीं बल्कि अस्तित्व को बनाए रखने के लिए कठिन संग्राम थी। पिछले दो वर्षों में मैंने अपनी आशा से भी अधिक परिश्रम किया था। मेरा बी. ए. आनर्स का परिणाम सचमुच ही शानदार था। उससे मिले वजीफे के कारण ही मेरी एम. ए. की पढ़ाई अच्छी चल रही थी।

श्याम मेरी बातें सुनने के बाद, धरती से सचमुच ही बालिश्त भर ऊंचा हो गया था। मेरी पढ़ाई की खुशी मेरे घर वालों को भी थी। लेकिन, श्याम के मन में कक्षाओं के आगे बढ़ते जाने के साथ-साथ मेरी सफलता में आए अर्थपूर्ण प्रशंसनीय परिवर्तन के लिए गहरा गर्व था। "बल्ले ओ ज्ञानी, कोई बराबरी नहीं मेरे यार की!" कहकर जब उसने मुझे अपने आलिंगन में लिया तो मैं सचमुच ही अपने आप में नहीं समा रहा था। दो इंसानों के मध्य खुशी की ऐसी एकमेकता का अनुभव मेरे लिए वास्तव में ही नया था। और सुखदायक भी। मैं अंदर से उत्साहित था।

कभी श्याम मेरे पास एक रात रह जाता। कभी मैं उसके पास एक-आध दिन के लिए चक्कर लगा आता। ऐसे ही चल रहा था जिंदगी का सिलसिला कि एक दिन...।

...हां, और एक मनहूस दिन श्याम की जिंदगी में ऐसा अभागा हादसा हुआ जिसकी तेज धार से श्याम का वजूद ही टुकड़े-टुकड़े हो गया। उसके लिए जैसे समय का चक्र ही बीचोंबीच से चीर दिया गया हो।

मुझे, पत्थर की भांति सुन्न हुए को, संदेश देने वाला व्यक्ति बता रहा था कि एक दिन श्याम अपनी मौसी से मिलने मंढाली गया हुआ था। सरसरी बातें करते हुए मौसा

ने बताया कि रूप अपनी बहन के प्रसव के समय आई हुई है। मंढाली के मेले में मिली थी। कहती थी, श्याम से कहना, खड़े-खड़े मिल जाए। श्याम को मालूम था कि रूप की बहन किस गांव में ब्याही हुई है। उसका उस गांव में थोड़ा-बहुत ठौर-ठिकाना भी था।

संदेश सुनते ही उसके तन-मन के भीतर सोई हुई आग में ऊंची लपटें उठने लगी थीं। वह उन्हीं पैरों से स्टेशन की ओर सरपट दौड़ पड़ा। स्टेशन से आधी फर्लांग की दूरी पर था कि गाड़ी की कूक सुनाई दी। दुआबे को जाती गाड़ी कौन-सी फ्रंटीयर मेल है, दौड़कर पकड़ लूंगा, उसने सोचा। और, चाल और तेज कर दी। भागती जाती गाड़ी में पैर रखने के लिए वह पंजों के बल उछला। मालूम नहीं पायेदान में कोई कील था या कुछ और। उसकी जूती की गोल नोक कहीं अड़ गई। डंडे पर से उसके हाथ छूट गए। उसकी दोनों टांगें बुरी तरह जख्मी हो गईं। वह जख्मी हालत में गाड़ी की पटरी के पास बेहोश पड़ा था। मालूम नहीं कैसे उसे अस्पताल पहुंचाया गया। डाक्टरों को उसकी दोनों टांगें काटनी पड़ीं—एक टखने के थोड़ा ऊपर से, दूसरी घुटने के ऊपर से।

संदेश देने वाला दोस्त बता रहा था कि अब वह अस्पताल से गांव आ चुका है। गांव जो रूप के ससुराल चले जाने के बाद श्याम के लिए पहले ही उजड़ चुका था और अब जब वह कटी हुई टांगों को खींचता हुआ उसी गांव में जहां अब रूप नहीं थी, लौटा होगा, वह गांव उसके लिए कैसे बेरौनक, बियाबान की तरह अपने टुंडे हाथ फैलाए खड़ा होगा, इसकी कल्पना करते ही मुझे गश आने लगते हैं।

दूसरे दिन, जब मैं उससे मिलने गया तो चूल्हे के पास कटी-फटी टांगों वाला श्याम पटरे पर बैठा हुआ था। उसको देखते ही मेरी चीख निकल गई। बहुत देर बाद, मैं बात करने के काबिल हुआ था। श्याम का हाथ मेरे कंधे पर था। वह उल्टा मुझे तसल्ली दे रहा था, "ज्ञानी, हौसला रख। जो होना था, हो चुका है। रोने-धोने से क्या बनेगा? टांगें ही गई हैं, मैं तो हूं।" श्याम के स्वर में दम था। ऐसा लगता था जैसे वह अपने शरीर की खौफनाक हालत से सचमुच ही निरपेक्ष होकर एक बाहर बैठे दर्शक की भांति सारी स्थिति पर विचार कर रहा हो। बाहर से कटा-फटा होने के बावजूद उसके भीतर का वजूद मुझे इतना सुरक्षित और साबुत लगा कि मैं हैरान था।

"बलिहारी ओए पंडित तेरे हौसले पर!"

"ज्ञानी, बिना टांगों वाले लोग क्या जीते नहीं? और मेरी टांगें थीं भी कुछ अधिक ही बेताब-सी। मुझे टिकने ही नहीं देती थीं। दौड़ाए फिरती थीं किसी चंचल अरबी बछेरे की तरह! अब नहीं रहीं तो टिककर घर में ही रहूंगा। खेती की बुरी हालत है। बंटाईदार कुछ पल्ले नहीं डालते। और ज्ञानी, तू तो खुद समझदार है, इस साले हिंदुस्तान में हाथों-पैरों से कमाई करने वालों को पल्ले पड़ता भी क्या है? बिनोले?... यहां पर चुपड़ी हुई तो उनको मिलती है जो अपनी चतुराई से दूसरों की टांगों-बांहों को चकरी में घुमाए रखते हैं।"

उस दिन, श्याम की बातों से मुझे यह यकीन हो गया था कि इस कटे हुए धड़ वाले पंडित के कंधों पर सिर अभी साबुत है। साबुत सिर वाला आदमी जिंदगी के लाखों हादसों की धूल में भी कभी गुम नहीं होगा।

श्याम के पास से लौटते वक्त मैं उदास तो अवश्य था पर निराश उसने मुझे बिलकुल नहीं होने दिया था। उसके टनकते शब्दों की गूंज मेरी कनपटियों के पास अपनी ही तरह की वीर रस से ओत प्रोत रागनियों की सुखदायी खारिश उत्पन्न कर रही थी।

पढ़ाई समाप्त होने के बाद मुझे इस बात का ज्ञान होने में बहुत अधिक समय नहीं लगा कि अच्छे नंबरों वाली सनद और नौकरी के बीच कोई अटूट संबंध नहीं होता। जिंदगी में पैर जमाने के लिए मुझे जगह-जगह की खाक छाननी पड़ी। दो वर्ष की प्रदेशों में व्यर्थ की भटकन। देश वापसी। फटेहाल अख़बार-नवीसी। कई स्कूल-कालेजों में कच्ची नौकरियां। नियुक्तियों और छटनियों के चक्कर खाते हुए मुझे अपने-बेगानों की कोई सुध-बुध न रही।

इन्हीं वर्षों में मेरा श्याम लाल से कोई संपर्क न रहा। यह नहीं कि मुझे उसकी याद वास्तव में ही विस्मृत हो गई हो। अपने नए-पुराने दोस्तों से बातचीत करते समय मैं उसका जिक्र कई बार करता था। लेकिन गर्दिश के दिनों के चक्रवातों में ऐसा फंसा था कि उससे मिलने न जा सका।

नौ वर्षों की भटकन के बाद एक बुजुर्ग विद्वान दोस्त के पराक्रम से इस यूनीवर्सिटी में स्थाई नौकरी मिल ही गई। दो-तीन वर्षों में घर को ठीक-ठाक किया। एक जगह टिककर काम करने का अवसर मिला तो अपनी पढ़ाई पूरा करने की इच्छा पुनः जाग्रत हो उठी।

एक बार अपने रिसर्च-वर्क के सिलसिले में दो-तीन दिन चंडीगढ़ रहने के बाद घर लौटा तो पत्नी के मुंह से पहले बोल यही सुनने को मिले, "शनिवार को श्याम आया था।" घर के प्रत्येक कोने में यही शब्द गूंज रहे थे—श्याम आया था...श्याम आया था...।

"हां, पापा सच्ची! छोटे-से श्याम अंकल आए थे।" मेरी छोटी बेटी के तोतले शब्दों से छोटे-से श्याम अंकल के आने की खुशी का उत्साह छलक-छलक पड़ता था।

छोटे-से श्याम अंकल को मालूम नहीं कितना लंबा रास्ता तय करना पड़ा होगा इस अजनबी शहर में मेरा घर ढूंढने के लिए! सुधा बता रही थी, "अपने गांव के झीवर बचने की लड़की ब्याही गई थी उनके गांव—मिठड़े। उससे श्याम ने हमारा पता मालूम किया। जालंधर में हमारे होने का पता उसे था। पहले वह किसी को साथ लेकर जालंधर गए। वहां से पता चला कि हम लुधियाना में हैं। फिर वे शनिवार को यूनीवर्सिटी गए। उस दिन सेंकेंड सैटरडे की छुट्टी थी। दफ्तर बंद था। वहां मालूम नहीं, स्कूटर-रिक्शा में कहां-कहां घूमते-घुमाते पता करते रहे। अचानक गुरुद्वारा माई नंद कौर के नजदीक पूछते-पुछाते उन को तुम्हारा कोई परिचित मिल गया। वही घर छोड़कर गया था।"

मुझे यह सब कुछ कपोल-कल्पित कहानी-सा लगा, लेकिन यह ठोस सच था कि श्याम ने आखिर हमारा घर ढूंढ ही लिया था। नीलू की आंखों की चमक इस बात की पक्की गवाही थी कि छोटे-से श्याम अंकल सचमुच ही इस घर में आए थे।

"कितनी देर ठहरा था?"

"रात को रहे थे। उनके साथ कोई औरत थी। उसको पंखा लेकर देना था। सामने वाली दुकान से पंखा लाकर दिया था उनको। दूसरे दिन जब गए तो दिन काफी चढ़ चुका था।"

श्याम मेरी पत्नी और बच्चों से पहली बार मिला था। लेकिन घर वालों को उसने अपने पराए होने का रत्ती भर अहसास नहीं होने दिया था। वह मेरे बारे में शायद इस सबसे अधिक जानता था। उसने हमारे सभी रिश्तेदारों, बहन-भाइयों का नाम ले-लेकर हाल पूछा था। मेरी मां मेरे विवाह से पूर्व ही गुजर चुकी थी। वह सुधा से कितनी ही देर तक मेरी मां के बारे में बातें करता रहा। देर रात तक, बीते हुए वर्षों की सभी बातें उसने विस्तार से पूछी थीं। बहुत सारी बातें उसे मालूम भी थीं। उसकी बातचीत से ऐसा लगता था कि जैसे पिछले सात-आठ साल वह मेरे पदचिह्नों पर दबे पांव चलता हुआ-सा मेरे साथ-साथ घूमता रहा था।

"कोई संदेश भी दे गया मेरे लिए?"

"नहीं, बस इतना ही कहकर गया था कि प्रोफेसर साहब को इतना अवश्य बता देना कि श्याम आया था तुमसे मिलने।"

मेरे लिए इतना संदेश ही बहुत अधिक था।

और उसे कुछ कहना भी नहीं था। स्वाभिमानी आदमी है। पंडित परशुराम की औलाद को मुझसे कोई विनती तो करनी नहीं थी कि उसे दर्शन देने की कृपा जरूर करूं।

मेरी याद में पथराया हुआ श्याम अपनी मुहब्बत के पूरे वेग से पुनः सुरजीत हो चुका था।

पहला अवसर मिलते ही मैं मिठड़े की ओर चल दिया। कुएं के रास्ते में ही खाली बर्तनों की टोकरी सिर पर उठाए घर को लौटती संतो मुझे दिखाई दी। दूर से आती हुई संतो को पहचानने में मुझे जरा-भी देर नहीं लगी। उसके बराबर स्कूटर रोकते हुए मैंने उससे पूछा, "ऐ संतो, श्याम कुएं पर ही है?" पल भर तो किसी अजनबी से दिखते आदमी के मुंह से अपना नाम सुनकर वह सकते में आ गई। लेकिन, तभी मेरी आवाज को पहचानकर वह मेरे गले इतनी तेजी से आ लगी कि उसके सिर पर रखी टोकरी गिरते-गिरते बची।

"मैंने तो, वीर, पहले तुझे पहचाना ही नहीं।" वह खुशी और आश्चर्य की साकार मूर्ति बनी खड़ी थी। "हां, कुएं पर ही है। भाई तो तेरा बहुत ही इंतजार करता रहा। अच्छा, तू कुएं पर चल, मैं चाय लेकर अभी आती हूं।"

कुएं पर पहुंचकर स्कूटर अभी स्टैण्ड पर लगाया ही था कि लगभग दो खेतों की दूरी पर सामने ईख के खेत में एक छोटी-सी मानव-आकृति मुझे दिखाई दी। स्कूटर की आवाज सुनते ही उसने पीठ घुमाई। माथे पर हाथ रखकर कुछ पल देखा और बड़ी फुर्ती से हाथों और अपने इकलौते घुटने को बारी-बारी से धरती पर रखते हुए कुएं की ओर बढ़ने लगा।

मैं तेजी से उसके पास पहुंचा। नमस्ते करने के लिए उसकी ओर झुका। हाथ मिलाते हुए ऐसा लगा जैसे मेरा हाथ किसी लोहे के पंजे की गिरफ्त में आकर कसा गया हो। हाथ को दबाए हुए उसने कहा, "कैसे आ गया?" उसकी आंखें मेरे चेहरे पर गड़ी हुई थीं। उसकी नजरों में से ऐसे शब्दों की फुलझड़ी छूटती प्रतीत हुई, "आना ही पड़ा न आखिर? और भाग लेता जितना भाग सकता था। बेटा मेरे, जा कहां सकता था मुझसे भागकर? तुझे रब की नाभि में से भी निकाल लाता, बड़े भागने वाले सांढ़ बनते हो।"

मैं उसकी आंखों की चमक को झेल न सका। केवल इतना ही कहा, "हां"।

मेरी दृष्टि धरती में धंसे उसके पट्टी बंधे घुटने पर झुकी हुई थी।

सचमुच कितना छोटा था मैं, नीलू के शब्दों में छोटे-से श्याम अंकल के सामने।

"अच्छा, चल, कुएं पर बैठते हैं।"

मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि उसके 'अच्छा चल' का यह अर्थ था कि 'अच्छा चल, तुझे माफ किया, कुएं पर चलकर बातें करते हैं' या यह कि 'अच्छा चल, कुएं पर चलकर तेरी खबर लेता हूं।'

दोनों हाथों का सहारा लेकर घुटने के बल तेज-तेज छलांगें लगाता श्याम मेरे आगे-आगे था और मैं छोटे-छोटे कदम रखता उसके पीछे-पीछे चल रहा था। ऐसा लगता था जैसे श्याम की कटी हुई टांगों की ताकत भी उसकी बांहों में ही आ गई हो।

धूप में पड़ी चारपाई पर मुझे बैठने का इशारा कर वह स्वयं एकाएक बाही पकड़कर पैताने की ओर बैठ गया।

"बैठ जा। चुभती है, दरी लाऊं अंदर से?"

"नहीं, नहीं।" मैं खिसियाना-सा होकर चारपाई पर बैठ गया। श्याम का गुस्सा अभी ठंडा नहीं हुआ था।

"सालों से मिलना ही छोड़ दिया। यह समझते होगे कि लंगड़ा-लूला हो गया, साला यूं ही कुछ मांग न ले। तुम्हारे जैसे बीस लोगों को रोटी दे सकता हूं मैं अकेला ही। इतनी ताकत है अभी मेरे कटे-फटे शरीर में।"

मेरी हालत कटघरे में खड़े हुए उस मुजरिम जैसी थी, जिसके पास कहने के लिए कुछ भी न हो। धरती मुझे निगल जाने के लिए अवसर नहीं दे रही थी।

श्याम मेरी ओर टकटकी लगाए देख रहा था। शायद उसे मेरी हालत पर तरस आ गया था। उसकी सारी ऐंठ-अकड़ निकल चुकी थी। मैंने उसकी ओर झांकने का साहस

किया। शायद वैसे ही जैसे बाड़ में फंसा हुआ बिल्ली का बच्चा झांकता है।

लेकिन, अब उसके चेहरे पर कोई तनाव नहीं था। उसके नक्श अपनत्व में पसीजे हुए थे। मेरे कंधों को दबाते हुए बेहद मोह भरी आवाज में कहने लगा, "यार, यूं ही बुरा न मानना। बहुत दिनों का गुस्सा सिर में जमा हुआ पड़ा था। अच्छा हुआ, झटपट थूका गया। मैं भी कितना अहमक हूं! इतने दिनों बाद तो तू मुश्किल से मिला है और मैं पहले अपना ही रोना-पीटना ले बैठा।"

"नहीं, तेरा गुस्सा है भी बड़ा जायज। मेरे सिर-माथे पर।"

"कैसा जायज है, यार? यों ही हर एक को अपना ही दुख बड़ा लगता है। तू कोई कम परेशान तो नहीं हुआ जिंदगी में। अब जाकर मुश्किल से सुख की सांस ली होगी। मेरे पास तो फिर भी मिट्टी के चार ढेले थे। छोटा भी टीचर लगा हुआ है, साथ वाले गांव में ही। काम में भी अच्छा हाथ बंटा देता है। बापू भी थोड़ा-बहुत कर ही लेता है। तू तो लड़ा भी अकेला और वह भी नंगे धड़।"

"वैसे बहुत दुखी तो तेरे बारे में जानकर ही हुआ। वक्त-बेवक्त आवाज लगा देता तो मैं कहीं बिलकुल ही मर तो नहीं गया था। फिर आदमी किस मर्ज की दवा होता है?"

"चलो छोड़ो पिछली बातों को।"

"पी-एच. डी. कर रहा है अब?"

"हां!"

"बहुत अच्छी बात है। हो जाएगी यह भी। तेरे आगे नहीं रुक सकती। पैसों की तरफ से परेशान न होना। परमात्मा की दया से कोई कमी नहीं अब। पूरे रंग में हैं हम।"

"नहीं, ठीक-ठाक हूं मैं भी बिलकुल।"

"टट्टू का ठीक-ठाक होगा। तनख्वाहों से बनता क्या है आजकल? अच्छा छोड़। मैं बच्चे को कह दूंगा। खुद ही अन्न-दाना पहुंचा दिया करेगा।"

इतने में संतो चाय लेकर आ गई।

"तुझे कहां से पता चला इसके आने का?"

"भाई मुझे राह में मिल गया था।"

"तूने पहचान लिया?"

"लो, और क्या? पहचान भूली है कोई भाई की?"

फिर स्वयं ही थोड़ी देर बाद कहने लगी, "पहले तो मैं भाई को पहचान ही नहीं पाई। मैं कहूं, ये कौन बाबू-सा खड़ा हो गया मेरे पास आकर! फिर जब भाई बोला तो मैंने झट से पहचान लिया।"

"वैसे भाई, तुझसे एक बात कहूं, गुस्सा न करना... तू तो भूल ही गया हमको।" रुक कर संतो ने कहा।

वह और पता नहीं क्या-क्या कहती कि श्याम काट खाने वाले अंदाज में उस पर टूट पड़ा, "चुप कर ए लड़की, ज्यादा नहीं बोला करते।"

संतो बेचारी झेंपकर चुप-सी हो गई।

दरअसल, श्याम को अंदर से इस बात का दुख था कि मेरे साथ पहले ही काफी कुत्तेखानी हो चुकी थी। इसलिए वह संतो के जायज उलाहने के विरुद्ध मेरे पक्ष में खड़ा हो गया था।

चाय पिलाते हुए संतो इधर-उधर की अन्य बातें करती रही।

"अगली बार भाभी और बच्चों को जरूर लाना, भाई," उसने पक्की ताकीद की।

मैंने कहा, "अच्छा।"

"अब फिर न गोता लगा देना पहले की तरह।"

"नहीं लगाता चुड़ैल, अब पीछा भी छोड़।" श्याम के शब्दों में प्यार भरा गुस्सा था। संतो ने बर्तन संभाले और उजाले-उजाले घर लौटने की ताकीद कर घर की तरफ चली गई।

दिन अभी बहुत पड़ा था।

"शहर का चक्कर न लगा आएं?"

"मैं नहा लूं जरा।"

"ठहर जा, अभी चाय पी है।"

"इतनी-सी गरमी-सरदी का क्या कहना है, हम जट्टों को!"

ट्यूबवैल की धार के नीचे छोटी-सी हौदी बनी हुई थी। श्याम ने कपड़े उतारे। हौदी के पानी से मल-मलकर नहाया। धुले हुए कपड़े पहने। बाल काढ़े, और पूरी तरह तैयार होकर बोला, "चल भाई खालसा, हम तो तैयार हैं।"

"मैं उठाकर चढ़ाऊं स्कूटर पर?"

"नहीं भई, गोद चढ़कर साईकिल-स्कूटर पर चढ़ते तो हमारा गुजारा हो चुका था। स्कूटर स्टार्ट कर हौदी के पास ले आ।"

मैंने ऐसा ही किया। श्याम झट से एक हाथ पिछली सीट और दूसरा अगली सीट के कुंडे में डालकर स्कूटर पर बैठ गया।

कुएं से गांव तक का रास्ता कच्चा था। राह में ऊंची-नीची जगह थी। मैंने कहा, "जरा झटके लगेंगे, ठीक से पकड़कर बैठना।"

श्याम के पटों से सीट के इर्दगिर्द पकड़ भी नहीं बननी थी। मुझे डर था कि कहीं गिरकर चोट न लगवा बैठे।

"तू फिक्र न कर। कुंडा टूट जाए तो कह नहीं सकता। मेरे हाथ नहीं छूटेंगे इस पर से। तू गाड़ी संभाल। मैं पूरी तरह ठीक होकर बैठा हूं।"

श्याम के शब्दों में बला का आत्म-विश्वास था। पंद्रह-बीस मिनट में हम नूर महल पहुंच गए। श्याम ने सबसे पहले एक सैलून में बाल बनवाए और शेव करवाई। शीशे में अपनी शक्ल देखी। खूब जंच रही थी।

एक बढ़िया-से रेस्टोरेंट में हमने खाना खाया। फिर मंडी का चक्कर लगाया। आढ़तियों से कुछ पैसे पकड़े। उसके एक-दो मित्रों से मिले। जहां भी गए, श्याम बड़े उत्साह में मेरा परिचय उनसे करवाता। वह मेरी डिग्रियों का विशेष तौर पर जिक्र करता। कालेज में हम इकट्ठे पढ़ते थे, यह बात भी विशेष रूप से बताता। श्याम के अलावा और कोई ऐसा करता, मैं उसे कई बार टोक चुका होता। लेकिन उसकी बात और थी। उसको इस तरह का विवरण देने में बेहद तसल्ली मिली थी। मेरी पढ़ाई उसको अपनी पढ़ाई की निरंतरता ही प्रतीत होती थी। ऐसा करना उसकी मानसिक जरूरत ही थी। अतः मैं उस दिन के सारे व्यवहार में से बहुत ही सहजभाव से गुजरा था।

अंधेरा होने पर हम घर पहुंचे। श्याम ने बैठक का दरवाजा खोला। यहां उनकी हवेली हुआ करती थी। एक कच्चा कोठा। आंगन में पड़ी होती थी बिना ब्लेड की चारा मशीन, दो ठूंठ भी पड़े होते। एक से बंधी होती थी एक मरियल-सी तोकड़ गाय, दूसरे के साथ उसकी उससे भी निर्बल-सी बछिया।

अब उसी स्थान पर एक बहुत बढ़िया मकान बना हुआ था। बहुत बड़ी-सी बैठक। एक कोने में गेहूं की बोरियों का ढेर, दूसरी ओर गुड़ का कड़ाहा। फिर भी चारपाइयों, सोफे और कुर्सियों के लिए काफी जगह बची हुई थी।

अंदर घुसते ही सामान की भीड़ देखकर श्याम बोला, "वैसे तो, ज्ञानी, रिजक है, निंदा नहीं करनी चाहिए। मगर साला हर जगह पर ही गेहूं, कपास और गुड-चावलों का ढेर फैला पड़ा है। यही हाल घर का हुआ पड़ा है। पांव रखने की जगह नहीं। कई बार जब मैं अकेला बैठा होता हूं, बीते हुए दिन याद करने पर मुझे बैठे-बैठे ही हंसी आ जाती है। कोई समय था, हम फगवाड़ा में चाय बनाने के लिए लिफाफों में गुड़ लाया करते थे। अब साला कुत्तों के खाए भी खत्म नहीं होता।"

श्याम ने सोफे की ओर देखा। उस पर धूल जमी थी। कहने लगा, "वैसे यार, अकेले रिजक का भी क्या है? औरत के बिना घर की बात नहीं बनती। अब देख ले, तेरी दया से सब कुछ है। मगर साली इंच-इंच धूल जमी पड़ी है।"

मैं सहानुभूति रखते हुए कहने ही वाला था कि श्याम एकदम से बोल उठा, "वैसे, ऐसी बात भी नहीं। अपना ठौर-ठिकाना है गुजारे लायक। भई, जिंदा जान को कुछ न कुछ तो करना ही पड़ता है। साली टांगें ही नहीं रहीं, इच्छाएं तो पहले जैसी ही हैं।" मैं उसकी बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह स्वयं ही मेरे भीतर के किसी प्रश्न की कल्पना कर कहने लगा, "तू भी सोचता होगा कि साले ने उल्टे पंगे लेने नहीं छोड़े। है तो वैसे यह

ऐंटी-सोशल एक्ट ही... ।"

"कोई ऐंटी-सोशल एक्ट नहीं।" मैंने उसकी बात बीच में काटने की कोशिश की लेकिन वह अपनी ही रौ में कहता चला गया, "चल, हो भी। हमने कोई साला साधु बनने का ठेका लिया है क्या? सारा दिन कोई कम भट्टी नहीं झोंकते। अब तुझसे क्या छुपा है। अपने घर से चार घर छोड़कर पांचवे घर में रहती है। लाजो नाम है उसका। पंडितानी है अपनी। बेचारी तीस-पैंतीस साल की उम्र में ही विधवा हो गई। वो कहते हैं न—रंडी ब्राह्मणी ते खड़ सुक टाहली माल फकीरां दा![1] नहीं तो साला कोई हाल था अपना ऐसी हालत में! दो बच्चे हैं बेचारी के। जमीन भी है कोई दो खेत। मगर क्या होता है दो खेतों में? उसकी फसल बो दिया करते हैं। जरूरत पड़ने पर और भी मदद कर दिया करते हैं। उस दिन यार तेरे घर गया था तो वही संग थी।"

इस बात का स्मरण होते ही श्याम का चेहरा फीका पड़ गया।

"यार, भाभी ने उस दिन बुरा तो नहीं माना?"

"नहीं।"

"वैसे पूछती तो होगी कि साथ कौन थी? कहती होगी, अच्छा दोस्त है तुम्हारा। साथ में बेगानी औरत लिए फिरता था।"

"नहीं, उसने कुछ नहीं पूछा। बस, इतना ही कहा था कि औरत थी, श्याम के संग। उसको पंखा लेकर दिया था।"

"अच्छा, फिर तो ठीक है। मुझे तो संशय ही लगा रहा था।"

"चल यार, चाय उसके घर ही पीते हैं।"

"नहीं। चाय की कोई जरूरत तो है नहीं।"

"चलते हैं।" श्याम के स्वर में एक याचना थी। मैंने हथियार फेंक दिए।

"लाजो, यह है अपना दोस्त। उस दिन लुधियाने जिसके घर गए थे।" अंदर घुसते ही श्याम ने कहा। लाजो ने शर्माते हुए नमस्ते की। चूल्हे के आगे दो पटरे बिछा दिए। श्याम उसके साथ छोटी-छोटी बातें करता रहा। वह अपने आप में सिमटी हुई उसकी बातों का "हूं-हां" में हुंकारा भरती रही। लाजो के घर से चाय पीकर वापस बैठक में आए तो संतो रोटी लिए बैठी थी। बिस्तर झाड़-संवार रखे थे। रोटी खाते समय दोनों बुजुर्ग भी बैठक में आ गए। बड़े प्यार से मिले। पुराने दुख-सुख बांटते रहे। समय का बीच का अंतराल बिलकुल गायब था। ऐसा लगता था जैसे मैं हमेशा से इसी परिवार के बीच में ही रहता होऊं।

उस रात, रात के दो बजे तक हम बातें करते रहे। बीच-बीच में रूप रानी का भी

---

1. विधवा ब्राह्मणी और सूखी हुई शीशम फकीरों का माल हुआ करती है।

उल्लेख आया, मगर मैंने जान-बूझकर ही उसकी बात अधिक खिंचने नहीं दी थी।

उससे श्याम के बहुत गहरे सदमे जुड़े हुए थे। मैं उसके जख्मों को छीलना नहीं चाहता था। श्याम को रूप रानी का बहुत पछतावा था। "उसके जैसी हुस्नबानो घर-घर में नहीं पैदा होती।" श्याम उसके ख्यालों में बहने ही वाला था कि मैंने जोरदार आवाज में कह ही दिया, "कटड़े को मन भर दूध से क्या?"

"हां भई, बात तो तेरी सोलह आने खरी है। हमारे लिए बेचारी लाजो ही रब जैसी है। कहने को क्या कहूं, बेचारी प्यार भी बहुत करती है।"

बातों-बातों में ही श्याम ने चकबंदी के समय अपनी जमीन एक जगह करवाने की कोशिश से लेकर अपनी खेतीबाड़ी की सफलता की सारी कहानी सुनाई, जिसको सुनकर मैं उसकी हिम्मत और समझदारी पर अश-अश कर उठा था। सचमुच उसकी इस क्षेत्र में प्राप्ति के सम्मुख बड़े-बड़े अकड़बाज जट्टों की सफलता का रंग फीका पड़ सकता था।

मन ही मन, मैंने यह फैसला कर लिया था कि श्याम की सफलता की कहानी अपनी यूनीवर्सिटी की कृषि पत्रिका में प्रकाशित करवाऊंगा। शरीर से आधे रह गए इस आदमी की मिसाल कायम करने वाली सफलता कृषि पत्रिका में पहले प्रकाशित हुई सभी प्रगतिशील किसानों की कहानियों को मात दे देगी। साथ ही, उसका चित्र भी छपवाऊंगा।

अब तक अपने साथ कैमरा लेकर आने का प्रबंध नहीं हो पा रहा था। इस बार कैमरे का अवश्य प्रबंध करूंगा।

उस दिन के बाद, मैंने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया था कि चाहे कुछ भी हो, श्याम को दो-चार महीनों में एक बार अवश्य मिला करूंगा और जब कभी भी अवसर मिला, छुट्टी लेकर उसको उसकी मनपसंद जगहों की सैर भी करवाऊंगा।

दो-तीन वर्ष मैंने इस कार्यक्रम में कोई विघ्न भी नहीं पड़ने दिया था। तीन-चार बार परिवार सहित चक्कर लगा गया था। इसी दौरान ही हमारे दो साझे दोस्त इंग्लैंड से आए थे। मैं उनको विशेष रूप से श्याम से मिलवाने के लिए साथ लाता रहा था।

जिस दिन मैं अपने साझे दोस्त जसवंत को लेकर गया था उसकी खुशी का कोई पारावार नहीं रहा था। ट्यूबवैल वाले कमरे में से दारू की बोतल लाते हुए उसने मुझसे पूछा था, "क्यों भाई ज्ञानी, पीना सीख लिया?"

"नहीं यार, कोशिश की थी, पर पीना आया नहीं।"

"भूखों की तरह पड़ गया होगा जैसे कड़ाह को पड़ते हैं।"

"बस, कुछ ऐसा ही समझ ले।"

"बहुत पीता रहा होगा औरों के साथ, हमारे साथ ही ढंग से बैठकर न पीने की भीष्म प्रतिज्ञा की हुई है कोई। जब पढ़ा करते थे, उस समय गरीबी को बगल में लिए हुए घूमता था। अब कुछ सुख की सांस ली तो दूए में कसम फंसाए घूमता है।" जसवंत को मेरे न

पीने का दिल से गुस्सा था।

"तुम्हारे साथ भी न पीकर मैं अपने इरादे में और पक्का हो जाऊंगा।" श्याम कुछ कहने ही लगा था कि जसवंत ने टोक दिया, "मैंने बहुत यत्न करके देख लिए, इसने नहीं माना। यह तगड़ा होकर जीत ले जो भी रण जीतना चाहता है। अब टाइम क्यों खराब करता है? डाल दे छंटाक-छंटाक।"

श्याम ने दो गिलासों में भरपूर पैग बनाए।

"अच्छा भई, तू मत पी। तेरे होते तेरे बुड्ढे ने भी बहुत पी ली। हमारा तो कई पुश्तों का कोटा बचा पड़ा है।" दो-दो पैग लगाने के बाद वे अच्छे सरूर में आ गए थे। पुरानी यादों की झड़ी लग गई। सचमुच ही रंग बंधा हुआ था।

तीसरा पैग लगाने के बाद श्याम ने गिलास उल्टा कर दिया।

"दारू उतनी ही पीनी चाहिए जिससे आंखों में सरूर आ जाए। आदमी बात करने योग्य हो जाए।"

"भाई, हमारी आंखें तो जरा देर में ही सरूर में आती हैं। मेरा दसवां द्वार अभी पूरी तरह नहीं खुला।" इतना कहकर जसवंत ने अपने लिए एक और पैग बना लिया था।

"ले भाई श्याम, मुझे बस टाइम से ये साला गिलास उल्टा करना ही नहीं आया। तभी मुझे बिलकुल छोड़ देनी पड़ी।" मैंने श्याम की सिफ्त की ओट में अपनी सफाई देने की कोशिश की। लेकिन तीर शायद निशाने पर नहीं लगा।

"तुझे आया भी है कुछ जिंदगी में, सिवाय पढ़ाई के! न शराब पीने का तरीका, न ढंग से इश्क करने का।" श्याम के शब्दों में मेरी किसी बीती दास्तां के बारे में गहरी चोट थी।

"उस दिन लाजो के घर गया था मेरे साथ। चलो, उसे तो थोड़ा-बहुत संकोच करना ही था। उस बेचारी को कौन-सा मैं सेहरा बांधकर लाया हूं! यह उससे भी ज्यादा घुग्गू बना रहा... मैं पूछता हूं, भाभी से भी बात कर लिया करता है ठीक से या अभी सीख रहा है?"

शराबी हंसी की बौछार में मेरी हंसी भी मिली हुई थी।

श्याम मुझको लाड़ में ऊपर-ऊपर ही झिड़क रहा था। भीतर से जसवंत तथा अन्य दोस्तों को संग लाने की मेरी कारगुजारी पर वह बेहद खुश था। उसने सचमुच ही मेरे सभी पुराने गुनाह माफ कर दिए थे।

लेकिन, वृद्धावस्था में पढ़ाई के नए पंगे ने पिछले नौ-दस महीने मुझे फिर उससे नहीं मिलने दिया था। इसी दौरान ही मुझे उसके बीमार होने और अस्पताल में दाखिल होने की सूचना मिली थी। मेरे मन पर उससे न मिल पाने का लगभग पहले जैसा ही बोझ था। पहले की तरह ही मैं अपने आप को मुजरिम के कटघरे में खड़ा महसूस कर रहा था। श्याम

मुझ पर फिर पहले की भांति ही गुस्सा करेगा। मैं भीतर से भयभीत था।

मगर कोई गम नहीं। श्याम मेरा जिगरी यार है। बहुत विशाल हृदय है उसका। मैं यों ही दुबका हुआ बैठा हूं। शायद वह मुझे कुछ कहे ही नहीं। कह भी ले तो क्या है? उसकी गालियां भी मेरे लिए घी की नदियों के समान होंगी।

इन्हीं सब उधेड़बुनों में पड़े हुए मुझसे वृहस्पतिवार और शुक्रवार मुश्किल से ही बीते। मैंने मिठड़ा जाने के विषय में अपनी पत्नी से सरसरी-सी बात की तो वह भी संग चलने को तैयार हो गई। कहने लगी, "मुझे भी बहुत समय हो गया है, उसके यहां गए। मोटर-साइकिल तो तुम्हें ले ही जाना है। मैं भी बैठ जाऊंगी।"

शनिवार शिखर दोपहरी ही हम चल दिए। घंटा-सवा घंटा में हम गांव पहुंच गए। मुझे श्याम से मिलने की उतावली थी। पहले सीधा कुएं पर ही जाने का निर्णय किया। दिन में उसे घर पर कहां चैन आना था, कुएं पर ही होगा।

लेकिन, पत्नी संग थी, सोचा, इसे घर ले जाकर तो छोड़ना ही है। पहले घर पर ही चला जाऊं। फिर वहां से खाली होकर कुएं पर जाऊंगा। दो घड़ी आराम से टिककर बैठ तो सकेंगे फिर।

दरवाजा खटखटाया तो भीतर से कुंडा संतो ने खोला। मैं उसे देखकर अवाक-सा रह गया।

"तू कब आई? अभी चार दिन पहले तेरा संदेशा मिला था। तूने पता मंगवाया था किसी लड़के से।"

"परसों ही आई हूं, भाई!"

"कौन? सोहन आया है?" अंदर से मां की कांपती-सी आवाज आई।

"हां बीबी! भाई हम तेरी ही बातें कर रहे थे। मैंने कहा, नौ महीने हो गए। भाई अभी तक नहीं आया।"

उसकी आंखें डबडबा आई थीं और गला भर आया था।

"क्या बात है, ऐ लड़की? किसको नौ महीने हो गए हैं? श्याम कहां है?" मैं एक ही सांस में कई प्रश्न कर गया।

"बताती हूं। आ जाओ, भाभीजी! तुम बाहर क्यों खड़ी हो? अंदर बैठो तो सही।"

अंदर गए। बीबीजी को चरण-स्पर्श किया। उनका चेहरा उतरा हुआ था और आंखें जैसे पाताल से लगी हों।

"काका, श्याम को गुजरे तो पूरे नौ महीने हो गए हैं। तुझे पता ही नहीं लगा?"

"क्या?" मेरा मुंह खुला का खुला रह गया। यह मैं क्या सुन रहा था!

"मुझे तो पता ही नहीं चला। मुझे बताया ही नहीं किसी ने।"

"मैं भी कहूं, क्या बात हो गई! सुनकर तो तू रहने वाला नहीं था।"

"कोई चिट्ठी ही डाल दी होती, बीमार होने की।"

"चिट्ठी कौन डालता? चिट्ठी डालने वाला ही न रहा। श्याम को तेरा पता मालूम था। बाद में बहुत कागज-पत्तर छाने बाल ने। मिला ही नहीं कुछ।"

"क्रिया से पहले बाल अपने जीजा को साथ लेकर तुझे यूनीवर्सिटी में खबर करने भी गया। दोनों सारा दिन ढूंढते रहे। तेरा पता ही नहीं चला।"

पक्के पते के बिना क्या पता लगना था, इतनी बड़ी यूनीवर्सिटी में! दोनों बेचारे अंधेरा होने पर गांव लौटे थे उस दिन। और एक श्याम था। जिसने छुट्टी वाले दिन, मालूम नहीं कहां-कहां से पता करते हुए आखिर में इतने बड़े शहर में मेरा घर ढूंढ ही लिया था। और ये दोनों पढ़े-लिखे खुली यूनीवर्सिटी में भी मुझे न ढूंढ सके थे।

मुझ खोए हुए को ढूंढना शायद श्याम के वश की ही बात थी। उसके मन में तीव्र इच्छा थी मुझसे मिलने की, दृढ़ निश्चय था मुझे ढूंढने का, जिसके कारण वह मुझे लुधियाना तो क्या धरती के किसी कोने में भी ढूंढ सकता था।

बाल तो बेचारा श्याम के अचानक चले जाने के कारण पगला ही गया होगा। उसे तो पास पड़ी वस्तु भी दिखाई नहीं देती होगी। मैं इतनी दूर उस बेचारे को कहां मिलता?

"वीर जी के बीमार होने का भी पता नहीं लगा?" सुधा के रुंधे हुए गले में से बमुश्किल इतने ही शब्द निकले थे।

"कई महीने पहले उसके डी. एम. सी. में भर्ती होने का पता लगा था। मैंने बहुत ढूंढा डी. एम. सी में।"

"डी.एम.सी. नहीं, सी.एम.सी. में रहा था आधा दिन।"

"क्या? सी. एम. सी. में?"

मुझे बताने वाला शायद सी. एम. सी. की जगह डी. एम. सी. बता गया था और या फिर यह मेरे बाएं बहरे कान की ही खता थी।

मुझे अपने एक कान से कम सुनाई देने का पहली बार गहरा दुख हुआ। इससे पहले मैं इस बात को यों ही हंसीठठे में यह कहकर टालता रहा था कि इस देश में एक कान से थोड़ा कम सुनाई देने का कोई दुख नहीं। सुनने वाली बात यहां होती ही क्या है? निंदा-चुगली और जगह-जगह पर चीखते लाउड-स्पीकरों का कान-फोडू शोर। मगर नहीं, जिंदगी में सुनने वाला भी बहुत कुछ होता है। छोटी-सी बात को गलत सुनने-समझने से जमीन-आसमान का फर्क पड़ सकता है। सी. डी. के मुगालते में ही मैं अपने दोस्त से अंतिम मुलाकात करने की तसल्ली से भी वंचित रह गया था। मुझे इस बात का गहरा दुख था। सी. एम. सी. में चला जाता, शायद ढूंढ ही लेता श्याम को। मगर अब वक्त बीत चुका था। अब कुछ भी नहीं हो सकता था। असल में ही कुछ नहीं हो सकता था।

"उस दिन भाई को तुझसे मिलने आना था।" संतो बता रही थी, "वह घर से खासतौर

पर गया था तुझसे मिलने। बापू से चार सौ रुपया लेकर गया था अपने संग। साथ में बापू को ले गया था। शहर में हमारा चाचा रहता है। पहले उससे मिलने चला गया। दूसरे दिन तुझे साथ लेकर आना था मेरे घर। कहता था, एक बार सोहन को लेकर तेरे घर हो आऊं। फिर तुम्हारी झिझक दूर हो जाएगी। इतना नजदीक रहते हो। कभी कोई काम ही पड़ जाता है।"

"फिर हुआ क्या?"

"होना क्या था? चाचा के घर जाकर अच्छा-भला नहाया-धोया। रोटी खाई। उनका मकान तिमंजला है। कहने लगा, ऊपर चलते हैं। चाचा ने कहा, मैं तुझे उठाकर ऊपर ले चलता हूं। यह बात उसने नहीं मानी? सहारा तो उसने हमारे पास रहते हुए भी कभी नहीं लिया। कोठे पर पहुंचकर मालूम नहीं उसे कुछ सांस-सा चढ़ गया। चाचा ने सोचा, थक गया होगा। इतनी सीढ़ियां चढ़कर भला-चंगा आदमी थक जाता है। वह तो हथेलियों के बल चढ़ा था। ऊपर पहुंचकर भाई को दौरा-सा पड़ गया। चाचा के तो हाथ-पैर फूल गए। तब उसको सी. एम. सी. ले गए। अस्पताल के डाक्टरों ने चैक किया। उन्होंने बताया—सब ठीक-ठाक है। खून का दौरा तेज हो गया था। उन्होंने कुछ गोलियां दे दीं। कहने लगे, भर्ती करने की कोई जरूरत नहीं।

"फिर पता नहीं क्यों, भाई का आगे जाने का मन ही नहीं किया। वहीं से गांव लौट आया।"

"आगे वह बेचारा क्या जाता? वह तो इतनी दूर आ गया था। कुछ कदम मुझ जैसे साबुत टांगों वाले को भी उठाने चाहिए थे। मैं सी. एम. सी, डी. एम. सी. के चक्कर में ही उलझा रहा था।"

और, संतो बता रही थी, "घर आकर दो-तीन दिन बहुत अच्छा रहा। फिर एक दिन दौरा पड़ गया। हम जंडियाला अस्पताल में ले गए। डाक्टर कहता था, थोड़ा दिल और जिगर बढ़ गया है।"

दिल-जिगर करते भी क्या? उनसे काम कौन-सा कम लिया था श्याम ने? बड़े दिल-जिगर वाला आदमी था। मरा भी तो दोनों के बढ़ने के कारण। हम जैसे छोटे दिलों के कम होने के कारण नहीं।

"घर लौटकर फिर अच्छा-भला हो गया। उस दिन सभी अच्छे-भले बैठे थे। बाल भी था। मैं तब आई ही थी। पहले भाई ने अपना हाथ बाल के हाथ से नापा। बोला—बाल, तेरे हाथ तो मेरे हाथों से छोटे हैं। फिर मेरे हाथ से अपना हाथ नापते हुए कहा—संतो, तेरे तो मेरे से बहुत ही छोटे हैं। हमें क्या पता था, वह अंदर ही अंदर कौन-सी गिनतियां गिन रहा था। बातें करते हुए उसी जगह ही ढेरी हो गया।"

मां-बेटी का रोना रुक नहीं पा रहा था। थोड़ा संभलकर संतो ने बताया, "भाई मरते

वक्त तेरा नाम ले-लेकर आवाजें लगाता था।''

मेरा कलेजा भर आया। मरते समय मेरे यार के होंठों पर मेरा ही नाम था। मैं उसका गुनहगार था। अस्पताल में उसकी खबर भी नहीं ले सका था। मैं अपना पक्ष स्पष्ट कर उसे अपनी भूल माफ करवाने आया था और दरिया जैसी दोस्ती वाला श्याम मुझे माफी मांगने के बोझ से भी मुक्त कर, इस दुनिया से ही हमेशा के लिए विदा हो गया था।

''तुम आते-जाते रहना, भाई! अब यह न समझना कि भाई तो रहा नहीं, अब किसके पास जाना? हम सबको तो आसरा ही उसका था। उसे तेरा, दूर बैठे हुए का भी बहुत सहारा था। बहुत बातें किया करता था तुम्हारी। हमारा तुम्हारे बिना अब है ही कौन?''

संतो के स्वर में बहुत गहरी याचना थी। कहर की वेदना! झंझोड़ा गया था मेरा सारा का सारा वजूद।

''जरूर आया करूंगा मैं। पता भी लिखकर दे जाऊंगा। दुख-सुख के वक्त मुझे जरूर याद करते रहना। चिट्ठी डालने में आलस्य न करना। बाल से कहूंगा कि एक बार तेरी ससुराल जाते हुए मुझे भी साथ ले जाए। द्वार-ठिकाना देख आऊंगा। जीजा से भी मिल आऊंगा। उसकी भी झिझक दूर हो जाएगी।''

संतो ने शायद किसी बच्चे के हाथ हमारे आने का संदेश भिजवा दिया था। बाल और बापू जी भी कुएं पर से आ गए थे। मेरे गले लगकर बाल का रोना रुकने पर ही नहीं आ रहा था। बूढ़े बापू की लाठी टूट चुकी थी। वह अच्छा-भला होता था। पिछले आठ-नौ महीनों में ही वह कुबड़ा हो गया दिखता था। बहुत मुश्किल से मेरे मुख से ये शब्द निकले, ''बहुत चौकस आदमी था श्याम। कटी हुई टांगों के बावजूद भरापूरा था वह। बहुत कड़क थी उसकी आवाज में।''

''उसकी आवाज की कड़क ही तो नहीं भूलती मुझे, भाई जी! कानों में बजते रहते हैं उसके बोल। गांव होता या स्कूल, लगता रहता, अभी आवाज दी है भाई ने। आसपास देखता तो कुछ भी दिखाई न देता। बहुत रौनक होती थी, पास बैठे हुए की। खाली-खाली लगता है अब तो सारा घर।''

''एक दहाड़-सी गर्जन। बड़ी ताकत वाला आदमी था। उसने तो हममें भी नई जान डाल दी थी। उस विकलांग को काम करते देखकर हमारी भी निठल्ला बैठने को रूह नहीं करती थी। बहुत मेहनती था। घर की नींव बना गया। तुझसे क्या छिपा है? कोई हाल था घर का? अब जब आराम का वक्त आया तो चला गया। कोई दरवेश आत्मा ही थी। कोई लेखा देना था उसे हम सबका, देकर चलता बना। देखो न, इतने बड़े एक्सीडेंट में भी बच गया था और जब जाने का वक्त आया तो अच्छा-भला बातें करता हुआ ही हाथों से फिसल गया।''

''खुद क्या देखा उस बेचारे ने इस दुनिया का? बस कोई लेने-देने का ही संबंध था।

लेने-देने का भी कैसा? उस बेचारे के तो देने-देने के ही संबंध थे सारे। कभी-कभी ही पैदा होते हैं उस जैसे आदमी। कौन हो सकता है उसके जैसा!"

इस लासानी मनुष्य की बेनजीर कामयाबी की सचित्र कहानी लिखने की इच्छा मेरे मन में ही रह गई। मेरे कंधे पर लटकता कैमरा बेबस था। अब कोई कैमरा उसकी तस्वीर नहीं खींच सकेगा। केवल शब्दों के सहारे ही श्याम की समूची शख्सियत के नक्श खींचने की कोशिश करूंगा अब तो। बहुत ऋण हैं श्याम के मेरे सिर पर! बहुत देनदार हूं उसकी दोस्ती का। शायद कलम मुझे थोड़ी-सी ऋण-मुक्ति का अहसास दिला सके। इसलिए इस काम को अंजाम देने में मैं कोई देरी नहीं करूंगा। नहीं तो श्याम नाराज हो जाएगा मुझसे, मेरा श्याम! अब तो वह मुझे माफ करने के लिए भी मौजूद नहीं रहा। पहाड़ जितना बोझ है मेरे दिल पर। श्याम की बहादुरी की कहानी को अभिव्यक्ति देने वाले शब्द, श्याम के नाम लिखा मेरा अंतिम माफीनामा ही होंगे।

शाम हो चुकी थी। घरवाले मुझे रात ठहरने के लिए कह रहे थे। आया भी मैं रात ठहरने के इरादे से ही था। लेकिन, श्याम की अनुपस्थिति में बेहद बोझिल होगी मेरे लिए यह रात। बेहद याचना भरे स्वर में मैंने सबसे आज्ञा मांगी थी। मेरी हालत को भांपते हुए उन्होंने भी मुझ पर अधिक जोर नहीं दिया। मुझे जाने दिया। मैंने यंत्रवत मोटर-साइकिल स्टार्ट किया, सुधा को पीछे बिठाया और चल पड़ा।

दुग-दुग करते मोटर-साइकिल के शोर को चीरते श्याम के बोल मेरे कानों में गूंज रहे थे, "कोई नहीं ज्ञानी, दिल नहीं छोड़ा करते। तू दिल न थोड़ा करना यूं ही। बापू तो सौदाई है बेचारा! सारे यों ही चिंता किए जाते हैं कि मैंने दुनिया में कुछ नहीं देखा। तुझे तो मालूम ही है, मैं मन में कभी तृष्णा रखकर नहीं जिया। बहुत काम कर मैंने किसी पर अहसान नहीं किया। काम न करता तो मेरी मौत उस दिन मंढाली स्टेशन पर ही हो जानी थी। काम के बगैर तो बाद के साल यूं ही अपनी लाश को घसीटने वाली बात ही होनी थी। और मौत, मौत से तो, ज्ञानी, कौन माई का लाल बचा है? दो दिन पहले, दो दिन बाद। क्या फर्क पड़ता है...! यार, बिछुड़ने से पहले तुझे एक काम कहना था। तुझसे क्या छिपाव है? अपनी लाजो बेचारी दोबारा विधवा हो गई है मेरे मरने से। अगली बार गांव आना तो उसका दुख-सुख भी सुन जाना। कोई कमी-तंगी वाला काम हो सके तो कर देना। कहना तो मैं बाल से चाहता था। बहुत आज्ञाकारी लड़का है। कर भी बेचारा सब कुछ देता। मगर यार, उससे कहने की हिम्मत ही नहीं पड़ी। ला, जरा हाथ मिला। तेरे हाथ तो ऐन मेरे जितने ही हैं..."

श्याम के बोल मेरे अंग-संग थे और मोटर-साइकिल पक्की सड़क पर सरपट दौड़े जा रही थी।

परछाइयों की पकड़

बचिंत कौर

अपनी ससुराल के गांव से पटियाला कुछ सौदा-सुलफ खरीदने आई तो अचानक ही महंतों का दरवाजा खुला देख मैं बिना कुछ सोचे-समझे मकान के अंदर जा घुसी और अंदर पहुंचकर अजनबी-से चेहरे को बड़े ध्यान से देखने लगी जैसे किसी नुमाइश में लगी हुई मूर्तियों को देख रही होऊं।

कुछेक पल बाद, जब मेरी दृष्टि सभी चेहरों पर से होती हुई लौटकर अपने अंदर ही आ सिमटी तो मेरी आंखों में उभरी मिलन की चमक तुरंत ही मद्धम पड़ गई।

लेकिन, तभी नीची-सी छत के तले से पुराना कड़ी वाला खाली गिलास थामे एक लंबी, ठहरी हुई उम्र की सुंदर और सुशील स्त्री बाहर आंगन में आई।

'यही है बीबो!' मेरे मन ने कहा। बलबीर को बचपन में प्यार से सब 'बीबो' ही पुकारते थे। मैंने उसे देखते ही अपने मजबूत आलिंगन में ले लिया। उसने भी मुझको पहली नजर में ही पहचान लिया था। न जाने क्यों उसकी छाती के अंधेरे के नीचे छिपी, गहरा कुआं बनी मेरी आंखों ने छमछम बरसते सावन के बादलों-सी आसुंओं की एक झड़ी लगा दी। मैं रोती रही और वह मुझे चुप कराती रही। और फिर समय जैसे कुछ पल के लिए ठहर गया हो।

''सभी भाई-बहन राजी तो हैं न...रोती क्यों हैं, पगली?''

अब, बीबो ने अपनी दोनों बांहों में कसकर मुझे दबोचे हुए था।

बीते हुए वक्त की एक आह भरते हुए मैं अपने अंदर उठे किसी तूफान को रोकने का प्रयत्न करने लगी तथा मुश्किल से अपने छलकते भावों को नियंत्रित करते हुए मैंने कहा--

''मुझे तो तनिक भी आस नहीं रही थी कि अब कभी हमारा मिलन भी होगा...। तू तो पराए मुल्क में जाकर, बीबो, गुम ही हो गई कहीं।''

तीस-बत्तीस वर्षों के बाद बीबो अपने मां-बाप का यह घर बेचने के लिए मलाया से भारत के पटियाला शहर में आई थी। बीबो अपने मां-बाप की इकलौती बेटी थी और पिता की मृत्यु के बाद अपनी बेबे को वह अपने संग मलाया ही ले गई थी। अब मां-बेटी अपनी

सारी जायदाद बेचने के लिए यहां आई थीं।

"बेबे, पहचाना तूने? कौन है भला? कुलवंत है। मेरे साथ सिंह सभा स्कूल में पढ़ा करती थी।"

कुछ दूर टूटी हुई चारपाई पर दो अन्य अजनबी औरतों के बीच बैठी अपनी बेबे रामकौर को बीबो ने मेरी याद दिलाई।

"अच्छा...कुलवंत है, जिसे हम बंटी कहकर बुलाते थे। फौजी करतार सिंह की बेटी...मुझसे तो बेटा तू बिलकुल ही नहीं पहचानी गई। और वैसे अब बचपन वाली शक्ल-सूरत भी तो बदल गई तुम्हारी।"

"हां ताई जी, मैं भी तो नहीं पहचान सकी आपको। पर जब बीबो अंदर से निकली तो मैंने इसका वही सरु के बूटे जैसा कद पहचानकर इसे झट अपनी बांहों में भर लिया–कसकर। देख लो ताई जी, तब बीबो कितनी सुंदर हुआ करती थी। कितना हुस्न चढ़ा था विवाह के समय इसको। इसकी ठोड़ी में पड़ता गड्ढ़ा कितना सुंदर लगता था।"

"हां बेटा, हमेशा एक ही मौसम कहां रहता है? यह जीवन तो बहती नदी का नीर है, बेटी... और सुना, तेरी बेबे का क्या हाल है?"

"बेबे तो ताई, तीन महीने हुए..." इसके आगे मेरा गला अवरुद्ध हो उठा था। मैंने पुनः गम के उछलते तूफान को रोकना चाहा, मगर मेरी छाती को चीरती एक ठंडी आह मेरे होठों से निकलकर ताई रामकौर के होंठों पर जा चिपकी।

मेरे कंठ में जैसे कांच का कोई टुकड़ा फंसकर रह गया था।

"रो मत बेटी, मां-बाप तो पके हुए फल होते हैं। कभी न कभी तो टहनी से टूटना ही पड़ता है इन्हें। अब तू मुझे ही देख ले...।" अभी बात पूरी भी न हुई थी कि बीबो ने अपनी मां को झिड़का–

"चुप कर जा बेबे, तू यों ही न बोल-कुबोल बोले जाया कर हर समय।" बीबो जैसे मां की ममता को पल्लू से बांधकर रखना चाहती थी। इसलिए वह अपनी मां के बिछोह के बारे में सोचने से भी डरती रहती।

"चल कुलवंत, हम कोठे पर बैठकर बातें करें।"

"वैसे ही, जैसे हम बचपन में छज्जे पर टांगें लटकाकर बहुत-बहुत देर तक बातें किया करती थीं।" मैं अभी ऊपर झांक ही रही थी कि एक कौआ छज्जे पर से उड़कर मेरी आंखों से ओझल हो गया।

"वो वक्त बहन, अब कहां हाथ आता है! जाने कहां उड़ गया पंख लगाकर!" यह कहते-कहते बीबो बांस की सीढ़ी के कितने ही डंडे ऊपर चढ़ गई और उसके पीछे-पीछे मैं भी कोठे पर जा चढ़ी।

"और सुना बीबो, मेरा जीजा अभी भी तुझे मियां-मिट्ठू कहकर ही बुलाता है?" मैंने

बीबो के मुकलावे (गौने) के समय की सुहानी ऋतु से बात आरंभ की।

"छोड़ कुलवंत, अब तो मैं शहद मुंह में भरकर भी बात करूं तो भी उसको जहर लगती है। मेरे मां-बाप की सारी जायदाद मेरे नाम होने के बावजूद उसको मेरी मां की दो रोटियां हर समय चुभती रहती हैं।" यह सब सुनकर मेरे मन के चित्रपट पर मुकलावे से लौटी बीबो द्वारा बताई गई अजीब और हैरत-भरी कितनी ही यादें उधड़ आईं।

"कुलवंत, मेरे ससुराल वाले बहुत अमीर हैं। बालण की जगह नारियल की ठूठियां जलाते हैं। पहली बार जब मेरी सास ने मुझे बालण लेने छत पर भेजा तो मेरी समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या लेकर नीचे उतरूं। बहुत देर बाद जब मेरी सास कोठे पर चढ़कर मुझे बुलाने आई तो मैं नारियल की ठूठी चबा रही थी।

"मुझे देखकर बोली, बेटा, ताजा नारियल तोड़कर खा ले, नीचे आकर। ये तो खराब हैं इसलिए बालण के लिए रखे हुए हैं। उस वक्त मुझे बेहद शर्म आई। क्या कहती होगी कि बहू ने कभी खोपा भी नहीं देखा।"

"पर अपने यहां तो खोपे की छोटी-सी ठूठी भी कितनी मंहगी मिलती है, बीबो।" मुझे जैसे बीबो की बातों पर यकीन नहीं आ रहा था। वह मुझे बताती कि सारे श्याम देश की धरती पर नारियल के वृक्ष ऐसे उगे हुए हैं जैसे अपने यहां भारत में आक और करीर। रबड़ बनाने वाले वृक्ष भी अधिकतर मलाया और श्याम की धरती पर ही होते हैं।

"मेरे ससुराल वालों का नारियल और रबड़ का बहुत बड़ा कारोबार है। मगर मुझे वहां के लोग अच्छे नहीं लगे। सांप, बिच्छू सब खा जाते हैं। और नक्श भी चपटे-चपटे होते हैं वहां के लोगों के।"

मुकलावे से लौटी बीबो ने पता नहीं कितना कुछ मुझे ऐसा भी बताया जिसे सुनकर मुझे लगा जैसे परियों और देवताओं के देश की एक कहानी वह मुझे सुना रही हो। लेकिन, उस समय मुझे उसकी यह कहानी कोरा झूठ लगती थी।

बाद में, जब मेरे बाबूजी दूसरे विश्वयुद्ध के बाद बर्मा, श्याम और सिंगापुर आदि देशों से लौटकर आए और उन्होंने वहां के बारे में बताया कि बर्मा की स्त्रियों के बाल पैरों तक लंबे होते हैं, श्याम और मलाया के लोग सी-फूड (समुद्री जानवरों) के आहार पर अधिक निर्भर करते हैं, व्यापारिक तौर पर उनके पास दो ही वस्तुएं अधिक होती हैं—नारियल और रबड़, तो मुझे बीबो की कही हुई बातों पर यकीन आने लगा था।

और फिर, उस समय बचपन में बुद्धि की पहुंच भी तो उतनी ही थी। जब किसी सहेली के घर कोई छोटा बहन-भाई पैदा होता तो हम घंटों इकट्ठा बैठकर नए जन्मे बच्चे के बारे में अक्ल के घोड़े दौड़ाती रहतीं लेकिन किसी को कुछ भी समझ नहीं आता था। कोई कुछ कहती, कोई कुछ। और अंत में, बात की तार लंबी होती हुई विवाह और मुकलावे तक आ पहुंचती। मैं और बीबो तो घंटों इस विषय पर सोचते हुए छज्जे पर बैठे-बैठे

अंधेरे में पत्थर मारती रहतीं।

पटियाला में, हमारे और बीबो के घर की एक ही दीवार थी–'जी राजां' के मोहल्ले में। बाबे आल्हे की शाही समाधियों से लगती हमारी लगी आगे जाकर समाधियों के फाटक के पास बंद हो जाती थी।

सरकारी समाधियां होने के कारण बीबो के बापूजी दिन भर समाधियों पर ड्यूटी देते और दिन छिपे अंधेरा होने पर वहां पर दीपक भी वही जलाकर रखते थे।

इसलिए, बाबा आल्हे की समाधियों का सारा अहाता मुझे और बीबो को अपने घर का आंगन ही लगता था। हम पूरा-पूरा दिन संगमर्मर के फर्श पर गेंद और गीटे खेलती रहतीं। इमली के पेड़ों पर झूले डालकर झूलतीं और नवविवाहित लड़कियों और बहुओं की बातें करते हुए खिलखिलाकर हंसती रहतीं।

पढ़ाई-लिखाई की उस समय में पांच जमातें ही बी. ए. पास के बराबर थीं। मगर हम दोनों ने कक्षा तीन पास करने के बाद स्कूल जाना ही छोड़ दिया था और अपने-अपने दहेज के लिए दसूती के मेजपोश और चादरें-सिरहाने काढ़ने शुरू कर दिए थे।

मैंने तो वैसे भी अपनी बेबे के संग घर के काम में कभी हाथ नहीं बंटाया था। बेबे मुंह-अंधेरे उठकर चक्की पीसती, दूध बिलोती, पशुओं के लिए सानी करती और फिर हाजरी के लिए पानी के हाथों से प्याज वाली मिस्सी रोटी पकाती।

गोबर-कूड़ा करने के बाद, दोपहर की रोटी पकाकर दुकान पर बाबाजी के लिए भेजती। सारा-सारा दिन पीसना-फटकना, कातना-धुनना और घर का कितना ही छोटा-मोटा काम करती बेबे को शाम हो जाती। कई बार तो बेबे को सारा दिन बदन पर पानी डालने तक की फुर्सत न मिलती। लेकिन मजाल है कि मैं घर के काम में बेबे को बालण की लकड़ी के दो टुकड़े भी करके देती।

मैं तो सुबह-सवेरे ही मिस्सी रोटी पर मक्खन की एक डली रख, खा-पीकर पेट पर हाथ फेर, छोटे वीर (भाई) दीपू को गोद में उठा बीबो के घर जा घुसती।

अगर कभी बीबो की बेबे ऐसा करने पर मुझे झिड़ककर वापस भेज देती तो मैं पूरी गली के एक सिरे से दूसरे सिरे तक कोना-कोना छानती रहती। किसी लड़की की नई भाभी गौने पर आई होती तो बावलों की तरह उसके आगे-पीछे घूमती रहती, उसके झिलमिल करते गहनों-कपड़ों को निहारती रहती। किसी लड़की की बहन विवाह के बाद गौने से लौटकर आई होती तो किसी न किसी बहाने उसके मुंह से उसके पाहुने की बातें सुनती। फिर कोई मुझे अपना सिर देखने के काम में लगा देती। कोई और कुछ इधर-उधर करवाने लग जाती। मुझे यह सब अच्छा न लगता। लेकिन अगर कोई नवविवाहिता अपनी सलवार में रंगदार सुनहरी लड़ियों वाला रेशमी नाड़ा डालने के लिए कहती तो मुझे जैसे चाव-सा चढ़ जाता।

दिन ढले कहीं जाकर भूखी-प्यासी, डेढ़-एक साल के दीपू को गोद में उठाए मैं घर लौटती तो बेबे की आंखों में गुस्सा देख, उसकी डांट से डरकर, सिनेमा के गानों की कापी अपनी किताब के बीच रखकर बैठ जाती और ऊंचे स्वर में अपने स्कूल का सबक याद करने लगती।

एक थी चिड़िया, एक था कौआ, दोनों ने मिलकर साझी खेती बोई। लेकिन, कौआ था बहुत चालाक...। पर अब मुझे ऐसा लगता कि मैं थी कौआ और मेरी बेबे बेचारी थी चिड़िया...जिसे मैं कौआ-चिड़िया की कहानी मुंह से बोल-बोलकर सुनाते हुए धोखा देती थी।

भीतर ही भीतर तो मैं याद कर रही होती थी उस समय के उन दिल छू लेने वाले गीतों को–

'मुंडा मोह लिया तवीतों वाला
कि दमड़ी का शक मल के...'[1]

और

'रस्सी ऊते टंगिया दुप्पट्टा मेरे ढोल दा,
उड्ड-पुड्ड जाणा, मुंहों हंसदा नी बोलदा...'[2]

समय के वे पदचिह्न जिन्हें हम कहीं दूर भूतकाल में छोड़ आई थीं, आज एक-एक कर उभर आए थे–मेरे और बीबो के मन के आंगन में।

अभी कहां बस थी। एक दिन, मैं और बीबो अपने-अपने तख्ती-बस्ते कंधों पर लटकाए स्कूल जाने की बजाए रेल देखने के शौक में पटियाला के रेलवे स्टेशन के अंदर प्लेटफार्म पर जा पहुंची थीं।

नौ बजे की एक गाड़ी आई। छुक-छुक करती हुई गुजर गई। हम हरे रंग की बेंच पर बैठकर गाड़ी को जाते हुए देखती रहीं।

समय भला किसकी पकड़ में आता है! फिर ग्यारह बजे का, नाभा जाने वाला डिब्बा जब गुजर गया तो सारा प्लेटफार्म जैसे एक बार बिलकुल खाली होकर हम दोनों को घूरने लगा।

"कहां जाना है तुम्हें?" नीली वर्दी वाले एक आदमी ने अपनी टोपी ठीक करते हुए हमसे पूछा।

"हमारी बेबे गाड़ी में चली गई, हम रह गईं।" मैं अपने आप को कुछ अधिक ही होशियार समझ रही थी।

"कहां जाना था तुम्हें बेबे के साथ? और ये तख्ती-बस्ते?" ऊंचे स्वर में हमको झिड़कते

1. तावीतों वाला लड़का मोह लिया दमड़ी के रंग में रंगकर...
2. रस्सी पर टंगा है दुपट्टा मेरे प्रियतम का जो कमबख्त हंसता है, न बोलता है।

हुए टी. टी. ने मेरा बस्ता टटोला।

बस्ते में से मेरे बड़े भाई की चौथी कक्षा की किताब उसके हाथ लग गई जिसमें जहांगीर के इंसाफ वाला पाठ पहले ही पृष्ठ पर था।

"कौन-से स्कूल में पढ़ती हो? और किस क्लास में?" उसने हमें डांटते हुए पूछा।

बीबो आहिस्ता से बोली, "जी हम दोनों तीसरी कक्षा में हैं, सिंह सभा स्कूल में।"

"और ये चौथी की किताब किसकी चोरी की है?"

"मेरे बड़े वीर की है।"

"चलो, निकलो बाहर...जाओ अपने-अपने घर...चोर कहीं की।"

इस घटना को स्मरण कर हम दोनों कोठे पर बैठी जोर-जोर से खिलखिलाकर हंस पड़ीं।

"लड़कियो, नीचे उतर आओ अब। बादल भी चढ़ आए हैं, ये भादों के बादल बड़े बेसब्रे होते हैं। और चाय भी पी लो आकर अब, ठंडी हो रही है।" नीचे से ताई रामकौर हमें आवाजें लगा रही थी।

अंबर में बेशक एक गर्द-सी फैली हुई थी, कभी-कभी बिजली भी हमारे सिरों पर चमक रही थी, फिर भी आड़ी-तिरछी उड़ती हुई बादलों की टुकड़ियों को देखकर एक बार तो हम दोनों का मन हुआ कि आज फिर समाधियों में जाकर बचपन की तरह इमली की उस डाल पर झूला झूलें जहां हम बचपन में झूला करती थीं।

इमली के उसी पेड़ की ओर हसरत भरी दृष्टि से देखती हुई हम दोनों कोने पर से खड़ी हुई ही थीं कि तभी बादल जोर से गरजा और हवा भी बहुत तेज चलने लगी। सारे वातावरण में एक रेत-सी चुभने लगी थी और हमारे देखते-देखते हवा के एक तेज झोंके से तड़ाक की आवाज के साथ इमली के पेड़ की एक बड़ी-सी डाल टूटकर धरती पर आ गिरी थी। उसी डाल की जड़ों में से अपनी बिल से गिरकर एक गिलहरी हमारी आंखों के सामने डाल के नीचे दबकर कुचली गई।

"बेटा, उतर आओ नीचे, अब तो पानी भी बरसने लगा है। और चाय भी पड़ी-पड़ी ठंडी हो गई।" ताई रामकौर की एक और हांक हमारे कानों से टकराई। अचानक, एक साथ एक ठंडी सर्द आह हमारे दोनों के धुर अंदर से निकलकर हमारे होंठों पर आकर जम गई और हम घबराकर अवाक्-सी नीचे सीढ़ी के डंडे की ओर झांकने लग पड़ीं।

अदना इंसान

अतर जीत

जहां तक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी शाम लाल से मेरी सहानुभूति का संबंध था, वह महज इंसानियत के नाते था। इंसानियत की भावना को भी मैं उन दिनों पवित्रता की हद तक पूजा करता था। बेशक, शाम लाल हमारे दफ्तर में झगड़ालू और शुष्क तबीयत का मालिक माना जाता था, लेकिन मेरी दृष्टि में नफरत का पात्र नहीं था। दसवीं करने के बाद जल्दी ही नौकरी में लग जाने के कारण मुझे उन दिनों में नावेल पढ़ने की बहुत ही बुरी आदत थी। और, मेरे सामने भले ही किसी वाद की सीमा नहीं थी किंतु फिर भी स्वाभिमानी नायक-नायिकाओं के पात्र और चरित्र मुझे बेहद अच्छे लगते थे। ऐसे पात्र आमतौर पर उपन्यासों-नाटकों में ही आपको मिल सकेंगे, किंतु जिस जीते-जागते पात्र से मेरा वास्ता पड़ा था, उसके रक्त का कतरा-कतरा, हड्डी का कण-कण, मांस की बोटी-बोटी, लगता था स्वाभिमान से बनी थी। मेरे विचार में वह जीता-जागता एक उपन्यास नहीं बल्कि मनुष्य का इतिहास था। बातचीत के दौरान वह स्वयं को अदना इंसान या मामूली आदमी कहा करता था।

उस समय मैं पंजाब राज्य विद्युत बोर्ड के मलेरकोटले के दफ्तर में क्लर्क था और अब उप-मंडल दफ्तर, रामपुरा में सहायक सुपरिंटेंडेंट के पद पर पोस्टेड होकर आया था, जहां शाम लाल नाम के एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी का लिअन स्थानांतरित होकर आया था। डीलिंग-क्लर्क ने नोटिंग लगाकर कागज मेरी मेज पर रख दिया था। पहले तो सरसरी तौर पर देखकर हस्ताक्षर करने ही लगा था परंतु 'स्वीपर-कम-चौकीदार' पढ़कर मेरे मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो गई और मस्तिष्क पर जोर डालकर मैंने सोचा, वह शाम लाल तो 'माली-कम-वाटरमैन' था। 'निलंबित किया जाता है' शब्दों से आगे मुझे कोई अक्षर दिखाई नहीं दे सका। मैंने पर्स में से तुरंत चश्मा निकाला। साफ कर नाक पर जमाया और आगे पढ़ा तो साफ लिखा हुआ था : 'निलंबित किया जाता है और प्रबंधकीय आधार पर उसका लिअन पंजाब राज्य विद्युत बोर्ड के रामपुराफूल स्थित दफ्तर में स्थानांतरित किया जाता है।' मैंने अंगूठे के साथ वाली अंगुली से कनपटी पर ठक-ठक करते हुए उसका पुराना स्टेशन सुनाम पढ़ा और याद करने का यत्न किया कि यह कौन-सा शाम लाल है। कल

भी हमारे दफ्तर के कर्मचारी शायद इसी कारण चिंता और भय का इजहार कर रहे थे कि वह कर्मचारी तो बहुत ही खतरनाक, झगड़ालू और एक बला है। पता नहीं कब, किस वक्त झंझट खड़ा कर दे, जो किसी के गले पड़ते समय आगा-पीछा नहीं विचारता।

शाम लाल उर्फ शामू हमारे दफ्तर में पंद्रह-सोलह वर्ष पहले हुआ करता था। तब से लेकर अब तक मुझमें ढेर-सा परिवर्तन आ चुका था। जो महज समय-समय पर चली हवाओं के कारण ही था। आजकल तो मैं बिलकुल ही अमनपसंद शहरी बन गया था। मैं अपने अग्रजों की नसीहत को देर से ही समझ सका था। अगर नौकरी करनी है तो फिर नाज और नखरा क्या? जब बच्चे ही पालने थे तो अच्छी-भली नौकरी को खामख्वाह थोथे स्वाभिमान के पीछे लगकर दाग क्यों लगवाएं? उस वक्त, इतना जोश पता नहीं कहां से आ जाता था कि स्वाभिमान के बदले नौकरी को लात मारने को तैयार हो जाया करता था। अब तो वेतन के अलावा, मुझे ऊपर से भी काफी आमदनी हो जाती थी। और पांच-पांच सौ गज के दो प्लाटों का सौदा-भी कर लिया था जो इसी वर्ष दुगने के हो गए थे। दोस्त कहते थे कि मैं पहले से मोटा हो गया हूं। लेकिन, मैं समझता हूं कि आखिर, मनुष्य की शख्सियत भी तो कुछ होनी चाहिए। अंदर के मनुष्य को कौन जानता है? दुनिया ही दिखावे और तड़क-भड़क की है और हम भी नए ढंग की शेव बनाकर दफ्तर जाया करते थे।

कल मेरे सहयोगी कर्मचारी ने बताया था कि नया चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी जो मुअत्तल होकर आया है, चुपचाप साहब के कमरे में जाकर बोला—'जनाब, मैं शाम लाल माली-कम-वाटरमैन हूं' और, तनकर साहब के सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया। साहब ने नरमी से काम लेते हुए कहा, "आर्डर पर तो स्वीपर-कम-चौकीदार लिखा है।" इस पर वह बोला, ''साहब, मेरे साथ बेइंसाफी की है, पहले वाले साहब ने।" साहब ने उसको ड्यूटी पर हाजिर नहीं करवाया। इस घटना पर मैंने अधिक ध्यान नहीं दिया था। वास्तव में, मैं अपने आपको किसी ऐसी बात से मानसिक तौर पर जोड़ने के लिए तैयार नहीं था। आज उस व्यक्ति ने किसी कर्मचारी से मेरा नाम पूछा था और पता लगाने पर मैं उसे बिल्कुल अनदेखा करने का प्रयत्न कर रहा था। अब मुझमें पहले जैसी भावुकता भी नहीं रही थी कि यों ही छोटी-छोटी बातों के विषय में सोचता रहूं। भावुकता जिसे कई लोग स्वाभिमान का व्यर्थ ही नाम देते हैं, मेरे लिए अपने अर्थ खो बैठी थी। अब दूसरों की जिंदगी के बारे में सोचने वाला मूर्ख समझा जाता था। किसी की जिंदगी में रह भी क्या गया था? मुझे मेरे चपरासी ने आकर सूचना दी थी कि बाहर कोई मुझसे मिलना चाहता है। मैंने ड्यूटी की चिंता किए बिना (क्योंकि एस. डी. ओ. साहब की मेरे संग अच्छी बनती थी, भले ही इसका कारण एक-दूजे के कमजोर पक्षों का एक-दूजे से छिपा न होना था) बाहर लान की ओर चल पड़ा। साहब के दफ्तर में फाइलों का ढेर उठाए लाइन-सुपरिंटेंडेंट को और न ही उसके पीछे जाते सुपरिंटेंडेंट की ओर मैंने ध्यान दिया। मेरे बूटों की ठक-ठक बरामदे

में गूंज रही थी। बरामदे के सिरे पर ही लान और पार्क आते थे।

मेरे सम्मुख, देखने में पचासेक साल की उम्र का एक व्यक्ति खड़ा था। मैंने तो समझा था कि सूट-बूट वाला बाबू या सरदार—कोई तगड़ी आसामी मिलने आई होगी, लेकिन अजीब और खराब शक्ल तथा मैले-कुचैले कुर्ते-पायजामे वाले इस व्यक्ति को सामने खड़ा देखकर मुझे अपमान-सा महसूस हुआ। मैं अपने रौब-दाव को कायम रखते हुए, चश्मा उतारकर हाथ में लेते हुए 'क्या बात है?' कहने ही वाला था कि उसने दोनों हाथ जोड़कर मुझे नमस्ते की। जैसे ही उसके होंठ हिले, नाक की कोंपल में तनाव आया, मैं पहचान गया कि यह तो वही शाम लाल था—अदना इंसान या मामूली आदमी। उस पर इतनी जल्दी आए बुढ़ापे को देखकर मैं हक्का-बक्का रह गया। मैं उससे कई साल बड़ा था, मगर बाबू लोग मालूम नहीं फूंक देने के लिए ही कहते हों कि मेरी सर्विस बीस साल की भी नहीं लगती।

"शाम लाल !" मेरे मुख से जैसे ये शब्द निकले, "यह क्या हाल हुआ तेरा?" हमेशा फूलों की तरह खिले रहने वाला और किसी के आगे कभी भी सिर न झुकाने वाला शाम लाल कितनी जल्दी मुरझा गया था-‐अदने इंसान वाला शाम लाल ! उसके नीचे वाले दो-तीन दांत भी नहीं रहे थे। गाल अंदर धंस गए थे और रंग एकदम काला हो गया था। पहले वाला शाम लाल तो वह रहा ही नहीं था।

"बाबूजी !" उसकी आवाज में वही पहले वाला धैर्य और आत्म-विश्वास था, "इंसान के ऊपर सौ-सौ हवाएं चलती हैं।" पंजाब में जन्मा-पला होने के कारण वह पंजाबी बहुत ही बढ़िया बोलता था, वैसे उसके बुजुर्ग भले ही बिहार के थे।

"ऐसी क्या विपदा आ गई?" मैंने अपनी बांह में उसके कंधे को लपेटते हुए उसे अपने और निकट कर लिया। उसकी सांसों में से तंबाकू की तीखी और कड़वी बदबू आ रही थी। उस समय तो वह तंबाकू का भी सेवन नहीं किया करता था। तंबाकू से बेहद घृणा किया करता था। शाम लाल के चेहरे पर दृढ़ता और तसल्ली-भरी मुस्कुराहट फैल गई, ''बस जी, दुख-सुख तो इंसान के साथ ही हैं।'' उसने जेब में से बीड़ी का बंडल और माचिस निकाली, ''कौन-सा हमेशा एक जैसे हालात रहते हैं?'' उसने बीड़ी को काले हो गए होठों से फंसाकर सुलगाया। दोनों हथेलियों की ओट के बीच जलती हुई तीली की लौ को मैं देखता रहा। कश खींचते समय उसकी पतली गर्दन का कौवा और नसें उभर आती थीं। कुछ अधिक ही कमजोर हो जाने के कारण उसके कंधे कुछ अधिक ही उठे हुए और निकली हुई हड्डियों जैसे लगते थे।

"तू तो तंबाकू नहीं पिया करता था। यह कब से पीना शुरू कर दिया?" मैंने नफरत से नहीं बल्कि दिली हमदर्दी से पूछा, क्योंकि मैं समझता था कि वह ठोकर खाने के बाद ही ऐसा करने लगा होगा। मैं उसकी रग-रग से परिचित था।

"इंसान का जीवन ही बीड़ी की तरह है, साहब !" शायद वह अपने चेहरे पर खुशी

लाने का यत्न कर रहा था, "नहीं?" उसने जैसे मुझसे अपनी बात का समर्थन कराना चाहा, "तीली पहले मेरी जेब में शांत पड़ी थी। ऐसे ही बीड़ियों का बंडल। तीली जली और बुझ गई लेकिन बीड़ी को सुलगा गई।" मुझे याद आया कि वह मुझसे साहित्यिक पुस्तकें लेकर पढ़ने का बेहद शौकीन रहा था और साहित्य में पढ़े गए व्याख्यानों के उदाहरण देने लगता था। "जीवन भी कभी आग की तरह लपटें छोड़ता, लप-लप जलता है और कभी सिगरेट की तरह सुलगते हुए सिर्फ धुआं ही छोड़ता है।"

"पर तीली जैसे जीवन को तो दूसरों के जीवन में ज्वाला फूंकनी चाहिए।" मैं भी भावुक हो उठा। शाम लाल ने मेरे चेहरे की ओर देखा। शायद वह मेरे मुख से निकले शब्दों की कठोरता को मेरे चेहरे पर देखना चाहता था। मुझे लगा, जैसे शाम लाल इसको न पाकर उदास हो गया था या शायद यह मेरे मन का ही भ्रम था।

"चल, पहले चाय पीते हैं।" मैंने स्वयं में पहले वाले व्यक्तित्व की तलाश करने के लिए कहा और कोशिश की कि वही पंद्रह-सोलह साल पुराना प्रभाव कायम रखूं, "बातें तो होती ही रहेंगी।"

मैं उसे कैंटीन की ओर ले गया। कैंटीन में पहुंचकर हम आमने-सामने वाली कुर्सियों पर बैठ गए। मैंने देखा, उसके सांवले चेहरे पर एकाएक पीलापन पुत गया था। पीलिए के रोगी की भांति आंखें भी हल्दी जैसी पीली लग रही थीं। केवल होंठ ही थे जो तंबाकू के धुएं से काले-स्याह हुए पड़े थे। "दो कप चाय !" मैंने अंगूठे के साथ की दो अंगुलियों को शेष अंगुलियों से पृथक कर ऊपर उठाते हुए कहा। लड़का पानी के दो गिलास हमारी मेज पर रख गया।

"और फिर कौन-से रंगों में रह रहे हो, साहब?" शाम लाल पानी पीने के बाद गिलास को मेज पर टिकाते हुए मेरी आंखों में देखते हुए बोला।

"बस, दिन गुजर रहे हैं, शाम लाल !" मैंने आदत के विपरीत आंखें छोटी कर कहा, क्योंकि मैं आजकल आंखें छोटी करने वाली कुर्सी पर नहीं बैठा हुआ था, दिन-प्रतिदिन ऊपर उठ रहा था और निगाहें नीची होने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

"क्या बात, साहब?" शाम लाल ने चौंककर कहा, "आपकी आवाज में उदासी!" उसने दोनों बांहों को मेज पर एक-दूसरे पर टिकाया और टांगों को फैलाकर मेज पर झुक गया, "कम से कम मैं आपसे ऐसी आशा नहीं रखता, साहब!"

"असल में बात यह है, शाम लाल !" मैं अपने आपको संभालते हुए बोला, "इंसान को नम्र होना चाहिए, घमंडी नहीं।"

"यह तो साहब बड़े लोगों की बातें हैं। सिर्फ बातें।" शाम लाल ने अपनी स्थिति बदली और सीधा होकर बैठ गया, "गरीब आदमी हमेशा ही विनम्र और अहंकार-रहित होते हैं, पर मैं समझता हूं कि उसके बीच में गैरत जरूर होनी चाहिए।" वह थोड़ा मुस्कुराया,

"पर पैसे की दौड़ ने मनुष्य के लिए गैरत के अर्थ ही बदल दिए हैं। यह तो जैसे सामंतवादी दौर की ही बातें रह गई हैं।"

मैं एक प्रकार से सुध-बुध खो बैठा था और इस स्थिति में मुझे शाम लाल का सामना करना कठिन लग रहा था। शाम लाल मेरी कद्र मेरी गैरत, साफगोई और ईमानदारी के कारण ही करता था।

"आजकल?" मैंने बातों का रुख बदलना चाहा।

"मुअत्तल और अब आपके दफ्तर में। कल का पता नहीं।" वह बातों में पहले की तरह ही चुस्त था।

कारण पूछने पर उसने बहुत ही भावुक होकर बताया कि एस. डी. ओ. साहब से उसकी बिगड़ गई थी।

"बस, हमने कुकरमुत्ते को कुचल दिया और सस्पेंड हो गए, साहब!" मैं एक तरह से डर गया जैसे कहीं मेरे सामने बैठा खतरनाक व्यक्ति मेरी भी मशरूम कुचल देगा।

"रौब से तो...आप जानते ही हैं..." उसने अपना बोलना जारी रखा, "हमसे तो कोई काम ले नहीं सका और न ही कोई पैदा हुआ है।" उसने बताया कि इस मामले में 'तू-तू, मैं-मैं' हो गई थी और मारपीट की नौबत आ गई थी।

"आप किसी से 'साला' कैसे सुन लेंगे? यह तो यों ही मौत है बंदे की।" 'साला' शब्द की उसने अपनी ही धारणा बना रखी थी। वह समझता था कि यह शब्द गिरावट और नीचता का प्रतीक है। गुलामी का प्रतीक !

उसमें सब कुछ था लेकिन मेरे सामने तो काली गाय बनकर रहा था। जिसका एक कारण यह था कि मैंने उसको कभी भी कटु शब्द नहीं कहा था और उसके अंदर के इंसान की कद्र करता था। इसके बदले में वह मेरे घर का काम भी कर जाया करता था। मुझे स्वयं भी याद नहीं कि असल में उसकी नब्ज मेरे हाथ में कैसे आ गई थी। नहीं तो वह किसी को कुत्ता नहीं कहने देता था।

"शाम लाल, छोटे भाई !" मैंने जितनी बार भी उसको किसी काम के लिए कहा, "आज लकड़ियां बिल्कुल खत्म हो गई हैं। तेरी भौजाई तो कहती थी, शाम को रोटी नहीं मिलेगी।" तो वह झुककर आगे बढ़ते हुए उत्तर देता, "बाऊजी ! यह कैसे हो सकता है कि हमारा बड़ा भाई भूखा सोए ! सब हो जाएगा।"

और, रौब से तो वह किसी को पानी भी नहीं पिलाता था। वह कई बार जान-बूझकर पंजाबी को हिंदीनुमा बनाकर बोलता, "हम ऐसे इंसान हैं, साहब, चार अंगुली झुकने वाले के सामने हाथ भर झुकते हैं। एक इंच सिर ऊपर उठाने वाले के आगे तीन फुट सिर ऊंचा उठाते हैं। वैसे तो हम एकदम अदना इंसान हैं, एकदम मामूली आदमी।"

मैं उससे कहता, "भई शाम लाल, जब तू पंजाबी में अच्छी-भली बात कर सकता

है तो फिर व्यर्थ में खिचड़ी-जुबान क्यों बोलने लगता है?" वह इसका कोई उत्तर नहीं देता। मुझे लगता, वह कहेगा, यहां अधिक खिचड़ी नस्ल रहती है इसलिए।

उसका विवाह तबतक नहीं हुआ था। इस बारे में कभी पूछताछ की भी नहीं थी। मैं उसको अपने बराबर पलंग पर या सोफे पर बैठने के लिए कहता, लेकिन वह हीनतावश अथवा मेरे सम्मान हेतु दूर हटकर एक कुर्सी पर बैठता। मैं उसे चाय पकड़ाता। कई बार खुद उठकर प्लेट उसके आगे कर देता। उसने कभी भी उसमें से बिस्कुट या खोए की पिन्नी, बर्फी का टुकड़ा या समोसा स्वयं नहीं उठाया। अंदर ही अंदर मैं यही चाहता था कि वह अलगाव और दूरी बनी रहे। आखिर, वह हमारे दफ्तर का चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी ही तो था। तब भी उससे काम लेने के लिए कई प्रकार के दांवपेंच और चतुराइयां बरतनी ही पड़ती थीं।

"देखो भाई, शाम लाल," मैं प्लेट पीछे खींचकर उसमें से एक पीस उठाकर उसके हाथ में पकड़ाते हुए कहता, "दफ्तर में तू मेरा मातहत है, घर में नहीं। घर में सब बराबर होते हैं। हम दोस्त-दोस्त हैं, भाई-भाई।" वह फिर भी मेरे हाथ से चीज न पकड़ता बल्कि देवी माता का प्रसाद लेने की भांति देनों हाथ पसार देता, "नहीं साहब, फिर भी आप बड़े आदमी हैं। मैं तो एक अदना इंसान हूं।" वह कहता।

इसके बाद, वह बहुत देर तक मेरे बच्चे को खिलाता रहता। मेरी पत्नी कौशल्या को पानी की बाल्टियां भर-भरकर देता। कपड़े धुलाने में मदद करता। बाजार से लकड़ियां ला देता। सब्जी ले आता। मोटी लकड़ियों को चीर देता। कई बार मैंने अपनी आंखों से देखा था कि वह मेरी पत्नी की ओर, खास तौर पर जब वह झुककर कोई काम कर रही होती, उसकी कमीज या ब्लाऊज के नीचे हो जाने पर उसके अंदर या ब्रा की तनियों की ओर भूखी-प्यासी चोर निगाहों से देखता रहता। मुझे थोड़ी खीझ-सी तो आती, किंतु उसे टोका कभी नहीं। टोकने के फलस्वरूप मुफ्त में मिले नौकर से हाथ धोना पड़ सकता था।

अपनी मुश्किल को वह कभी बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बताता था, तब भी दुख-सुख बयान करते समय वह कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करता कि सुनने वाला पसीज उठता।

"मुझे तो खैर मुअत्तल कर दिया पर उम्र भर आदमी का बच्चा याद तो करेगा कि भई शाम लाल से पाला पड़ा था।" शाम लाल की मुराद एस. डी. ओ. से थी जिसको उसने पीट-पीटकर उसके अपने शब्दों में कचूमर निकाल दिया था।

"फिर तो तुझे बहुत मुश्किलें पेश आ रही होंगी?" कोहनियों को मेज पर टिकाकर, हाथों की हथेलियों पर ठोड़ी रखकर, मैं उसके धुआंए पीले चेहरे को एकटक दयाभरी दृष्टि से देख रहा था।

"यह क्या पहली बार हुआ है, साहब?" उसने बताया कि वह तीसरी बार सस्पेंड हुआ है। इसीलिए तो वह हमारे महकमे में बुरी तरह से बदनाम हो चुका था। उसके इस प्रकार

के स्वभाव का विश्लेषण करने के लिए मैं उसके जीवन की वे घटनाएं याद करने लगा जिन्हें वह कई बार भावुक होकर सुनाया करता था, "मैं तो अदना इंसान हूं जी।" वह कहा करता था, "पर मैं 'ओए' नहीं सुन सकता। मुझसे कोई जूती से या रौब से काम नहीं ले सकता।"

उसके जीवन की सबसे पहली, दिलचस्प और दिलेर किस्म की घटना उस समय की थी जब वह दूसरी कक्षा में ही पढ़ता था। उसका बाप ढलाई के कारखाने में काम करता था और उसकी मां मंडी गोबिंदगढ़ में ही म्युनिसिपल कमेटी की सफाई कर्मचारी थी। शामू का एक सहपाठी रामेश्वर था जो उसी शहर के थानेदार का बेटा था जो स्कूल में अपने बाप की तरह पुलिस-अफसर की भूमिका अदा किया करता था। कक्षा का मोनीटर होने के कारण वह अध्यापक की अनुपस्थिति में कुर्सी पर चढ़ बैठता। सवाल बोलता, गलती करने वाले बच्चे को वह अध्यापक वाले रूल से ही मारता। बच्चे अध्यापक से भी अधि

ाक उससे डरा करते। आधी छुट्टी में लालाओं के बच्चों के पराठे छीनकर खा जाता। एक दिन उसने शाम लाल को भी थप्पड़ मारा। सेहत में बेशक शामू तगड़ा था पर न जाने क्यों थानेदारी की धौंस से सहमकर या अध्यापक के डर से विरोधी के ऊपर झपटने की इच्छा के वावजूद उसके अंगों ने उसका साथ नहीं दिया।

एक अन्य दिन उसने रामेश्वर से बदला लेना चाहा। बड़ा ही सुनहरा अवसर हाथ लगा था। अपनी गली के मोड़ पर जा रहे रामेश्वर के सिर में उसने पत्थर मारने का साहस कर लिया था, किंतु ऐन मौके पर उसका दिल जोरों से धुकधुक करने लगा था और वह बहुत कोशिश के बाद भी कंपकंपी पर काबू नहीं पा सका था। घर लौटकर वह बदले की आग में जलते हुए यही सोचता रहा कि उसको घबराना नहीं चाहिए था।

अगले दिन ही रामेश्वर ने उससे सुलह कर ली थी। उस दिन किसी खब्ती लड़के ने स्लेट-तख्तियों को भिड़ाने का खेल शुरू कर दिया था। बचपन की ये मजेदार हार जीत के अहसासों से भरपूर घटनाएं अपना अनूठा आनंद रखती थीं, जिन्होंने शामू के व्यक्तित्व की नींव की पहली ईंट रखी थी। शामू ने मेहनती बाप के बेटे वाले हाथों से रामेश्वर की स्लेट पर जोरदार वार किया तो पुलिस-अफसर की खरीदी स्लेट बीच में से टूटकर दो टुकड़े हो गई। एक बड़ी दरार शामू की अपनी स्लेट में भी आ गई थी।

रामेश्वर जो बाप की थानेदारी के बल पर हमेशा जीतता ही आया था, एक मजदूर के बेटे के हाथों हुई हार को सह न सका। उसने अक्खड़ और अनाड़ी ढंग से शामू का गला पकड़ लिया, "साले चूहड़े !" पुलिस-अफसर के साहिबजादे ने रौब के साथ दांत भींचे, "भैण के...तुझे चखाता हूं मजा।" अपने बाप वाले शब्दों को ही वह दोहराता चला गया। शामू बचाव के लिए कुछ देर तक पीछे-पीछे हटता गया तो वे दोनों पोखर तक पहुंच गए। रामेश्वर अब तक उसको दो-तीन थप्पड़ जड़ चुका था और हर बार "साला, बहन

का..." बोल रहा था।

"साला मत कहो !" शामू की गैरत को जैसे झिंझोड़ दिया गया हो।

"कहूंगा साले चूहड़े ! तेरी बहन की..."

"मैं तेरी बहन का खसम हूं!" शामू ने उसको उठाकर पोखर में पटक दिया, "बोल, हूं न मैं तेरी भैण का खसम?" वह चीख उठा और कुछ ही पलों में बस्ता उठाकर घर की ओर दौड़ पड़ा। वह उस दिन इतना तेज दौड़ा कि पसीने से उसकी कमीज भीग गई। जब कभी उसको इस घटना की याद आती है तो कीचड़ में लथपथ हुए रामेश्वर को याद कर उसकी अब भी हंसी निकल जाती है। उस दिन से उसका डर और आतंक खत्म हो गया था और उसके अंदर एक साहसी-दिलेर शामू ने जन्म ले लिया था या फिर उसका सोया पड़ा शामू जाग उठा था।

उसकी बातों में कितनी सचाई और कितनी मिलावट थी? मैंने कभी जानने की कोशिश ही नहीं की थी। मैं तो उसकी हर बात पर विशस करता आया था।

फिर उसने बताया था कि उसका बाप उसको स्कूल छोड़ने गया तो छह दिन गैर-हाजिर रहने के कारण उसका नाम काटा जा चुका था। अध्यापक ने उसे दाखिल करने से मना करते हुए कहा था, "यह पढ़ नहीं सकता। यह बेहद शरारती बच्चा है। एकदम खब्ती। इसका ध्यान तो हमेशा शरारतों की ओर ही लगा रहता है।" उसके बाप ने अध्यापक के सामने उसको बहुत मारा था। वह रोया नहीं था। आंसू जैसे उसकी आंखों में सूख गए थे। उसका बाप अध्यापक और मुख्य अध्यापक की मिन्नतें कर शामू को कक्षा में बिठाकर चला गया था। रामेश्वर उसके सामने आंख नहीं उठा रहा था। इसी बात की उसे तसल्ली थी।

घर लौटने पर बाप ने उसे बांहों में भरकर प्यार किया तो वह फफक पड़ा और उसकी आंखों में जैसे आंसुओं के बांध टूट गए। बाप ने उसे समझाया। वह समझ गया। बाप ने उसे सरस्वती देवी की सौगंध दिलाई, उसने खा ली और माथा टेक दिया। तेज धूप ने उसके नथुनों को छुआ। उसको पढ़ने की धुन सवार हो गई। उसका बाप आठवीं तक पढ़ा हुआ था, अतः उसे घर में पढ़ाने लगा। वह कुछ दिनों में ही एक होशियार विद्यार्थी बन गया। रामेश्वर का रौब अन्य विद्यार्थियों पर से भी उठ गया। उसकी हस्ती खत्म हो गई। शामू यह बताते हुए गर्दन अकड़ा लेता कि थानेदार की वर्दी से डरने वाला वह इतना दिलेर हो गया, उसे जीत के अहसास से इतनी हिम्मत और शक्ति मिली कि वह थानेदार के स्टार्स को बेखौफ होकर देखता रहता। "जीने के लिए किसी पार्टी की ओर देखने की जरूरत नहीं, जनाब ! खुद ही पार्टी बनना पड़ता है।" वह कहा करता था।

पांचवी कक्षा की उसने अभी परीक्षा भी न दी थी कि उसके बाप की दोनों बांहें प्रैस में आ गई। खून बहुत बह गया। उसे सुनी-सुनाई जानकारी ही अधिक थी कि अस्पताल

में उसके बाप को पूरा इलाज नहीं मिला था। डाक्टर पांच सौ रुपया मांगता था। कारखाने के मालिकों ने अंदर ही अंदर मिलकर उसे मर जाने दिया। यही नहीं, उन्होंने और भी गड़बड़ की। कारखाने के मालिक ने कहा कि उसने इस नाम के आदमी को अपने कारखाने में कभी रखा ही नहीं। उसके किसी भी रिकार्ड में इस नाम का आदमी दर्ज ही नहीं मिला। मुआवजा फिर किस बात का देना था? वास्तव में, उसका नाम किसी जाली रजिस्टर में दर्ज था जो इधर-उधर कर दिया गया था। कई दिन अस्पताल में पड़े रहने के बाद उसकी मृत्यु हो गई और...शामू याद कर कांप उठता। अब भी यदि याद आ जाए तो वह आंखें मूंदकर गुम हो जाया करता था और उसका मन करता, कारखाने के मालिक को रामेश्वर की तरह तालाब में डुबो-डुबोकर मारे।

..और फिर भागवंती, उसकी मां, अपने भाग्य को लुटाकर गरीबी का साक्षात उदाहरण बन गई।

"बाबूजी !" शामू ने अपनी दर्द-कहानी बताते हुए किस प्रकार करुणा पैदा कर दी थी, "यदि गरीबी की तस्वीर देखनी थी तो उस समय भागवंती का चेहरा देख लेते।" एक काव्यमयी विचार भी शायद उसने किसी पुस्तक में से याद कर लिया हो। उसने बताया था कि जब उसकी मां के सिर पर से चुन्नी उतर गई तो वह असल में डांवाडोल हो उठी थी। शामू से छोटी दो लड़कियों का भी उस पर बोझ था। मां ने उसको पढ़ाई से हटाकर 'सरदार होटल' के मालिक प्यारा सिंह के पास नौकर रखवा दिया। फूले हुए शरीर और ढीले लटकते पेट वाला प्यारा सिंह जिसे वह कभी भी भूल नहीं सकेगा, बहुत जालिम था।

शामू कोयलों की कालिख से काला हुआ, लपक-लपककर कभी उकडूं होकर और कभी बैठकर बर्तन मांजता रहता। अंगीठी तैयार करता। मद्धम पड़ने पर और कोयले डालता और नीचे मोरी के पास खड़-खड़ की आवाज करता पुराना पंखा रखता। बर्तन धोते समय कई बार बाप को याद कर वह रो पड़ता और कोहनियों को आंखों पर रगड़-रगड़कर वह आंखों के आगे छा गए आंसुओं के पर्दे में से देखने का प्रयत्न करता जैसे कहीं बर्तनों के ऊपर पड़े धब्बों में ही उसके मृतक बाप धनिए का प्रतिबिंब हो।

मालिक कहीं गया हुआ था। शामू ने दूसरे नौकरों से आंखें बचाकर गुलाब-जामुन खाने का मन बनाया ही था कि गल्ले के ऊपर पड़ी अठन्नी पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसे गुलाब-जामुन से अठन्नी की कीमत अधिक लगी। उसने वह अठन्नी उठाकर जेब में ठूंस ली और वह स्वयं को बड़ा धनवान समझने लगा। उसने कई बार जेब में रखे सिक्के को टटोला और छुप-छुपकर कई बार देखा भी। उसने इस सिक्के को फर्श पर बिछे अपने बिछावन के फटे हुए सन के भीतर छिपा दिया। रात को सोते समय या सोए-सोए उठकर भी उसने कई बार बेहद चाव के साथ उसे छूकर देखा। अब वह किसी ऐसी प्रतीक्षा में रहने लगा जबकि उसका इस तरह का और दाव लग जाए।

एक दिन, मालिक ने उसको किसी दूसरी दुकान से अपने पोते के लिए खिलौना लेने को भेजा। जिस समय दुकानदार अंदर से खिलौना लेने गया हुआ था, शामू ने आंख बचाकर कुछ गुब्बारे चुरा लिए थे। अब उसे बहुत अच्छा खेल मिल गया था। वह रात में अथवा कई बार अंदर छिपकर खीसे में से गुब्बारा निकालता और उसमें तब तक हवा भरता रहता और प्यारा सिंह के मोटे-लटकते पेट की ओर देखता रहता, जब तक कि उसकी 'ठां' न बोल जाती। इस प्रकार उसने सभी गुब्बारे फोड़-फोड़कर उन्हें अपने बिछावन के नीचे छिपा दिए। अब जब उसका मन करता वह फूटे हुए गुब्बारों की गोलियां बना-बनाकर फोड़ता रहता और 'सरदार होटल' के मालिक प्यारा सिंह की बड़ी-बड़ी आंखों की ओर देखता रहता।

यह बात उससे भुलाई नहीं गई कि प्यारा सिंह ने उसको बर्तन मांजने से हटाकर कोयला तोड़ने का हुक्म दे दिया था। कोयलों के ढेर पर वह मौज से टांगें पसारकर बैठा, हथौड़ी से कोयले तोड़ रहा था। तभी, उसका हाथ खीसे में गया। एक फटा हुआ गुब्बारा उसके हाथ में आ गया। उसने उसकी गोली बनाई और माथे पर रखकर फोड़ दी।

"ओए शामू के बच्चे !" प्यारा सिंह जो गुनगुना रहा था, एकाएक गरजा, "जल्दी कर, जल्दी। बर्तन तेरा बाप तो नहीं मांजेगा?"

"मेरा बाप तो नहीं मांजेगा, तेरा बाप मैं जरूर मांजूगा।" शामू ने दबे स्वर में कहा और बेपरवाह होकर गोलियां बना-बनाकर फोड़ता रहा।

"ओए शामू के बच्चे ! सुना नहीं साले!" प्यारा सिंह उसकी ओर झुका, "चालीस रुपए तो मां की..."

गाली सुनकर शामू पूरा का पूरा हिल गया, "गाली न दो, सरदार जी!"

"चल ओए ! साला चूहड़े का तुख्म (बीज) कैसा उछल रहा है !" प्यारा सिंह अपनी जगह बैठे-बैठे गरजा।

शामू ने अपने कुर्ते का पल्ला उठा दिया, "साला तू सरदारा!" 'तुख्म' शब्द उसके पल्ले न पड़ा मगर बदले की भावना इतनी प्रबल हो उठी कि वह कह उठा, "तू मेरा तुख्म।" शामू के ऊंचे-नीचे खुले दांत इतने बेढंगे रूप में बाहर निकल आए थे कि सांवला और भद्दा-सा चेहरा स्वाभिमान और गैरत का बिम्ब बन गया लगता था।

मालिक ने चिमटा फेंककर मारा जो शामू की कनपटी पर आकर लगा, "साला, मां का खसम !" शामू को पूरा सुनाई भी नहीं दिया था कि वह चक्कर खाकर जमीन पर गिर पड़ा। इसके पश्चात उसे अगर कुछ मालूम था तो बस इतना कि उसकी मां चोट वाली जगह पर टकोर कर रही थी।

सरदार ने भागवंती पर तीन सौ रुपए का केस कर दिया। जिस प्रकार उसकी मां को कमेटी के प्रधान के आगे गिड़गिड़ाना पड़ा और जिस प्रकार प्रधान की मध्यस्थता में

प्यारा सिंह के आगे मिन्नतें-खुशामदें करते हुए बार-बार उसे अपनी चुन्नी उसके पैरों में रखनी पड़ी, यह सब अपनी आंखों से देखकर शामू के बाल-मन पर छुरियां चलती रहीं।

यहां से नौकरी छूट जाने के बाद शामू ने बहुत कुछ बनना चाहा। सबसे पहले तो उसने प्यारा सिंह से बदला लेना चाहा, लेकिन इसके लिए उसको कोई हल या तरीका न सूझा। उसने चोर बनना चाहा और प्यारा सिंह के घर में सेंध लगाने का विचार उसके मस्तिष्क में उपजा। उसने जेबकतरा बनकर 'सरदार होटल' के मालिक की जेब काटनी चाही। उसने छोटे-मोटे हाथ मारे भी। लेकिन वह प्यारा सिंह को कोई भी नुकसान न पहुंचा सका। फिर भी, वह शहर में मशहूर हो गया। एक बार पकड़ा गया। अनुभव कम था। पहली बार में ही स्वीकार कर लिया। चढ़ावा चढ़ाने का अनुभव नहीं था।

उसने बताया कि कैसे एक सिपाही ने जंगलीपना दिखलाया था। उसने पूरी बात बेशक नहीं बताई थी, मगर उसके शब्दों से पुलिस के तथाकथित समाज-सुधारक रवैए के प्रति नफरत का प्रकटीकरण आवश्यक हो जाता था। सिपाही ने उसके साथ बेहद अभद्र और अमानवीय व्यवहार किया था। वह हैरान था कि पुलिस वाले इतनी गंदी करतूतें भी कर सकते हैं।

उसने पुलिस वालों से बदला लेने के लिए अनेक बड़े मैदान मारने चाहे किंतु उसके अंदर के शामू ने उसका साथ नहीं दिया और दूसरी तरफ, मां ने उसकी समय पर रहनुमाई की। कमेटी के प्रधान के पांवों में चुन्नी रखते देखकर शामू को एक बार मां पर तरस आया और उसकी आंखों से आंसू बह निकले। वह उसकी आज्ञा मानकर सौ रुपए महीना पर प्रधान की भैंस और मुर्गीखाने की देखरेख करने को राजी हो गया, लेकिन अवसर मिलते ही वह कई बार अपने पुराने साथियों से जा मिलता। अगर जेब में पैसे होते तो उन्हें वह जूए में हार जाता। कई बार वह शराब पीकर घर लौटा। मां लड़ती। एक दिन मां ने अंदर जाकर संदूक में टक्कर मारी और उसके बाप का नाम ले-लेकर विलाप करने लगी। लड़कियों ने चीख-पुकार शुरू कर दी और घर की शोकमयी हालत देखकर शामू पसीज गया, "अच्छा मां, यूं मत रो। मेरा दिल कमजोर होने लगता है। आज के बाद मैं कोई गलती करके घर नहीं आऊंगा।..." उसने रोती हुई मां को शांत करवाया। वचन दिया जो महीने भर बाद ऐसा टूटा कि फिर कभी न जोड़ा जा सका।

उन्हीं दिनों उसकी छोटी बहन बीमार हो गई। सिर में दर्द क्या हुआ कि किसी डाक्टर से भी इलाज न हो सका और आखिर, दूसरे दिन वह मर गई। शामू चिल्ला उठा। आंखों में मुक्के मारकर जोर-जोर से चीखने लगा।

छह महीने भी नहीं बीते थे कि उसकी दूसरी बहन भी आकस्मिक मृत्यु का शिकार हो गई थी। इस मृत्यु ने उसको सामाजिक अन्याय के विरुद्ध चेतन कर दिया। दूसरी बहन की अप्रत्याशित मौत अब भी एक तरह से रहस्य ही बनी हुई थी। उसकी लाश को लावारिस

कहकर किसी दूर के शायद फिरोजपुर के अस्पताल में फूंक दिया गया था। विभिन्न प्रकार की कहानियां सुनने में आई थीं। चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी यूनियन ने रैलियां कीं, जुलूस निकाले, धरने दिए, लेकिन इस बात का पता चल जाने के बाद भी कि कैसे और कौन-कौन-से प्रतिष्ठित और विश्वसनीय व्यक्ति उसकी मौत का कारण बने थे, कुछ न हुआ। पहले किसी दाई के पास, फिर खन्ना शहर के किसी प्राइवेट डाक्टर के पास और अंत में फिरोजपुर के ईसाई अस्पताल में उसे भर्ती करवाया गया। प्रतिष्ठित लोगों ने बड़े से बड़े अफसर के मुंह में हड्डी ठूंस दी और केस को रफा-दफा करवाकर बात को खत्म कर दिया।

बेसहारा मां की नसीहतों के आगे शामू के भीतरी मनुष्य ने एक बार फिर अपने विरोधी से हथियार फिंकवा दिए। चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी यूनियन के प्रधान और कमेटी के प्रधान के कहने में आकर ही उसने रोजगार कार्यालय में नाम लिखवा लिया। नाम निकला। पंजाब राज्य विद्युत बोर्ड के मलेर कोटला के उप-मंडल कार्यालय में कमेटी के प्रधान का बहनोई मित्तल साहब एस. डी. ओ. स्थानांतरित होकर आया था। उसने माली-कम-वाटरमैन के रिक्त स्थान पर शामू को रख लिया। भला हो कमेटी प्रधान और उसके बहनोई का जिन्होंने एक मां की आंतों को ठंडक पहुंचाई और उसकी उम्मीदों को फलीभूत किया।

यहां तक शामू की दास्तान मेरे लिए तो जिंदगी का एक अहम कांड थी। एक अध्याय! बेशक मैं भी उन अनेक व्यक्तियों में से ही था जो दूसरों की बहादुरी के कारनामों या ईमानदारी के गीत तो गा सकते हैं, पर स्वयं वैसा नहीं कर सकते। 'फलाना बहुत दिलेर है, अमुक आदमी बड़ा तगड़ा है, अमुक व्यक्ति बहुत ही सच्चा, पवित्र और नेकी का पुतला है।' आदि शब्दों की आवश्यकता कमजोर व्यक्तित्व के लोगों को ही पड़ती है जो दूसरों की प्रशंसाओं के पुल बांधकर झूठी तसल्ली प्राप्त करते हैं, मगर मुझे तो शामू के साथ सच्ची हमदर्दी थी।

शामू काम का सच्चा था। काम का प्रेमी ! वह एक-एक बूटे की छोटे बच्चों की तरह देखभाल करता। इस बात का ख्याल रखता कि कौन-से पौधे पर आज सुबह फूल खिलने वाला है और किस पर फूल खिल चुका है। उसको फूलों के विषय में कई कविताएं और लोक-गीत याद थे—भले ही उनका विषय सुगंध ही होता—ऐसी कविताएं और लोकगीत अकेले में अथवा अपने संगी-साथियों के साथ मौज में गाए जा सकते थे। कई कर्मचारी जिद्द पर उतर आते और पौधों की ओट में बैठकर उससे कविताएं और गीत सुनते। जब तक मित्तल साहब उस दफ्तर में रहे, शामू ने मन लगाकर नौकरी की और दो-तीन सालों में ही वह स्थायी हो गया।

एक रूखे आदमी के विनम्र पक्ष को समझने में क्या मैं इसीलिए सफल रहा था कि उपन्यासों में ऐसे ही पात्रों के साथ घटित दुखांत पढ़कर मेरा मन द्रवित हो उठता था। जब मैंने दसवीं की, उस समय आधी-आधी रात तक रोमांटिक उपन्यासों के

नायक-नायिकाओं के दुखांत और गुण-अवगुण वाले चरित्र पढ़कर मैं रोता रहता था। उस समय मुझे दुखांत उपन्यास ही अच्छे लगते थे जो पाठक को रुला दें। रोने में भी बड़ा आनंद हुआ करता था क्योंकि नायक के यथार्थ से एकमेक होकर उसका दुख अपना लगने लगता था। शाम लाल भी मुझे उन्हीं उपन्यासों का जीता-जागता पात्र लगता था। अब तो वे बातें जैसे करोड़ों-लाखों मील पीछे छूट गई थीं।

एस. डी. ओ. मित्तल साहब के तबादले के बाद कई बाबू या तो मुझसे जलने लगे या शामू की बुराई करने लगे। सबसे घृणास्पद बात यह थी कि वे शामू और मेरी पत्नी कौशल्या को लेकर बातें बनाने लगे। ये सब बातें हमारी पीठ पीछे होती थीं, मेरे होते हुए होती तो पता नहीं क्या परिणाम निकलता। एक बाबू ने जान-बूझकर उसे बाजार से आटा और सब्जी लाने के लिए कहा। शामू ने जवाब दे दिया। बाबू ने रौब गांठा तो शाम लाल अकड़ गया, "बाबूजी !" उसने अपने खुले, ऊंचे-नीचे और गंदे दांत दिखाते हुए कहा, "दफ्तर का काम हो तो सिर माथे, पर यह काम मेरी सर्विस-बुक में नहीं लिखा। और न ही एपाइंटमेंट आर्डर में ही लिखा हुआ है।"

"कौशल्या के पेटीकोट से बंधना तो बच्चू आर्डर या सर्विस बुक में लिखा है!" यह बात उसने मुझे पहले क्यों नहीं बताई? मैंने सोचा।

"बकवास बंद करो, बाबूजी !" उसने स्वयं ही बात ठप्प कर दी थी, "वह मेरी मां जैसी है।"

"फिर तो दूध भी चुसाती होगी!"

अब शाम लाल के लिए और अधिक सहन करना कठिन हो गया था। वह बाबू को मारने को दौड़ा था, लेकिन बीच-बचाव कर अन्य लोगों ने उसे ऐसा करने से रोक दिया।

इसके पश्चात, अन्य क्लर्क भी उससे खीझ गए और उसे तंग करने में उन्होंने कोई कसर न छोड़ी। उसके हर काम में गलती निकाल देते। अवसर मिलने पर नए आए बराड़ साहब से डांट पड़वा देते। उसके दफ्तर से संबंधित कामों में विघ्न डाला जाने लगा। वह हर रोज शिकायतें लेकर बैठ जाया करता। उसका इंक्रीमेंट लगवाने के लिए संबंधित क्लर्क से कहने में मुझे अपनी हतक महसूस होती। अवसर मिलने पर मैं उनका काम लटका देता। संबंधित क्लर्क ने उसके सी. पी. एफ. के हिसाब-किताब में गड़बड़ कर दी और उसे नंबर भी गलत दे दिया। इंक्रीमेंट लग चुकने के बाद उसके हिस्से का बकाया न निकलवाया गया और एक महीने का उसका पूरा वेतन टाईम-बार हो गया। ऐसी ही अनेक बातें थीं जो कांटे की तरह उसके सीने में चुभन पैदा करती थीं।

मैं देर से घर लौटा था। शाम लाल मेरे घर लौटने से पहले ही मेरे घर पहुंचा हुआ था। उसे ऐसी मुद्रा में खड़ा देखकर मेरे पैरों के नीचे की जमीन खिसक गई। विशेष-कर इस बात से कि कौशल्या उसके समीप खड़ी थी और शाम लाल का सिर उसके कंधे पर

झुका प्रतीत होता था। उनका एक-दूसरे के इतना निकट होना मेरे लिए बर्दाश्त करना कठिन हो गया। मेरे पास ऐसी स्थिति में से निकलने की कोई राह भी नहीं थी। जब मैंने दूसरी ओर से दृष्टि डाली तो देखा कि कौशल्या ने उसके कंधे पर हाथ रखा हुआ था और शाम लाल ने ऐन उसकी छाती के पास या शायद उससे ऊपर ही अपनी गर्दन झुका रखी थी। इस बारे में मैं ठीक से अंदाजा नहीं लगा सका। हां, इससे मेरा गुस्सा और अधिक भड़क उठा था। मेरे मस्तिष्क को एकाएक ही कुछ उल्टे-सीधे विचारों ने झटका दिया। साइकिल दीवार के साथ ही खड़ाकर मैं असमंजस और काहिली में उनके पास गया तो देखा, मेरी पत्नी शामू को सांत्वना दे रही थी। उसकी आंखें आंसुओं से भरी हुई थीं, दो धारें बराबर उसके गोल और गोरे गालों पर से होती हुई ठोड़ी पर आकर नीचे गिर रही थीं। जब मैंने शाम लाल की ओर देखा तो वह कौशल्या से भी अधिक पागलों की भांति रो रहा था। उसके दोनों कंधे हिचकियों के कारण हिलने लगे थे और छाती झटके की तरह कभी बाहर को उभरती, कभी अंदर धंसती थी। शायद वह मुझे वहां पाकर ही और जोर-जोर से रोने लगा था जैसे खीझने या घूरने के कारण रूठा हुआ वह कोई दो साल का बच्चा हो ! उसके चीख-चीखकर रोने के कारण उसका पूरा मुंह खुला हुआ था। मैल भरे दांतों में राल अटकी हुई थी।

"बेचारे की मां मर गई !" कौशल्या ने अपना चेहरा चुन्नी से साफ करते हुए कहा। होठों की सुर्खी पोंछे जाने के कारण कुछ जगह पर से फीकी पड़ गई थी। "कुछ भी नहीं रहा बेचारे गरीब का," मेरी पत्नी का गला भर आया, "जब भी आती थी, किसी काम को हाथ न लगाने देती। कहती—नहीं, बीबीजी ! आप कुक्की के पास बैठो। मैं करती हूं सारा काम! कभी कपड़े धो जाती, कभी बर्तन मांज जाती, पलों में ही अंगीठी और चूल्हे को मिट्टी का पोछा मार जाती। कितनी अच्छी थी ! बन सकता है उस जैसा कोई सच्चा! बेचारी दुखों में दिन पूरे कर गई।" कौशल्या ने गहरी सांस भरते हुए बात समाप्त की।

मैं पत्थर के बुत की भांति खड़े होकर सब कुछ सुनता रहा, "अच्छा !" मेरे अंदर से एक आह निकली, "ईश्वर को जो मंजूर, भाई! जो हो गया उसे तो अब सहना ही है, हंसकर या रोकर।" मैं उसे कंधे पर से थामकर कमरे के अंदर ले आया था, ''कुदरत के आगे भाई, किसका जोर है?'' मुझे ये शब्द याद नहीं करने पड़े, अब तो सब्र का घूंट ही भरना होगा, भाई मेरे !"

कौशल्या चाय दे गई। शाम लाल ने रोना बंद कर दिया था। वह पथराई आंखों से चाय की ओर देखता रहा। फूंकें मारता रहा। घूंट भरता रहा और मैं बराबर उसके काले और भद्दे हो उठे चेहरे की ओर देखता रहा। मेरे पूछने पर उसने बताया कि उसकी मां बीमार तो हुई ही नहीं थी। बस, रात को पहले पेट में दर्द हुआ और कुछ पलों में ही ठंडी हो गई। डाक्टर भी आ गया था, पर वह यह कहकर चला गया कि इसमें तो कुछ भी

नहीं। यह सब बताते हुए वह फिर रोने लगा।

"बस भाई, शाम लाल, बस।" मैंने ढाढस बंधाया।

इसके बाद वह बारह दिन की छुट्टी चला गया। उसने किसी और के साथ बात भी नहीं की। बस, साहब को ही छुट्टी का कारण बताया। फिर किसी और को बताने का अर्थ था—झूठी और ऊपरी हमदर्दी की उम्मीद करना।

मैं और कौशल्या उसकी मां की क्रिया पर गए और सौ रुपया उसकी मदद के लिए भी दिया।

"शाम लाल, सुनो भाई !" मैंने उसके कंधे पर हाथ रखकर चलते समय कहा था, ''अब अपने मन पर अधिक बोझ न डालना। जो होना था, हो गया। उसको तो मिटाया नहीं जा सकता।'' वह बुत बनकर खड़ा रहा था, "सत्य है जी !" उसने पूरा जोर लगाकर सिर्फ एक बार ही मुंह खोला था।

"अच्छा... ।" मैंने कहा था तो उसने सिर झुकाकर दोनों हाथ जोड़ दिए थे। वह शायद इस बात की ही उम्मीद किए बैठा था कि कौशल्या उसकी पीठ पर हाथ रखेगी। जब कौशल्या ने ऐसा किया तो वह उसके कंधे की ओर सिर झुकाकर ऊंचा-ऊंचा रो पड़ा।

"हौसला रखो भई, रोने से तो कुछ नहीं बनेगा। बता, आता है कुछ पल्ले? अगर आना होता तो बारह दिन रोकर देख लिया, बता फिर कौन-सा लौटकर आई मां?" कौशल्या ने साड़ी के पल्लू से आंखें पोंछी, "बता, अब कौन-सा हांक लगा लेनी है उसने?" कौशल्या उसकी पीठ पर हाथ फेरती रही।

मैं कई बार सोचा करता था कि अक्खड़, अनाड़ी, झगड़ालू और हरेक के सामने दीवार की भांति खड़ा हो जाने वाला शामू कितना नरम दिल भी था। असल में, वह सच्ची हमदर्दी का भूखा था जो मोल में भी नहीं मिलती थी।

मेरी वहां से बदली हो गई। उसके बाद मेरी तरक्की हो गई और मुझे सहायक सुपरिंटेंडेंट की कुर्सी मिल गई। कुछ दिनों बाद मुझे बस इतना ही पता लग सका कि उसकी बदली शासकीय आधार पर कहीं दूर हो गई है।

आज, अचानक उससे मिलकर उसका जीवन मेरी यादों में बहुत तेजी के साथ विचरण कर रहा था। चाय वाले ने फिर कॉफी बनानी आरंभ कर दी। भट्टी बैठ गई थी और वह उसमें कोयले डालकर गत्ते से हवा कर उसकी आग को तेज कर रहा था और मैं सोच रहा था कि शामू का जीवन वास्तविक व्यथा न होकर किसी उपन्यास या फिल्म की कहानी होगी। अछूत समझे जाने वाले लोगों में इतना स्वाभिमानी व्यक्ति कैसे पैदा हो गया? मेरे पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था।

कैंटीन का नौकर अन्य ग्राहकों को चाय दे गया और पहले जूठे पड़े बर्तन उठाकर ले गया। हमारी ओर जैसे उसका ध्यान ही नहीं था। मुझे उस पर गुस्सा आता रहा, मैंने

ऊंची आवाज में कहा, "ओ भाई ! हमने दो कप चाय कही थी।" मेरी आवाज सुनकर भट्टी के मालिक ने एकाएक पीछे की ओर देखा, "कितने, दो कप?" उसने उल्टा पूछा और कहा, "अभी आती है।"

"चार समोसे भी भेज देना गर्म-गर्म। कितनी देर हो गई बैठे-बैठे!" भट्टी वाले ने पीछे की ओर देखे बिना कहा, "अच्छा साहब।"

"क्या शादी-वादी हो गई थी?" मैंने न मालूम कैसे यह प्रश्न पूछ लिया, वह भी अपनी मातृभाषा छोड़कर। इस प्रश्न के तुरंत बाद ही तेजी से मेरे दिमाग में इसका उत्तर भी खुद-ब-खुद घूम गया—और क्या अब तक कुआंरा ही होगा?

"हां साहब ! तीन बच्चे भी हैं, आपकी कृपा से।"

उसका उत्तर सुनकर मुझे शरारत सूझी कि कह दूं कि मैं तो उसके घर कभी गया ही नहीं, फिर मेरी कृपा कैसे हो गई !

"कृपा तो ईश्वर की है भाई, इंसान कौन होता है?"

"ईश्वर !" भावुकतावश शामू का चेहरा और अधिक कस गया। वह अचानक ऐसे बुदबुदाया कि मुझे लगा, वह मुझे ही घूंसा दे मारेगा। वह सीधे तनकर बैठ गया, "कहां है वह?" वह बोलता रहा, "न जाने वह किस गुफा में मुंह छिपाए बैठा है? यह तो यूं ही लोगों ने कल्पना कर रखी है। रब तो आप हैं, मैं हूं, ये तमाम लोग हैं, अगर ये मनुष्य को समझें तो !" मैं और अधिक हैरान हो उठा कि सुबह-शाम भगवान की पूजा करने वाला शामू कैसे नास्तिक लोगों के हाथ चढ़ गया! वह क्यों अनीश्वरवादी हो गया? 'मनुख' के स्थान पर 'मनुष्य' शब्द का उच्चारण यह भ्रम भी पैदा करता था कि उसको कोई ऋषि-मुनि मिल गया होगा।

"देखा है किसी ने रब?" वह और भावुक हो उठा, "यह तो प्यार का नाम है, साहब, जिसका एक ही आकार है। असल में, जिसका कोई रंग-रूप, आकार नहीं, जिसको किसी घेरे में नहीं बांधा जा सकता, जो सर्वव्यापी है। पर यहां पर रब का नाम तो है, प्यार का नाम नहीं।" मैं शाम लाल की ऐसी बातों से डर गया और मेरी हार्दिक इच्छा हुई कि वह ऐसी बातें बंद कर दे जो जीवन में कहीं काम नहीं आतीं।

"ठगों, बदमाशों, चोरों और रिश्वतखोरों को रब की जरूरत है, पर मनुष्यता के हितैषियों को प्यार की आवश्कयता है।" उसके इन शब्दों से मुझे अपने नीचे वाली कुर्सी उलटती प्रतीत हुई। मैंने जान-बूझकर ही उसकी बातों में दिलचस्पी लेना बंद कर दिया।

"मां जी का क्या हाल है?" उसने स्वयं ही बातों का रुख बदल दिया।

"कौन मां जी? मेरी मां जी?"

"नहीं, नहीं।" उसने अंगूठे के साथ वाली अंगुली उठाई, "मैं कौशल्या देवी के लिए कह रहा हूं।"

"उसको मां कब से कहने लगी था?"

"जिस दिन मेरी मां मर गई थी, तब से।"

"अच्छा, अच्छा ! बहुत अच्छा है।" मुझे खास किस्म की तसल्ली और कौशल्या के नारीपन पर गर्व हुआ कि वह सचमुच ही पवित्रता की देवी है।

"तूने मुझे एक बार भी याद क्यों नहीं किया, शाम लाल?"

"मेरा हौसला बुलंद रहा, साहब ! अगर आदमी यूं ही किसी की मदद लेने की सोच ले तो उसका इरादा कमजोर पड़ जाता है।"

मुझे उसकी मूर्खता पर हैरानी हुई कि उसको अपना दर्द किसी के संग तो साझा करना ही चाहिए था। यहां तो आदमी की वह जात रहती है जो दूसरे के दुख-दर्द में तो भले ही सहायक हो, पर अपनी अंगुली में मामूली कांटा भी लगे तो अंगुली को हवा में लहराती फिरेगी कि उसकी अंगुली में जो कांटा चुभा है वह कोई साधारण कांटा नहीं। न जाने इस पर किसी भयानक विषधर नाग ने ही अपना जहर उगल दिया हो ! पर यह शामू किस मिट्टी का बना हुआ था? अब तो जीवन की हर चाल ही बदल रही है। अनेक दलबंदियां भी हैं। उसकी जगह पर मैं होता तो किसी दल का जनरल सेक्रेटरी होता।

उसने बताया कि जो क्लर्क मेरी जगह पर आया था, घर का काम करने से जवाब देने के कारण बहुत ही तंग और परेशान करने लगा था। नए साहब के कान भरकर उसने उसकी पोस्ट माली-कम-वाटरमैन से बदलकर स्वीपर-कम-चौकीदार करवा दी।

"मैं अड़ गया, साहब !" उसने बताया,"देखो न, जनाब, जो पहले आर्डरों पर लिखा हुआ है और जिसकी ऐंट्री सर्विसबुक में हो रखी है, असल पोस्ट तो मेरी वही हुई। मैंने कहा,'मैं तो कानून का पालन करूंगा'।"

उसकी अगली बात ने तो मुझे छीलकर रख दिया जब मैंने सुना कि उस चमचे ने बराड़ साहब के कान भर दिए थे और कहा था कि शाम लाल मेरे घर का सारा काम इसलिए करता था क्योंकि उसके कौशल्या के साथ नाजायज संबंध थे।

"और मैं अपनी मां के बारे में ऐसा कैसे सुन सकता था?" शामू गुस्से में आ गया और उसकी आंखें छलक उठीं जिन्हें उसने भींचकर बंद कर लिया।

मेरा ध्यान उसकी बातों से उखड़ गया था। मैं सोच रहा था कि मैं कल ही मलेरकोटला जाऊं और उस एस. डी. ओ. के बच्चे और साथ ही उसके दल्लों को गिरेबान से पकड़कर पूछूं कि उन्हें क्या तकलीफ है? मैं पंद्रह-सोलह वर्ष पुरानी घटनाओं की लड़ियां जोड़ता रहा। मैं उस समय अपने आप में लौटा जब शाम लाल बता रहा था कि उसने चुगलखोर क्लर्क के सामने कुर्ता उठा दिया था, "ले पकड़ ले मेरा साले ! तेरी भैण..." शामू तक विशेष अंदाज में बोल रहा था।

उसकी गोपनीय रिपोर्ट खराब कर दी गई। उसकी जवाब-तलबियों को लेकर क्लर्कों ने उसको जमकर तंग किया। भीतर ही भीतर वे इससे घर का काम करवाना चाहते थे।

शासकीय आदेश पर उसकी बदली हो गई। उसकी गोपनीय रिपोर्ट जिसमें उसको खब्ती, झगड़ालू और आदेश की अवज्ञा करने वाला, अव्यवहारी आदि बताया गया था, ज़ो कि नए अफसर के लिए उसको दूर ही रखने तथा तंग किए जाने के लिए काफी था। कभी चेतावनी, कभी छटनी का डर और कभी तरक्की बंद करने की सजाओं से उसको नवाजा गया। जितनी बार भी ऊपर उसने लिखा-पढ़ी की, संबंधित अर्जी उसके संबंधित अफसर के पास पहुंच जाती जिसके बदले में उचित माध्यम से अर्जी न भिजवाने के कारण उससे जवाब-तलबी और हो जाती।

"एस. डी. ओ. के साथ क्या हो गया था?" मेरा ध्यान उखड़ गया था जिस कारण मुझे पूरी बात समझ में नहीं आई थी कि वह उससे कैसे उलझ पड़ा था। अफसर ने उसे 'साला चूहड़ा' कह दिया था। इसीलिए उसने उसे पुनः बतलाने के लिए कहा–

"मेरे तो कोई बहन नहीं, साहब ! मुझे साला न कहो। मैं साला नहीं बनाना चाहता हूं। मेरी इस गुस्ताखी पर एस. डी. ओ. बराड़ ने मुझे एक के बाद एक दो-तीन थप्पड़ जड़ दिए। मैं भी कौन-सी चूड़ियां पहन रखी थीं, एक ही जोरदार घूंसे से अकड़बाज के दांतों में से खून निकाल दिया। साला कोई भी हिमायती न बना। कोई भी सीटों पर से नहीं उठा। बोलती बंद कर दी बड़े अफसर की।" शामू अभी भी मुट्ठी भींचे हुए था, "मार-मारकर चांदी बना दी साले बहनचो...."

दूसरे दिन ड्यूटी आफ होने के बाद एस. डी. ओ. ने लड़कों को शराब पिलाकर उस पर हमला करवा दिया। उसी झड़प में उसके दांत उखड़ गए थे। "यह कोई बहादुरी तो न हुई, साहब !" शाम लाल साथ-साथ अपनी प्रशंसा स्वयं ही किए जा रहा था।

"तूने मुझे क्यों न याद किया?" मैं उसके सामने बैठा हुआ गर्व कर रहा था तथा स्वयं को किसी दैवी-शक्ति का मालिक अनुभव कर रहा था, "मैं देखता उस उल्लू के पट्ठे को।"

"उससे क्या होना था, साहब? देख तो मैंने ही लिया था उसको। बेशक इसकी कीमत मुझे बहुत देनी पड़ी–यह तो देनी ही पड़ती है। नहीं?" शामू ने एक पैर बेंच पर रख लिया। इससे उसके पास बैठने में मुझे कुछ हतक-सी महसूस हुई कि देखने वाले पता नहीं क्या सोचेंगे कि असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट बाबू पुरुषोत्तम लाल के कैसे चुगद किस्म के लोगों से संबंध हैं। शामू ने आगे बताया कि उस रात वह स्वयं शराब पीकर एस. डी. ओ. की कोठी के सामने जाकर चिल्लाया, "निकल बड़े सूरमे !...तेरा बहनोई खड़ा है बाहर !...ये रख छुहारा इसके हाथ पर।" और जो बड़ा साहब बना फिरता था, बाहर न निकला।

आजकल वह जमानत पर आया हुआ था।

"मैं अपना रास्ता बदलने के लिए कभी भी तैयार नहीं, साहब ! आपके सामने तो मैं एक अदना इंसान हूं, एकदम मामूली आदमी।"

"तेरे बीवी-बच्चे?" मैंने उससे पूछा।

उसने बताया कि वह बहुत दयनीय हालत में रह रहे थे। उसकी पत्नी गोबिंदगढ़ अपने ही घर में रहती थी और उसके पास बड़े घरों का काम था। मैंने कल्पना की कि वह साइकिल के मडगार्ड का कड़छा-सा बनाकर कंधे पर गंदगी वाला मक्खियों से भरा पीपा उठाए, घर-घर घूमती होगी और फिर कमेटी वालों की दी गई दो पहियों वाली रेहड़ी जिस पर 'म्युनिसिपल कमेटी, गोबिंदगढ़' लिखा होगा, को दोनों हाथों से धकेलते हुए सड़क पर लगे गंदगी के ढेर के ऊपर उलट आती होगी और दोपहर के समय पूरा चेहरा घूंघट से ढककर सिर पर छाबा रखकर घूमते हुए रोटियां मांगती होगी। गरम समोसे की बुरकी चम्मच से मुंह में डालते हुए मुझे कुछ घृणा-सी हुई—साली, क्या जिदंगी है इंसान की, इस समाज में? ये भी तो इंसान ही हैं...।' मैंने मन ही मन में कहा।

"देख भाई, शाम लाल," मैंने बाबुओं वाली भाषा में कहा, "आखिर तू एक गरीब आदमी था...तुझे अपनी बीवी-बच्चों का तो ख्याल रखना ही चाहिए था।" मुझे इस बात का तो ध्यान ही नहीं रहा था कि मेरी सच्चे दिल से की गई हमदर्दी के अर्थ शामू के लिए उस गाली से भी बढ़कर थे जिन्हें वह गुलामी का प्रतीक कहा करता था। वह एकदम से मेरी ओर गुस्से में देखने लगा।

"साहब ! आप भी वैसा ही सोचते हैं?" वह एकाएक जज्बाती हो उठा। शायद वह नहीं जानता था कि मैं आजकल बहुत समझदारी से काम लेने लगा था। शामू को मेरी यह सचाई भी अच्छी नहीं लगने वाली थी कि मेरे वाले असूल आजकल हमारे आचार-व्यवहार का अंग हैं। अफसर लोग मुझसे खुश थे। वे मुझे सयाना, ईमानदार, समझदार और नेक आचरण वाला समझते थे। शामू इस मामले में बहुत पिछड़ गया था। जमाने की दौड़ में वह बहुत पीछे रह गया था। यह मेरी ही नहीं, हमारे समूचे बाबू वर्ग की सोच थी।

मैं उसकी दृष्टि का सामना न कर सका। "ठीक है, संघर्ष भी इंसानी जीवन का कर्त्तव्य है।'' और मैंने घिसा-पिटा आख्यान दे डाला, ''सयाने ठीक ही कहते हैं, संघर्ष ही जिंदगी का दूसरा नाम है।'' शाम लाल व्यंग्य के अंदाज में मुस्कुराया। शायद वह मुझे दोगली नसल का घोड़ा समझता हो, ''ठीक है, संघर्ष भी जीवन होता है।" मैंने दुविधा में पड़े व्यक्ति की भांति दोहरा दिया।

"नहीं, संघर्ष ही जीवन होता है।" उसने जोर देकर कहा, "मुझे समझाने वाले बहुत थे। कोई कहता था कि मैं साहब से माफी मांग लूं, पर माफी शब्द तो मैंने जिंदगी में सीखा ही नहीं। माफी मांगने से तो आधी मौत हो जाती है आदमी की।'' बोलते-बोलते उसे जोरदार खांसी उठी। उसकी आंखों और गर्दन की नसें उभर आईं। "बाप रे...!" कहकर वह खांसते-खांसते बाहर चला गया। मेरा जी मिचला उठा क्योंकि उसके बाहर चले जाने के बाद भी उसके खांसते स्वरूप की तस्वीर और छोटे-छोटे काले-पीले दांत मेरी आंखों के

आगे से हट नहीं रहे थे। उसका कुरूप चेहरा ज्यों का त्यों दिखाई दे रहा था।

खांसी थमने के बाद वह फिर कुर्सी पर आ बैठा। मैंने सोचा, आदमी सचमुच ही आदमी है। खा-पीकर कचरे का ढेर बढ़ाने वाले तो बहुत हैं पर जमाने में आदमी कम हैं।

उसने बीड़ी का बंडल निकाला और एक बीड़ी सुलगा ली, "बाऊजी !" वह साहब से बाऊजी पर आ गया, "मैं तो एक अदना इंसान हूं, आप जैसे लोगों के पैरों की तो मैं धूल भी नहीं।" मुझे कुछ हीनता का बोध हुआ और मैंने स्वयं को उसके सम्मुख सिकुड़ता हुआ-सा महसूस किया। ''नहीं, ऐसी क्या बात है?'' मैं उसकी बात के मध्य केवल इतना ही बोल पाया था। मेरी यह बात उसके अगले शब्दों के बीच दबकर रह गई थी, "आखिर, मेरी भी तो कोई इज्जत है।"

इसके बाद उसने बीड़ी को बुझने ही नहीं दिया। एक के बाद एक सुलगाता रहा। मेरे आसपास तंबाकू के धुएं की कड़वी गंध फैल गई थी।

"बस, इंसाफ मिलता है, पैसे वालों को। मेरे जैसे अदने इंसान को कौन पूछता है? पुलिस वालों ने भी अफसर की सुनी। एफ. आई. आर. ठोककर लिखी गई। वह अफसर था, उसकी सुनी गई। मुझे किसी ने शरीफ आदमी नहीं माना बल्कि कहो, आदमी ही नहीं माना। यह सब मेरी नीची जाति के कारण ही हुआ। यदि मेरे पास पैसा होता, फिर बात इससे उलट कर न दिखलाता।" अब उसके ऊपर गुंडागर्दी का केस चल रहा था।

मैं सोच रहा था कि अगर वह केस हार गया तो वह अवश्य ही नौकरी से हाथ धो बैठेगा। फिर उसका जीवन कैसे चलेगा? जबकि मनुष्य का जीवन दिन-प्रतिदिन तंग और दमघोंटू होता जा रहा है।

"तू यह सब किसके लिए कर रहा है, मेरे मित्र?" मुझे उस पर रह-रहकर तरस आ रहा था, "तू जमाने की ओर भी देख। सयाने कहते हैं, जैसी हवा बहती हो, वैसी ही ओट कर लेनी चाहिए। तू भी ढाल ले स्वयं को। एक बार गया वक्त लौटकर हाथ नहीं आता।" जिंदगी के कटु अनुभव ने मुझे यही शिक्षा दी थी जिसे मैं अब अपने स्नेही को दे सकता था।

लेकिन, शाम लाल को तो मेरी बात बुरी लगी थी।

"बाऊजी !" तुनक उठा था वह, "यह शाम लाल चूहड़े का बेटा है, चूहड़े का। हां, यह बीच से तो टूट जाएगा, पर किसी के आगे झुकेगा नहीं।" उसके इतने ठोस शब्द सुनकर मैं चुप हो गया। कुछ देर वह भी चुप रहा। उसके चेहरे से लगता था कि वह मुझे पसंद नहीं कर रहा था और उठकर चले जाना चाहता था।

"साहब, कैसा आदमी है?" उसने मेरी ओर सरसरी नजर से देखा। उसकी दृष्टि में कोई अपनत्व नाम की चीज नहीं थी, फिर भी उसके द्वंद्व को समझने का प्रयत्न किया कि वह न चाहते हुए भी मेरी मदद चाहता था। अगर मैं साहब पर जोर डालता तो वह

मना नहीं करता। पर जब साहब को या बाकी बाबुओं को पता चलता कि मेरे कैसे व्यक्ति के संग संबंध हैं तो मेरा शायद प्रभाव ही खत्म हो जाए। मैंने बीच में फंसना उचित नहीं समझा, अतः कह दिया, "बस जी, ठीक ही है। यहां तो बस भगवान का नाम ही है।"

"आप मेरी कोई मदद नहीं कर सकते?" शाम लाल का चेहरा बिलकुल भी मदद मांगने वाला नहीं था जबकि उसके काले चेहरे पर तो पूरी तसल्ली और गंभीरता छाई हुई थी। और उसके काले होंठों पर एक व्यंग्यमयी मुस्कुराहट थी, "इस अदने इंसान की कुछ मदद करो।"

"वैसे तो मैं हाजिर हूं, पर साहब से मेरी बनती नहीं।"

मेरे इन शब्दों को सुनकर उसने तेजी से सिर ऊपर उठाया और मेरी आंखों में गहरे उतरना चाहा, पर मैंने उसके सामने गर्दन झुका ली, "तेरी तरह मित्र, हम भी अपने नाखून जितना नुक्स नहीं निकलने देते। तू खुद ही समझदार है। अपने जैसे लोगों के लिए इस राज में क्या पड़ा है?"

"एक मोटे-से बाबूजी तो कहते थे, साहब आपकी बात काट नहीं सकता, अगर आप सिफारिश करो तो...। वह तो बताता था कि साहब से आपके अच्छे संबंध हैं।" इस बात का भी मुझे पता चल गया था और याद आ गया था कि यह मुझसे मिलने से पहले वह मोटे क्लर्क घनश्याम से ही मिला था और यह उसी की शरारत थी जिसने उसको मेरी जानकारी दी थी।

"नहीं ! नहीं !" मैंने अंगूठे के साथ वाली अंगुली हवा में लहराई, "अगर साहब को यह भी मालूम हो गया कि तू मुझे जानता है तो वह तुझे बिलकुल ही ज्वाइन नहीं करने देगा। एक पिटारी में वह दो सांप कैसे रखेगा? तू ही बता।"

शाम लाल बीड़ी पर बीड़ी खींचे जा रहा था। उसकी आंखों में लाल रंग के डोरे और भी अधिक गहरे हो गए थे और मैं वहां से उठने से पहले दयनीय स्थिति में फंस गया था।

'क्यों टाल दिया बेचारे को ! मुझे कौन-सा बोझ पड़ना था?' शाम लाल कैंटीन वाले को पैसे दे रहा था और मैं सोच रहा था कि शाम लाल अदना इंसान नहीं, अदना इंसान तो मैं हूं, सारी क्लर्क बिरादरी और अफसरशाही है।

"शामू भाई, पैसे देना मेरा फर्ज है।" मैंने जल्दी से पैसे देने की खातिर उसका कंधा पकड़ लिया।

"नहीं, बाबू जी! आज मैं आपका नमक नहीं खाऊंगा।"

सुनते ही मुझे अपने पैरों के नीचे से जमीन खिसकती प्रतीत हुई !

धौल-धरम

नवतेज पुआधी

"बई ओए लक्क पतला ना जाणी, रात..."

और नशे में धुत्त काबल बांह ऊपर उठाकर नर्तक की भांति घूम गया। वह गांव के चौक में पीपल के पेड़ के नीचे फैला हुआ खड़ा था। नशे में डूबी उसकी आवाज सुनकर साथ वाले घर से अक्की मां बाहर आ गई।

"बेटा, अक्ल कर...जा, अपने घर जाकर सो जा, ऊधम नहीं मचाते। बात बढ़ जाएगी।" माई ने काबल को समझाया।

"बुढ़िया, कौन हमारा बाल टेढ़ा करने वाला है आज के दिन? टुकड़े करके न रख दूं उसके?...कौन हमारी परछाईं की ओर देखने वाला है? जाकर माल संभाल अपना, रस्सा तुड़वाता फिरता है।" काबल तो 'नगौरी' बना खड़ा था। माई मन मसोस कर रह गई।

"इस नाजायज औलाद को रोकने वाला आज कोई नहीं। बेटा, तू ही अगर आज 'बाहर' होता तो हमारे घर के सामने आवाजें कसने की इसकी क्या मजाल थी!" और माई डाके में 'अंदर' हुए बेटे को याद करती हुई अंदर चली गई और भीतर से कुंडा लगा लिया।

सूरज साधुओं के डेरे के पीछे छिप गया था। कच्चे घरों में दीए जल उठे थे। एक-आध अजनबी व्यक्ति गांव में आ-जा रहे थे रिश्तेदारी में।

"अरे, है किसी की मजाल इस शेर को बांधने की...टुकड़े करके रख दूंगा, कहे देता हूं...आग लगा दूंगा सारे गांव को..." इकट्ठा हुए और उसकी ओर देख रहे लोगों की ओर काबल भूखे शेर की तरह घूरने लगा। सभी लोग वहां से आहिस्ता-आहिस्ता खिसकने लगे।

आवारा हुआ काबल बड़े बदमाशों की गिनती में आने लगा था। हर आदमी उससे भय खाता था। जब तक अक्की का बेटा जगता जेल नहीं गया था, काबल ने सिर नहीं उठाया था। काबल जगते की परछाईं से भी डरता था। जगता माना हुआ डकैत था और अब वह एक डकैती में सात साल के लिए अंदर था, इसलिए काबल का हौआ मच गया था। बल्कि अब तो काबल का यह हाल था कि जब कभी आसपास कोई वारदात हो जाती, काबल सबसे पहले थाने में होता। कितने सच्चे-झूठे मुकदमे उस पर बने, मगर वह सब

मुकदमों से बरी हो गया था जिससे अब उसका हौसला दुगना हो गया था।

चढ़ती उम्र, सफेद चादर, तुर्रेदार पगड़ी और पांव में नरी[1] की 'चीं-चीं' करती जूती पहनकर जब वह घर से निकलता तो देखने वाला हर आदमी मन ही मन कह उठता—

"केले जैसे काबल ने किन ऐबों में पड़कर अपनी ख्याति खराब कर ली।"

काबल अपनी परछाईं को देखता सावन की बदली की तरह गांव में से निकल जाता और बहुत रात गए कहीं गांव में घुसता। वह गांव में किसी के साथ नहीं बोलता था। लेकिन, पांच-सात दिनों से उसको पता नहीं कैसा जुनून चढ़ गया था कि सारे गांव में आफत ला दी थी। वह रोज शराबी होकर गांव में आता और बीच वाले चौक में खड़ा होकर गालियां निकालता। गांव वाले उसकी बदमाशी से डरकर चुप थे। कोई उसके पास नहीं फटकता था। सरपंच भी मरा हुआ-सा था। 'बापू बिशन सिंह' के नाक में दम हुआ पड़ा था। बापू बिशन सिंह, जिसको सारा गांव 'बापू जी' 'बापू जी' कहते हुए नहीं थकता था, उनका अपना लड़का गांव का जीना दूभर किए था। हर व्यक्ति 'बापू जी' को नमस्ते करता। 'बापू जी' मन से दुखी थे।

एक दिन तो सुना, 'बापू जी' कृपाण निकाल लाए थे मगर काबल की मां ने चुन्नी 'बापू जी' के पैरों में रख दी थी।

"मैं कहती हूं, काबल के बापू, अब की बार बख्श दे मेरे बेटे को।"

और बापू जी कृपाण को किल्ली से टांगकर गुरुद्वारे चले गए थे।

दूसरे दिन, बापू जी को किसी ने बताया कि सरपंच नारायण सिंह ने किसी डकैती में काबल का झूठा नाम लिखवा दिया था जिसकी वजह से काबल का पुलिस ने कई दिन रिमांड ले रखा था। जब असली लोग पकड़े गए तब कहीं जाकर काबल का छुटकारा हुआ था। उसी दिन से काबल 'नगौरी मान' की तरह गुस्से में भरा घूमता था। बापू जी यह सोचकर नरम पड़े रहे कि लड़का कहीं सामने न खड़ा हो जाए, मगर फिर भी बापू जी को काबल का यह रवैया अच्छा नहीं लगा था। अपने ही गांव में अपनी मां-बहनों के सामने शराबी काबल चादर उठा दे, बापू जी कैसे सहन कर सकते थे?

जब दो-तीन दिन बाद बापू जी ने काबल को घूरा तो सच में ही काबल बापू जी के आगे बोल उठा, मगर बापू जी को दो-तीन समझदार लोग घेरकर घर ले गए। बापू जी ने एक कड़वा घूंट अंदर निगल लिया।

सरपंच तो छिपा घूमता था। गांव के लोगों ने भी यह कहकर सरंपच को लज्जित किया था कि उसको डकैती में काबल का झूठा नाम नहीं लिखवाना चाहिए था। कइयों के आगे तो सरपंच ने शर्मिंदगी भी प्रकट की। सरपंच ने एक-दो लोगों को बीच में लेकर सुलह की भी बात चलाई थी, लेकिन काबल तो बदले पर उतारू था। शर्मिंदा होने के कारण

1. बकरे की रंगी हुई खाल।

सरपंच बापू जी के पास वैसे ही नहीं जाता था।

"ओए सरपंच, तेरी..." और काबल ने गाली निकाल दी।

'बापू जी' गुरुद्वारे में रहिरास[1] का पाठ कर रहे थे। किसी ने उनको बता दिया था कि काबल शराबी हुआ चौक में खड़े होकर लोगों को गालियां दे रहा है। बापू जी का चेहरा क्रोध में लाल हो उठा। वह 'बाबे की ताबेदारी' से उठे और सीधे पशुओं के कोठे में जा घुसे। इधर-उधर हाथ मारा। एक लाठी उनके हाथ लग गई। लाठी को अपने बूढ़े हाथों में दबाकर वह सीधे चौक की ओर हो लिए।

"किधर जी?" रास्ते में ही गुरुद्वारे में माथा टेकने जा रही काबल की मां मिल गई। उसे कुछ मालूम नहीं था।

"कहीं नहीं।"

आज बापू जी चौक में पहुंचे तो शराबी काबल सरपंच की बहन-बेटी एक कर रहा था।

"मैं तेरे कंधे तोड़ता हूं पहले..." छूटते ही बापू जी ने दो-तीन लाठियां काबल के कंधों पर जड़ दीं। काबल अवाक् रह गया। काबल के होश में आने से पहले ही बापू जी ने काबल को लिटा दिया था। कोई व्यक्ति बापू जी को पकड़कर घर की ओर ले गया। काबल मालूम नहीं कब तक वहीं पड़ा रहा। मां को जब पता चला तो वह चौक की ओर दौड़ी ही थी कि बापू जी की धमकी ने उसके पैरों को वहीं रोक दिया और वह छाती पकड़कर वहीं बैठ गई।

"खबरदार! अगर उस दुष्ट के पास गई। मुझे उसकी सूरत नहीं देखनी।" बाबे की बानी पढ़ने वाले के शब्दों में आज कितना कहर था।

कई दिन बाद बापू जी को किसी ने बताया कि काबल तो कुराली जाकर भर्ती हो गया है। जब मां को मालूम हुआ तो वह छाती पकड़कर बैठ गई, "तुम भी लोगों के कहने में आकर काबल के पीछे पड़े रहे। अब तो छांती ठंडी हो गई होगी?"

"सतनाम बोल," बापू जी ने अपनी पीड़ा को छिपाते हुए कहा और आंखें साफ करते हुए खेतों की ओर निकल गए।

काबल के बिना जैसे गांव सुनसान हो गया था।

संतू बनिए की बेटी कभी-कभी मां का दुख साझा कर जाती। वह भी अंदर से बेचैन हो उठी थी।

दिन बीते, महीने हो गए मगर काबल का कोई सुख-संदेश नहीं आया था। कई साल बाद छुट्टी पर आए किसी फौजी ने बताया कि काबल पश्चिमी सरहद पर देश की रक्षा के लिए पहरा दे रहा है।

---

1. एक गुरुवाणी जिसका पाठ संध्या-समय किया जाता है।

जब फौजी ने बापू जी को काबल का 'सतश्री अकाल' कहा तो बापू जी की आंखों में से जैसे सावन बरस पड़ा हो। बापू जी की बूढ़ी दाढ़ी आंसुओं से भीग गई। उन्होंने कुरते को उल्टा उठाकर आंखें और दाढ़ी पोंछी।

"बापू जी को कहना, मेरा चाल-चलन सरपंच से बढ़िया लिखवा दें।" फौजी ने संदेश दिया। बापू जी की आंखें पुनः तर हो उठीं। और वह "अच्छा" कहकर अंदर चले गए। उनकी पीड़ा महसूस करते हुए फौजी ने बाहर से ही नमस्ते की और चला गया।

बासमती की महक ने अभी गांव में प्रवेश भी नहीं किया था कि दुश्मन की ओर से हमले का समाचार पहले गांव में फैल गया। भारत पर हमला हो गया था। एक भयानक जंग सरहदों पर आ उमड़ी थी।

आवारा काबल को अब गांव वाले भूल गए थे, मगर बापू जी और काबल की मां काबल के सुख के लिए हर समय अरदास करते थे।

एक दिन, सुबह अमृत-समय बापू जी चारपाई पर धूप में बैठे पंचायत वाला रेडियो सुन रहे थे। खबरें आ रही थीं—अपनी फौजों के आगे बढ़ने की, दुश्मन के टैंकों के टूटने की, दुश्मन के जहाज गिराने की, अपने जवानों की बहादुरी की।

अकस्मात् जैसे समय रुक गया हो। जैसे एक बिजली कड़की हो। गांव के सारे वातावरण में काबल का नाम फैल गया था। काबल का नाम सुनकर बापू जी एकाएक सचेत हो उठे।

"काबल की मां यहां आना, मैं कहता हूं, जरा सुनना तो..." बापू जी के मुंह से काबल का नाम सुनकर काबल की मां बाहर आ गई।

"सिपाही काबल सिंह, सुपुत्र सरदार बिशन सिंह, जिसने अगली चौकी पर दुश्मन के अस्सी आदमी मारकर भी चौकी का कब्जा नहीं छोड़ा और अंत में दुश्मनों से जूझता हुआ शहीद हो गया था। ऐसे वीरों पर देश को सदैव गर्व रहेगा।" कहकर जैसे रेडियो शांत हो गया।

"हे लोगो, मैं लुट गई रे!" मां दोनों हाथों से छाती पीटते हुए चीखी।

"बापू जी, भाई नहीं रहा," छोटे भाई ने बापूजी के गले लगकर रोते हुए कहा।

बापू जी जैसे पत्थर हो गए थे।

कोई एक व्यक्ति अंदर से खेस ले आया और आंगन में बिछा दिया।

"मैं अभी काबल सिंह का चाल-चलन सही लिखवाकर आया हूं," कहते हुए सरपंच खेस पर आ बैठा।

"अब कैसा चाल-चलन रह गया?" बापू जी की जैसे जोरों की रुलाई फूट पड़ी हो और वह चारपाई से उठकर आंगन में बिछे खेस पर लोगों के बीच जा बैठे।

मछलियां

जसबीर भुल्लर

मौसम के हाथों से बर्फ गिर रही थी। ब्रिगेडियर सिन्हा कुछ देर ठिठुरते हुए पहाड़ों की ओर देखता रहा। उसके माथे की लकीरें पहले सिकुड़ीं और फिर फैल गईं। फौजी कंबल का मोटा पर्दा उसने पहले की तरह ही खिड़की पर तान दिया और लौटकर कुर्सी बुखारी के निकट खींच ली। मिट्टी का तेल बूंद-बूंद कर बुखारी में गिर रहा था। उसने मिट्टी के तेल का बहाव तेज किया और दोनों हाथ बुखारी की ओर फैला दिए, "इससे पहले कि बर्फ बेबस कर दे, डीफेंस सेक्टर के सारे बंकरों में कम से कम एक-एक फुट मिट्टी और चढ़नी चाहिए। बंकर तभी बमबारी झेलने के योग्य होंगे।"

ब्रिगेड मेजर तूर ने जल्दी-जल्दी पैड पर उसका आदेश लिखा।

अभी आदेशों के कबूतर उड़े भी नहीं थे कि मारामारी होने लगी।

"हैलो !...हैलो !...किलो !...लीमां !...माइक!"

ब्रिगेडियर सिन्हा ने वायरलैस पर डिवीजन के कमांडर मेजर जनरल महाबीर की बात सुनी तो उसके कानों के पर्दे हिल गए। जंगी तैयारियां स्तंभित हो गईं।

ब्रिगेडियर सिन्हा ने इंटरकाम पर अपना पहला आदेश रद्द किया तो मेजर तूर की हैरानी हवा में अटक गई। वह उठकर ब्रिगेडियर सिन्हा के आफिस में आ गया, "सर, कुछ समझ में नहीं आया।"

ब्रिगेडियर सिन्हा मेज पर पड़े पेपरवेट को घुमा रहा था, "अगले हफ्ते आर्मी कमांडर पलटनों के मुआयने पर आ रहे हैं।"

"फिर तो सर !..."

ब्रिगेडियर सिन्हा ने घूम रहे पेपरवेट पर हाथ रख दिया, "मुआयने के समय वह मनमई झील में से मछलियां पकड़ेंगे।"

बुखारी मुंह अंधेरे ही 'सुर-सुर' करने लगी। खिड़की के शीशे पर जमी हुई बर्फ कमरे की गर्मी से पिघल रही थी। बुखारी के समीप ही बड़ा अटैची-केस खुला पड़ा था। मेजर करम जल्दी-जल्दी अटैची में कपड़े रख रहा था।

आज वह छुट्टी जा रहा था। कंपनी की देखरेख की जिम्मेदारी उसने अपने 'सेकेंड-इन-कमांड' को सौंप दी थी। बूढ़े बापू के स्वर्गवास हो जाने के बाद बड़े परिवार के बोझ और समस्याओं की विरासत उसके लिए पीछे रह गई थी। लेकिन, उसकी छुट्टी के सभी दिन उलझनों की लंबी फेहरिस्त में बरबाद हो जाते थे। वह शीघ्र जाना चाहता था। उसे उन फेहरिस्तों को छोटा करने की उतावली थी।

टेलीफोन ने 'कर्र-कर्र' की तो वह चौंक उठा। उसने हाथ में पकड़े हुए कपड़े को वापिस रख दिया। सुबह-सवेरे ही टेलीफोन का बुलावा कोई अच्छा शगुन नहीं था। उसने अकल्पित संशय में रिसीवर कान से लगा लिया। उसके चेहरे पर बदलते हुए रंगों की पर्तें जमती चली गईं।

कमरे के शीत अंधेरे में उबाल आ गया।

मेजर चावला ने स्लीपिंग-बैग में से हाथ निकाला और रिसीवर टटोलकर कान से लगा लिया। अर्द्ध-निद्रा में आधी बात सुनी और फिर चुस्त होकर बैठ गया।

पिछली रात उसने खूब शराब पी थी। पुराने गीतों के भावुक होने के प्रयत्न में वह बहुत थक गया था। उसने खीझकर टेप-रिकार्डर बंद कर दिया था और फिर यह सोचकर सो गया था कि सुबह देर तक सोता रहेगा। वह सारा दिन कहीं नहीं जाएगा। स्लीपिंग बैग की गरमी में लेटा वह कोई बढ़िया-सी किताब पढ़ेगा।

कोई एक इतवार तो उसका अपना हो।

बुझी हुई बुखारी के नीचे वाली ट्रे में पानी जमा हुआ था। उसने अंगुली से ट्रे की बर्फ को तोड़ने का प्रयत्न किया और हाथ पीछे खींच लिया।

"आयम सॉरी, आज तुम्हारा इतवार खराब करना पड़ गया।" मेजर तूर ने बात के सिरे को पोटों में पकड़ लिया।

मेजर चावला चुप रहा। मेजर करम ने चाय का घूंट भरा और प्याला रख दिया।

"करम भाई। तुझे तो शायद अपनी छुट्टी मुल्तवी करनी पड़ जाए। और कोई चारा नहीं था। तुम दोनों अपने-अपने कामों में माहिर हो। तुम्हारे बिना..."

"बात क्या है?" इस बार मेजर करम ने प्याला रखा तो कुछ चाय छलक गई।

"तुम्हें आज जाकर देखना है कि मनमई झील तक सवारी खच्चर जा सकेंगे या नहीं? अगर रास्ता बनाने की जरूरत हो तो कितना वक्त लगेगा? इलाका दुश्मन की नजर में तो नहीं?"

"आजकल ब्रिगेड वालों को क्या हो गया है?" मेजर चावला हंसा, "फौजी दृष्टि से तो उस इलाके का कोई महत्व नहीं। पास के पहाड़ों से उस पर किसी वक्त भी हावी हुआ

जा सकता है। कोई मूर्ख शत्रु भी उस इलाके पर कब्जा करने के बारे में नहीं सोचेगा। तुम ये..."

"तू यूं ही न विष घोल।" मेजर तूर ने उठते हुए मेजर चावला के कंधे पर हाथ रख दिया, "कमांडर तुम दोनों की अपने बंकर में प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस काम की अहमियत वही बताएंगे।"

"तुझे कुछ तो पता होगा?"

मेजर तूर कुछ आगे की ओर झुककर, धीमे से बोला, "आर्मी कमांडर अपने दौरे के दौरान मनमई झील में मछलियां पकड़ेंगे।"

"मछलियां?"

"हां !" उसने एक पल मेजर करम के रूठे हुए चेहरे की ओर देखा और फिर हंस पड़ा, "दोस्त, तू दिल छोटा न कर। क्या मालूम, रुकने में तेरा ही फायदा हो? यह गोपनीय रिपोर्टें लिखने का समय है। इस बिगड़े हुए मौसम में छुट्टी कौन जाता है?"

चारों ओर बर्फ से लदे हुए पहाड़, नीचे दूर तक फैला हुआ सघन जंगल और जंगल के सिरे पर श्वेत दाग के चकते-सी मनमई झील !

मौसम साफ होने के कारण बर्फ के प्रसार की चांदी-रंगी चमक आंखों को बेंधने लगी थी। ऊन की टोपी उन्होंने कानों तक खींच ली और स्नो-गागल्स से आंखें ढक लीं। नीचे उतरने के लिए दोनों जंगली जानवरों द्वारा बनाई गई पगडंडी ढूंढने लगे। जब कोई राह न मिली तो उनके मन में एक संशय उठा, क्या वे सीधे बारूदी सुरंगों के जाल में तो नहीं उतर रहे? पिछली लड़ाई के समय जब फौजों की निकासी हुई थी तो अंधाधुंध लगाई गई बारूदी सुरंगों का कोई रिकार्ड नहीं रखा गया था। अब जगह-बेजगह बारूदी सुरंगों के फटने की वारदातें अक्सर हो जाती थीं, पर वे सब लौट नहीं सकते थे। उनके पांवों में आदेशों की बेड़ियां लगी हुई थीं। वे सैनिक थे। सैनिक अपनी सोच के सहसवार नहीं होते।

उन्होंने पहले एक-दूजे का हाथ पकड़ा और फिर पेड़ों-शाखाओं का सहारा लेते हुए ढलान की ओर उतर गए। जंगल सघन, और सघन हो गया। कुछ देर बाद पत्तियों-टहनियों की मजबूत छत ने अंधेरा कर दिया। छिद्रों में से कभी-कभार आसमान की झलक दिखाई देती तो वह रुककर दिशा का अंदाजा लगाने की कोशिश करते।

झाड़ियां रास्ता रोकतीं तो वे टहनियां तोड़-तोड़कर गुजरने लायक रास्ता बनाते। ढलान तीखी हो जाती तो वे चढ़ाई की ओर मुंह कर उल्टे लेट जाते और झाड़ियों को पकड़-पकड़कर झील तक की दूरी कम करते। झाड़ियां उनके बोझ से उखड़ती रहीं। एक सिपाही की दृढ़ता के साथ उन्होंने दूरी खत्म की और दोपहर के समय मनमई झील तक पहुंच गए।

वे कुछ क्षण झील के पानी की ओर देखते रहे और फिर आगे बढ़कर पानी को छू

लिया। हाथ धोकर वे किनारे पर बिखरे हुए पत्थरों पर बैठ गए। उन्होंने नक्शा जमीन पर फैला लिया और खच्चरों के आने वाला रास्ता आंकने की कोशिश करने लगे और आपसी सलाह के बाद नक्शे को पुनः संभालकर रख लिया।

आज की मेहनत ने भूख बहुत तीखी कर दी थी। उन्होंने साथ लाई हुई रोटी खाई और घड़ी भर के आराम के लिए ठंडे पत्थरों के टुकड़ों पर लेट गए।

"सो...हियर आर आवर स्टालवर्ट्स।" मेजर करम और मेजर चावला को अंदर आता देखकर ब्रिगेडियर सिन्हा खुशी में चहका। उसने व्हिस्की का लंबा घूंट भरकर गिलास तिपाई पर रख दिया, "तूर, प्लीज गैट दैम बरांडी विद हाट वाटर।"

वेटर बरांडी ले आया। दोनों ने गिलास उठाकर हवा में ऊपर उठाए।

"चीअर्स सर !"

"चीअर्स !"

मेजर चावला ने बरांडी का घूंट भरा, "सर, खच्चरों को झील तक ले जाने के लिए तो पहिया बनाने की जरूरत पड़ेगी।"

"चिंता किस बात की है? अपने पास मेजर करम जो है।" ब्रिगेडियर सिन्हा हंसा।

उसकी हंसी के जवाब में मेजर करम गंभीर ही रहा, "सर, मनमई झील तक जंगल का रास्ता लगभग बारह किलोमीटर का है। राह में दो-तीन पहाड़ी नाले भी हैं। उन पर शायद पुलियां बनाने की जरूरत भी पड़े। यह काम मेरी अकेली कंपनी के वश से बाहर है। अगर डिव की सारी सुविधाएं भी मुहैया कर दी जाएं तो पटरी बनने में लगभग छह महीने तो लगेंगे ही।"

बाहर, बर्फीला तूफान अचानक तेज हो गया था।

बुखारी ने फफक-फफक की और बुझ गई। तेल के धुएं का गुबार मेस की गर्म हवा में घुल गया।

शीत हवा ने शायद बुखारी के अंदर घोंसला बना लिया था। बुखारी जल ही नहीं रही थी। मेस-हवलदार कोशिश कर-कर थक गया।

मिट्टी के तेल का धुआं कमरे पर कब्जा कर बैठ गया था।

मौसम की बेचैनी उसके जेहन पर हावी हो गई। वह बहुत देर तक करवटें बदलता रहा। नींद आई थी तो कांटों पर घिसटती रही।

उसकी आंख मुंह-अंधेरे ही खुल गई।

रात व्हिस्की शायद कुछ अधिक ही हो गई थी। अब उसका सिर भारी-भारी था। बैट मैन आया तो रात की ठंडी हुई बुखारी फिर से 'सुर-सुर' करने लगी। नीचे की ट्रे का

जमा हुआ पानी धीमे-धीमे पिघलने लगा। चाय की चुस्कियां भरते हुए उसको ख्याल आया, बटांक नाले में मछलियां बहुत थीं। बटांक नाले तक जीप-जोंगा भी आसानी से जा सकता था।

उसका हाथ टेलीफोन की ओर चला गया।

मेजर जनरल महावीर ने ब्रिगेडियर सिन्हा की बात आधी ही सुनी और फिर काट दी, "लुक ब्रिगेडियर ! मुझे मालूम है, बटांक नाले में बहुत मछलियां हैं। मछलियां पकड़ने का प्रबंध भी अच्छा हो सकता है पर मैं आर्मी कमांडर के सामने बेख्याली में मनमई झील का नाम ले बैठा हूं। अब मछलियां सिर्फ मनमई झील में से ही पकड़ी जाएंगी। सारी ब्रिगेडियर, अब प्रोग्राम नहीं बदला जा सकता।"

ब्रिगेडियर सिन्हा ने हाथ से माथे पर की लकीरों को पोंछने का प्रयत्न किया और रिसीवर वापस रख दिया।

दुश्मन ब्रिगेड के ऐन सिर पर बैठा हुआ था। दुश्मन की कारगुजारियों का भेद लेने के लिए पलटनों में से रात को दो बार गश्त पार्टी निकलती थीं। बारूदी सुरंगों के बीच में से बनी हुई पगडंडी अगले वाले मोर्चों के साथ सटकर निकलती थी। गश्त पार्टी के लौटने तक पलटनों के कमान अफसरों की जान धुक-धुक करती रहती थी। हथियारों से लैस सैनिक चौबीस घंटे मोर्चों पर तैनात रहते थे। उनकी नींद से बोझिल आंखें धुंध को निहारती रहती थीं। दुश्मन के मोर्चे की ओर मुंह खोले हथियार हर समय बारूद उगलने के लिए तैयार रहते थे।

सुबह-सवेरे ही ब्रिगेड कमांडर की कान्फ्रेन्स का आदेश पहुंचा तो हलचल-सी मच गई। एक के बाद एक मिलने वाले बुलावे के कारण कमान अफसरों के मन में कई तरह के संशय जाग उठे। उन्होंने अपनी-अपनी पलटन के सुरक्षा व्यूह और हमले की स्कीम को जल्दी-जल्दी पढ़ा। नक्शे-फाइलें संभालीं, अपने स्टाफ आफीसर्स को साथ लिया और कान्फ्रेन्स के लिए पहुंच गए।

आर्मी कमांडर के मुआयने की खबर सुनाकर ब्रिगेडियर सिन्हा मूल मुद्दे पर लौट आया। उसने विस्तार से आर्मी कमांडर के द्वारा झील से मछलियां पकड़ने के प्रोग्राम को बताया और मनमई झील तक पटरी बनाने की जिम्मेदारी कमान अफसरों को सौंप दी।

पलटनों के कमान अफसरों ने नक्शे लपेट लिए और फाइलें बंदकर अपने स्टाफ अफसरों को पकड़ा दीं।

"सातवें दिन मुआयना है। यह काम उससे पहले-पहले पूरा हो जाना है।" ब्रिगेडियर सिन्हा की आवाज ने अकेले-अकेले अफसर के माथे पर दस्तक दी।

मनमई झील तक मार्ग बनाने का अर्थ था, मोर्चे को खाली करना। सैनिकों को

गैर-सैनिक काम पर लगाना। ऐसे तो दुश्मन उनके मोर्चों को मसलते हुए आगे निकल जाएंगे। हजारों मीलों का रकबा पल भर में हाथों से जाता रहेगा।

ब्रिगेडियर सिन्हा ने उनके चेहरों पर लिखी इबारत से आंखें चुरा लीं, पर उनमें से कोई बोलने का साहस नहीं रखता था। वे सभी ताश के गूंगे पत्ते थे। वे गोपनीय रिपोर्टों पर टिके हुए ताश के उस महल में दरबारी थे। उन्हें ताश के राजा का हुक्म भी असली राजा के हुक्म की तरह ही मानना पड़ता था। कोई भी चाल उनके अपने वश में नहीं थी।

"आई होप नो प्रोब्लम !" ब्रिगेडियर सिन्हा ने अपने रंग का इस्तेमाल किया।

ताश के पत्तों ने अपनी चिंता के ऊपर मुस्कुराहट का लेप चढ़ाकर एक स्वर में कहा, "नो प्रोब्लम, सर !"

मनमई झील के जंगल में मंगल हो गया।

फौजियों ने हथियार चौकी में जमा करवा दिए और हाथों में गैंतियां-कुल्हाड़ियां पकड़ लीं। कुल्हाड़ियां पेड़ काटने लगीं। हाथ पत्थर इकट्ठा करने में व्यस्त हो गए। अपने हिस्से की पटरी पहले बनाने के लिए पलटनों में होड़ लग गई।

कमान अफसरों ने अपनी-अपनी छावनी वहीं बना लीं। दूसरे अफसरों ने निगरानी का काम संभाल लिया।

सड़क से सघन जंगल की ओर उतरकर टेढ़े-मेढ़े बल खाती जाती पटरी मनमई झील की ओर कुछ इस प्रकार चली जैसे कोई रेखा खींच दी गई हो।

खच्चर पटरी के आखिरी सिरे पर खड़े होकर ब्रिगेडियर सिन्हा ने झील के पानी की ओर देखा तो उसकी सांस का धुआं फैली हुई धुंध में मिल गया। पानी की छोटी-छोटी बूंदें उसकी मूंछों पर जम गईं।

मनमई झील एक मक्कार हंसी हंसने लगी।

सुदूर बर्फीले शिखरों पर मोर्चे "भांय-भांय" कर रहे थे। बंकरों में तैनात इक्के-दुक्के जवानों ने बंकरों की छत की ओर हाथों को जोड़कर आंखें मूंदी और ईश्वर से दुआ की।

मुद्दत से मिट्टी बह-बहकर किनारों पर बैठती रही थी। किनारे गहरे नहीं थे। समतल पानी में मछली नहीं पकड़ी जा सकती थी।

ब्रिगेडियर सिन्हा ने परेशानी की दलदल से बाहर निकलकर कहा, "अब झील के अंदर प्लेटफार्म बनाने के सिवा हमारे पास कोई और चारा नहीं।"

इकहरी सड़क दैत्यों जैसे पहाड़ों के चक्कर काटती हुई कपूप तक पहुंचती थी। रास्ते के छोटे-बड़े पुलों में से कोई एक भी टूट जाए तो असले और राशन की आमद ठप्प हो सकती थी। फौरी पुल खड़े करने का सामान खास-खास जगहों पर जमा किया हुआ था।

फौजी ट्रक हरकत में आ गए। सामान पहुंच गया। माहिर फौजी कारीगरों ने जैसे मंत्र फूंक कर झील के अंदर प्लेटफार्म तैयार कर दिया।

ब्रिगेडियर सिन्हा आहिस्ता-आहिस्ता पैर उठाते हुए प्लेटफार्म के अंतिम सिरे तक कुछ इस तरह से गया जैसे झील को शर्मिंदा कर रहा हो, पर झील के चेहरे पर पहले की तरह ही मुस्कान ठहरी हुई थी।

कुछ देर वह झील के पानी को निहारता रहा और फिर मुड़कर इंजीनियर रेजिमेंट के कमान से बोला, "हो सकता है, आर्मी कमांडर झील के और अंदर जाकर मछलियां पकड़ना चाहें।"

"हां सर, हो सकता है।"

पहाड़ों की लड़ाई में किश्तियों की आवश्यकता नहीं थी। इसलिए इंजीनियर रेजिमेंट की किश्तियां उनके हैडक्वार्टर से कोई दो सौ किलोमीटर दूर, रेजिमेंट की रियर टुकड़ी की हिफाजत में पड़ी हुई थीं। डिवीजन के द्वारा दूसरे दिन ही आवश्यक गिनती में किश्तियां पहुंच गईं।

ब्रिगेडियर सिन्हा ने काम पूरा होने की रिपोर्ट दी तो मेजर जनरल महावीर ने कहा, वह स्वयं आकर किए गए प्रबंध का जायजा लेगा।

पहले सुरक्षा सैनिकों की जीप सड़क के एक ओर आकर रुकी और फिर जीपों-जोंगों का लंबा काफिला पहुंच गया। जिस्म तने, एंड़ियां बजीं, सैलूट मारे गए और कल के प्रोग्राम की रिहर्सल शुरू हो गई।

मेजर चावला अपनी यूनिट की खच्चरों के पास खड़ा था। पलटनों के कमान अफसर अपनी-अपनी जिम्मेदारी वाले इलाके में थे। इंजीनियर्स रेजिमेंट का कमान अफसर और उसका कंपनी कमांडर मेजर करम मनमई झील के प्लेटफार्म पर उपस्थित थे।

अपने शृंगार में सुसज्जित खच्चर बेचैनी में बार-बार पैर बदल रहे थे। मेजर जनरल महावीर और ब्रिगेडियर सिन्हा खच्चरों पर सवार हो गए। खच्चरों के चालकों ने अपनी स्टेनगनों को कंधों पर ठीक किया और खच्चरों की लगाम पकड़कर चल पड़े। उनके पीछे-पीछे बाकी अफसरों का काफिला पैदल चल पड़ा। राह में छोटी-छोटी कमियों पर प्रश्न-चिह्न लगते रहे। कमियों को मेजर जनरल महावीर के लौटने से पहले ही ठीक करने की होड़ में जवान फिर से काम में जुट गए।

मेजर जनरल महावीर ने सवारी-खच्चर से उतरकर मनमई झील के अंदर बने प्लेटफार्म पर पैर रखा और तसल्ली भरी दृष्टि से ब्रिगेडियर सिन्हा की ओर देखा। किश्ती में बैठकर दोनों ने मनमई झील का चक्कर लगाया, चारों ओर फैले सघन जंगल की सुंदरता को निहारा। अंबर की छाती में धंसे बर्फीले पहाड़ों की चोटियों की ओर देखा।

मेजर जनरल महावीर कुछ देर पानी को घूरता रहा और फिर मछली पकड़ने के लिए कांटा पानी में फेंक दिया। उसने चर्खी को घुमाया तो डोरी खाली कुंडी को लेकर बाहर आ गई। उसने बार-बार कुंडी को फेंका, बार-बार चारा बदला और फिर जैसे उसकी सांसें ही रुक गईं।

मनमई झील में मछलियां ही नहीं थीं।

"सर, वाय नाट शिफ्ट द वैन्यू?" ब्रिगेडियर सिन्हा ने झिझकते हुए अपनी पहली बात दुहराई, "बटांक झील में बहुत मछलियां हैं।"

"अब समय कहां है?" आवाज में लगा मावा जैसे सील गया था।

किश्ती ठंडे पानी पर बेवजह घूमती रही। डुबकी लगाती सोच को सहसा किनारा मिल गया। वायरलैस के चैनल हरकत में आ गए। बूढ़े टेलीफोन 'घर्र-घर्र' करने लगे। पलटनों के कमान अफसर स्वयं अपनी-अपनी कैंटीनों की ओर दौड़े। डिवीजन के बाकी ब्रिगेडों से भी मिला गया। आदेश दिया गया कि जितने भी मछलियां पकड़े जाने वाले सैट मिलें, फौरन भिजवा दिए जाएं।

दोपहर तक पलटनें बटांक झील में से मछलियां पकड़ने के काम में व्यस्त हो गईं।

मनमई झील की ओर से फौजी ड्रमों की कतारें लग गईं। बटांक झील की ओर से फौजी मछलियां ढो रहे थे। कोई भी पलटन पीछे नहीं रहना चाहती थी। यह सिर्फ पलटनों की इज्जत का ही सवाल नहीं था, पलटनों के कमान अफसरों की नौकरियों का भी सवाल था।

मेजर करम पलटनों के खाते में मछलियों की गिनती लिख रहा था।

दिन धीमे-धीमे अंधेरे में डूबता जा रहा था।

बर्फ गिरनी आरंभ हो गई।

मेजर करम ने जल्दी-जल्दी जोड़ लगाया और मछलियों की कुल गिनती लिखकर वायरलैस आपरेटर को पकड़ा दी। उसने लौटकर ऊंचे स्वर में पलटनों के नुमाइंदों को कहा, "अगले हुक्म तक मछलियां ड्रमों में ही तैरती रहेंगी।"

तड़के मनमई झील के किनारे विशेष तंबुओं में आफीसर्स मेस बहाल हो गया। तारें पहले ही बिछा दी गई थीं। सुबह-सवेरे टेलीफोन भी जोड़ दिए गए। बार, गलीचे और सोफों की सजावट के बाद मेस-हवलदार और वेटर अपनी-अपनी वर्दियों में सज गए।

प्लेटफार्म के कुंडों के साथ बंधी हुई खाली किश्तियां पानी की छाती पर डोल रही थीं। जवानों ने किश्तियों में से रात की जमी हुई बर्फ निकाली, प्लेटफार्म साफ किया और मुंह के निःश्वास से हाथ सेकने लगे। उनके मुंह में से धुआं निकल रहा था। वह जैसे अंदर से सुलग रहे थे, पर उनके ठंडे पड़े हाथ ठंडे ही रहे। गर्म करने की कोशिश में वे हाथों

को मलने लगे।

मेजर करम मछलियों वाले ड्रमों के पास खड़ा ड्यूटी वालों को उनका कार्य समझा रहा था।

"जब आर्मी कमांडर एक विशेष जगह से गुजरेंगे तो ऊंचे पेड़ पर बैठा जवान लाल झंडे का इशारा करेगा। मछलियों वाले ड्रम उस वक्त मनमई झील में खाली कर दिए जाएंगे। झंडे वाले स्थान से मनमई झील तक आते हुए आर्मी कमांडर को दसेक मिनट लगेंगे। इन दसेक मिनटों में ही तुम्हें खाली ड्रम जंगल में छिपा देने होंगे। इस कार्रवाई में किसी तरह की भी ढील नहीं होनी चाहिए। तुम्हारी ढील के नतीजे सभी के लिए खतरनाक हो सकते हैं।"

मनमई झील की ओर उतरने वाली पगडंडी के पास सड़क पर खड़े हुए सवारी खच्चर अपनी पूरी तैयारी में थे। उन्हें इस अवसर पर विशेष रूप में सजाया गया था, पर खच्चरों को शृंगार का बेमतलब का भार परेशान कर रहा था। बेचैनी में उनकी पाजेबें बार-बार बज उठती थीं।

मेजर चावला ने खच्चरों के चारों ओर घूमकर उनका निरीक्षण किया और चालकों को उनकी पूछों की गुंझलों को दूर करने की हिदायत दी। चालक जेबों में से बुर्श निकालकर पूछों के बाल संवारने लगे।

सुरक्षा गार्ड हैलीपैड के चारों ओर तैनात हो गए। डाक्टर ने आक्सीजन का सिलेंडर और कुछ आवश्यक दवाइयां चैक कीं। मेजर जनरल महावीर ने पुनः घड़ी देखी और खाली आसमान को घूरने लगा। ब्रिगेडियर सिन्हा ने हाथ में पकड़ी छड़ी एक बार बगल में दबाई और दोबारा हाथ में पकड़ ली।

आर्मी कमांडर को लेकर आया हैलीकोप्टर आहिस्ता-आहिस्ता नीचे उतरा। उसके पंखे ने कुछ देर हवा में मथानी फेरी, हैलीपैड के पास वाली बर्फ उड़ाई और फिर शांत हो गया।

आर्मी कमांडर ने जहां तक दृष्टि जा सकती थी, वहां तक पसरी हुई बर्फ को देखा और कोट की चैन को ऊपर तक बंद किया। हवा में आक्सीजन की कमी का जिक्र करते हुए उसने श्वास कुछ इस तरह से भरा जैसे फेफड़े हवा की तलब में सिकुड़े रहे होते हैं। डाक्टर और नर्सिंग असिस्टेंट आक्सीजन का सिलेंडर लेकर आगे बढ़े तो आर्मी कमांडर ने संकेत से उन्हें रोक लिया। फलों के जूस का घूंट भरते हुए उसने सुरक्षा प्रबंधों के विषय में बात की और पी. आर. ओ. की ओर मुंह करते हुए बोला, "इसमें कोई शक नहीं कि हमारी फौज के हौंसले बर्फों में भी बुलंद हैं। हम दुश्मन के हर हमले का मुंह तोड़ जवाब देने के लिए समर्थ हैं।"

कैमरे ने बर्फ की पृष्ठभूमि में आर्मी कमांडर के कुछ चित्र लिए।

पी. आर. ओ. ने पैड पर कुछ शब्द घसीटे। बहुत था, बस इतना इशारा ही बहुत

था। अब विस्तार वह स्वयं दे लेगा। आर्मी कमांडर के दौरे के चित्र और लेख का सैनिक अखबार बहुत बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा होगा।

आने वाले मौसम की रिपोर्ट अच्छी नहीं थी। माइनस तापमान, आक्सीजन की कमी और समुद्रतल से बारह हजार फुट की ऊंचाई, वहां अधिक रुकना ठीक नहीं था। आर्मी कमांडर ने वहीं से ही पैर हैलीकोप्टर की ओर मोड़ लिए और मेजर जनरल महावीर से अपनी विवशता जाहिर की कि वह अपनी इच्छा के बावजूद मछलियां नहीं पकड़ सकेंगे।

मौसम सहसा ही रूठ गया।

धीरे-धीरे बर्फ के फाहे गिरने लग पड़े।

मेजर जनरल महावीर ने कोट के ऊपर वाली टोपी सिर पर खींच ली, "मेरा ख्याल है, आर्मी कमांडर खुश ही था।"

उसका प्रश्न किसी उत्तर का इच्छुक नहीं था। ब्रिगेडियर सिन्हा चुपचाप हैलीपैड पर बिछे हुए बर्फ के लोगड़ की ओर देखता रहा।

सड़क के किनारे खड़े खच्चर अपने ऊपर से बर्फ झाड़ने की कोशिश में बार-बार अपना शरीर फटक रहे थे। मेजर चावला ने खच्चरों की ओर से नजर घुमाकर कंपनी के सूबेदार मेजर से कहा, "साहब, आज खच्चर सुबह से ही ठंड में खड़े हुए हैं। यूनिट के जाते ही इन्हें दो पैग रम याद से पिलवा देना।"

खच्चरों से कुछ हट कर एक ड्राइवर जीप की विंड-स्क्रीन पर जमी हुई बर्फ खरोंच रहा था। वह मुंह में बुदबुदाया, "हां, रम तो अब खच्चर ही पीएंगे।"

आर्मी कमांडर के हैलीपैड पर से वापस लौट जाने की खबर अभी मनमई झील की ओर नहीं सरक पाई थी। पलटनों के जवान अपने हिस्से की पटरी को जंगली फूलों से सजाने में व्यस्त थे।

मनमई झील के किनारे आफीसर्स मेस में वेटर बार-बार वर्दियों को ठीक कर रहे थे। मेस-हवलदार ने सोफों के पास घूमकर गरमी का जायजा लिया और बुखारियों को और तेज करवा दिया।

बाहर सृष्टि सफेद चादर तान रही थी।

बर्फ के फाहे पानी के ड्रमों में घुल रहे थे। मौसम का मछलियों के साथ कोई रिश्ता नहीं था।

ड्रमों में तैर रही मछलियां शांत थीं। मछलियों को भला मौसम से क्या लेना था!

ड्रमों के पास खड़ा मेजर करम ड्रमों को मनमई झील में उलटने की कार्यवाही दोहरा रहा था। अनेक बार सुनी हुई बात को जवान चुपचाप सुन रहे थे। उनके कोट पर बर्फ गिर रही थी। उनके कोट धुंधले दिखाई देने लगे थे।

"सर, हैलीपैड से आपके लिए फोन है।" हांफते हुए मेस-हवलदार ने आकर बताया।

मेजर करम ने कोट पर से बर्फ को झाड़ा और चल पड़ा।

ब्रिगेड मेजर तूर ने आर्मी कमांडर के लौट जाने की सूचना दी और मछलियों को अलग-अलग आफीसर्स मेसों में बांटे जाने के अनुपात का आदेश सुना दिया।

मेस से बाहर आकर उसने जवानों को तंबुओं में भेज दिया।

बर्फबारी और तेज हो गई थी। बर्फ के फाहे अब टिड्डी दल के हमले की तरह प्रतीत होने लगे थे।

प्लेटफार्म बर्फ से ढका हुआ था। खाली नावें डोल रही थीं।

उसकी आंखों के आगे अब कोई पहाड़ नहीं था। कोई जंगल नहीं था। बस, सफेद अंतहीन शून्य था, बर्फ का सघन धुआं था।

बर्फीली सृष्टि में, पहाड़ की भांति दिखाई देने वाले को, बर्फ आहिस्ता-आहिस्ता ढक रही थी।

दो किनारे

तरसेम नीलगिरी

पाखर सिंह ने अपनी छोटी-छोटी खुरदरी दाढ़ी पर हाथ फेरा—तू भी बढ़ जाएगी अब। पहली छंटाई तो गोरों ने ही तेरी की थी। उसने सोचते हुए गहरा सांस लिया।

टैंपू जब गांव की सीमा में प्रवेश करने लगा तो पाखर सिंह बोला, "रोकना भाई जरा।"

"अच्छा जी," कहकर ड्राइवर ने टैंपू रोक लिया। पाखर सिंह टैंपू से नीचे उतरा। एक पल के लिए उसने ऊपर आकाश की ओर देखा। फिर घुटनों के बल बैठकर उसने अपना सिर जमीन पर रख दिया, फिर उठाया। और फिर रख दिया। कुछ ही पलों में उसने अपने दिल का भार हल्का किया। फिर टैंपू में बैठते हुए बोला, "चल भाई!"

"मैंने सोचा, तुमने कोई धार-वार मारनी है। तुम तो माथा टेकने लगे।" टैंपू वाला बोला। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह कैसा विलायती था। यहां न तो कोई गुरुद्वारा था और न ही मंदिर। न किसी पीर-फकीर की कब्र।

"धार तो क्या मारनी थी...!" पाखर सिंह इतना ही कह पाया। फिर उसने चलते हुए टैंपू में से बाहर की ओर देखा। खेत हरी-भरी फसलों से भरे पड़े थे। यह वह दृश्य था जिसको देखने के लिए कई सालों से उसका दिल तरस रहा था। अपने दिल में उठते विद्रोह पर उसने कई बार नियंत्रण किया। नौ सालों में बस एक बार वह गांव लौटा था। लेकिन कुछ महीनों बाद ही उसके बापू हरनाम सिंह ने जोर डालकर उसको वापस विलायत भेज दिया था।

टैंपू जब उनकी बाहर वाली हवेली के पास जाकर रुका तो उसका दिल खुशी से भर उठा। हरनाम सिंह ने भी उसकी पदचाप सुनकर फाटक खोल दिया। वह अपने दोनों पोतों के संग अंदर घर के छोटे-मोटे काम पर रहा था। पाखर सिंह को देखकर वह एक पल को अचंभित-सा हो गया। लेकिन तुरंत ही संभलकर बोला, "आ जा भाई जवान आ गया तू। ठीक तो है?"

"हां।" पाखर सिंह सिर्फ इतना ही कह पाया। फिर उसकी आंखों में से आंसुओं की धार फूट पड़ी। उसने आगे बढ़कर अपने बापू को अपनी बांहों में भर लिया। कितनी ही देर तक सिसकते हुए उसने बापू को अपने आलिंगन में कसे रखा। फिर उसके मुंह से

एक हूक-सी निकली, "ओए बापू, मार दिया गोरे-कंजरों ने।"

हरनाम सिंह ने उसकी पीठ थपथपाई। उसके दोनों बेटे अब तक वहीं खड़े-खड़े उन दोनों को देख रहे थे। जिस पिता के बारे में उन्होंने अपने बाबा और मां से सुना था और चिट्ठियों में पढ़ा था, वह अब आ गया था। फिर वे भी पाखर सिंह से लिपट गए। अपने बापू को छोड़, पाखर सिंह ने गिन्दे और निम्मे को कसकर अपनी छाती से लगा लिया। उसको अब अपनी जिंदगी का मजा आया था। इंग्लैण्ड में रहते हुए उसको अपना अस्तित्व बेजान मांस के लोथड़े में बदलता महसूस हुआ था जैसे कि उसके अंदर से सभी रिश्ते-नाते खत्म हो गए हों। "कैसी निर्मोही धरती थी विलायत की!" अब उसे अपना अस्तित्व मांस के लोथड़े से मनुष्य में बदलता प्रतीत हुआ।

"पढ़ाई कैसी चल रही है?" पाखर सिंह ने अपने बेटों से पूछा।

"चिट्ठी में लिखा तो था। मैं तीसरे नंबर पर, निम्मा पांचवें पर।"

"अच्छा। तब ठीक है। मगर पहले नंबर पर क्यों नहीं?" पाखर सिंह की अंतिम बात सुनकर लड़कों ने अपनी आंखें झुका लीं।

टैंपू वाले ने उसका सामान उतारकर अंदर हवेली में रख दिया। पाखर सिंह से जितने पैसे उसने मांगे, पाखर सिंह ने दे दिए। उसने अपना टैंपू पीछे किया और चला गया। अब तक वहां से गुजर रहे कई लोगों ने उसे आए हुए देखा तो खड़े होकर उसका हाल-चाल पूछने लगे।

"वाह-वाह। खूब अच्छा हो गया। ठीक-ठाक तो पहुंच गए सरदार पाखर सिंह जी? मैंने भी कहा, टैंपू तो आया है, कहीं सरदार पाखर सिंह ही न हो? बापू जी ने तुम्हारे आने की कोई बात तो की नहीं।" पाखरसिंह और वतना दोनों नौवीं कक्षा तक इकट्ठे पढ़े थे। दोनों ने एक-दूसरे के साथ लड़कर, गालियां निकालकर मारपीट भी की थी। वतना अब गांव में चौकीदार था। पाखर सिंह को विलायत से आया देखकर अब वह 'जी-जी' करते हुए बुला रहा था।

"चिट्ठी तो हमें भी कोई नहीं आई इसके आने की। वैसे अच्छा हो गया। मेरे कौन-सा हाथ-पैर चलते हैं अब?" हरनाम सिंह बोला।

"सफर भी तरह-तरह का होता है जी। बंदा कमा-धमाकर घर आए। वह क्या हुआ; जहां गए वहीं के होकर बैठ गए। पीछे चाहे कोठरियों में बिल्ली-कुत्ते मूतते घूमें।" वतना पाखरसिंह को देखकर दिल से खुश हो गया था। उन लोगों के विरुद्ध बोलना वह अपना फर्ज समझता था जो गांव को अलविदा कहकर हमेशा के लिए चले गए थे। पाखर सिंह ने न चाहते हुए भी जेब में से बटुआ निकालकर पांच का नोट उसे पकड़ा दिया। उसको महसूस हो रहा था जैसे वह उसको पांच का नोट देकर उसकी बेइज्जती कर रहा था। लेकिन वतना तो खुश हो गया था।

फिर उसके दोनों बेटों के साथ लगकर वतना ने उसका लाया हुआ सामान अंदर वाले घर में उठाकर रखा। अधिक सामान लाने को पाखर का मन ही नहीं किया था।

"वलैतिया आ गया जी, पालकौर! रंग तो देख जरा। हाथ लगाने पर मैला होता है।" वतना ने सामान रखा और बोला। पालकौर शाम का खाना बनाने के काम में लगी हुई थी। उसे आश्चर्य के साथ-साथ खुशी भी हुई। उसने मन ही मन सोचा—'अब मैं नहीं बोलूंगी इसके साथ। आदमी आने से पहले खबर देता है। किसी को अपना मुंह-सिर संवारने का समय तो चाहिए। अब मेरे बिखरे-उलझे बाल कैसे लगेंगे?'

"गोरों में तो गोरा ही लगता होता।" वतना फिर बोल उठा।

"भाई जा, थोड़े से अंडे तो ले आ। अब मैं इस वक्त क्या बनाऊं?" और उसने अंदर अल्मारी में से पैसे निकालकर वतने को थमाए।

"लो, मैं अभी आया।" कहकर वह चला गया।

इतनी देर में हरनाम सिंह के साथ पाखर सिंह भी आ पहुंचा। पालकौर ने अपने पल्ले के पीछे से पाखर सिंह को देखा। उसका रंग सचमुच ही गोरा लगता था। लेकिन, उसके चेहरे पर यह कांटों जैसी दाढ़ी देखकर उसे हंसी आ गई। पाखर सिंह को आज का यह दिन शायद अपनी जिंदगी का सबसे प्यारा दिन लग रहा था। पर पालकौर का चेहरा उसको पल्ले के पीछे से साफ दिखाई नहीं दे रहा था। वे दोनों एक पल बिना कुछ बोले खड़े रहे। पाखर सिंह का दिल कर रहा था, वह आगे बढ़कर उसको अपनी बांहों में दबोच ले। हरनाम सिंह ने उन दोनों को इस तरह खड़े देखा तो बोला, "बेटा पाल कौर! ले तू जरा पाखर सिंह को पानी-वानी पूछ। मैं भैंस के लिए संगल (जंजीर) ले आऊं। कई दिन से टूटी पड़ी है।"

हरनाम सिंह और गिन्दा दोनों चले गए। छोटा बेटा निम्मा भी कब का बाहर भाग गया था अपने दोस्तों को बताने के लिए कि उसका बापू विलैत से आ गया है। हरनाम सिंह के चले जाने के बाद पाल कौर ने अपना पल्ला हटाया। पाखर सिंह ने देखा, वही पाल कौर थी। उसकी ओर देखती हुई। अब वह उसके साथ बोलेगी नहीं, वह जानता था। उसने सोचा, अब मैं ही इसे पहले बुलाता हूं।

"क्या हाल है? कुछ बोलेगी भी कि नहीं?"

"नहीं। तूने कौन-सी बात पूछी है?"

"अच्छा, तुझे तो मैं ऐसे पूछता हूं।" पाखर सिंह ने कहा और आगे बढ़कर उसने पालकौर को अपनी बांहों में दबोच लिया।

"अगर इतना ही प्यार था तो चिट्ठी डालता। कोई अपना मुंह-सिर ही संवार लेती।"

"मुंह-सिर ऐसे ही ठीक है," उसने पालकौर को और कसकर भींचा और भूखे आदमी की तरह उसे चूमने लगा।

"रहने दे तू अब इस लोलो-पोपो को। दाढ़ी से तो मेरे मुंह पर कीलें ठोके जा रहा है।" और उसकी बांहों की गिरफ्त से निकलकर वह मुस्कुराने लगी। पाखर सिंह को इस बात की खुशी हुई कि पाल कौर अब उससे नाराज नहीं थी। बस, अब वह ऊपर-ऊपर से नखरे दिखा रही थी।

अंधेरा होने तक कई लोग आकर उसकी कुशल-क्षेम पूछ गए। उसका मन भी अपने कई पुराने साथियों के घर हो आने को हुआ। परंतु अब काफी अंधेरा हो गया था। इसलिए उसने यह काम कल पर डाल दिया। अब घर में उसके अपने परिवार के सदस्य ही रह गए थे। हरनाम सिंह और पाखर सिंह दोनों अपनी बैठक में बैठे थे। पाल कौर खूब मन लगाकर बढ़िया खाना बनाने में लगी हुई थी।

"छुट्टी कितनी मिली है?" हरनाम सिंह ने अपने ईदगिर्द लपेटे हुए कंबल को ठीक करते हुए पूछा।

"छुट्टी तो बहुत है।" एक पल के लिए पाखर सिंह का मन हुआ कि वह सारी बात हरनाम सिंह को बात दे। लेकिन उसने चुप रहना ही अभी बेहतर समझा।

"ठंड तो अब वहां बहुत पड़ती होगी?"

"ठंड के सिवा वहां और है भी क्या?"

"कपड़े भी तो हैं तरह-तरह के शरीर ढकने को।"

इतनी देर में बच्चों ने छोटी-सी मेज पर खाने की वस्तुएं लाकर रखनी शुरू कर दी थीं।

मुझे तो थोड़ा गर्म पानी ला दे, गिन्दे! कुछ दांत दुखते हैं आज।" हरनाम सिंह बोला।

"अच्छा बापू जी।" गिन्दे ने बापू पर अपने सयानेपन का रौब डालने के लिए कहा। वैसे वह "अच्छा बापू" ही कहता था। थोड़ा हलवा खाने के बाद पाखर सिंह साग के साथ कई रोटियां खा गया। ऐसा लगता था जैसे पिछले कई वर्षों से उसको रोटी नसीब ही नहीं हुई थी। पाल कौर के हाथों की बनाई हुई रोटी। वह तरस गया था। इंगलैंड में अंडों की भुर्जी के सिवा अकेले आदमी के लिए क्या था? साग तो बिलकुल नहीं था। साग तो औरत ही बना सकती थी। पालकौर के बिना साग कहां?

हरनाम सिंह बाहर हवेली में सोने के लिए चला गया। दोनों लड़कों को पालकौर चौबारे पर सुला आई। स्वयं रसोई संवारने के बाद वह पाखर सिंह के पास आ बैठी।

"तेरी वलैत का हमें क्या सुख हुआ?"

"क्यों?"

"सबने अपनी बीवियों और बच्चों को वहां बुला लिया और तूने कुछ नहीं किया। अब की तो हम तेरे साथ ही जाएंगे।" पाखर सिंह का दिल कांप उठा। पालकौर जरूर बखेड़ा खड़ा करेगी। चिट्ठियों में भी यही लिखती रहती थी।

"तुझे वहां क्या करना है?"

"करने का क्या नहीं? दुनिया यूं ही तो नहीं दौड़ी जाती।" पालकौर जिद्द करते हुए बोली। पाखर सिंह चुप हो गया। उसको पता था कि पाल कौर के साथ बहस में पड़ने से कोई लाभ नहीं होगा। चुप्पी साधे कितनी ही देर तक वह पालकौर के ताने-उलाहने सुनता रहा। अब पालकौर कुछ नरम हुई तो उसने उसको प्यार किया। वह भी शायद इसी पल की प्रतीक्षा में थी। अहिस्ता-अहिस्ता पालकौर मोम की तरह पिघल गई। उसको कई वर्षों के एकाकीपन ने दुखी किया हुआ था। कई बार वह लंबी रातों में पाखर सिंह को याद कर रोई थी। जिंदगी में पालकौर ने पाखर सिंह के सिवा किसी की परवाह नहीं की थी। पाखर सिंह ने उठकर जब बिजली का बटन दबाया तो कमरा उजाले से भर उठा। उसके पेट पर भर चुके जख्म का बड़ा-सा निशान देखकर वह चीख उठी, "मैं मर जाऊं! तेरा तो सारा पेट ही फटा पड़ा है।"

पाखर सिंह दूसरी ओर मुंह कर अपना नाइट-सूट पहनने लगा। कुछ ही पलों में वह संभल गया। उसने सोच लिया था कि अभी पालकौर को वह कुछ नहीं बताएगा।

"आप्रेशन-सा हुआ था। कुछ नहीं। यह तो यूं ही है।" उसने टालने के मकसद से कहा। फिर उसने "हो-हो" कर एक लंबी उबासी ली और चारपाई पर लेट गया। पाल कौर ने एक-दो बार फिर उससे पूछने का प्रयत्न किया, पाखरसिंह ने उसको कुछ नहीं बताया।

सुबह उठा तो सूरज निकल चुका था। बहुत सवेरे उसकी नींद टूटी थी लेकिन यह सोचकर कि आज कौन-सा काम पर जाना है, वह फिर से सो गया। अब उसने बेफिक्री से कपड़े पहने और बाहर खेतों की ओर निकल गया। अब वह रात की घटना के बारे में सोच रहा था। उसके पेट का निशान देखकर पालकौर का दिल डूब गया था और उसकी आंखों के आगे वह दृश्य घूम गया। दो महीने पहले जब वह बेकरी में काम की लेट-शिफ्ट कर वापिस अपने ठिकाने पर लौट रहा था तो दो 'स्किनहैड' लड़कों ने उसको गली के कोने पर रोक लिया था। बस फिर एक चाकू उसके पेट के अंदर। उसको होश नहीं रहा था। जब उसे होश आया था तब नालियां उसके शरीर पर लगी हुई थीं और पट्टियां बांधे वह अस्पताल के एक बेड पर पड़ा हुआ था। उसका मन किया कि वह उछलकर उठे और उन 'स्किनहैडों' से जा भिड़े। लेकिन वह इतना कमजोर हो गया था कि उसके लिए हिल सकना भी संभव नहीं था। बस, बिस्तर पर पड़े-पड़े ही उसने मन बना लिया था कि अब एक पल भी वह इस देश में धक्के नहीं खाएगा। बस, नहीं रहेगा यहां। बिना किसी बात के आदमी को मारना। उन्हें मुझसे लड़ाई ही करनी थी तो मुझे जरा ललकारते तो सही। निहत्थे बंदे को चाकू मारना तो बंदे की दुर्गति करने वाली बात है। नहीं रहना यहां। यहां अपने बच्चों का मुंह देखने से भी रह जाता। पालकौर छाती पीटकर रोती और स्वस्थ होते ही उसने अपनी टिकट कटाई और यहां आ गया।

"वाह भाई विलैतिया! धन्य भाग। अरे, कब आना हुआ?" सामने लाभा कन्नू दूध वाली बाल्टी उठाए चला आ रहा था।

"रात को।"

कितनी देर तक खड़े होकर वे छोटी-छोटी बातें करते रहे।

"मैं कहता हूं, ये संतो वाले खेत बिक रहे हैं। ले ले अब। फिर नहीं मिलेंगे।"

"देखेंगे।" पाखर सिंह बोला।

"कितने दिनों की छुट्टी पर आया है?" लाभा ने चलते वक्त पूछा।

"छुट्टियां अब अपनी ही हैं। अब नहीं जाना।"

"लो, मजाक करता है। विलैतियों की एक टांग तो लंदन और दूसरी दिल्ली में होती है। तुम्हें कहीं भूखे-नंगे रहने का रोग है?" लाभा चला गया लेकिन पाखर सिंह को अब महसूस हो रहा था जैसे सारा गांव ही उसको यहां से निकालने पर तुला हुआ था। 'साली नायलान की शर्टों ने पंजाब को पागल कर दिया है।' उसका दिल एकबारगी तो बैठने लगा, फिर उसने गोरों को दो-चार गालियां दीं और अपने मुंह का स्वाद ठीक किया। बाहर खेतों में घूमते हुए उसका मन प्रसन्न हो उठा। इंग्लैंड के मौसम ने उसको हमेशा दुखी ही किया। उसका मन पुनः खेती करने को हुआ। 'देखेंगे, अब यही करेंगे।' उसने सोचा और गांव की ओर लौट आया।

धीमे-धीमे, उसका गांव लौटना पुराना हो गया। लेकिन गांव के लोग अभी भी उसको वलैतिया कहकर बुलाते थे। उसको इस संबोधन से नफरत भी थी और कभी-कभी मजा भी आता था। अब उसे गांव की गलियों में लफंगों की भांति घूमना अच्छा न लगता। एक-दो बार उसका मन किया कि वह यहां क्यों आया बैठा है? क्यों नहीं वापस इंग्लैंड चला जाता? वहां जिंदगी किसी काम में तो लगी हुई थी। और साथ ही 'स्किनहैड' कौन-सा रोज चाकू निकाले घूमते थे। पालकौर को भी एक बार जरा लंदन की सड़कों पर घुमा दे। एक बार तो गोरों को मात दे देगा। फिर तो फैक्ट्री में काम पर लगने के बाद मुझे भी पहचानना छोड़ देंगे।

'पर मैं तो नौ सालों की गुलामी से मुश्किल से छूटा हूं। और एक बार फिर चला गया तो फिर पालकौर वहां से आने नहीं देगी। यह गहने बनाने पर जोर देने लगेगी। और वह जो उस हरामी मैनेजर ने मेरे कंधे पर ऊपर खड़े होकर लात मारी थी? साला हर अंग्रेज ही 'स्किनहैड' है। अब नहीं जाता मैं वहां। 'वह सोचता और अपने मन को वापस न जाने के बारे में पक्का करने लगता।

एक दिन जब वह रोटी खाने के बाद उठकर बाहर जाने लगा तो पालकौर बोल उठी, "तो यह बात ठीक है?"

"कौन-सी?"

"यही कि तुझे विलायत से निकाल दिया गया है।"

"कौन कहता है?"

"बचनो, लाभे की बीवी।"

"पूछता हूं मैं उस सूअर की औलाद को। उसे कहां से खबर आ गई?"

"न, तू बखेड़ा न खड़ा करना। तुझे खाली घूमते देखकर लोग और क्या कहेंगे?"

अपने आपको काम में लगाए रखने के लिए उसने अब हवेली में खड़े दो-तीन पशुओं की देखभाल करनी आरंभ कर दी थी। यह काम पहले उसका बापू हरनाम सिंह किया करता था। अब वह इधर-उधर अपनी उम्र के बूढ़ों को बातें करने के लिए ढूंढ़ता रहता है। पाखर सिंह को यह छोटे-छोटे काम करते देखकर उसे चिढ़ होती है।

एक दिन सवेरे जब पाखर सिंह पशुओं को बांधने वाली जगह को फावड़े से साफ कर रहा था तो हरनाम सिंह उसके पास जाकर बातें करने लगा। पाखर सिंह के व्यवहार और लोगों की बातों से उसे पता लग चुका था कि अब वह लौटकर इंग्लैंड नहीं जाएगा। हरनाम सिंह बड़े प्यार से बोला, "अब फिर दरखास्त कब देनी है?"

"किस बात की दरखास्त?" पाखर सिंह काम छोड़कर बोला।

"बच्चों के पासपोर्ट नहीं बनवाएगा? इधर अकेले रहकर बिगड़ जाएंगे।"

पाखर सिंह ने एक पल के लिए अपने बापू की ओर देखा। उसे महसूस हुआ कि अब इस बात को अधिक देर छिपाकर नहीं रखा जा सकता। उसने साहस किया और बोला, "दरखास्त नहीं देनी अब।"

"क्यों?"

"मुझे अब नहीं जाना है।"

"जाना क्यों नहीं?"

"वहां क्या रखा है?"

"लोग पोलिटिकल सिफारिशें लेकर जा रहे हैं। तू कहता है कि वहां है कुछ नहीं रखा।"

"पर मुझे नहीं जाना है।"

"जाना क्यों नहीं? लड़कों का हक क्यों मारता है?"

"कुछ नहीं मारता। यहीं पढ़ेंगे।"

"जैसा कि तू पढ़ा है। ज्यादा से ज्यादा मास्टर लग जाएंगे। रोटी जुड़ती है कहीं यहां?" हरनाम सिंह की अंतिम बात सुनकर पाखर सिंह का दिल कांप उठा। लेकिन फिर उसे याद आया कि अब वहां भी कितना रोटी का जुगाड़ हो पाता था। बेरोजगार लोगों की भीड़ घूमती थी। जब उसने झुककर चारे का टोकरा उठाया तो उसकी पतलून की पीछे की ओर से सीवण उधड़ गई। अब उसको पहली बार अहसास हुआ कि उसने अभी तक इंग्लैंड से लाए हुए कपड़े पहने हुए थे। यह सोचकर उसके दिल को दुख हुआ।

घर पहुंचकर उसने बिना किसी उत्साह के पालकौर की ओर देखा। टूटे हुए दिल से उसने लस्सी का गिलास मांगा। उसके हाथ से लस्सी का गिलास पकड़ते हुए वह बोला, "मेरी कोई पुरानी चादर-लुंगी नहीं है?"

"क्यों?"

"पतलून उधड़ गई है।"

"ला, मैं सी देती हूं।"

"नहीं, तू चादर निकाल, अगर है तो।"

"अब तुझे फिर से चादरे बांधने का शौक चढ़ा है।" वह अंदर गई और पेटियों में उलट-पुलट करने के बाद उसकी पुरानी घिसी हुई चादर निकाल लाई और बोली, "उठा। अब सिर पर रोटियों की टोकरी उठाने की कसर रह गई मेरी, बस।"

"तुझे ज्यादा ही खुजली हो रही है इंग्लैंड जाने की।"

"क्यों नहीं! सारी दुनिया को होती है। सारा दिन बैलों की तरह घूमते रहने से क्या बनेगा।" और पालकौर ने अपने दिल में दबे हुए सभी शिकवे-गिले पाखर सिंह को एक-एक कर सुना दिए। जितना उससे संभव हुआ वह भी बोला। लेकिन, वह दिल से पालकौर पर मरता था, इसलिए उसके दिल की बहुत-सी बातें बाहर न निकल सकीं। बात तो यह पाल कौर पर भी लागू होती थी पर उसके अंदर की आग बहुत तेज थी इसलिए वह लावा बनकर बह निकली थी।

बाहर गली में से गुजर रही बूढ़ी पंडिताइन उन्हें ऊंची आवाज में बोलते सुनकर खड़ी हो गई। फिर उसने दरवाजा खोला और अंदर आ गई। वह बोली, "क्यों तंग करता है लड़की को? तेरा नाम जपती रही और कभी आंख उठाकर इधर-उधर नहीं देखा। तू अब इसे दुखी करने आ गया। पागल न बन।"

"अब मेरा खून पीएगा, बाहर खेतों में मुझसे सिर पर रोटियां उठवाकर। अब खेती करने का शौक चढ़ा है। चादर लपेटता फिरता है। चला है खेती का कल्याण करने!"

पाखर सिंह से रहा नहीं गया। उसने पालकौर को थप्पड़ दे मारा। पंडिताइन ने आगे बढ़कर उसको अपनी बांहों में कस लिया। उन दोनों के शोर को सहन न करते हुए पाखर सिंह हवेली में लौट आया और चारपाई को नीम के एक छोटे-से पेड़ की छाया के नीचे खींचकर उस पर लेट गया। उसको इंग्लैंड में बिताए हुए दिन याद आने लगे। फैक्ट्री और बेकरी से घर लौटकर उस अकेले ने कई उदास रातें गुजारी थीं। पहले तो उसको इंग्लैंड का मौसम सावन जैसा सुहावना लगता था। लेकिन कुछ ही महीनों में उसको यह मौसम सावन की लंबी झड़ी जैसा लगने लगा था। कभी सूरज ही न निकलता। और उसने ऐसे ही दिनों में सपने बुने थे कि वह पंजाब लौटकर खेती करेगा। इसीलिए उसने खेत खरीदे थे और पालकौर को अपने पास नहीं बुलाया था।

लेकिन, पालकौर तो फिर से किसान की औरत बनने को तैयार नहीं थी। न ही उसका बापू चाहता था। वह चाहता था कि गिन्दा और निम्मा दोनों पालकौर सहित उसके साथ इंग्लैंड चले जाएं। 'तब क्या अब उसे जाना ही पड़ेगा?' यह सोचकर उसका अंतर कांप उठा। उसने छाया कर रहे नीम के पेड़ को देखना छोड़कर आंखों को अपनी बांह से ढक लिया। इस तरह वह कितनी ही देर तक पड़ा रहा। उसका मन स्कीमें बनाकर हांफ गया था। फिर उसको नींद आ गई।

जब उसकी आंख खुली तो पेड़ की छाया दूर जा चुकी थी। धूप में पड़ा वह पसीने से तर हो गया था। जिन दिनों वह आया था, वे ठंड के दिन थे।

अब तेज गरमी शुरू हो गई थी। उसने उठकर नल खींचा और डोलू से पानी पिया। फिर कपड़े उतारकर ठंडा पानी अपने बदन पर डालने लगा। पानी डालते हुए उसे महसूस हुआ कि उसकी समस्या सो लेने के कारण हल हो गई थी। इस ठंडे पानी ने गरमी से तपते उसके जिस्म को शांत कर दिया था। तो क्या अब उसको जाना ही पड़ेगा? हां, जाना ही पड़ेगा। फिर यहां खाली बैठने का क्या अर्थ था? खाली बैठने से तो कारूं का खजाना भी खत्म हो जाता है।

अगले दिन सुबह जब वह बाहर निकला तो उसको पड़ोसियों का मिंधा आता हुआ मिल गया। अपनी मोटर-साईकिल पर वह हर सुबह शहर जाया करता था। 'अगर पाखर सिंह को सीट बुक कराने के लिए शहर जाना ही है तो क्यों नहीं वह मिंधे के साथ मोटर-साईकिल पर चला जाए? बसों के धक्के खाने से तो बचेगा।' मिंधे को देखकर पाखर सिंह ने सोचा।

खेतों से लौटकर उसने बदन पर पानी डाला। फिर कुछ खाने के बाद उसने शहर जाने के लिए कपड़े डाले। इंग्लैड से लाई नई कमीज और पैंट पहनी तो उसे अपने आप अच्छा लगा। लेकिन जब उसे बेकरी में उड़ते हुए आटे की याद आई तो उसका मन एकाएक बुझ-सा गया। उसने क्षण भर को पालकौर की ओर देखा। उसके मुंह से अनायास ही निकला, 'हरामजादी यह सुअरनी भी गोरों की गालियां खाने को उछल रही है। इसे तब पता चलेगा जब फैक्ट्रियों के काम में इसके हड्ड टूटेंगे।'

शहर जाते हुए उसने मिंधे से उसके काम के विषय में पूछा। वैसे मिंधा उसको सुबह-शाम जरूर मिलता था, पर उसने उसके काम के बारे में कभी नहीं पूछा था। यह आदत उसे इंग्लैंड में पड़ गई थी—लोगों के बारे में अधिक बातें न पूछने की।

"हम मुर्गियों के चूजे निकालते हैं।"

"काम अच्छा चलता है?"

"नहीं भाई, यूं ही शगल है। पैसे तो पोलेट्री-फार्म वाले बनाते हैं।"

"अच्छा। कितने बच जाते हैं?"

"एक बर्ड के पीछे महीने का एक रुपया लगा लो। बर्ड चाहे दो हजार रख लो चाहे तीन हजार। पर पहले तो दो-ढाई सौ ही रखना चाहिए। आहिस्ता-आहिस्ता फिर और बढ़ा लो और फिर एक्सपीरियंस हो जाता है।" मिंधे की बातें सुनकर पाखर सिंह को खुशी हुई। उसने मिंधे के साथ मुर्गियां पालने और उनकी खुराक आदि के बारे में बातें कीं। उसका मन किया, अगर वह मुर्गियां ही पाल ले तो!

मिंधा पाखर सिंह को ऐजेंट की दुकान के सामने उतारकर चला गया। अंदर पहुंचकर उसको मालूम हुआ कि सरदार जी अभी नहीं आए। टाइपिस्ट लड़की ने उसे एक कुर्सी पर बैठ जाने के लिए कहा। उसके कहने में कुछ रूखापन था। 'ये विलायत की गोरी टाईपिस्टों का क्या मुकाबला कर सकती हैं? 'यस' कहते समय तो हंसना ही है, 'नो' कहते समय भी फूल-सी खिल उठती हैं वे।' फिर वह मिंधे के साथ हुई बातों के विषय में सोचने लगा। एक बार इंग्लैंड में रहते हुए उसने भी मुर्गीपालन के बारे में सोचा था। वहां उसके कुछ दोस्त उसके पक्ष में दारू के गिलासों के इर्दगिर्द बैठकर ऐसी ही बातें किया करते थे।

कुछ देर बाद ट्रेवल ऐजेंट का संदेश आ गया कि आज वह दफ्तर नहीं आएगा। पाखर सिंह उठा और टाइपिस्ट को कल आने को कहकर बाहर आ गया। फिर मिंधे के काम वाली जगह पर गया। इधर-उधर घूमते हुए उसको कुम्हारों का ठेला मिला जो कि लोगों का सामान लेकर उसके गांव जाया करता था। उसने मन बना लिया था कि वह मुर्गियां पालेगा। हवेली में उसके पास जगह भी बहुत थी। पालकौर को खेतों में सिर पर रोटियों की टोकरी भी नहीं ढोनी पड़ेगी। वह अपने बेटों को अपनी नजरों के सामने पढ़ा-लिखा सकेगा। वह विलायत जाने से हजार गुना अच्छा था। मिंधे ने उसको पूरी योजना बना दी। और मिलकर उन्होंने मुर्गियों के शैड्स के लिए सारा सामान खरीदकर ठेले पर रखवा दिया।

अब उसका मन प्रसन्न था। सारा दिन शहर में घूमते हुए बीत गया था। उसने रेहड़ी पर से बच्चों के लिए बहुत सारे फल खरीदे। पिक्चर हाल के पास से गुजरा तो उसका मन फिल्म देखने को हो आया। इंग्लैंड में रहते हुए वह कभी-कभी फिल्म देखने जाया करता था।

अंधेरा होने पर जब वह घर पहुंचा तो पालकौर के सिवा सब सो चुके थे। कोई बात किए बिना उसने पाखर सिंह के लिए खाना परोस दिया। ठेले पर आए सामान को हवेली में रखवा दिया गया था। इसलिए पालकौर को मालूम हो चुका था कि पाखर सिंह ने क्या किया था। वह बेहद घबराई हुई थी।

सुबह उठकर जंगल-पानी जाते हुए पाखर सिंह मिस्त्री को हवेली में जाकर काम शुरू करने के लिए कहता गया। सारा काम उसने मिस्त्री को समझा दिया था। सुबह की हल्की-हल्की ठंडी हवा ने और खेतों में कहीं-कहीं खड़ी फसलों की हरियाली ने उसको भीतर

मन तक छुआ। अब उसने अपने डोलते हुए मन पर नियंत्रण पा लिया था। 'अब मैं कभी नहीं डोलूंगा।' उसने सोचा। 'अब उसे गुलामी भरे जीवन से हमेशा-हमेशा के लिए छुटकारा मिल गया।' यह सोचते हुए वह वापस गांव की ओर मुड़ा।

हवेली में प्रवेश करते हुए उसने देखा, मिस्त्री काम में लगा हुआ था। एक ओर खड़ा उसका बापू यह सब देख रहा था। पाखर सिंह को अंदर घुसते देखकर उसके चेहरे पर आई गुस्से की लकीरें और गहरी हो उठीं। उसने खांसकर अपना गला साफ किया और बोला, "अब तू मुर्गे पालेगा?"

उस वक्त पाखर सिंह को अपने पैरों के नीचे से जमीन खिसकती प्रतीत हुई। पर उसने अपने मन को दृढ़ किया और कहा, "हां। खाली बैठने से बुरा नहीं।"

हरनाम सिंह ने गुस्से में आकर नांद के पास खड़े पशुओं के ईदगिर्द दो चक्कर लगाए। फिर बोला, "पहले तू इन्हें पालेगा। फिर जीव हत्या करेगा। अपने हाथ खून से रंगेगा। दस नाखुनों की कमाई अच्छी है कि जीव हत्या?"

पाखर सिंह कुछ न बोला। वहां अधिक देर तक ठहर सकना उसके लिए कठिन हो रहा था। चुपचाप घर जाकर वह बैठक में लेट गया। उसकी कल्पना में कई चित्र घूमने लगे। पिछले नौ वर्षों की गुलामी, हरनाम सिंह, पालकौर, गिन्दा, निम्मा और वह स्किनहैड। ''बास्टर्ड पाकी।'' वह बुदबुदाया और फिर उसे याद आया—वह अस्पताल का दृश्य। जहां उसके शरीर पर नलियां लगी हुई थीं। उसको महसूस हुआ जैसे वह अब भी अस्पताल के बेड पर ही पड़ा हुआ था। उसके अंदर से एक हूक-सी उठी—'जिया नहीं जाता। वहां गोरे नहीं जीने देते थे और यहां गिन्दे-निम्मे का भविष्य। बापू की भूख कहां जाए?'

पंछी बूढ़े नहीं होते

केवल सूद

सर्दियों में छुट्टी के दिन लान में कुर्सी रखकर बैठना उसे बहुत अच्छा लगता है।

कई दिनों बाद आज ऐसे बैठा तो अकस्मात दृष्टि सामने वाले दरख्त पर जा टिकी।

पतली-पतली पत्तियों वाले पीले-पीले फूलों के गुच्छे हवा में कांपते हुए अच्छे लगते थे। उसे लगा जैसे सदियों के बाद वह यह नजारा देख रहा हो।

इसी अहसास के कारण वह खुद को अजनबी-सा अनुभव करने लगा था।

क्या नाम है इस दरख्त का?

वह नहीं जानता।

अपने ही घर में पेड़-पौधों के नाम जो आदमी नहीं जानता, वह अजनबी नहीं तो और क्या होगा?

उसने शर्मिंदा होकर गर्दन झुका ली।

तभी एक चिड़िया की 'चीं-चीं' ने उसको अंदर से बाहर खींच लिया। वह उसी दरख्त पर पता नहीं कहां से आकर बैठ गई थी।

उसने देखने की कोशिश की, परंतु फूल-पत्तियों में कहीं कुछ पता न चला।

सोचा, एक छोटा-सा पत्थर उठाकर दे मारे तो वह 'फुर्र' से उड़ जाएगी।

चिड़िया को उसे यूं वहां से हटा देने का दुख शायद अधिक महसूस हो।

लेकिन, अगर कहीं उस समय मारा गया पत्थर उसकी टांग पर लग जाए तो उसको यह चोट लगने का दुख पहले दुख से बड़ा लगेगा और अगर..।

मगर उसने ऐसा कुछ नहीं किया और चिड़िया स्वयं ही उड़ गई और अपने झुंड में जा मिली।

चिड़ियों का यह झुंड इसी शहतूत के दरख्त पर रात व्यतीत करता है। सवेरे इस झुंड की एक चिड़िया धीमे से 'चीं-चीं' करती है और दो-तीन मिनट के अंतराल में ही एकदम सभी चिड़ियां 'चीं-चीं' करने लगती हैं।

ये चिड़ियां सर्दियों में भी घोंसला नहीं बनातीं। बस, एक-दूसरे के साथ जुड़कर बैठ जाती हैं और इस तरह रात कट जाती है। बहुत ठंड पड़ने पर कभी-कभार ही सुनने में

आता है कि पंछी मर गए हैं।

अपने लान में तो उसने कभी कोई चिड़िया मरी हुई नहीं देखी।

क्या चिड़ियां बूढ़ी नहीं होतीं? एक बार उड़ने के योग्य हो जाती हैं तो फिर उम्र भर उड़ती ही रहती हैं। जवानी और बुढ़ापे का कोई अंतर उनमें देखने में नहीं आता।

घर बसाना हो तभी ये घोंसला बनाती हैं। बच्चे जवान हुए और फिर आजाद।

बच्चे भी उड़ जाते हैं और ये मरने तक बड़े मजे से इसी अंदाज में उड़ती रहती हैं। न कभी एकाकीपन अनुभव करती हैं और न ही कभी बूढ़ी होती हैं।

संध्या, उसकी मां और उसकी मां की मां इसी तरह क्यों नहीं जी सकीं? वह सोचने लगता है।

कल संध्या अचानक बहुत दिनों बाद उसके सामने आ खड़ी हुई थी। सिर के एक-दो बाल सफेद हो गए थे, कुछ ही दिनों में। उसने महसूस किया कि ढलती उम्र वाली एक चिड़िया अवश्य ऐसी ही होगी।

"भोजन हो गया?" उसने पूछा।

"हां, हो गया।"

"कैंटीन में नहीं गई?"

"क्या करना था जाकर? खाना ही कितना होता है? दो स्लाइस थे और दही था। सीट पर ही खा लिया।"

उसको याद आता है...पिछले दिनों जब फोन करने गया था, डिब्बा भरकर चावल खाते हुए तो उसने स्वयं अपनी आंखों से देखा था। बीच में उबले हुए अंडे की फांकें भी थीं। लेकिन, उसने कुछ नहीं कहा।

संध्या बहुत मूडी है। क्या पता कब और क्यों नाराज हो जाए और मुंह फुला बैठे।

पिछले दिनों ऐसा ही हुआ था। पता नहीं ऐसा क्या हो गया था कि वह कई दिनों तक उसके साथ नहीं बोली थी। बोलना तो दूर रहा, आंख तक नहीं मिलाई थी। बल्कि कन्नी काटकर निकल जाती थी। कुछ इस अंदाज में कि यह भी न लगे कि जान-पहचान ही नहीं, और कुछ-कुछ यह भी कि नाराजगी तो है किंतु इतनी भी नहीं कि फिर बोलना ही नहीं है।

सुबह फोन करने गया था तो उसको विश नहीं किया था। लौटते हुए ख्याल आया था कि गड़बड़ हो गई है और हो सकता है कि संध्या फिर से बोलना बंद कर दे।

उसके बाद जब वह फोन सुनने गया तो उसने चोंगा उठाने से पहले नमस्ते की। संध्या ने मुस्कुराकर नमस्ते का उत्तर दिया।

लौटने लगा था तो उसने पूछ लिया, "मिसेज शर्मा से बात हुई?...उसे साड़ी पसंद आई?"

"नहीं, कुछ ऐसा हुआ कि बात ही नहीं हो सकी, बस आना-जाना ही लगा रहा।" वह झूठ बोल रहा था। असल बात तो यह थी कि वह बिलकुल ही भूल गया था। बल्कि भूला नहीं था, पत्नी ने भुला दिया था।

दिन में छोटी गुड्डी कहीं से एक पिल्ला उठा लाई थी। अब घर पहुंचते ही पत्नी उसके पीछे पड़ गई थी।

"भगाओ इसको, बाहर सैटी के गद्दे पर चढ़ा बैठा है। सुबह सब गंदा कर देगा। आज बड़ी मुश्किल से सारा फर्श साबुन से धुलवाया है।" वह कहती है, वह रोज-रोज ऐसा नहीं करेगी।

"उठते हो कि मैं भगाऊं इसे...?" वह दरवाजा खोलकर बाहर की ओर भागती है।

वह सोचता है, भगाना ही था तो दिन में ही क्यों नहीं भगा दिया।

कहता है, "अब रात के वक्त इतनी सर्दी में कहां भगाओगी इसे, बेगम?"

पत्नी ने कुछ नहीं सुना (सुनती ही कब है) और बाहर चली गई।

"क्या करती हो, भागवान?"

पत्नी ने मुड़कर बिफरते हुए कहा था, "तो इसे गद्दे पर से उठाओ।"

"उठाता हूं, बाबा। अभी तो आया है, थोड़ा आराम तो कर लेने दे।"

और फिर इसी चक्कर में सब कुछ भूल गया था।

अब संध्या को सब कुछ कैसे बताता? बात को टालते हुए कमरे से बाहर निकल आना चाहता था वह।

"घरवाली से पूछे बिना कुछ नहीं करना चाहिए।" संध्या ने कहा था।

करना चाहे भी तो क्या कोई पति कर सकता है? अजीब रिश्ता है यह ! और औरत तो उससे भी अजीब शै है—न छोड़े बनता है, न रखे।

अब संध्या अचानक आ गई थी तो लगा था कि सब ठीक है।

बात करने के मूड में थी।

उसकी सीट के सामने वाली कुर्सी की पीठ को पकड़कर वह खड़ी हुई थी।

"मां का क्या हाल है?"

"अच्छा है, सुबह साढ़े छह बजे बंद कर आती हूं, शाम के छह बजे जाकर खोल लेती हूं। घर में दूसरा तो कोई हैं नहीं जो देखभाल करे।"

संध्या अकेली रहती है।

"खाना?"

"थर्मस में गर्म दूध और कुछ सैंडविच या ऐसी ही कोई छोटी-मोटी चीज रख आती हूं।"

"खुद भी कुछ नहीं कर सकती?"

"खुद कुछ कर सकती तो बात ही क्या थी? वैसे अधरंग तो ठीक हो गया है। बाहर से कमरा बोल्ट न करके आऊं तो कुछ न कुछ करने लगती है। कभी कपड़े सुखाने के लिए डालने लगती है या कभी किचन में कुछ उठाने-रखने लगती है। होता कुछ है नहीं, बस यूं ही कुछ करते-कराते गिर पड़ती है। सिर फट जाता है। दो-तीन बार घर में ही डाक्टर बुलाकर टांके लगवा चुकी हूं। अस्पताल में से भी 'कोमा' की हालत में उठाकर लाई थी। ऐसे लोगों की तो डाक्टर भी परवाह नहीं करते। एक बार तो ऐसे करने लगी जैसे मरते समय कोई आदमी करता है। मैं वहीं थी, दौड़ती फिरी। कोई सुनता ही नहीं था। कहते—बुढ़ी मर रही है, ऐसी हालत में हम कुछ नहीं कर सकते। सो, उठा लाई। एक डाक्टर मेरी फ्रेंड है, उसे फोन किया। वह कहने लगी—इस हालत में से तो मैं निकाल देती हूं, आगे तू जानना। सो, तब से थोड़ा संभल गई। पर अब तो मरने तक इसी अवस्था में रहना है उसे।"

"अधरंग ठीक हो गया तो इसका मतलब है कि शरीर तो काम कर रहा है।"

"हां, शरीर तो काम कर रहा है। भूख लगती है। अच्छा खा लेती है। नींद भी आ जाती है। शुरू में डाक्टर ने नींद की गोलियां दी थीं। उसे वहम हो गया कि उसे गोली खाने से ही नींद आती है। अब मैं उसे एक दूसरी गोली दे देती हूं। वह समझती है कि नींद की ही गोली है। सो जाती है वह। सुबह उठकर कहेगी—देखा, तूने नींद की गोली दी तो मुझे झट नींद आ गई। वैसे अधिक नहीं बोलती। बस, कभी खाना देने में देर हो जाए तो चिढ़कर कहेगी—तू मुझे खाने को क्यों नहीं देती, भूखा मारना चाहती है? या कभी-कभी कहेगी—तू मुझे बाहर नहीं निकलने देती। अब भला मैं उसे कैसे समझाऊं कि तुझे बाहर कैसे निकलने दूं मेरी मां।"

"बाथरूम वगैरह जाना हो तो...?"

"अटैच्ड बाथरूम है। दो बैडरूम का फ्लैट है मेरे पास। एक कमरा उसके लिए ही बनवाया है। बाथरूम इतना नजदीक है कि खींच-घसीटकर भी जाना चाहे तो चली जाए। बाथरूम वगैरह की दिक्कत तो उस समय हुई जब अधरंग के कारण महीना भर बिस्तर पर ही पड़ी रही थी। दाईं ओर का अधरंग था। बिलकुल भी हिला नहीं जाता था। बिस्तर में ही पेशाब वगैरह सब कुछ...एक महीने की छुट्टी ली थी मैंने और उसे संभाला था।"

चाहता था संध्या से कहूं...बैठ जा, थक जाएगी। पर वह बातों में इतनी तल्लीन थी कि किसी भी प्रकार की रुकावट अनुचित होती। खुद वह और उसका एक सहकर्मी भी उतने ही ध्यान से उसकी बातें सुन रहे थे। कुलीग ने पूछा, "उम्र कितनी होगी?"

"उम्र तो कोई अधिक नहीं। 65-66 साल की होगी। असल बात तो यह है कि बीमारी के कारण दिमाग की नसें बिलकुल ड्राई हो गई हैं। किसी बात में कोई दिलचस्पी नहीं रही। दिमाग बिल्कुल ब्लैंक हो चुका है। अपना वजूद भी कुछ होता है। अपने आप को पहचाना ही नहीं कभी। किसी काम में दिल नहीं लगता...शुरू से ही अपने हाथ से कभी

कुछ किया नहीं। नौकरी करती थी तो भाई की पत्नी या बच्चे सब काम कर देते थे। न खाना पकाना आया, न सीना-पिरोना। सब कुछ पढ़ने में भी मन नहीं लगता था। डाक्टरों ने कहा—मैंटल अस्पताल में भर्ती करवा दो। पर मेरा मन नहीं माना। हालत और अधिक खराब हो जाने पर मेरे पास आ जाएगी तो मैं क्या करूंगी?...मुझे भी तो नौकरी करनी है।"

"कब से ऐसी हालत है, संध्या?" उसे कुछ याद आ रहा था।

"तीन-चार साल से।"

"कारण क्या वही बात है जो तूने बताई थी?" वह संध्या की आंखों में झांकते हुए पूछता है।

"हां, वही।"

वह बात उसे अधूरी-सी याद है...

संध्या ने बताया था, अचानक चिट्ठी आई कि बाबू मरने वाला है, आकर देख जाओ। यह चिट्ठी संध्या के बाप के बारे में थी जिसको उसकी मां वर्षों पहले मरा हुआ समझ बैठी थी। पिता ने अहसास ही कुछ ऐसा दिया था। मां ने सब्र कर लिया था।

चिट्ठी आई तो मां जिद्द पकड़ बैठी—चल, उसे देखने चल। संध्या ने बहुत समझाया—अब जाकर क्या करोगी, तेरे लिए तो वह कब का मर चुका है।

मां नहीं मानी और संध्या को उसे लेकर जाना ही पड़ा।

बाबू हरिद्वार के किसी आश्रम में पड़ा।

मां ने उलाहने भरी नजरों से मर रहे बाबू की ओर देखकर कहा, "तूने मेरे साथ ऐसा क्यों किया? जाना ही था तो मुझसे कहकर चले जाते। इतने साल इकट्ठे रहे, तूने मुझे इस योग्य भी न समझा।"

और बाबू ने बिना कुछ कहे आंखें बंद कर लीं।

इधर बाबू ने आंखें बंद कीं, उधर मां ने जिंदगी से आंखें फेर लीं। किस्सा खत्म। दोनों जने बंगला कथा-साहित्य के पात्र बनकर रह गए।

उधर संध्या बची।...उसने भी विवाह न किया। दादी बंगला-देश में मर रही थी।

संध्या कह रही थी, "असल जड़ तो एकाकीपन है। बूढ़ों को कोई नहीं पूछता। अपने सुख में किसी तरह का दखल कोई नहीं चाहता। न बेटा, न बेटी। यहां तक कि कोई दुख भी नहीं बंटाना चाहता। इतना भी नहीं किसी से होता कि हाल-चाल ही पूछ ले। बाहर वाला कोई पूछने लगे तो घर वाले कह देते हैं—छोड़ो, ये तो यूं ही बोलते रहते हैं...एक ओल्ड हाउस बनवाने की सोच रहे थे, पर एक से क्या होगा?"

"इस 'ये' में कौन-कौन शामिल था, संध्या?" वह पूछना चाहता था।

आज वह बैठा सोच रहा था, नहीं, कुछ नहीं होगा...न एक से...न सौ से। क्योंकि

संध्या ने बताया था, उधर बंगला-देश में दादी मां भी अकेली है, क्या होगा उसका?

उसके अंदर बैठा बूढ़ा आदमी पूछना चाहता है—खुद तेरा और मेरा भी क्या होगा, संध्या?

तभी, एक और चिड़िया दरख्त पर आकर बैठ गई और 'चीं-चीं' करने लगी।

इस बार उसको उड़ा देने या जख्मी कर देने के विषय में वह नहीं सोचता है बल्कि उसको अपने अंदर कहीं छिपाकर रख लेने की सोचता है...।

गुमशुदा

कृपाल कजाक

बाबा नन्हें नाथ शंख फूंकने ही वाला था कि अचानक चांद कौर प्रकट हुई।

"दुष्ट का नाश...भजन का प्रताप...अड़े सो झड़े...बोले सो निहाल...।"

उसने जैकारा लगाया। नन्हें नाथ कांप उठा। हरिओम...हरिओम...। घबराकर मंदिर के चबूतरे पर ही बैठ गया। पैरों के तलुवों में से आग निकलने लगी। लरजते हाथों में से शंख नीचे जा गिरा। उसने पीपल के अंधेरे में दृष्टि गड़ाकर देखा। वहां कुछ नहीं था। डेरे से कोचरी (उल्लू जाति का एक पक्षी) बोली। कांपते दिल से वह फिर उठ खड़ा हुआ। शंख उठाया, लंगोट को सही किया और त्योरियां कसते हुए जाप करने लगा।

"जै शिव।..." वह बुदबुदाया।

मंदिर की चौखंडी में से सड़ी चिकनाई और लस्सी की बास उठती थी। उसने जल्दी-जल्दी तकीए का फाटक बंद किया और बाहर वाले छज्जे पर से बड़ी कलछी उठाकर, धूनी की ओर दौड़ा। मर्यादा के विपरीत, उसने चिमटा उठाया, कलछी में अंगियार भरे और उसके ऊपर गुगल छिड़ककर आरती करने लगा।

वह रुक गया। छप्पर के नीचे से लीद की तीव्र दुर्गंध आई। गुगल के सुलगने के बावजूद उसने नाक को बाईं हथेली के नीचे ढक लिया। लेकिन वह तेज कदमों से आगे बढ़ गया और अपने आपको धुएं में लपेटते हुए धूनी देने लगा। तकीए का चौफेरा...कुटीर आसन...मंदिर की चौखंडी...। छप्पर की ओर लौटा ही था कि अटक गया। आगे चांद कौर खड़ी थी। वह बुझ-सा गया और सुलगती कलछी धूनी के काले धुएं पर ही उलटकर वहीं धूनी के पास बैठ गया। अनमना-सा होकर शंख फूंकने लगा, लेकिन उससे जोर से फूंका नहीं गया और शंख घिघियाकर रह गया। ऐसी संयमहीनता पाप थी। नन्हें नाथ को दुख हुआ। उसे लगा, उसका चित्त शांत नहीं था और उसके हाथ लगातार कांप रहे थे।

भोजन भंडार की ओर से घड़ियाल का अंतिम गजर बजा तो वह अंतरश्चेतना में सिमरन करता हुआ धूनी के समीप ही ढेर हो गया। कसा हुआ लंगोट चुभने लगा। उतरती सर्दियों का पहला पखवाड़ा था। धूनी में से उठता धुआं आंखों के कोयों में जलन पैदा करता था। उसने उचाट मन से चिलम भरी और उसे दोनों हथेलियों में भींच, ऊपर-नीचे लंबे कश

खींचे। उसे लगा, ठिठुरती रात आहिस्ता-आहिस्ता उतर रही थी।

अकस्मात, बाहर चुंगी के निकट आहट हुई। वह ठीक होकर बैठ गया।

श्रद्धालु थे। "जै हो...।" नन्हें नाथ ने सुख को सांस ली।

नजदीक आए तो पता चला, शेर माजरे वाला करतारा और सीता नूनगर था। निरे ऐबी। नन्हें हाथ के जेहन में पिछले दो दिनों में घटित हुई सारी घटनाएं बिजली की-सी तेजी से कौंध गईं। कोई और समय रहा होता तो उनके आने पर उसकी ओर झांकता भी नहीं, लेकिन तब वह उन दोनों को माथा टेककर लौटते और चरनामृत के लिए रहट के पवित्र हौद में से आगे-पीछे चुल्लू भरते देखता रहा। लेकिन जैसे ही वे जाने के लिए लौटे, ठिठक गए।

साइकिलों के ऐन बीच में चांद कौर खड़ी थी। "दुष्ट का नाश, भजन का प्रता..." वह भयभीत कर देने वाले स्वर में बोली। बाल खुले, फटे हुए कपड़े, हाथ में म्यान समेत तलवार।

दोनों कांप गए। चांद कौर का विकराल रूप आंखों के आगे घूमने लगा।

"माफी दे भक्तिन...सेवक हैं तुम्हारे...।" करतारे ने हाथ जोड़ दिए।

चांद कौर टल गई। दोनों ने शुक्र मनाया। तभी धूनी के पास देवगिर आ खड़ा हुआ, "लाऊं जी?"

"नहीं।" नन्हें नाथ गुस्से में बोला, लेकिन साथ ही तेज भूख के कारण उसका दिल बैठने लगा। देवगिर खामोश लौट गया तो चारों ओर का वातावरण चुप्पी में डूब गया। वैसे भी तकीए की शांति प्रसिद्ध थी। एक तो तकीए का वातावरण ही ऐसा था, रही-सही कसर नन्हें नाथ पूरी कर देता। लोग कहते थे, तकीए की प्रसिद्धि पर किसी को शक नहीं। कोई एक बार आकर माथा टेकता, संसार में उसका दस बार सिर ऊंचा होता। लोगों ने ऐसे करिश्मे अपनी आंखों से देखे थे। सड़क पर जाती हुई लारी अचानक खराब हो जाती। जब तक सवारियां उतरकर रहट से पानी पीतीं, इंजन स्टार्ट हो गया होता।

एक बार, नूरपुर का लद्धा सिंह गुड़ का गड्डा लेकर गुजरा।

"क्या लाद लिया?" अपना पीछे का जीवन छिपाने के विचार से नन्हें नाथ बांगडुओं की तरह बोला।

"पांडु मिट्टी है, बाबा जी!" लद्धा सिंह बोला।

मालूम तब हुआ जब लद्धा सिंह किल्ले पर भी न पहुचा, एक काली-सी बदली इतना नीचे होकर बरसी कि सारा गुड़ मिट्टी बनकर बह गया।

"दूध चौधरी कैसे?" नन्हें नाथ ने एक बार सहज ही पूछा।

"सब फंडर[1] माल है, बाबा जी!" गूजरों ने बात भी पूरी न होने दी।

---

1. वह गाय या भैंस जिसने दूध देना बंद कर दिया और और फिर गाभिन न हुई हो।

उस रात पशुओं के झुंड में दो बछिया गाभिन हुईं। एक काग गर्भ गिर गया, दूसरी मर गई। नन्हा नाथ जानता था, यह इत्तफाक था। लेकिन लोग कहते, 'नहीं, यह करामात है।' इसीलिए पूरे इलाके में तकीया और नन्हें नाथ दोनों प्रसिद्ध हो गए थे। दिनों में ही तकीया आबाद हो गया था। देखते-देखते ही रहट की चरखी, चौफेर की मेंढ़, भोजन-भंडार, और राहगीरों के लिए कुटीर आसन पर छप्पर पड़ गया था।

तकीए के चारों ओर पेड़ों का सघन झुंड था जिसकी सघन छाया हर आने वाले को अपने सख्त घेरे में समेटे रहती। इस जगह के कारण ही तो नन्हें नाथ को न कभी गरमी कष्टकर प्रतीत हुई, न सर्दी लेकिन समय बदल चुका था। कल ही गांव में कत्ल हुआ था। उसे चांद कौर की याद आई और उसका अंदर-बाहर किसी भय से भर उठा। उसे लगा, जब से चांद कौर ने उसके कानों में से बालियां खींची थीं, उसकी शक्ति जवाब देती चली गई थी।

अकस्मात पदचाप सुनाई दी। चांद कौर थी। शायद, भोजन छककर लौटी हो। फिर वह बेधड़क तकीए की ओर बढ़ी और छप्पर के नीचे जाकर पड़ गई। नन्हें नाथ घबराकर चांद कौर और चिराग की कांपती लौ की ओर देखने लगा।

चांद कौर ने अपना सिर चढ़ावे में चढ़ाए गए नमक और झाड़ुओं के ढेर पर टिका लिया था। ऊपर टाट ओढ़कर लंबी तान ली। चांद कौर नहीं जानती थी, उसके सिर के पास से ही चींटियों की एक लंबी कतार गुजर रही थी जो ऊपर छत पूरी न पड़ने के कारण अनाज के दानों को चाट रही थी। कभी चांद कौर भी, कल की चिंता में ऐसी ही घूमा करती थी, पर आज...

देवगिर नन्हें नाथ के पास आ खड़ा हुआ। लेकिन तभी कुछ याद आ जाने पर वह बाहर के द्वार बंद करने चला गया। लौटकर धूनी के पास आ खड़ा हुआ। झिझकता-सा। ड्यूटी के तहत उसने गुरु की तंबाकू की पोटली टटोली, संन्यासी नमस्कार किया, त्रिशूलको स्पर्श किया और भभूत को कानों से लगाते हुए नन्हें नाथ की ओर देखा। कल से ही वह गुरु जी के बदले-बदले व्यवहार को देख रहा था।

"और आदेश, महाराज!" उसने सांस रोककर कहा।

कोई और समय होता तो नन्हें नाथ सोने से पहले उसको ध्यान लगाने को कहता। लेकिन, अब उसने निःश्वास लिया, "हरि हर...।"

देवगिर सोने के लिए लौटा तो नन्हें नाथ कुछ कहते-कहते रुक गया। फिर असमंजस में बोला, "सुनो।"

नन्हें नाथ को पीड़ा हुई। ''उस ससुरे ने देख लिया, कहीं...?'' नन्हें नाथ ने बात बीच में ही छोड़ दी। लेकिन बछेरे का विचार आते ही उसके बदन में सिहरन-सी उठी और वह पूरा का पूरा किसी बेचैनी से घिर गया।

आखिर, क्या होता जा रहा था उसे? उसने तड़पकर सोचा। क्यों उसका स्वयं पर नियंत्रण नहीं रहा था? फिर उसे अकारण ही दोपहर की घटना स्मरण हो आई।...

कोई शहरी परिवार साथ वाले गांव में सती मंदिर में माथा टेकने आया तो तकीए पर भी सिर झुकाने आ गया था। किसी को मालूम ही नहीं था कि क्या हुआ, नन्हें नाथ पागलों की भांति आसन पर से उठा और बिना किसी कारण से छप्पर के नीचे बंधे बछेरे को पीटने लगा। लकड़ी की 'बैरागन'[1] से ही।

शहरी परिवार में जवान लड़के-लड़कियां भी थीं। नन्हें नाथ की कंबली उतरकर नीचे गिर पड़ी। लटें सन की रस्सियों की तरह हवा में उड़ीं। लंगोट कूल्हे पर से भी नीचे खिसक गया। शहरी बच्चे किलकारियां मारते हुए दूर भागे। उन्होंने शर्माते हुए एक-दूसरे की ओर देखा और मंद-मंद मुस्कुरा उठे।

मार से बछेरा लीद में ही गिर पड़ा था। जैसे नन्हें नाथ की वर्षों की तपस्या ही मल-मूत्र में जा गिरी हो। गालियां हवा में तैरने लगीं। श्रद्धालुओं की भीड़ ने नन्हें नाथ की ओर अचंभे से देखा। तब से लेकर अब तक, नन्हें नाथ के सिर पर काल का ऐसा पहरा रहा था कि कदम-कदम पर मर्यादा भंग होती चली गई थी! यह घोर पाप था।

कभी मर्यादा का उल्लंघन नन्हें नाथ को थर-थर कंपा जाता था। उस भय को या तो वह याद ही नहीं करना चाहता था, या भूल ही चुका था। वह तो शायद यह भी भूल चुका था कि वह किसी भूमिहीन जट्ट का डरपोक बेटा था। पांच बेटियों के बाद जन्मा बेटा, मां-बाप की अंतिम संतान, जिसका बापू लाभा शराबी, गुरबत का ऐसा श्राप लेकर पैदा हुआ था कि जिसके पहले कोप ने ही नन्हें नाथ को बूढ़े कलाल का सीरी[2] बना दिया था।

तब नन्हें नाथ के गौने के दिन थे। तब वह नैनू था। शराबी लाभे का बेटा नैनू।...लाभे के सिर पर इतना कर्ज था कि बूढ़े कलाल के दो छड़े भाइयों का नैनू की दो जवान बहनों के संग रिश्ता करने के बाद भी नहीं उतरा था। रहा नैनू का सीर, वह तो ब्याज भी नहीं लौटाता था।

बूढ़ा कलाल निर्दयी था। जितना कोई धन-दौलत वाला हो सकता था। पांच बेटियों के बाद होने के कारण नैनू लाड़-प्यार में पला था। बहनें भाई को जमीन पर न उतरने देतीं और वह कभी-कभार ही काम में हाथ बंटाता था। बूढ़ा कलाल काम करने वाले की हड्डियों को अधिक से अधिक निचोड़ कर सत्त निकालने का आदी था। लेकिन जब नैनू ही नहीं बल्कि उसकी गौने की रंगीन रातें तक बूढ़े की दमन-नीति का शिकार हुईं तो नैनू के भीतरी जट्ट ने लाठी उठा ली। बात 'तू-तू, मैं-मैं' पर से होती हुई बेटी-बहन की....से

---

1. अंग्रेजी अक्षर 'टी' के आकार की लकड़ी जिस पर साधु लोग बांह टिकाकर बैठते हैं।
2. वह आदमी जिसे किसान कुछ हिस्सा देकर काम पर रख लेता है।

भी आगे बढ़ गई।

बूढ़ा सामर्थ्यशाली था। अपनी हेठी का मूल्य मनवाना जानता था। नैनू के लिए दो ही रास्ते थे। बाप का कर्जा उतारे या फिर अहसान का मोल। लेकिन उसने पासा बदलकर तीसरा ही रास्ता ढूंढ लिया।

गांव वालों की आंखों से छिपकर वह स्टेशन की ओर चला गया था। दो बार स्टेशन पर से गाड़ियां गुजरी थीं लेकिन वे रुकी नहीं थीं। हारकर वह प्लेटफार्म पर बैठी साधुओं की एक टोली के समीप जा खड़ा हुआ।

साधु मालूम नहीं, सर्वज्ञानी थे या फिर उन्हें दया आ गई। उन्होंने खाने के लिए भोजन दिया और आधी रात को गठरी उठाकर चलने को कहा। अर्द्ध-निद्रा में नैनू रेल के डिब्बे में चढ़ा और बीच रास्ते में ही बैठ गया। नैनू को जैसे वर्षों बाद सोने का अवसर मिला था। बैठते ही वह गहरी नींद में सो गया। जब उसकी नींद टूटी, वह हरिद्वार के स्टेशन पर था। बाद में ज्ञात हुआ, टोले का बड़ा साधु कनखल में रहता था, ऐन पहाड़ की कंद्रा में–दिगंबर नाथ। एकदम प्राणायामी...। कहते हैं, मुंह के रास्ते कपड़ा ठूंसकर गुदा के रास्ते बाहर निकाल देता वह। श्वांस खींचकर कंठ में ले जाता। आठवें पहर अन्न मुंह को लगाता। आंखें मच रही होतीं। मुख पर नूर होता। मठ में बीस साधु थे–नंगे, लंगोट लपेटे और ऊपर से भूरे। सुबह-शाम लंगर लगता, लेकिन वितरण के समय बड़ा साधु स्वयं पंगत के मध्य खड़ा हो जाता। सामने भोजन परोसकर ध्यान धरने को कहता। किसी चेले का अंतर्ध्यान भंग होता तो लोहे की जंजीर कोड़े की भांति बरसती। और इस तरह, लंगर-पानी की सेवा में लगे नैनू की भूख, मरते-मरते मर ही गई थी। पौष-माघ की ठिठुरती रातों में जलधारा शुरू होती। जेठ-आषाढ़ में धूनियां तपतीं, इस प्रकार आने वाली नींद नैनू की जागती आंखों में हमेशा-हमेशा के लिए जमकर रह गई।

जिस दिन वह नैनू से नन्हें नाथ बना, सूए से कान छेदते समय बड़े साधू ने शर्त रखी, "पीड़ा से ऊपर उठना।"

चलीहा प्राप्त होने पर चार पहर शीतल जल में नग्न खड़ा रहता, चार पहर अपने गुप्तांग को धूनी की मद्धम आंच में दबाए रखता और इस प्रकार चलीहे के दौरान ही भूमिहीन जट्ट का बेटा नैनू, मरते-मरते बिलकुल ही मर गया था और उसके स्थान पर जन्म हुआ–नन्हें नाथ का।

जिस दिन नन्हें नाथ को 'बालियां' पहनाई गईं, बड़े साधु ने पांच वचन लिए।

"देखो !" उन्होंने धूनी की ओर संकेत किया, "काम, क्रोध की अग्नि को वश में करना। केवल अंतरात्मा को सुनना। इच्छा, मांस, मदिरा, सब वर्जित।" फिर जैसे क्रोध में बोले, "गृह और गृहस्थ बस विष्टा...और अंतिम वचन सुनो, नौ इंद्रियों का भोग नरक का भोग...दसवां द्वार ब्रह्म का जोग।" फिर उन्होंने नन्हें नाथ के केशों में गंगाजल और

धूनी की भभूत छिड़कते हुए अंतिम वाक्य कहा, "जाओ, सिमरण और भ्रमण करो...आज से तुम मुक्त हुए।"

और, आज जिस भक्ति की उपाधि पर वह पहुंचा था, वह उसकी आंखों के सम्मुख थी।

वैसे, मठ छोड़ने के बाद भी वह बहुत कश-म-कश में से गुजरा था। कहां कनखल और कहां पैतृक गांव से कुछ कोस हटकर यह तकीया। चन्नन नाई ने पहली दृष्टि में ही उसे धूनी पर बैठे हुए पहचान लिया था। यहां तक कि अगले दिन ही बच्चे को गोद में उठाए गुलजारो उसके सिर पर आ धमकी।

तकीया किसी पीर का था, किंतु नन्हें नाथ ने हिंदु होने के कारण कुछ हटकर मंदिर की चौखंडी खींचकर धूनी जमा ली थी जिससे मंदिर और तकीए का मिला-जुला रूप डेरा कहलाने लगा था।

पति को इस हाल में देखते ही गुलजारो अवाक रह गई। सिर पर जटाएं, रंग धुआंसा, हाथ में चिलम, कमर के नीचे लंगोट, नंगा बदन, उलझी दाढ़ी और मुख में हरिओम...हरिओम....।

गुलजारो का भीतर-बाहर बुझ गया। उसका नैनू कहां था? अपने दुर्भाग्य पर उसको बहुत रोना आया। दुनिया के लाख कहने पर भी नैनू की मृत्यु के बारे में उसकी अंतरात्मा नहीं मानती थी। नैनू के चले जाने के तीसरे महीने ही उसने स्वस्थ्य और सुंदर-से बेटे को जन्म दिया था जिसे नैनू के जीवित होने की उसने लंबी-लंबी लोरियां सुनाई थीं।

एक पल तो नन्हें नाथ के रूप में नैनू के होने का गुलजारो को विश्वास ही नहीं हुआ। लेकिन रह-रहकर उसके अंदर से आवाज उठती, 'गुलजारो! यही है तेरा चोर...'।

साहस कर वह नन्हें नाथ के बिलकुल सामने जा खड़ी हुई।

"तू तो बना फिरता है रमता...बोल, मैं किस कुएं में जा गिरूं?"

नन्हें नाथ कांप उठा। जटाएं बोझ प्रतीत हुईं। भभूत मिर्चों-सी काटने लगी। लेकिन वह संभल गया। उसने दृष्टि भरकर गुलजारो की ओर देखा—गुंथा हुआ शरीर....चढ़ती उम्र... प्रसव के बाद वह और भी भर गई थी। नन्हें नाथ ने सोचा, ऐसी औरत को पीठ दिखाकर उसने आत्महत्या जैसा पाप किया था।

वह मोह से भर उठा। देह भट्टी की तरह तपने लगी। माथे में कुछ ठक-ठक-सा बजने लगा। अपराधियों की भांति वह तकीए की ओट में जा बैठा।

"रब की खातिर चली जा।" उसने हाथ जोड़े।

गुलजारो सिसकियां भरकर रोने लगी। कई वर्षों से उसने औरत की इतनी निकटता अनुभव नहीं की थी। आवेश में आकर उसने गुलजारो को बांहों में भर लिया।

"हरिओम...हरिओम..." उसने सिमरन करना चाहा। लेकिन उसके सिमरन का

एक-एक श्वास जैसे गुलजारो की गुनगुनी सांसों में से ही निकल रहा हो। सांसें, जिन्हें वह स्वयं के बहुत निकट अनुभव कर रहा था।

"और नहीं तो बच्चे की ओर से ही देख।" गुलजारो हिचकियां भरती हुई बोली।

परंतु नन्हें नाथ को कुछ भी दिखाई नहीं दिया। जब उसे होश आया, वह गुलजारो की गोद में पड़ा था। जैसे उसकी पवित्र तपस्या ही निष्ठा में गिर पड़ी हो। बच्चा रो-रोकर थक गया था। जैसे दिगंबर नाथ ही रो रहे हों।

गुलजारो सोच रही थी, कुछ देर पहले नन्हें नाथ को देखते ही जिस घृणा का अहसास उसे हुआ था, नन्हें नाथ का बदन चूमते हुए वैसा अनुभव क्यों नहीं हुआ?

नन्हें नाथ ने अनुभव किया कि जटाएं उसके शरीर में चुभ रही थीं और भस्म एक अजीब-सी चिपचिपाहट पैदा कर रही थी। उसने दृष्टि भरकर गुलजारो की ओर देखा। तकीए की जर्द रोशनी में वह नग्न पड़ी थी। नन्हें नाथ के सिर में से कोई गुबार उठा और आंखों के आगे कालिख फैल गई। फिर एकाएक महसूस हुआ जैसे जिस नैनू को वह बहुत समय पहले दिगंबर नाथ के मठ में छोड़ आया था, उसके पास ही कहीं खड़ा था।

"भेद न खोलना किसी के आगे...न ही खर्चे-पानी की कमी महूसस करना तू। बस, जब मन करे, चक्कर मार जाना।" नन्हें नाथ ने दुलारते हुए कहा था।

"क्या कहा?" गुलजारो शोले की तरह भड़क उठी, "तू समझता है, लुक-छिपकर बीवी बनी रहूं तेरी? बल्ले ओए साधु !" फिर वह चीखकर बोली थी, "इन नोटों का लालच देता है?...उठा ले अपने।" और नोटों को उसके मुंह पर फेंक तुरत-फुरत कपड़े पहन, दूर तक बड़बड़ाती चली गई थी वह।

वह दिन और यह दिन, न कभी गुलजारो लौटकर आई थी, न नन्हें नाथ ने किसी दूसरी औरत की परछाईं धूनी पर पड़ने दी थी।

नन्हें नाथ से तो चांद कौर का डेरे में आकर टिकना भी सहन नहीं हुआ था।

चांद कौर, जो 'बीक्हियों' की बहू और कुंदू मजहबी[1] की बेटी थी। गरीब बाप की वह बेटी जो किस्मत के आगे वेदी पर ही बिक गई। गरीब बाप किसी जट्ट के खत्म हो गए कत्ल-केस में जा फंसा। मां तारीखें भुगतती हुई मर गई। ले-देकर एक नशेबाज मामा बचता था, उसने चांद कौर के गदराए अंगों की कीमत ले ली। केवल बेचा ही नहीं, एक तरह से 'बीक्हियों' की भूखी ह्वश में झोंक दिया।

बीक्हियों की पैतृक भूमि न होने के बराबर थी। इसलिए कोई अच्छा रिश्ता लेकर उनके दरवाजे पर नहीं आया था। आखिर, मोल का आक चबाना पड़ा था। आक भी ऐसा कि कहने को तो चांद कौर दुर्बल गिट्ठल के हिस्से में आई थी पर थी वह पांचो की पांचाली ही। दिन में घर का गोबर-कूड़ा, रात तेज भूख की वहशत। लेकिन उसके आने के कुछ

1. निम्न जाति का सिक्ख।

माह ही गुजरे थे कि एक रात उसके दोनों जेठ सोए-सोए ही हमेशा के लिए सो गए। सुबह लोगों का शोर उठा कि किसी ने कुछ देकर मार दिया है। किसी ने कहा—ईश्वर की मर्जी। किसी ने कहा—भाइयों के शरीकों ने रास्ता साफ कर लिया है। बहुतों ने कहा—चांद कौर का कुकर्म है। रही-सही कसर, दूर-दराज के रिश्तेदारों ने पूरी कर दी, बीव्हियों के घर बसने के कारण जमीन जिनके हाथ आते-आते रह गई थी। लेकिन इस भांति-भांति की दंतकथा में चांद कौर उनकी दाढ़ के नीचे आ गई और बात चांद कौर की अस्मत उतारने पर समाप्त हुई।

तब से, कहते हैं, बेचारी का दिमाग हिल गया। कुछ समय तक गांव की गलियों में दर-दर की ठोकरें खाती रही। फिर गुरुद्वारे में जा बैठी। बाद में तकीए पर डेरा डाल दिया। अब या तो तकिया है या चांद कौर है। मन हुआ, किसी से बात कर ली। मन किया, अकड़ गई। जिधर मन किया, झांकती रहती, अपलक। बिल्कुल पागलों की तरह। नन्हें नाथ डर जाता। आधी रात को रहट पर नहाने लगती, अलफ। नन्हें नाथ के तलुवे गर्म हो उठते। उसे गुलजारो की याद आती। घर और बेटा याद आता। अंदर से हूक उठती, शेष बची रात रेंग-रेंगकर आंखों में से गुजरती। कभी लगता, वह कोई कष्टदायी श्राप भोग रहा था। कभी लगता, थोथी मर्यादा के घुप्प अंधेरे में वह यों ही एक दिन गुम हो जाएगा।

एक के बाद एक घटित हुई घटनाओं ने तो यह विश्वास और दृढ़ कर दिया था।

बहुत समय से तकीए पर नमक और झाड़ुओं का चढ़ावा चढ़ता आ रहा था। नाथ होने के कारण नन्हें नाथ ने तकीए के समीप ही मंदिर की चौखंडी भी बना दी थी। तकीए और मंदिर दोनों की वह धूपबत्ती करता। वैसे तकीए पर मुर्गे और भेंड़ चढ़ते और अन्नदाना। नन्हें नाथ के लिए तो मांसाहारी भोजन भी वर्जित था। पर एक रात तकीए के बाहर कोई श्रद्धालु घोड़ी का बछेरा बांध गया। बछेरा क्या बांधकर गया, एक प्रकार से काल बांध गया।

वर्षों से नन्हें नाथ विरक्त रहा था। गुलजारो के चले जाने से उसका अंदर-बाहर एकाकीपन से भर उठा था। अवसर मिलने के बावजूद उसने कभी सड़क की ओर भी नहीं झांका था। मस्तिष्क के अंदर उठती हर तरंग को उसने बड़ी निर्दयता से धूनी में झोंक दिया था। जैसे अंदर के नैनू को चिता में झोंक दिया हो। इसलिए नहीं कि वह किसी मुक्ति के लिए जूझ रहा था, बल्कि इसलिए कि किसी छोटी-सी तृष्णा से ही उसके मन और तन का आसन डोलने लगता था।

लेकिन, बछेरा नन्हें नाथ का नहीं था कि उसे वह जैसे मन चाहता, हांक लेता। जैसे ही कोई घोड़ी-तांगा सड़क से गुजरता, बछेरा कान उठा लेता। हवा सूंघने लगता, खुरों को पटकता, पैरों में बंधी रस्सी को खींचता और उसके शरीर की कामोत्तेजित थरथराहट सहवासी थिरकन से तड़प उठती।

ऐसे ही किन्हीं क्षणों में खुर नन्हें नाथ की छाती पर बजने लगते। एक कंपकंपी नन्हें नाथ के वजूद से गुजरती और लपटों में डूबने लगती। नन्हें नाथ के लिए सब कुछ असह्य हो उठता। कभी मन में आता, चढ़ावे की अन्य वस्तुओं की तरह बछेरे को भी किसी को बेच दे। लेकिन हिम्मत नहीं पड़ती। नन्हें नाथ के लिए किसी भी वस्तु के प्रति आसक्त होना वर्जित था। लेकिन बछेरे की ओर देखते हुए वह कुछ का कुछ सोचने लगता। सिमरन पर बैठता तो कानों में अनहद शब्द की ध्वनि के स्थान पर बछेरे की हिनहिनाहट गूंजने लगती। वह सोचता, बछेरे को तो छप्पर के नीचे से सड़क भी दिखाई नहीं देती थी, फिर भी वह सड़क पर से गुजरते किसी तांगे-घोड़ी के बारे में जान जाता था। लेकिन, नन्हें नाथ को तो बहुत कुछ दिखने के बावजूद कुछ नहीं दिखाई देता था। फिर वह दुखी होकर सोचता, गुलजारो को भूलने की कोशिश में वह कितना कुछ भूलता चला गया था। इसीलिए उसकी उचाट आंखें, अकारथ ही कुछ न कुछ ढूंढती रहतीं। कई बार उसे ज्ञात ही न होता, इस अंधी भटकन में वह क्या ढूंढ़ रहा था। मुक्ति?...शांति?....चांद कौर या गुलजारो?

परंतु, चांद कौर तो अचानक एक दिन गायब हो गई। किसी ने उसे गुरुद्वारे के अहाते में घड़ी भर के लिए देखा और बस...। फिर पता ही न लगा, किधर गई। पांव में मर्यादा की बेड़ियां न डली होतीं तो नन्हें नाथ स्वयं ढूंढने चल पड़ता। लेकिन, उसका मोह तो जग की किसी भी वस्तु के लिए वर्जित था।

चांद कौर की डेरे में उपस्थिति नन्हें नाथ को कभी भी अच्छी न लगी थी। मगर उसके चले जाने पर डेरा मारक उदासी से भर उठा था। नन्हें नाथ को पहली बार अहसास हुआ, श्रद्धालुओं की कोलाहल भरी भीड़ में वह कितना अकेला था।

तीसरे दिन चांद कौर लौटी तो हर कोई दंग रह गया।

सिर पर जूड़ा, बदन पर गातरा[1], चेहरे पर लाली और मुंह में 'बोले सो निहाल...'। वह सिक्ख बनने के लिए वाणी पढ़कर लोहे के बर्तन में खंडे से तैयार किया गया अमृत लेकर लौटी थी। कलाइयों में कंगन छनके, आंखों में रोष उभरा। नन्हें नाथ ने हैरानी से झांका। गांव सांसें रोककर सोचने लगा।

तीसरे दिन हजूरा सिंह बीके का कत्ल हो गया।

कहते हैं, आधी रात को गांव में आंधी उठी और घर के ऐन ऊपर के चौबारे पर गहरी नींद में सोए हजूर सिंह बीके की आंतें किसी ने बारीक-बारीक कुतर दीं। सुबह गांव के लोगों ने लाश को ऐन उसी स्थान पर देखा जहां कभी चांद कौर को बेइज्जत किया गया था।

कोई इससे भी अधिक निर्दयी ढंग से बदला ले सकता था, यह बात तो सबकी समझ में आती थी परंतु चौबारे पर से लाश को उठाकर गांव की चौपाल में लाकर फेंकना, चांद

1. कृपाण पहनने वाली कपड़े या चमड़े की पेटी जो जनेऊ की तरह पहनी जाती है।

कौर जैसी औरतजात के वश में नहीं था। खबर थी कि लोग सोच-सोचकर परेशान हो गए। पर एक बात सबको स्पष्ट हो गई थी—चांद कौर पागल नहीं थी और वह औरत के रूप में कोई भयानक नियति थी।

नन्हें नाथ ने खुद देखा। चांद कौर, चांद कौर नहीं रही थी। पीर की कब्र पर से चढ़ावे का प्रसाद ही खा जाती। ऊंचे स्वर में जैकारा लगाकर किसी जाते हुए व्यक्ति के सामने अकस्मात् खड़ी हो जाती।

"खबरदार ! चीरकर रख दूंगी..." और वह गातरे समेत कृपाण दाईं मुट्ठी में लेकर ऐन अपनी नाक की सीध में तान लेती और चीखती, "दिखती है शमशीर?"

कभी राह में मिट्टी की ढेरी बनाकर वहां से गुजरने वाले को चौंकाकर डरा देती, "खबरदार! नीचे मरी हुई कंजक नहीं दीखती?"

चांद कौर में आए इस परिवर्तन ने गांव के साथ-साथ नन्हें नाथ को भी झिंझोड़कर रख दिया था। रह-रहकर उसके कानों में चांद कौर की गरजती आवाज गूंजने लगती। वह उखड़कर सोचने लगता, क्या यह वह चांद कौर थी जिसके मुंह में आवाज ही नहीं थी? आखिर, यह बदलाव क्यों और कैसे था? लेकिन, नन्हें नाथ को जब कुछ समझ में न आता तो उसका माथा धनुष की भांति तन जाता। उसकी सांस उखड़ने लगती और वह स्वयं की परछाईं से ही डर जाता।

फिर नन्हें नाथ ने गांव में उड़ती हुई अफवाहें भी सुनीं।

चांद कौर स्वयं ही बारूद की ढेरी पर जा बैठी, कोई कहता—खतरनाक लोगों के हाथ चढ़ गई। बहुतों ने कहा—खंडे का अमृत छकना कोई खाला का बाड़ा है?....चिड़ियों से कभी बाज मरे हैं?...

मालूम नहीं क्यों, नन्हें नाथ को चांद कौर के चेहरे पर एक अजीब किस्म की कठोरता के दर्शन होते। उसकी आंखों में एक गुस्सा सब कुछ बहाकर ले जाने वाला प्रतीत होता। उसको चांद कौर से ईर्ष्या होती, मस्तिष्क में एक टीस उठती, काश ! चांद कौर की जगह वह स्वयं होता और उसके साम्ने बूढ़ा कलाल !

परंतु, बूढ़े कलाल से तो नैनू का वैर था। नैनू जो मालूम नहीं कब का मर चुका था। फिर गुलजारो उसके जेहन में क्यों बैठी थी? क्यों उसकी मुखाकृति चांद कौर की मुखाकृति में गड्ड-मड्ड हो जाती थी।

पिछली रात तो हद ही हो गई।

आधी रात आगे, आधी पीछे, किसी दैवी शक्ति की तरह चांद कौर प्रकट हुई थी और धूनी के बिलकुल समीप आकर बैठ गई थी। सज्जन लोगों की तरह।

नन्हें नाथ ने शुक्र मनाया, चांद कौर खाली हाथ थी। उसी पल नन्हें नाथ के कान को जैसे किसी अंगार ने छुआ हो। दर्द की एक तेज लहर सिर की ओर बढ़ी, कोहनी पर

कुछ कतरे लहू के गिरे, नन्हें नाथ को बिना शक यकीन हुआ कि उसके कान की बाली खींच ली गई थी।

उसने चीखना चाहा, लेकिन वह जड़ होकर रह गया। उसका दिल बैठने लगा। नन्हें नाथ ने अपनी देह में शक्ति को बंटोरने की कोशिश की, किंतु निष्फल रहा। उसने अपने अंदर कुछ फक्क से बुझता हुआ महसूस किया और उसका कंठ भर आया।

"देख, तू घर दौड़ जा अपने...बस।"

जैसे कोई अथाह गहराई में से बोला हो। नन्हें नाथ सुन्न रह गया। काटो तो जैसे खून ही न रहा हो। और चांद कौर उसको क्या कह रही थी?

बिना किसी दुविधा के, चांद कौर में गुलजारो का प्रतिबिंब दिखाई दिया। एक पल के लिए नन्हें नाथ डोला, लेकिन संभल गया। कान में से खींची गई बाली का दर्द याद ही न रहा।

शीघ्रता से उठी चांद कौर दूर छप्पर के नीचे जा खड़ी हुई थी।

नन्हें नाथ देखता रह गया। छप्पर के नीचे से अचानक एक सिसकी सुनाई दी।

अंधेरे की सघन परतें नन्हें नाथ के जेहन की ओर बढ़ीं। इस एक क्षण में चांद कौर और गुलजारो इस कदर परस्पर गड्ड-मड्ड हो गईं कि बाहर का सारा अंधेरा ही नन्हें नाथ के मस्तिष्क में सिमट आया। उस रात न वह सो सका, न जाग सका।

सुबह उसके लिए स्वाभाविक रूप में उदित नहीं हुई थी, न उसने अन्न को मुंह लगाया, न भजन-सिमरन में मन टिका। श्रद्धालुओं की ओर भी नहीं झांका। चांद कौर के एक ही बोल ने उसके सम्मुख बहुत पहले मर चुके नैनू को ला खड़ा किया था। अपने चारों ओर चुप्पी की जो मजबूत दीवार वह खड़ी किए हुए था, चांद कौर के एक ही बोल से वह ध्वस्त हो गई थी। और अब वह एक ठूंठ की आत्मा की तरह शक्तिहीन खड़ा था।

यह, न मालूम गुलजारो का ही श्राप था या नैनू का, चांद कौर ने घर की मिट्टी उसकी आंखों में झोंककर जैसे जन्मों का बदला ले लिया था।

घर...जहां उसका बाप था। बहनें थीं...गुलजारो थी और उसका बेटा ! पर वह स्वयं कहां था? फिर, न मालूम क्यों, कई दिनों से उसको यकीन होता चला गया था जैसे उसका अस्तित्व छप्पर के नीचे बंधे बछेरे में कहीं भटक रहा था।

इसीलिए तो कल शहरी लड़कियों के यौवन के कारण उसके शरीर में कंपकंपाहट उठने लगी थी। जैसे बछेरे के शरीर में से उठती थी। तभी तो उसने बछेरे को पीट-पीटकर उसके शरीर पर निशान डाल दिए थे और फिर सारा दिन उसके अपने अंग-अंग में से बछेरे की मार, पीड़ा बनकर टीसने लगी थी।

तब से अब तक वह इस पीड़ा में से ही चांद कौर को घूरता रहा। तिल-तिल कर दिन व्यतीत हुआ और अब रात गुजर रही थी। बिल्कुल सूली की तरह, हर पल उसके

लिए अत्यधिक असहनीय होकर गुजरा था। हर सांस उसके लिए असह्य होती चली गई थी।

अवश होकर नन्हें नाथ धूनी पर से उठ खड़ा हुआ। क्रोध में उसने कान की बाली भी उतार फेंकने के लिए हाथ बढ़ाया। लेकिन दर्द हुआ और उसका मन भर आया। क्रोध में उसने कच्चे धागे में पिरोई मनकों की मोटी माला, एक झटके से तोड़कर धूनी में फेंक दी। वह साहस बटोरकर उठा और खुली जटाओं को जूड़े में बांधते हुए जैसे एक क्षण में ही बोझ-मुक्त हो गया। उसे अपने अंदर अथाह बल महसूस हुआ। उसका मन किलकारी मारने को हुआ।

फिर आहिस्ता से चलते हुए वह केंदू के नीचे आ खड़ा हुआ। ठंड में सिकुड़ी चांद कौर को एकटक निहारा। अंधेरा उसके चारों ओर धुएं की भांति लिपटा हुआ था। उसका मन जमीन पर बैठ जाने को हुआ। लेकिन उसके अंदर से एक उबाल उठा और उसने बिना एक पल प्रतीक्षा किए अपने ऊपर ओढ़ी हुई लोई सो रही चांद कौर के ऊपर डाल दी। एकाएक उसने महसूस किया, उसकी चमड़ी में बिलकुल भी डर नहीं रहा था।

उसने बहुत ही सुखभरी सांस ली और छप्पर की ओर मुड़ा। लेकिन पहला कदम रखते ही लगा जैसे धूनी की सारी आग पूरे तकीए में फैल गई हो और वह जलते हुए पांवों के तले, मान-मर्यादा और दिगंबर नाथ को कुलचते हुए शान से चले जा रहा हो।

अगले ही पल, वह बछेरे के पांवों की रस्सी खोल रहा था।

वह किसी विजयी शान से बाहर आया। जैसे ही वह केंदू की ओर लौटा, पैरों के नीचे से जमीन ही खिसक गई। चांद कौर कहीं नहीं थी।

धूनी...तकीया...चौखंडी...भोजन-भंडार और पेड़ों का झुंड...वह आंधी की तरह घूम गया। चांद कौर कहीं नहीं थी।

वह दौड़कर बाहर सड़क पर आ गया। दूर तक सन्नाटा फैला हुआ था।

अचानक, पेड़ों के झुंड में आहट हुई। उसने बड़े ध्यान से देखा, अंधेरे की काली परतों में, रोशनी की तारें घुल रही थीं। पेड़ों के सघन झुंड में बछेरा बेखौफ चर रहा था।

चक्रवात

बलेदव सिंह

अकस्मात घिर आए तूफानी बादलों की तरह अफवाहें झुकते-झुकते घरों की छतों पर ही आ उतरी थीं।...प्रीतू लंगड़े पर प्रेत की परछाईं है...जब से उसने तोते को अपनी आंखों से मरते देखा है, चारपाई से नहीं उठा...उसने तो पूरे गांव में बहुत शोर मचाया था, भई ईख में भूत नाचते हैं...गिद्धा डालते हैं...पर उसकी बात मानी किसी ने?...गरीब आदमी की तो सच्ची बात पर भी खाते-पीते लोग खिल्लियां उड़ाते हैं।

प्रीतू लंगड़ा सचमुच बहुत बीमार है।

प्रीतू लंगड़ा मेरा सहपाठी रहा है।

आठवीं तक हम एक साथ पढ़े थे। उसको भैंसें चरानी पड़ती थीं, अपने सीरी बाप के साथ मजदूरी करनी पड़ती थी। वह आठवीं कक्षा में फेल हो गया। मजहबी सिक्खों के आधे-अधूरे पढ़े हुए लड़के या तो फौज में भर्ती होते हैं या फिर 'सीरी'[1] बन जाते हैं।

प्रीतू लंगड़ा सीरी बन गया था। साल का एक हजार रुपया और दो मन रबी-खरीफ की फसल के दाने।

हम कभी-कभार ही मिलते थे। पहले पंजाब में थे पर जब मैं कलकत्ता चला गया तो साल-छह माह में मिलने लगे। जब भी आता, मैं उससे मिलता अवश्य। वही पुरानी बातें कर हम मन हल्का करते, कभी मास्टरों की कुटाई की, कभी नकल मारने की, कभी छोटी-मोटी शरारतों की। हर बार मैं उसमें एक अजीब-सा तनाव महसूस करता, मुझे हाथ जोड़कर वह 'सतश्री अकाल' बुलाता, तू से तुम कहने लगा। मैं बेहद पराया-पराया-सा महसूस करता। हर बार वह मुझे पहले से अधिक कमजोर हुआ दिखाई देता।

इन वर्षों में ही उसके नाम के साथ लंगड़ा जुड़ गया। पता चला, बाहर खेत में वह सरदार के धान की रखवाली कर रहा था। तभी नशे में धुत सरदार के लड़के ने ट्रैक्टर बैक करते हुए ट्राली उसकी टांग पर चढ़ा दी। टांग टूटने से तो बच गई लेकिन पिंडली की मांसपेशियां खिंच गईं और वह लंगड़ा होकर चलने लगा।

तब से उसका नाम प्रीतू लंगड़ा पड़ गया था।

---

1. वह आदमी जिसे किसान कुछ हिस्सा देकर काम करने के लिए रख लेता है।

फिर पता चला, पहले सरदार से हटकर, वह सरदार किशन सिंह के साथ सीरी हो गया। सीरी तो वह नाम का था। वैसे वह घर की देखभाल और खेत में ट्यूबवैल और मोटर की रखवाली ही करता था। रोटी खा लेता। रोटी-कपड़ा मिल जाता, किसी दिन-त्योहार पर किशन सिंह खुश होकर सौ-पचास रुपए दे देता...मेरे सहपाठी की स्वाभिमानी अंतरात्मा को धीमे-धीमे दीमक खाने लगी थी।

प्रीतू ऊपर से देखने पर पूरा सुखी आदमी दिखता था। लेकिन, ऐसे घर में प्रीतू लंगड़े को ऐसी लाइलाज बिमारी लग जाए, वह दिन-महीनों में ही सूखकर तिनका हो जाए, यह जानकर मैं हैरान था।

कलकत्ता से कुछ दिनों के लिए आया था। जब मां ने कहा, "अरे अभागे !...प्रीतू तो बहुत ही बीमार है, उसका पता तो कर आ...पता नहीं बेचारा बचेगा कि नहीं।" मां को भी प्रीतू से मेरे जितना ही मोह था।

मैं उसी दिन ही उससे मिलने गया। उसकी बूढ़ी मां मुझे देखते ही रोने लगी, "अंदर पड़ा है," उसने भरे गले से कहा और साथ ही मेरा हाल पूछा, "तू कब आया, बेटा?" प्यार देने को उठे उसके हाथों को मैंने राह में ही रोककर कहा, "आज ही आया।" और अंदर चला गया।

पीला-जर्द चेहरा ! आंखें अंदर धंसी हुई, बिलकुल ही हड्डियों का ढांचा। प्रीतू ने मुझे देखकर इधर-उधर देखा जैसे उसको किसी चीज से डर लग रहा हो। वह उठकर बैठने की कोशिश करने लगा।

"ना, ना ! पड़ा रह... ।" मैंने उसके कंधे पकड़कर थपथपा दिए। उसने भयभीत आंखों से मेरी ओर देखा और फिर जैसे कोई कब्र में से बोलता है, भयभीत-सा, रहस्यमयी ढंग से बोला, "भाई, कब आए तुम?"

जब वह बोला तो उसके होंठों के अंदर वाले भाग में सफेदी दिखाई दी जैसे उसमें रत्ती भर भी खून न हो।

"ये तूने क्या हाल बना लिया, यार! ऐं? तगड़ा हो, तुझे कोई बीमारी-शिमारी नहीं।" मैंने उसे हौसला दिया।

"भाई, तुम्हें क्या पता है? मैं तो अंदर ही अंदर घुट रहा हूं...मैं तो किसी से बात भी नहीं कर सकता।" उसके चेहरे से उसकी बेबसी झलकती थी।

"मुझसे भी नहीं?" मैंने पूरे गर्व से छाती पर हाथ रखकर कहा, "तू बता मुझे, क्या तकलीफ है? मैं तेरा इलाज कराऊंगा।"

"भाई, तुम तो पढ़े-लिखे हो...सारी बात समझते हो...तुम्हें पता है...?" वह आसपास देखने लगा जैसे कुछ जानता न हो। फिर बोला, "तोते को भूत ने मार दिया था।"

"भूत ने मार दिया था?" मैंने हैरान होकर पूछा। मैं अचंभित था कि इस बारे में मेरा

दोस्त कुछ जानता है।

"लोग तो यूं ही कहते हैं।" उसने गहरा-सा सांस भरकर कहा, "पर मुझे पता है, वह भूत ने ही मारा है।"

उसके चेहरे पर उतावलापन-सा झलकने लगा जैसे उसे कुछ बताने की जल्दी हो। उसकी सांसें तेज हो गईं, वह आधा-सा उठकर बैठ गया, "भाई, मुझे पता है.." उसने संजीदगी के साथ कहा, "वो मुझे आकर डराते रहते हैं—कभी सरदार, कभी उसके लोग...कहते हैं, अगर किसी को पता चल गया तो तुझे फांसी हो जाएगी।..." वह पागलों की भांति इधर-उधर देखने लगा। उसकी ऐसी स्थिति देखकर मुझे भी डर लगने लगा। डाक्टर कहा करते हैं, कमजोर आदमी को उत्तेजित नहीं होना चाहिए। लेकिन, वह जल्दी ही फिर बोला, "मैं तुम्हें सारी बात बताता हूं....पर पहले बाहर का दरवाजा बंद कर दो। किसी को सुनाई न दे।"

मैंने उठकर दरवाजा बंद कर दिया।

कुछ पल वह जोरों से आंखें बंद किए पड़ा रहा। फिर जैसे कोई सूने अंधेरे कमरे में बोलता है, वह धीमे-धीमे बोलने लगा—

"माघ महीने के आखिरी दिनों की बात है, भाई...एक रात बहुत ठंड थी, दो दिन पहले ही बरसात और ओले पड़े थे...मैं सरदार की ईख की रखवाली कर रहा था। सरदार की हवेली भी बाहर खेतों में ही है। साथ वाले किल्लों में ही ईख है। आधी रात बाद मुझे ईख में से हंसी सुनाई दी, फिर पायल छनकी। मैं तो डर गया। इतनी ठंड में कोई भूतप्रेत ही होगा। मुझे तो बाकी रात में नींद ही नहीं आई। भाई...तड़के ही मैं सरदार के सिरहाने जा खड़ा हुआ। मेरे दांत बज रहे थे...साली ठंड को भी मालूम नहीं कौन-सा रिश्ता निभाना था। सरदार के दिए फटे हुए कम्बल में भी कंपकंपी उठ रही थी। पैर सुन्न हो गए थे। लगता था जैसे टांगों में जान है ही नहीं। सरदार मुंह-सिर लपेटे पड़ा था। मैंने कहा, ''सरदार, रात तो अपनी ईख में भूत थे।"

प्रीतू कुछ पल के लिए चुप हो गया और सांस लेने लगा। मैं भी चुपचाप बैठा रहा, इस भय से कि कहीं उसकी एकाग्रता में कोई व्यवधान न पड़े।

"किशन सिंह ने रेशमी रजाई का पल्ला थोड़ा-सा उठाया, जैसे कि मैं उसका जेठ लगता होऊं।" प्रीतू फिर बोलने लगा था, "मेरा साला अंदर से ही बोला, 'एक भूत तो मेरे सामने खड़ा है।' मुझे गुस्सा तो बहुत आया, कसम से। मैं कुछ कहने लगा तो वह बोला, 'साले ने कुछ ज्यादा ही खा ली होगी...दरख्तों को भूत बनाए बैठा होगा...इतनी ठंड में आकर मरना है भूतों को?' दरख्त भी हंसते हैं भला अपनी तरह? और घुंघरू?" उसने मुझसे पूछा, फिर जल्दी ही बोल उठा, "और तालियां बजें, गिद्धा पड़े, मेरा तो गुरु महाराज की सौगंध ा, मूत ही निकलने वाला था। सरदार उल्टा मुझे ही बेवकूफ समझ रहा था। मैं भी वहां

से न हिला। फिर उसने खीझकर मुंह पर से रजाई उतारी और बैठ गया। बिलकुल ही मुर्गे जैसा सिर ! मेरी ओर उसने देखा और फिर जूड़ा करने लगा। मुझे कुछ-कुछ बात याद है। मालूम है, क्या कहा उसने?"

"क्या कहा?" मैंने भी उसी रौ में पूछा।

"बोला—जा अंदर सरदारनी से चाय लेकर पी ले। भूत दिखने बंद हो जाएंगे। साले को ठंड लगती होगी। आ गया, बेतुकी बक-बक करने।

मैं कहने तो लगा था कि सरदारनी बाबा वड़भाग सिंह[1] के पास रही है कि भूत भगा देगी।...अपने मन में सरदार को गालियां निकालते हुए अंदर चला गया।

'ओए तू क्या पाठ किए चला आ रहा है, बेअक्ले !' सरदारनी ने ओढ़े हुए गरम शाल को ठीक किया तो भाई, उसके कानों की बालियां दीए की लौ की भांति चमक उठीं...उसके मजाक पर मैंने गुस्सा नहीं किया। सचमुच सरदारनी को देखकर मेरी ठंड कम हो गई थी।"

मैंने प्रीतू की ओर देखा। उसकी आंखों में चमक थी और उसके चेहरे के पीलेपन में थोड़ी-सी लाली चमकने लगी थी।

"...मैं पहले तुझे सरदारनी के बारे में ही बता दूं। भाई, यह सरदार की दूसरी पत्नी है। मुश्किल से, भाई तेईस साल की होगी। पहली तो बेटे का दुख लेकर गुजर गई। सरदार की उम्र होगी कोई साठ साल। जमीन तो आग लगाने से खत्म नहीं होती। अस्सी किल्ले का टुकड़ा तो यहीं है, और इधर-उधर बहुत लिए बैठा है। दो ट्रैक्टर, बंदूक, एक जीप...अब अभी-अभी एक मारुति लाया है।.. औलाद हुई नहीं। रब भी वहीं रखता है। अब कह-सुनकर दूसरा विवाह करवा लिया। वैसे ही साले मां-बाप हैं। कब्र में टांगें लटकाए बैठा है...अरे, किसी से पूछताछ ही कर लो, पर क्या मालूम भाई, कोई होगा गरीब... सोचा होगा, रब के पास कमी नहीं, अगर जड़ लग गई तो लड़की तो ऐश करेगी सारी उम्र...सब दुख भूल जाएगी। पर... पूरे चार साल हो गए विवाह किए, गहनों-जेवरों का भार तो बहुत उठाए फिरती है सरदारनी...बस, पांव ही भारी नहीं हुए।

अत्यंत सुंदर...देखा कहां जाता है उसके मुख की ओर! इतना सुडौल शरीर...पहले-पहले तो चुपचाप रहती थी। पर अब घर में कभी-कभी उसकी हंसी सुनाई देती है।

शाम को, सरदार की बाहर वाली बैठक में रोज दारू उड़ती ! चार-पांच उसके दोस्त-यार होते हैं। बटेर भून-भूनकर खाते हैं। सरदार की रोटी भी बैठक में ही आ जाती है और वह खा-पीकर वहीं खर्राटे भरने लगता है।

"भाई, मैं देखता, सरदारनी हवेली के बरामदे में ट्यूबलाइट की तरह जगमगाती

---

1. श्रीगुरु रामदास जी का वंशज जिसने नासिर अली, जालंधर के फौजदार की लाश कब्र से निकालकर इसलिए जलाई थी क्योंकि उसने करतारपुर का थम्ह साहिब जलाया था।

इधर-उधर घूमती रहती और उधर सरदार फयूज हुए बल्ब की तरह बैठक में अंधेरा किए पड़ा रहता।"

वह कुछ पल खामोश हो गया और आंखें मूंदकर पड़ा रहा। जैसे वह सचमुच ही कोई दुख अनुभव कर रहा हो।

"कोई तकलीफ तो नहीं होती?" मैंने चिंतित होकर पूछा।

उसने सिर हिलाकर बताया, "नहीं।"

"भाई, सब कुछ ही गड्ड-मड्ड हुआ पड़ा है... मैं पहले क्या बता रहा था?" वह आंखें मूंदे-मूंदे ही बोला।

"तू बता रहा था, तू चाय पीने गया था सरदारनी के पास।" मैंने उसे याद दिलाया।

"हां।" उसके होंठों पर फीकी-सी मुस्कान फैल गई, "और वह कहती थी—ओए तू कैसा पाठ-सा किए आता है...है न?" उसने मुझसे पूछा और सारी बात यादकर खुश हो गया। मैं भी हंसकर उसकी खुशी में शामिल हुआ। वह पहले से कुछ अधिक उमंग में आ गया।

"मैंने कहा—अपनी ईख में रात को भूत आते हैं, सरदारनी! उसने मुझे फिर छेड़ा—ओए, तेरे पीछे तो नहीं लग गया कोई? भाई, गरीब आदमी से मजाक करना, गालियां निकालना, हमारी चाचियों-ताइयों को भी भाभी समझना, हमारी किसी बात पर भी यकीन न करना... ये बड़े आदमी (उसने दांत भींचकर कहा) अपना हक समझते हैं। उसने मेरी बाटी में चाय लाकर उंडेली तो खुद-ब-खुद उसके मुख की ओर मेरी दृष्टि उठ गई। वह बोली—ऐसे क्या बिटुर-बिटुर देख रहा है..चाय पी ले। उस सुबह सरदारनी पहले से कुछ अधिक ही खिली-खिली प्रतीत होती थी, जबकि आगे-पीछे खीझी रहती थी। जब वह चाय डालकर मुड़ी तो पैरों में पहनी पायल के घुंघुरू छनक उठे...। जब चाय पीकर लौटा तो सरदार बोला—तोते से कहना, शहर जाना है आज। जीप में डीजल डाल ले ड्रम में से निकालकर...अगर हमें वहां से लौटते रात हो गई तो तू खेत में ही रहना। मैंने तो कह दिया, मैं आज खेत में नहीं सोऊंगा, सरदार जी! वह उलटकर मेरे गले ही पड़ गया। बोला—यूं ही बकवास किए जा रहा है, मूर्ख !

मैंने भी कह दिया—वहां पड़कर तो देख एक दिन...।

वह साला काटने वाले कुत्ते की तरह भौंका—अगर मुझे ही खेत में सोना होता तो तुझे रोटी पर रखकर चाटना था?

अच्छा फिर, और ढूंढ लेना कोई। मैं तो अपने घर ही जाऊंगा। जब मैंने गुस्से में कहा तो उसे झटका लगा। रोटी-पानी पर कोई आदमी काम करता है आजकल? चौबीस घंटों का गुलाम ! साला खुशामद पर उतर आया—मैं आज चलूंगा...देखेंगे तेरे भूत को... अपनी दुनाली बंदूक के आगे नाचते हुए देखना उन्हें...अगर कोई भूतनी हुई तो चादर

डलवा देंगे तेरी..." सो भाई, थोड़ा हौसला पड़ा।

"...दिन में मैंने गांव में जिसे भी बताया, कोई सच ही नहीं मानता था। कोई कहता, सुना तो था कि भूत होते हैं...कोई कहता, आधी रात को आग भी चलती-फिरती देखी है...कोई बोलता, चिमटे वाले साधु को बुलाओ...कोई सुझाव देता, तर्कशील वालों को बुलाओ....कोई मुझसे पूछता—मूर्ख, तूने अपनी आंखों से देखा था भूत? मैंने, भाई, बहुत उल्टे-सीधे हाथ मारे और टेढ़ा-मेढ़ा मुंह बनाकर लोगों को बताया—इतने-इतने दांत...बाल बिखरे हुए...सिर पर सींग..नंग-धड़ंग...पांव उल्टे....गिद्धा डालते थे, किलकारियां मारते थे....पर सच, मैंने स्वयं ही कुछ नहीं देखा था, मेरी अंतरात्मा ही सहम गई थी। मैं सचमुच ही डरा हुआ था।...शेखी नहीं मारता, अपने खेत की ओर जाने में मेरी रूह बिलकुल ही तैयार नहीं थी। मैं तो लोगों में डर-सा पैदाकर अपने मन को ही मजबूत कर रहा था...."

फिर अचानक प्रीतू को कुछ याद हो आया, बोला, "सच भाई, तोते की बात तो बीच में ही रह गई।

तोता बीस-इक्कीस बरस का होगा। पूरा छह फुटा जवान ! काला पक्का रंग ! हमारे लड़कों को या तो अमली बना देते हैं ये काम करवाने वाले या लंगड़े-टुंडे। पर भाई, उस ससुरे को पता नहीं क्या भूत सवार था...तीन-चार गांवों में तो उसकी कबड्डी की धाक जमी हुई थी। उसके नाम पर लोग कबड्डी देखने आते थे।

...बोझ उठाने में वह गांव के मेले में से कई बार घी के पीपे जीतकर लाया था। मेलों की आधी-भीड़ तो तोते की कबड्डी देखने के लिए ही रुकी रहती थी। फनीयर था भाई, फनीयर...गांव वाले काले नाग की तरह चमकता। सरदार को बहुत गर्व था तोते पर! पिछले दिनों नौजवान सभा ने खेल मेले का आयोजन किया था, अपने गांव में। तोता जब कबड्डी खेलने ज़ाता या अपनी दूसरी ओर की टीम के किसी लड़के का मोर्चा पकड़ता तो सरदार हर चक्कर पर इकत्तीस रुपए की बेल करवाता...।

भाई, मैं उसकी क्या-क्या तारीफें करूं? वह ट्रैक्टर, बंदूक, जीप, मारुति सब कुछ चला लेता था। सरदार की दाईं बाजू था वह। बाहर-अंदर आना-जाना होता, दुनाली तोते के कंधे पर होती। कई उससे ईर्ष्या करते। कहते—चूहड़ा आडंबरी...न धरती न आसमान...। ऐसी बातें सुनकर वह और भी मस्ती में भर उठता।

पर एक घटना समझ में नहीं आई, भाई! मैं भी सरदार के घर ही आता-जाता था हर वक्त। सरदारनी और तोते की गिटपिट कैसे हुई, कांटा कैसे भिड़ा?...तोता तो उस्ताद शर्मालू ही बहुत था। औरतों के मामले में।...लगता है, सरदारनी मर गई होगी काले नाग पर...सरदार तो बूढ़ों की तरह छुटकारा पाने के लायक ही था।"

प्रीतू ने लंबा सांस खींचा जैसे थक गया हो और उसने आंखें मूंद लीं। मैं चुपचाप उसके चेहरे के हाव-भाव देखता रहा।

वह आंखें मूंदे ही धीरे-धीरे बोला, "दो-एक महीनों से सरदारनी हमारे साथ खुलकर बोलने लगी थी। वही मालिकों वाला रौब...सरदारी का गर्व ! एक दिन मालूम नहीं क्या बात होगी, मैं अंदर घुसा ही था कि देखा, तोता और सरदारनी जोर-जोर से हंस रहे थे। उस दिन मुझे पता चला कि सरदारनी हंसना भी जानती है।...पहले तो वह सारा दिन माथे पर त्यौरियां चढ़ाए रखती थी। यूं ही नाक-मुंह चिढ़ाती रहती थी। हमसे उसको घृणा आती थी।

पर यह तो विलक्षण बात थी, भाई! क्या पता था, तोता इतना ऊपर चढ़ जाएगा और सरदारनी इतना नीचे उतर आएगी।

उस दिन तो भाई, मैंने किसी न किसी प्रकार लोगों में झूठ बोलकर वक्त गुजार लिया। मुझे तो रात से ही डर लगता था। अंधेरा-सा देखकर मुझे कंपकंपी उठने लगती थी। रात की रोटी खाने के बाद भी मेरा नांद पर से उठने को मन नहीं करता था। सरदार ने आकर आदेश दिया—'मोटर पर जा भई... अगर कोई पंखा खोलकर ले गया तो तेरे साल भर के पैसे काटकर भी पूरे नहीं होंगे...' मैंने कहा, सरदार जी, तुमने तो कहा था, मैं चलूंगा आज।

तुझे कहा तो था, आऊंगा। वह दौड़कर मेरी ओर झपटा। मैने डरते हुए कहा, तोते को भेज दो मेरे साथ...

उसे बीस काम हैं। तुम साला करता क्या है?

उसके गुस्से से डरकर मैं उठ खड़ा हुआ। पर खेत की ओर जाने को मन कतई नहीं कर रहा था।

...ईख वाली मोटर बिलकुल ही बीच में है।...आसपास चार किल्ले ईख हैं। सघन इतनी कि आदमी तो क्या, सांप भी न निकल सके बीच से...भाई, मिन्नतें भी कौन सुनता है...मैं पैर घसीटते हुए खेत की ओर चल पड़ा। भयभीत होकर मैं रास्ते की पुलिया पर ही बैठा रहा। किसी भी तरफ हल्की-सी खड़खड़ाहट होती तो डर जाता। कई बार अपने आप को गालियां भी दीं...आदमी इतना कमजोर भी क्या हो? लेकिन मन भीतर से डोल रहा था। ऐसा लगता था जैसे मेरे आसपास भूत ही भूत घूम रहे हों... । अगर आज सरदार न आया, मुझे तो वह भूत नहीं छोड़ेगा।

...अंधेरा हो गया, पर सरदार तो सच में ही नहीं आया, ठंड बहुत बढ़ गई थी। मैं साहस कर 'वाहेगुरु-वाहेगुरु' करते हुए नाली के किनारे-किनारे मोटर की ओर चल पड़ा। एक बार फिसला तो यूं लगा जैसे किसी भूत ने धक्का दे दिया हो। मेरी चीख निकल गई।"

वह चुप हो गया। मैंने देखा, प्रीतू के चेहरे पर अब भी डर, सहम और दहशत फैली हुई थी। वह मुझे पहले की तरह भयभीत-सा और पराया-पराया-सा लगने लगा। मन में आया—क्यों छेड़ा इसे? पता नहीं कितनी तकलीफ होती होगी? लेकिन शीघ्र ही वह बोल

उठा, ''मोटर वाली कोठरी के पास पहुंचकर मैंने सरदार को दस-पंद्रह गालियां निकालीं और फिर कोठरी में अंदर से कुंडी लगाकर बैठ गया।"

"सरदार नहीं आया फिर उस रात?" उसके डर में मुझे भी दिलचस्पी होने लगी थी।

"बताता हूं।" उसने हाथ के इशारे से मुझे चुप रहने के लिए कहा। आधे मिनट तक वह उसी प्रकार बैठे-बैठे अपनी सांसों को सम पर लाने की कोशिश करता रहा। फिर बोला, "कितनी ही देर के बाद दरवाजा खड़का। मालूम नहीं, मेरी तो आंख लग गई थी...मैं डर गया। लेकिन सरदार की आवाज पहचानकर मैंने दरवाजा खोल दिया। उससे बोला, 'इतनी देर लगा दी?' वह मुझे कहने लगा, 'तू तो औरतों से भी गया-गुजरा निकला, ससुरा।' गुस्सा तो मुझे बहुत आया था पर निकालता किस पर? हंडिया उबलेगी तो अपने ही किनारे जलाएगी, भाई! सरदार की कल फिर जरूरत पड़ सकती थी। चुपचाप चारपाई सरदार को दे दी और खुद धान के फूस पर जा बैठा। सरदार ने दुनाली सामने टिका दी। मैं भी कुछ खिल उठा। मैं तो हैरान था। सरदार बूढ़ा मुझसे बोला—लंगड़े, आज आएगा तेरा भूत?

मैं कुछ नहीं बोला। उसने तीन-चार गालियां दीं। पता नहीं, मुझे या भूत को, या फिर ठंड को और फिर वह दारू के नशे में टिक गया।

घंटे भर बाद ईख में हिल-जुल-सी हुई जैसे कोई गन्ने उखाड़ रहा हा। मेरा तो फ्यूज ही उड़ गया। डरते-डरते मैंने सरदार को हिलाया—सरदार...भू...त... आ गए।' मुझे कंपकंपी छूट रही थी।

...सरदार ने उठकर मेरी ओर अविश्वासभरी आंखों से देखा और फिर बंदूक उठाकर उठ खड़ा हुआ। आहिस्ता से कुंडी खोलकर हम बाहर आ गए। सांसें रोककर टोह ली। ईख के दूसरी ओर फिर हलचल-सी हुई। मैं तो डरकर सरदार के पीछे खड़ा हो गया। एक टांग का सहारा, अगर कोई बात हो गई, मुझसे तो भागा भी नहीं जाएगा...मुझे लगा जैसे सरदार भी डर गया था। मैंने अंधेरे में ही उसके मुंह की ओर देखा और धीमे स्वर में कहा—तुम तो मानते ही नहीं थे...देख लो अब।

...मालूम नहीं, सरदार को अपनी बेइज्जती होती महसूस हुई होगी, वह ललकार उठा—कौन है वहां? ईख में इस तरह का खटका हुआ जैसे कोई हमारी ओर दौड़ता हुआ आ रहा हो।...सरदार ने बंदूक तान ली। तभी गीदड़ों का एक जोड़ा हमारे पास से नाली फांदकर दूसरे किल्ले में जा घुसा। सरदार ने गालियों की बौछार शुरू कर दी। मेरी तो न इधर की रही, न उधर की। बहुत निरादर हुआ साला...यह क्या बात हुई? वह हंसी...वह घुंघरुओं की आवाज ! बस, हेठी होनी थी, हो गई। सरदार गालियां देता रहा और मैं गर्दन झुकाए झेलता रहा।

मेरी जान पर तो उस वक्त बनी, जब सरदार कंधे पर दुनाली लटकाकर बोला, मैं तो चला घर को।

और मैं? सच में भाई, मेरा तो लहू पानी बन गया, यह सुनकर।

'तुझे भेड़िए खाते हैं?...साला, मेरी भी नींद खराब कर दी।'

मैंने तो साफ कह दिया, 'न सरदार जी, मैं भी साथ चलूंगा तुम्हारे।'

वह बहुत नाराज हुआ। बोला, 'ठीक है, तेरे साथ भी बात करनी ही पड़ेगी सवेरे।'

मैंने मन में कहा, सुबह किस मां की...अब रात तो गुजरे पहले...सुबह की सुबह देखी जाएगी। हम आगे-पीछे नाली पर चलते हुए बाहर आ रहे थे। पगडंडी के साथ लगती ईख में सरदार की हवेली के बिलकुल पीछे मुझे फिर शक हुआ। मैंने सरदार को बाजू से पकड़ लिया। सन्नाटे भरी रात में हमें खुसर-पुसर सी सुनाई दी और फिर हंसी...।

सरदार ने फिर ललकारा। ईख में खड़खड़ हुई और दो काली परछाइयां ईंख में से निकलकर पगडंडी को ओर दौड़ पड़ीं।... सरदार ने घोड़ा दबा दिया। पता नहीं मेरी चीख निकली...या पगडंडी वाली नाली में गिरने वाले की... कुछ पता नहीं चला।

...मुझे याद है भाई, तभी खाली खेत में से अंडों पर बैठी टिटहरी चीखती हुई उड़ी जैसे पूछ रही हो—किसे मारा...किसे मारा?...

...दूसरी परछाईं का हमें पता नहीं लगा, किधर भाग गई।

...सरदार और मैं हवेली में आ गए। अब सरदार भी मुझे भयभीत-सा लग रहा था। मुझे तो कंपकंपी से तेज बुखार चढ़ गया'कोई होश न रहा।"

अब प्रीतू के चेहरे पर पूरी थकावट थी। मैं चाहता था, वह कुछ देर के लिए आराम कर ले। यह भी मैं अनुभव कर रहा था, जैसे अपने मन की भड़ास निकालने के लिए वह बेहद उतावला था।

कमरे में एक कोने में लटकते जालों की ओर वह एकटक देख रहा था। जैसे अपने अतीत के सामने खड़ा हो। उदास आंखों से उसने मेरी ओर कुछ पल देखा और फिर वह जालों से भरे कोने की ओर देखने लगा।

...दिन चढ़ते-चढ़ते पूरे गांव में शोर मच गया कि तोते की लाश नाली में पड़ी है।...तरह-तरह की बातें हुईं...लोग अभी भी सोचते थे कि भूत अपना काम कर गया। ...काफी दिन निकल आने पर मैं भी धीरे-धीरे उठा...लोग इकट्ठे हो-होकर लाश को देखने जा रहे थे। मैं भी भीड़ में जा खड़ा हुआ। एक बात मुझे बहुत ही हैरान कर रही थी—इतनी रात को तोता वहां क्या लेने गया था? मन में संदेह उठा—कहीं सरदारनी? फिर सोचा, उसे ईख में आने की क्या जरूरत थी? हवेली के कमरे कम हैं?...लोगों से नजर बचाकर मैं दुविधा की स्थिति में ईख के अंदर घुस गया जहां से हंसने की आवाजें सुनाई दी थीं। वहां ईख की जड़ों में पड़ी चुन्नी को देखकर तो मेरी आंखें फटी की फटी रह गईं। मैं तो अपना बुखार भूल गया। सोचा—झंडा बनाकर गांव में जुलूस निकालूं... फिर मैंने इरादा बदल दिया। सोचा—सरदार से इनाम लूंगा तगड़ा...चुन्नी को मैंने कुर्ते के नीचे कमर में बांध लिया और सीधा सरदार के पास हवेली आ गया।

...राह में कइयों ने मुझसे पूछा। वे भूतवाली बात सच माने बैठे थे। कइयों ने जिरह

भी की। कोई कहता—मालूम करो, गांव में इसकी दुश्मनी किसके साथ थी? जितने मुंह, उतनी ही बातें। जब मैं सरदार की बैठक में पहुंचा तो मालूम हुआ, उसने एक आदमी को थाने भेज दिया था—सूचना देने के लिए। मैंने कमर से चुन्नी खोली और सरदार के सामने तान दी। कहा—यह मिली है ईख में से...पहचान ले।

सरदार के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। लेकिन, तभी वह भड़क उठा। साला बोला, 'कभी औकात देखी है अपनी। बीच में ही पी जा इस बात को। अगर धुआं भी बाहर निकला तो सारे आंगन को फूंक दूंगा।...दोनों फांसी चढ़ जाएंगे कंजर!'

मैं सचमुच डर गया। भाई, चुन्नी उठाकर जैसे मैंने कोई पाप कर दिया हो। उस दिन से मैं चारपाई पर से नहीं उठा।...साथ ही मुझे फिक्र लग गई, अगर किसी को पता चल गया तो दोनों को फांसी हो जाएगी...।

...कितने ही दिनों बाद सुना—पुलिस अपनी कार्रवाई कर गई थी। अखबार में खबर भी छपी थी। कहते हैं—संदेह की हालत में लाश मिली है...पहचान हो गई है। कातिलों का पता नहीं लगा अभी।" प्रीतू व्यंग्यात्मक हंसी हंसा।

उसकी हंसी का अर्थ मैं समझता था।

"...भाई, कभी-कभी तो जी में आता है, सरदारनी से जाकर पूछूं—तुझे ईख में जाने की क्या आवश्यकता थी? मुझे आधा बीमार तो इसी बात ने कर रखा है। मेरी समझ में नहीं आता, सरदारनी को खेत में जाने की क्या जरूरत थी? वह जब चाहती, तोते को घर बुला सकती थी।"

बाहर कोई खांसा। प्रीतू चुप हो गया। मैंने उठकर देखा तो सरदार किशन सिंह को बाहर खड़ा देख हैरान रह गया।

"क्या हाल है अब?" छोटे-से दरवाजे में से अंदर झांककर उसने प्रीतू से कहा।

प्रीतू ने सरदार को देखकर त्योरियां चढ़ा लीं और दीवार से पीठ टिकाकर आंखें बंद कर लीं।

"भूत का पहरा छोड़ता है बंदे को? देख, क्या हालत बनी है?" सरदार ने तरस भरे लहजे में सिर हिलाया।

प्रीतू ने आंखें खोलीं और सीधे सरदार की ओर देखा, "एक भूत तो मेरे सामने खड़ा है, सरदार जी!" वह आहिस्ता से लेकिन दृढ़ता के साथ बोला। उसके साहस पर मैं आश्चर्यचकित था।

"किसी सियाने से इलाज करवाना पड़ेगा।" कहकर सरदार ने नजरें झुका लीं और पीठ घुमाकर चला गया।

लेकिन, मुझे लगा, प्रीतू अब आहिस्ता-आहिस्ता स्वस्थ होने लगेगा।

तालाब

वरियाम सिंह संधु

रात जब उसकी पत्नी चिंतो ने पड़ोसी दीप सिंह के घर से सुबह की लाई हुई लस्सी के संग उबले हुए फीके चावल पीतल की बड़ी कटोरी में डाल कर दिए तो पहली बुरकी मुंह में डालते ही उसकी छाती में सुबह से हो रहा मीठा-मीठा दर्द जोर पकड़ गया और उसने चावल की कटोरी वापस करते हुए खुद को नमूनिया हो जाने का ऐलान कर दिया और दर्द को झेलते हुए नीचे पुआल पर लगे अपने बिस्तर पर लेट गया। चिंतो ने चूल्हे में ईंट गर्म कर सिंकाई की। पर दर्द था कि बढ़ता ही जाता था।...आधा घंटा...घंटा...और फिर तेजू ने मदद के लिए पुकारा। अब उसको सांस लेने पर भी दर्द होता था। तारा अभी दीप सिंह के घर से नहीं लौटा था, जिसके साथ वह साझे पर काम करता था। घर में बस चिंतो थी या बीमार पड़ा हाय-हाय करता तेजू। चिंतो कभी ईंट गर्म करने बाहर जाती और कभी सेंक देने के लिए अंदर आते हुए, तारा को अभी तक घर न लौटने के लिए गालियां दे रही थी और साथ ही नए जमाने में नई ही बीमारियों के पैदा हो जाने के बारे में बुड़बुड़ा रही थी। तारा आया तो चिंतो एक तरह से उसके गले ही पड़ गई।

"आदमी होता है कि वक्त से घर आए। वहां क्या तेरे पैरों में रस्सी बांध दी थी, मर जाते! वह नासपिटा मरने को पड़ा है...तुमने जो मेरी जिंदगी दुखी की है..." वह कितनी ही देर तक उल्टा-सीधा बोलती रही।

तारा पिता के पास आकर खड़ा हो गया और दीए की लौ में उसके पीले होते जाते चेहरे की ओर देखने लगा। चिंतो बोले जा रही थी।

"मैं कहता हूं, तू चुप भी होगी या बड़बड़ करती ही जाएगी। माल अंदर रखकर ही आता न। यूं ही तुनके जा रही है। जब तक काम पूरा न ले लें, वो हिलने भी देते हैं? ...टें..टें...करती रहेगी।" तारा तीखी पतली आवाज में बिजली की भांति कड़का और जबड़ा भींचकर चुप हो गया।

"ये तेरा कुछ लगता...बीमार हो गया है...दर्द होता है इसे।"

"बीमार है तो मैं क्या करूं...यह तो...मेरे लिए मुसीबत.." और वह पैर पटक हाथ

में पकड़ी पुआल को नीचे फेंक दूर पड़ी अपनी अधटूटी चारपाई पर लेट गया और उसने ओढ़े हुए खेस को मुंह पर तान लिया।

कमरे में भयानक किस्म की चुप्पी पसर गई। धुआं छोड़ती दीए की बत्ती नीचे सरकती जा रही थी। तेजू दर्द से कराहते हुए बोला, "न कर ओ खसम...तू न कर कुछ...हाय!" और उसने चिंतो से पानी का गिलास मांगा।

आधी रात को तेजू की हल्की-सी आंख लगी तो फिर तड़के उसने पुनः चिंतो से पानी मांगा। पानी देकर चिंतो लेटी थी पर उसे नींद नहीं आ रही थी। अचानक तेजू दूर जाती हुई गाड़ी की तरह आहिस्ता-आहिस्ता कराहते हुए चुप हो गया। चिंतो ने घबराहट में तेजू को पुकारा, "तारे के बापू...मैंने कहा, तारे के बापू...!"

वह दौड़कर तेजू की ओर गई। अंधेरे में उसे हिलाया।

"अरे तारे! तेरे बापू को कुछ हो गया। उठ ओए..."

और जब मां-बेटे ने दीया जलाकर देखा, पुआल पर बिछे फटे गद्दे और पुरानी घिसी हुई रजाई में से उसका सिर एक ओर लुढ़का पड़ा था और उसके मुंह से लार बाहर निकली हुई थी। खिचड़ी हुई दाढ़ी के बाल इधर-उधर बिखरे हुए थे और अधखुले मुंह में पड़ी मूंछ गीली हो आई थीं। मैली फटी हुई पगड़ी सिर से उतरकर नीचे जमीन पर गिरी पड़ी थी और खुले हुए बालों की लटों में पुआल के तिनके अड़े हुए थे। हड्डी निकले गालों में धंसी अधमुंदी आंखों की सफेदी मौत की सगी बहन प्रतीत होती थी और निर्ज्योति काली पुतलियां छप्पर के नीचे छिपकर बैठी हुई लगती थीं जैसे कह रही हों, 'हम इस जग के रंग-तमाशे देखकर थक चुकी हैं...ऊब चुकी हैं...वाहे गुरु का खालसा, भाइयो!"

चिंतो जांघों पर हाथ मारकर ऊंचे स्वर में चीखी और उसने 'सिर के सांई' के चल बसने का लंबा विलाप किया तो बाहर खड़ा उनका कुत्ता भौंक उठा। पड़ोसी हजारा सिंह दीवार कूदकर आया। दीप सिंह भी आया। दोनों रस्मी तौर पर अफसोस प्रकट कर, हौसला रखने और चुप कर जाने को कहकर चले गए। पीछे वाले घर से फौजी ठाकर सिंह की मां कुछ देर चिंतो के पास बैठी और फिर वह भी छड़ी पकड़े हुए, बैठने को कोई चारपाई और ऊपर लेने को ढंग का कपड़ा न होने के कारण ठंड से डरकर चली गई।

और आहिस्ता-आहिस्ता दीए की मद्धम होती लौ की भांति चिंतो का विलाप मिट्टी झाड़ते कच्चे कोठे के घेरे में घुटकर रह गया।

सूरज काफी चढ़ आया था जब अड़ोसी-पड़ोसी और तेजू की रिश्तेदारी के कुछ पुरुष और बूढ़ी औरतें इकट्ठे हुए और परपंरागत ढंग से उसके 'अच्छेपन' तथा उसकी अचानक हुई मौत के विषय में बातें करने लगे। उसके हंसमुख स्वभाव और दिन-ब-दिन उसके सिर पर चढ़ती गरीबी की कहानियां। उस गरीबी की कहानियां जिसने उसको 'जट्ट' से 'कामगार' बना दिया था। जिस गरीबी ने उसकी सारी जमीन बिकवा दी थी और उसके बेटे को रिश्तेदारों

के संग हिस्से पर काम करने के लिए विवश कर दिया था।

आदमी तो वह बहुत सीधा-सरल था। पता नहीं क्यों लोग उसको 'तेजू टेढ़ा' कहते थे। वह सारी उम्र हंसता रहा था। दुख में भी और सुख में भी। अभी परसों ही जब उसे लंबरदार ने ठंड में मोटा कपड़ा लेने को कहा था तो हंसकर वह बोला था, "लंबरदार, ठंड को हमसे क्या लेना?...हमें नहीं लगती ठंड। हम ठंड को लगते हैं...हा-हा!"

और, मालूम नहीं, उसको ठंड लग गई थी या वह ठंड को लग गया था। आंगन में टूटी हुई चारपाई पर वह अकड़ा पड़ा था और तारे के मैले खेस ने उसके शरीर को ढक रखा था। उधर बैठे गिनती के लोगों में से कोई उसकी 'अक्ल की कांपियां' वाली बात सुना रहा था।

तेजू अपने मुंह से कहा करता था कि वह बचपन में सिंध की ओर गया था। पता नहीं गया भी था कि नहीं। क्योंकि उसकी भौगोलिक जानकारी इतनी ही थी। एक बार उसने अपने गांव के किसी आदमी जिसने कहीं और जमीन खरीदी थी और वहीं जाकर बस गया था, से पूछा था, "सुना भाई मेरे, फिर कहां जमीन खरीदी है तूने?"

"भाई तेजा सिंह, मोगे के पास एक गांव है। पंद्रह किल्ले जमीन का एक टुकड़ा है। बीच में ट्यूबवैल भी लगा है। बड़ी मौज है...तेरी दया से गुरु की कृपा है।"

और, तेजू प्रत्युत्तर में बोल उठा था, "कहां यार मोगे की तरफ जमीन ले ली! इधर अपने पंजाब में लेनी थी।"

लेकिन, फिर भी उसकी बात पर विश्वास करना ही पड़ता कि वह सिंध अवश्य गया होगा। क्योंकि उसके अनुसार, वह उधर से 'अक्ल की कांपियां' लेकर आया था। पता नहीं बीस...पता नहीं इक्कीस...। वह कांपियों के बारे में बताते हुए प्रायः गिनती भूल जाता था। पर उसे गर्व था कि वह सिंध गया था और वहां से जो अक्ल की कांपियां लेकर आया था, उनमें बहुत-सारी अक्ल की बातें थीं जिन्हें पढ़कर कइयों के डूबते बेड़े किनारे लग सकते थे। किनारे लगे भी थे। वह उन कांपियों की महानता का जिक्र कई बार करता।

"मैंने मास्टर गिंदर को पहली कांपी में से पहली बात पढ़कर कहा था—लड़के पढ़ जा, तगड़ा होकर पढ़ जा...जितना पढ़ सकता है। तेरा बाप है नहीं और नाते-रिश्तेदार तुझे जीने नहीं देंगे।...और भाई मेरे, सारी बात का मतलब यह है कि मेरे कहने पर वह पढ़ गया और मास्टर भी लग गया है, जाकर देख ले। बीबी भी मास्टरनी ले ली है और सुख की रोटी खा रहा है।"

दुबले-पतले शरीर पर छोटी-सी गर्दन से जुड़ा उसका सिर एक बार गर्व से झूमता और उसकी छोटी-छोटी आंखें चमक उठतीं। उसे लगता, उसके पास 'अक्ल की कांपियों' का खजाना था। वह बहुत अमीर था और दूसरे लोग जैसे उससे ईर्ष्या करते हों। उसकी कांपियां, उसके कथनानुसार हर कोई नहीं पढ़ सकता था। ये तो केवल वह खुद ही पढ़

सकता था और थोड़ा-बहुत ही। ये कापियां उसको बकौल उसके किसी साधु से मिली थीं और उसने ही पढ़ना भी सिखलाया था। पर उसकी किस्मत खराब थी कि उसने अच्छी तरह उस समय मन लगाकर नहीं पढ़ा, नहीं तो उसकी स्वयं ही पौ-बारह हो जाती। फिर भी उसने इन कापियों में से पढ़कर किसी को नौकर हो जाने की सलाह दी तो वह नौकर हो गया था। किसी को जमीन खरीदने के लिए कहा था तो उसका काम आखिर पूरा हो गया था। किसी को पंच-सरपंच के लिए खड़ा होने को कहा तो वह कामयाब हो गया था।

परंतु, इन कापियों का जादू मालूम नहीं क्यों, उसके अपने घर पर नहीं चला था। जब, तारा छोटा-सा था तो वह तारे के विषय में पचांयत में बैठकर बातें करता। वह महल खड़े करता और लोग हंसकर जैसे उसकी रेत की दीवारों को ठोकरें मारते रहते।

"मैं सोचता हूं, मैं तारे को बड़ा पहलवान बनाऊं। मेरी मंशा है, कंजर को पांच-दस पीपे घी के खिलाऊं...साले को कीकर सिंह बना दूं एक बार। फिर मैं सोचता हूं, कंजर किसी की बाजू-टांग तोड़ बैठेगा। भाई मेरे, सारी बात का मतलब यह है कि मैं इसी कारण उसको पहलवान नहीं बनाता।"

और फिर वह दूसरा महल खड़ा करने लगता।

"कभी सोचता हूं, इसको बदमाश बनाऊं...बहुत बड़ा बदमाश...जग्गे डाकू जैसा। फिर सोचता हूं, यह किसी का कत्ल कर देगा और फिर मैं मुसीबत का मारा पकड़ा जाऊंगा। भाई मेरे, सारी बात का मतलब यह है कि..."

और फिर, वह एक और मोड़ मुड़ता।

"कभी मेरी इच्छा होती है कि भई, तारा को पढ़ा दूं। खूब पढ़ाऊं। इकट्ठी बीस-तीस जमातें। चाहे जमीन बिक जाए।...इसे बड़ा अफसर बना दूं, बहुत बड़ा अफसर पर फिर मैं सोचता हूं, अगर यह अफसर बना तो मुझे सिफारिश करने वाले छोड़ेंगे नहीं। कहेंगे, तेजा सिंह आ जरा, सरदार तारा सिंह से काम है। भाई मेरे, सारी बात का मतलब यह कि..." और वह खिलखिलाकर जोर-जोर से हंसने लगता। मालूम नहीं, पंचायत में बैठे लोगों पर या मालूम नहीं, अपने आप पर।

उसकी कापियों में से बताई गई बातों पर अमल कर कई तर गए थे। लेकिन तारा, तारे का तारा ही रह गया। साधारण कद, छोटी टांगों वाला, पतले मुंह और तोते जैसी नाक वाला। वह बापू के साथ ही घर की चार किल्ले जमीन पर छोटी उम्र से ही कंधे पर हल को संभालने लगा था। अगर कोई उसके द्वारा दूसरों को तारने की बात करते हुए, उनकी तंगी और तारे के न पढ़ सकने तथा न तर सकने के बारे में बात करता तो तेजू पहले ही हंस पड़ता और फिर बैल के बदन पर छड़ी मारकर एक बारगी तो चुप हो जाता और फिर गंभीर स्वर में कहता—

"...भाई मेरे, तू समझदार है। तैरा तो पानी में ही जाता है न।...अगर कोई पानी में गिरे तो तैरे भी।...और अगर कोई गिरे ही गले तक कीचड़ में...हैं, सारी बात का मतलब यह है कि...."

और दीप सिंह ने जब तारा को आवाज दी तो वह दूसरी ओर से इस प्रकार आहिस्ता-आहिस्ता चलते हुए आया जैसे सच में ही उसकी टांगें गहरे कीचड़ में धंसी हों और वह खींच-खींचकर टांगों को कीचड़ में से निकाल रहा हो।

मैंने कहा, ''लकड़ियों का क्या बंदोबस्त किया?"

"लकड़ियां?" तारा चौंका, "लकड़ियां तो घर में नहीं हैं।" उसकी मैली गुलाबी पगड़ी उसके माथे पर सरक आई थी।

"बरखुरदार, घर में नहीं तो प्रबंध तो कोई करना ही पड़ेगा न !" कोई दूसरा सफेद कपड़ों वाला बोला। उसकी आवाज में तारा के मूर्खता भरे जवाब के प्रति रोष था।

तारा कुछ नहीं बोला बल्कि आंगन में लगी नीम की ओर टकटकी लगाकर देखने लगा जिसके पीले पत्ते एक-एक कर झड़ रहे थे और धरती को ढक रहे थे।

'कफन भी लेना पड़ेगा।' उसने मन ही मन सोचा और फिर औरतों में बैठी अपनी मां को उठाकर वह एक ओर ले गया।

"हां। अब फिर...। मैं भी यही सोच रही थी।" चिंतो भी सामने सवाल बनी खड़ी थी। मैले कपड़े से आंखें पोंछकर वह बोली, "मालूम नहीं चंदरे को पहले ही पता था...छह महीने हुए एक कुरता सिलाकर रखा हुआ है। कहता था—धीरे-धीरे तीनों कपड़े मरने के बना लूं।" और वह फिर से रोने लगी, "कमर में बांधने के लिए चादर, ऊपर के लिए कपड़ा भी तो लेना ही पड़ेगा।" फिर उसने जैसे सुझाव दिया, "दीप सिंह से पूछकर देख। तेरे हिस्से में से काट लेगा।"

"हूं..." तारा टूटी हुई जूती की नोक से धरती को खुरचने लगा, "पूछ लेता हूं। उसके तो गेहूं के ही पहले बहुत हो गए हैं।" और वह मुंह में आ रही मूंछों को काटने लगा।

"सरदार गुरबचन सिंह को पूछकर देख।"

"वो, गुरबचन सिंह...उन्हें हमारी क्या चिंता है? वे देंगे तुझे पैसे?...लोगों से ले-लेकर उनका पेट न भरे।" वह बड़बड़ाता हुआ चला गया। दीप सिंह से कहने पर वह घर में पड़ी लक्कड़ तो देने को राजी हो गया, लेकिन पैसों के मामले में उसका भी हाथ तंग था।

बैठे हुए आदमियों ने देखा, दरवाजे में से सरदार गुरबचन सिंह का पिता सरदार नाजर सिंह खुला हुआ कोट और पैंट पहने, हाथ में छड़ी पकड़े, लंबे भारी शरीर के साथ हाथी की भांति झूलता हुआ चला आ रहा था। वह कई साल पहले फौज में से कप्तान रिटायर हुआ था। आते ही फौजियों वाले लहजे में बोला, "ओ भाई, मैंने सुना, तेजू की मौत हो गई। बहुत बुरा हुआ...बहुत बुरा हुआ।"

"हां जी...हां जी।" बैठे हुए पांच-सात लोगों से दो-चार उसके सत्कार में उठकर खड़े हो गए। आखिर, वह गांव के सरपंच का बाप था। वह पुश्तैनी सरदारी घराने से था। उन्होंने सरदार जी के बैठने के लिए तारे को कुर्सी या चारपाई लाने के लिए कहा, क्योंकि वे समझते थे कि पैंट-कोट में तो जमीन पर वैसे ही बैठना मुश्किल था और फिर एक जागीरदार का जमीन पर बैठना जंचता भी नहीं था।

"रहने दे भई....रहने दे। मुझे जल्दी ही लौटना है। मैं बचन के साथ बाहर जा रहा हूं। वह तैयार हो रहा था, मैंने सोचा इतनी देर माथा टेक आऊं।" वह तारा को इशारा करते हुए बोला। तारा अडोल खड़ा था।

कप्तान खड़े-खड़े ही छड़ी हिलाते हुए कहने लगा, "बात यह है कि उसको ठंड लग गई। वह गरम कपड़ा तो पहनता ही नहीं था। ऊपर से यह औरत उसे नमूनिए पर ठंडा पानी पिलाती रही। आग पर तेल डालने की तरह। उससे बचना तो था नहीं?" उसने एक पल के लिए सभी के चेहरों की ओर देखा और फिर किल्ली दबा दी, "इन्हें चाहिए था, रात को ही डाक्टर को बुलाते। उसका इलाज करवाते। बचन रात को घर पर ही था, उसको बुला लेते। वह जीप से अस्पताल ले जाता। अब मुझे ही देखो, मैं और तेजा सिंह हम-उम्र थे। मैं बचा हुआ ही तो हूं। महीने, दो महीने के बाद मेडिकल चैक-अप करवाता रहता हूं। पर हमारे ये अनपढ़ लोग...यही तो कमी है इनमें।

सब चुप थे और उसके कहे को 'सत्य' मानकर सुन रहे थे।

"यह पास ही दो मील पर हैल्थ सेंटर था। सरकार हमारे लोगों के लिए बहुत कुछ कर रही है। पर हम मूर्ख हैं जो फायदा नहीं उठाते।" उसने बंधी हुई सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरा, "खैर, भाई जो हुआ...अच्छा नहीं हुआ..." और वह धीमे-धीमे तेजू की चारपाई की ओर बढ़ा और कपड़ा उतारकर एक पल के लिए मुख देखा और फिर छड़ी हिलाते हुए बोला, "अच्छा, मैं चलता हूं....बचन शहर जा रहा है। वहां कोई मंत्री आ रहा है। इस बार गांव में मंडी खुलवाने के लिए कोशिश कर रहे हैं न...देखो, अगर काम बन गया तो इलाके की सुनवाई होगी। बचन की सलाह है, आढ़त खोलकर लड़के को उस पर बिठा दे। उसका लड़का पढ़ने वाला नहीं निकला। नालायक निकल गया सुअर का बच्चा...उल्लू का पट्ठा।" सब कुछ कहकर वह बैठे हुए आदमियों के चेहरों की ओर देखने लगा। जैसे अपनी बातों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर रहा हो। यह उसकी आदत ही थी कि वह किसी की कम ही सुनता था और अपनी निरंतर सुनाए जाता था। बैठे हुए लोगों में से एक-दो ने कप्तान और उसके बेटे गुरबचन सिंह की तारीफ की। जिसका भाव कुछ इस प्रकार का था कि वे दोनों गांव की बाजू हैं...इलाके के स्तंभ हैं। गुरबचन सिंह तो आज की राजनीति में तरक्की करता जा रहा था। उसके कारण ही इलाके की पूछ थी। ऐसे नेक बेटे मांएं कहीं रोज-रोज पैदा करती हैं! हर एक से बनाकर रखने वाला...आगामी चुनावों में उसको

इलाके में से खड़ा किया जाना चाहिए, आदि-आदि।

और, इन बातों की भीड़ में तेजू की मौत की बात जैसे गुम हो गई थी। ऐसा लगता था जैसे वह अपने आप को इस तरह उपेक्षित पाकर उठ खड़ा होगा और बताएगा कि जो सरदार और उसके बेटे पहले मिन्न्त-खुशामद करते रहे थे, इन्हें भी उसने 'अक्ल की कांपी' पढ़कर सुनाई थी और आज के जमाने में चलने का तरीका सिखाया था। वह कप्तान की वह बात दोहराएगा जो कप्तान ने आजादी के बाद जब पहली बार वोट पड़े थे, की थी। यह बात तेजू ने अनेक बार सुनाई थी।

तेजा सिंह दूसरों के संग गांव के स्कूल में वोट डालने के लिए कतार में खड़ा था कि कप्तान अपनी छड़ी पर वजन डाले झूलता हुआ आया और कतार को तोड़कर आगे निकल गया था। अंदर जाकर वोट डलवा रहे मास्टरों को संबोधित करते हुए बोला, "अंदर मास्टर हंसराज है?"

"हां जी, हुक्म करो।"

"देखो, मेरी वोट बनी है?"

"जी, बनी है।"

"मेरा नाम कैसे लिखा है?"

दरअसल, उसको सरकार पर गुस्सा था जिसने हर किसी को वोट डालने का अधिकार दे दिया था। कभी सारे गांव में केवल उसी का वोट हुआ करता था। और अब...

मास्टर हंसराज ने वोट-सूची में से उसका नाम पढ़ा, "नाजर सिंह वल्द जागीर सिंह।"

कप्तान नाजर सिंह ने कंधों को हिलाया, "सरदार नाजर सिंह नहीं लिखा?"

"नहीं जी।"

"कप्तान नाजर सिंह नहीं लिखा?"

"नहीं जी।"

और एक मिनट के लिए हैरान-परेशान हुआ कप्तान नाजर सिंह खड़ा रहा। फिर उसने वोटरों की कतार की ओर नजर भरकर देखा जैसे कोई कीड़े-मकोड़ों की ओर देख रहा हो।

"मेरे से पहले किसकी वोट है?"

"तेजा सिंह वल्द मीहा सिंह।"

"हूं, तेजू, तेजा सिंह और कप्तान नाजर सिंह निरा नाजर सिंह..सरदार बहादुर नाजर सिंह, निरा नाजरसिंह...मैं वोट पोल नहीं करूंगा।" और वह कइयों के कहने पर भी छड़ी हिलाता दांत पीसता हुआ बिना वोट डाले चला गया था।

तेजू जब भी कप्तान की यह बात सुनाता, साथ में यह भी बताता कि यह वही था जिसने बाद में कप्तानों के परिवार को सियासी बनने के लिए कहा था और भरोसा दिलवाया

था कि उसका नाम सिर्फ कागजों में ही तेजा सिंह हुआ था, वैसे तो वह तेजू ही था। और यह भी कि उनके नाम के आगे से 'सरदार' सिर्फ कागजों में ही उतरा था, वैसे वे 'सरदार' ही हैं। परन्तु, क्योंकि नया युग आ गया था और इसमें नई चतुराई से ही चला जा सकता था। बेशक लोग कहते थे कि ये समय की बातें थीं और पैसे की 'सरदारी' कायम रहनी ही थी। पर तेजू कहता था कि अगर वह न समझाता तो कप्तान जमाने से पिछड़ जाते। बेचारा तेजू जिसका ख्याल था कि उसने सरदारों की सरदारी कायम रखी थी। लोग कहते थे, उन्होंने वोट डालकर सरदारों को 'सरदार' बनाए रखा था और सरदार थे, जो कोठी में बैठकर व्हिस्की का पैग चढ़ाकर मूंछों पर ताव देकर कहते थे, 'हमारी सरदारी बहुत पीछे से चलती आई है।' लेकिन, लोगों में खड़े होकर कहा करते, "जनता हमारी मां है।" शायद, सभी अपनी-अपनी जगह पर सच्चे थे। लोग, सरदार और तेजू तीनों धड़े ही...

तेजू लोगों को आगे बढ़ाता रहा, पर खुद पीछे ही जाता रहा। जैसे, समय की मुट्ठी में से आहिस्ता-आहिस्ता रेत झड़ती जा रही हो। जैसे लक्कड़ के शहतीर को अंदर ही अंदर दीमक ने चाटकर खोखला कर दिया हो। जैसे...तेजू में कोई ऐब नहीं था। मेहनती था। डटकर काम करता। हिस्से-ठेके पर खेत लेकर बेटे के साथ जुता रहता। छोटे-छोटे, कमजोर दुर्बल उनके बैल थे और वैसे ही वे बाप-बेटा स्वयं। लोग उन्हें भी कई बार पीठ पीछे और कई बार मुंह पर भी 'भैंसा' कहते। पर उनके इतना काम करने के बावजूद खेती साथ नहीं दे रही थी। कई बार तो उन्हें हिस्से-ठेके में से भी कुछ न बचता। अपनी खराब खेती का उदाहरण देते हुए उसने पिछले वर्ष बताया था–

उसने गत वर्ष मास्टर राजपाल की जमीन में धान और गेहूं की खरीफ की फसल बोई। खाद-पानी का खर्चा मास्टर को पहले देना था और बाद में खेती में से तेजू के हिस्से का काटना था। कुछ गेहूं उसने मास्टर से लेकर खाई थी और सौ-एक रुपया आवश्यकता पड़ने पर उधार लिया था। वर्ष के अंत में फसल काटकर जब वह उसके घर शाम को हिसाब करने पहुंचा तो राजपाल के संग जो बात हुई उसके बारे में तेजू ने बताया, "हिसाब-किताब किया तो सारा कुछ काटकर मुझे कुछ देने की बजाए उल्टा तीन रुपए मेरी ओर निकाल दिए उसने। और बोला, अगर पास हैं तो ये भी देता जा। मुझे गुस्सा आया। घर में बैठा था। मेरा मन किया, कहीं इधर-उधर होता तो इसे टेड़ा होकर साफा उठाकर दिखा दूं। और भाई मेरे...सारी बात का मतलब यह है कि...खेती भी पैसे की...।"

और पैसा उसके पास था नहीं, इसलिए जमीन भी उसके पास न रही। धीरे-धीरे बिक गई। उसका बेटा तारा रिश्तेदारों का कामगार बन गया। अब वह अपनी 'अक्ल की कांपियों' के विषय में भी अधिक चर्चा नहीं करता था। लेकिन, फिर भी उसे रोते-गिड़गिड़ाते किसी ने कम ही देखा था। पल भर को गम की कोई रेखा उसके मस्तक पर उभरती भी तो

वह उसे साफे से पोंछकर कोई न कोई नई बात छेड़ बैठता।

इस बार संक्रांति के दिन, भोग पड़ने और कड़ाह-प्रसाद बंटने के वक्त घड़ी भर को चुहलबाजी के लिए सरदार गुरुबचन सिंह ने उसकी तंग-हाली के विषय में, तारा के 'जट्ट' से 'कामगार' हो जाने के बारे में अफसोस जैसा कुछ प्रदर्शित करते हुए भूमिका बांधी और फिर उसकी 'अक्ल की कांपियों' को ताना मारने लगा जिनके होते हुए भी उसकी यह हालत हो गई थी। मैली पगड़ी का माथे पर सरक आया पल्ला ऊपर करते हुए छोटी-छोटी आंखें खोलकर तेजू ने उसकी ओर देखा और फिर दांतों की दरार में से मुस्कुराया।

"कांपियां तो तुम्हें दे दीं सरदार, सारी की सारी।"

"नहीं चाचा, बात को न टाल।"

"नहीं, बात क्या टालनी है...बात क्या टालनी है..." कहते हुए तेजू जैसे वास्तव में बात टाल रहा था। वह उनकी ओर कड़ाह बांटते आ रहे गुरुद्वारा कमेटी के प्रधान सुलक्खन सिंह की ओर मुखातिब हुआ, "आओ जी, बाबा जी महाराज महापुरुषो...वाहे-गुरु का खालसा...धन्य हो...धन्य हो।" सुलक्खन सिंह भरी हुई मूंछों में मुस्कुराता हुआ थाली के ऊपर से सिर झुकाकर और फिर कड़ाह बांटते हुए गुजर गया तो तेजू ने जैसे उसको सुनाकर कहा, "सब अकाल पुरुष की मर्जी है। उसके हुक्म के बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता तो फिर मेरी कांपियों के पतरे कैसे खुलते...और फिर यह जादू अपने पर नहीं चला करता।" जब उसने देखा, सुलक्खन सिंह आगे बढ़ गया है तो वह ऊंचे स्वर में बोलना छोड़कर धीमे से कोई भेद खोलने की तरह बोला, "ठगों का ठग है। बड़े कंजर को देख, कैसे झुके जाता है...पर भाई झुके न तो जांघों पर से कैसे उठाए दूसरे को...सारी बात का मतलब यह है..."

तेजू की बात सुनकर गुरबचन सिंह सहित उसके आसपास बैठे हुए सभी आदमी हंस पड़े। गुरबचन सिंह तभी तारे को लेकर खड़े किए गए उसके महलों के बारे में पूछने लगा और फिर, गुरबचन सिंह को जैसे कोई बढ़िया साहित्यिक वाक्य सूझ गया। इस वाक्य को उसने खुश होकर दो-तीन बार दोहराया—

"चाचा, तेरा तारा चमका नहीं...तारा चमकना चाहिए था।"

"सब रब की बातें हैं...बताया तो है।"

"तारे को चमकना चाहिए था। तारा चमके न तो फिर 'तारा' कैसा हुआ, और फिर तेरा तारा..."

तेजू ने कड़ाह वाले चिकने हाथ रगड़कर चेहरे पर मले और फिर जैसे एक नया रहस्य खोलने लगा हो, "बात बड़ी और मुंह छोटा, पर सरदार अपना मुंह तो फटा हुआ है...रब पहले कभी हमारे भी नजदीक रहा होगा। कहते हैं, कोठा आकाश जितना ऊंचा था। किसी औरत ने छोटे बच्चे को पैरों पर शौच के लिए बिठाया था। उसे बच्चे को साफ करने के

लिए कपड़े का कोई टुकड़ा न मिला तो उसने उठकर एक तारा तोड़ा और उससे बच्चे को साफ किया, और...और भाई मेरे, रब उसी वक्त हमारे सिर पर से गड़गड़ाते हुए दूर चला गया...ऊपर चढ़ गया। सारी बात का मतलब यह है कि..."

"यह क्या बात बनी फिर?"

"बात यह बनी भाई...कि तेरी मां या तेरे बाप की मां, या फिर तुम्हारे किसी बड़े-बुजुर्ग की मां थी वह औरत और जिस तारे को उसने बच्चे को पोंछने के बाद फेंक दिया था, वह मैं या हमारा बड़ा बुजुर्ग या फिर सौ फीसदी हमारा तारा होगा...सारी बात का मतलब यह है कि...तुम्हारे गूं से सने तारे कैसे चमकें, भाई सरदार सिंह?" और वह साफा झाड़ते हुए उठकर चल दिया, अपने पीछे हंसी की बौछार छोड़ते हुए और अपने पीछे दुख की सघन परछाईं को घसीटते हुए।

और इस प्रकार वह हर स्थिति में खुश रहने का प्रयत्न करता। अपने दुखों की कहानियां बना-बनाकर न सुनाता। वरन हर समय खुश दिखने का यत्न करता। कोई उसकी खेती के बारे में पूछता—

"सुना, फिर कितनी गेहूं बोई है इस बार?"

"बहुत बोई है...पहले से अधिक।"

"फिर भी कितनी?"

"बस, सारी धरती अपनी है।"

"और घास-चारे की सुना फिर।"

"बहुत है घास-चारा, बेअंत...गुरु की मेहर है..."

"छटाला या सेंजी?"

"भाई मेरे, पूछ मत कुछ...बाहर से लाता हूं करड़-मरड़ करती दो-तीन गांठें। गंड़ासे से करड़-करड़कर कुतरता हूं और मरड़-मरड़कर छक जाते हैं पशु। सारी बात का मतलब यह है कि..." वह हंस पड़ता जैसे सबका मुंह चिढ़ा रहा हो।

मुंह पर तो वह किसी को कम ही बुरा कहता था, क्योंकि वह समझता था, संसार हंसते दांतों का प्रीत है। यहां बैठा कोई नहीं रहेगा, दो दिन का मेला है यह। परंतु पीछे से वह अपनी इच्छानुसार किसी को बुरा-भला कहकर अपने मन की भड़ास निकाल लेता। पर उसका अंदाज खीझ भरा न होकर हंसाने वाला ही होता जैसा कि अभी फिलहाल ही जब कप्तान नाजर सिंह अफसोस प्रकट कर चलने लगा तो सभी कह रहे थे कि उसने बहुत अच्छा किया था आकर। यही तो अड़ोस-पड़ोस और बड़े आदमियों का फर्ज होता है कि वह कमजोर गरीब की पीठ पर हाथ रखे। बुरे समय में हमदर्दी ही जता दे तो कौन-सी कम बात है!...और अगर तेजू जीवित होता तो वह और भी उसके तथा उसके लड़के गुरबचन सिंह की प्रगति के प्रशंसा भरे गीत गाता। लेकिन, नाजर सिंह जब दरवाजे से बाहर हो

गया होता, तब उससे कहना था, 'बड़े ही कुड़ी देने हैं ये कमीने-कंजूस। अगर इतने मीठे न हो तो हमारा दूआ कैसे मारे? हां, भाई मेरे, सारी बात का मतलब यह कि...।'

कप्तान दरवाजे से बाहर हुआ तो सभी ने जल्दी से नहलाकर संस्कार करने का प्रोग्राम बनाया। वे कह रहे थे कि दिन छोटे हैं और जो काम जल्दी हो जाए, वही अच्छा। फिर लोगों को भी अपने सौ धंधे करने थे। घास-चारा लाना, पर अभी तक कफन का कोई प्रबंध नहीं हुआ था। जब दीपसिंह से इसका पता चला तो एक व्यक्ति बोला, "करो फिर प्रबंध। अब कब करोगे?"

"लकड़ी के लिए तो मैंने भेजा है लड़के को कारीगर की तरफ कि हमारी वाली लक्कड़ चिरवाकर गाड़ी में ढोकर श्मशान भूमि ले जाए। पर कफन के लिए..." अभी बात उसके मुख में ही थी कि सड़क की दूसरी ओर से स्टार्ट हुई जीप कोठी में से बाहर निकली और तेजू के दरवाजे के आगे खड़ी हो गई। जीप में से गुरबचन सिंह और गांव का पटवारी निकले। पास आकर गुरबचन सिंह खड़ा हो गया—काले कोट-पैंट में कसा हुआ।

"मैं शहर जा रहा था...सुना तो बहुत दुख हुआ। मैंने बापूजी को भेजा था। अब मैं जा रहा था तो सोचा, जाते-जाते होता जाऊं। तारा कहां है भई, तेरे बापू की ओर से तो बहुत बुरा हुआ है और अब देर क्यों हैं?"

दीप सिंह ने कफन के बारे में बताया तो उसी समय गुरबचन सिंह ने कोट की जेब में से बटुआ निकाला और मुलायम, गोरे हाथों से दस-दस के तीन कड़कड़ाते नोट निकालकर तारे की ओर बढ़ाए, "जा, बिहारी की दुकान से कपड़ा लेकर आ।...मूर्ख! तू मुझे पहले बताता। हाय...अपनी तो बहुत जोड़ी थी चाचा तेजासिंह...हमें तो भई उसने बहुत अक्ल की कापियां पढ़कर सुनाईं...." गुरबचन सिंह मुस्कुराया तो दूसरे लोग भी फर्ज समझकर उसके साथ फीका-सा मुस्कुरा उठे।

दीप सिंह और तारा कपड़ा खरीदने चले गए तो पटवारी ने उसकी जिंदादिली के बारे में कहानी सुनाई। एक बार वसूली करने गया पटवारी बाहर वाले गुरुद्वारे के आम के दरख्तों के नीचे बैठा था। तेजू वहां चाय रखकर पटवारी से कह रहा था, "महाराज! चाय पीकर जाना। पदारथ डाले हैं बीच में...बड़े पदारथ...कहीं इलाचियां...कहीं मिश्री।" और जब पटवारी के सामने कटोरी लाकर रखी तो मालूम हुआ कि कीकर के छिलके नमक डालकर उबाल रखे थे और वह कह रहा था, "पटवारी जी, माफी चाहता हूं...दूध के बिना ही है।"

...क्योंकि गुरबचन सिंह को जल्दी थी, अतः पटवारी और वह फतह बुलाकर चले गए। अभी कपड़ा खरीदकर नहीं लाया गया था। इसलिए, इस बीच के समय में किसी बुजुर्ग ने मुनासिब समझकर तेजू के बारे में एक कहानी बता देना ठीक समझा। वह बता रहा था कि पाकिस्तान बनने से पहले एक बार तेजू, फत्तू अराई[1] से जिद्द कर रहा था और उसके साथ लड़ने के तैयार हो गया था। लोगों ने भी तमाशा देखने के लिए उकसा दिया।

पर तेजू अड़ गया, वह अखाड़े में नहीं, पोखर में लड़ेगा। लोगों की भीड़ खिल्ली उड़ाती हुई उन्हें पोखर की ओर ले चली। गले तक पानी में वह और फत्तू कूद पड़े। फत्तू लंबा, जवान और वैसे भी तगड़ा था और तेजू कमजोर और दुबला-पतला। फत्तू ने गर्दन से पकड़कर तेजू को गोता दिया। जब भी वह सिर हिलाते हुए थोड़ा पानी से बाहर होता, फत्तू सिर पर हाथ मारता और उसे फिर से पानी में डुबो देता।

"लोगों ने पानी में जाकर उसे छुड़ाया कि कहीं मर न जाए। पर तेजू फिर भी हंसता हुआ फत्तू से कहे जा रहा था—आ फिर—आ फिर"

बुजुर्ग ने बात सुनाई तो सभी हंस पड़े। थोड़ा हटकर, कुछ दूरी पर बैठी हुई पांच-सात औरतें बातों में उलझी हुई थीं और बीच में चारपाई पर तेजू पड़ा हुआ था। बेखबर... बेपरवाह...हमेशा खुश रहने वाला। जिंदादिल...हंसमुख...जो जिंदगी भर पता नहीं कितने सिर-डुबाऊ गहरे पानी वाले तालाब में पड़ा रहा था—अक्ल की कांपियों की बात करता, समस्त धरती को अपनी कहता, नमक को मिश्री और कीकर के छिलकों को इलायचियां कहता। ये सब कुछ जैसे उसका पानी में से जोर से उछलकर सिर बाहर निकालने का यत्न ही था। मगर, मालूम नहीं, समय का, हालात का कौन-सा फत्तू था, जिसने उसको पानी में से सिर बाहर नहीं निकालने दिया था और हर सांस के साथ हंसते हुए उसको गोते लग रहे थे। ...और, अंत में वह सिर-डुबाऊ पानी में डूब ही गया था और किनारे पर खड़ी भीड़ जैसे तमाशा देख रही थी, हंस रही थी।

और फिर जब किसी दूसरे ने उसकी कोई और कहानी छेड़ी तो तारा हाथ में कफन का कपड़ा संभाले दरवाजा लांघ रहा था। तारा जो पहलवान नहीं बन सका था, बदमाश नहीं बन सका था, अफसर नहीं बन सका था। क्योंकि...

---

1. मुसलमानों की एक जाति जो शाक-सब्जी बोने का काम करती है।

जीना-मरना

प्रेम गोरखी

थोड़ी-सी धूप मुश्किल से गांव की हद में बिखरती देख, बिशना ने घोड़े को अंदर से खोला और गांव की बाहरी सड़क के किनारे खड़े शहतूत की जड़ से बांधने लगा तो पीछे से किसी ने पुकारा। आवाज सुनकर वह ऐसे चौंका जैसे उसके हाथ में सांप का बच्चा आ गया हो और उसने उखड़कर पीछे मुड़कर देखा—लंबड़ ही था। उसने गांठ लगाते हुए मुंह ही मुंह में लंबड़ को गाली दी।

"क्या हाल-चाल है, बिशन सिंह...भाई, शहर की ओर कब जाएगा?" लंबड़ कमर में धोती का सिरा खोंसते हुए बिशने के करीब आ गया। एक पल के लिए बिशने ने कोई उत्तर नहीं दिया। उठते हुए उसने दूर बकायन के पेड़ों की ओट में अपने घर की ओर देखा, जहां खुले दरवाजे के अलावा और कुछ नहीं दिखाई देता था। फिर उसने लंबड़ की आंखों में झांका जिसका मुख उसके घर के द्वार की ओर ही था और फिर वह अपनी ओर से ऐसे खड़ा हुआ कि बात करते हुए लंबड़ की पीठ उसकी ओर घूम गई।

"शहर तो जाना है, पर अभी नहीं। दिन निखरने पर ही चलूंगा।"

"दिन को क्या हुआ है?...देख, धूप भी निकलती आ रही है। और फिर अब दिन तो ऐसे ही रहेंगे।" लंबड़ ने हथेली पर रखे जर्दे को थपथपाकर झाड़ा और होंठों में रखते हुए बोला, "हवेली से दो ड्रम और बोरियां लेकर चलना है, याद रखना।"

तभी, घोड़े की ऐनकें और अन्य साज-सामान उठाए बिशने की पत्नी करमी आ गई। दूसरे ही विचारों में खोए बिशने ने उसको आते हुए जैसे देखा ही नहीं था और अब जब उसने बिलकुल करीब आई करमी को देखा तो वह गुस्से में चीख उठा, "ये सब क्यों उठाए चली आ रही है?...तेरा कुछ लगता...ये बारिश का मौसम तो बना हुआ है...ऐसे में कोई मिलेगी सवारी?...लोग तो घरों में से निकलते ही नहीं, और तू आ गई ये उठाकर...रख दे ले जाकर।"

लंबड़ ने घूमकर करमी की ओर देखा और बोला, "यूं ही न गुस्सा हुआ कर कुत्ते! सोना संभाले बैठा है तू।"

लंबड़ की बात बिशने को चीरती हुई अंदर तक घुसी और उसे दो-फाड़ कर गई—'साले,

मेरी बीवी है, चाहे उसे डांटूं, चाहे फटकारूं, तेरी बहन लगती है क्या?' उसने मुंह ही मुंह में बुदबुदाकर लंबड़ को कोसा और अपने अंदर ही निगल गया। साज को घसीटकर ले जाती करमी की ओर वह एकटक घूरता रहा।

"तूने तो उसे यूं ही ठंडा-सा करके लौटा दिया। अच्छा, फिर याद रखना..." कहकर लंबड़ मुड़ा तो उसने जमीन पर थूका और बकायन के पेड़ों की ओर देखा। बिशने के भीतर सुलगती धूनी में से लपटें उठीं और वह खड़े-खड़े लड़खड़ा उठा। उसने घर की खाली दीवारों और सूने आंगन की ओर देखा, उधर तो कोई भी नहीं था। वह देखता रहा किंतु करमी तो बिलकुल ही उसको दिखाई न दी।

'नहीं, वह बुरी नहीं है। यूं ही मेरा भ्रम है।...फिर वह अभी क्यों आई थी? लंबड़ को देखकर ही आई थी...यही बात है।...नहीं, नहीं। रात को तो वह भाइयों की कसम खाती थी। वह पहले भी तो ऐसे ही साज उठाकर लाया करती है, जब वह घोड़े को बाहर निकालता है। आज भी वैसे ही आई थी। उसे क्या खबर कि लंबड़ आया खड़ा है?' वह अंदर ही अंदर तड़फते हुए सोच रहा था। उसके मन की बात भी उसके नियंत्रण में नहीं रही थी।

कल, शाम को जब बिशना शहर के अड्डे पर खड़ा होकर सवारियों की प्रतीक्षा करते-करते आखिर खाली ही लौटने लगा तो धोती घसीटता, उछल-उछलकर चलता लंबड़ उसके तांगे में आ बैठा। लंबड़ के बैठते ही बिशने ने घोड़े को छोड़ दिया। गांव में कई दिन से गुम हुए दो वर्षीय लड़के की एक कुएं में से मिली लाश के विषय में बातें करते हुए वे विरदी भाइयों के आरे के आगे पहुंचे तो लंबड़ ने तांगा रोकने के लिए कहकर बिशने को नीचे उतार लिया। चाय की दुकान से खाली गिलास पकड़कर बिशना द्वारा न-न करने पर भी उसने दो पैग उसको लगवा ही दिए। बोतल में शेष बची को खुद ही गले में उंड़ेलकर वे दोनों तांगे में आ बैठे। नहर की पुलिया पर चढ़ते हुए, गांव के उस पापी को वे गालियां देते रहे जिसने बच्चे को मारकर कुएं में फेंक दिया था। ढलान उतर कर मोड़ मुड़ते हुए, गांव की सड़क पर आकर उन्होंने दूसरी ही बातें शुरू कर दी थीं। उन्होंने गांव के कुत्तों से लेकर खत्रियों की मास्टरनी, जिसके बराबर सारे इलाके में उनकी राय में दूसरी औरत नहीं थी, तक की बातें की थीं। और जब यहां आकर बात अटकी थी तो लंबड़ ने धीमे से कहा था, "लंडे के, तेरी कौन-सी बुरी है?...वह भी तो शोला है!...मैंने कल रूड़े की हट्टी पर खड़ी देखी थी। मैंने कहां उसे पहले देखा था, वह तो करीब बैठे लश्कर ने कोहनी मारी कि अपने डिरेवर के घर से है। बड़ी तेज आंख है चमारी की...।" कहते हुए लंबड़ ने फैली हुई मूंछों को संवारा था।

एक क्षण में बिशना बर्फ बन गया था और उसने मुंह घुमाकर जब लंबड़ की ओर घूरकर देखा था तो बिशने को लगा था जैसे गाढ़े अंधेरे में भी लंबड़ की मशालों की तरह

लप-लप जलती आंखें उसकी छाती में नेजे की तरह घुसती चली गई हों। अपने अंदर को और हल्का करने के लिए पांच-सात चाबुक घोड़े को मारकर वह उसे दौड़ाने लगा। फिर घर की दहलीज आते-आते गहरे सागर में डूबता-उतरता रहा। दोपहर में अड्डे पर पप्पू की बताई हुई बात ने भी उसकी रूह को भटकने के लिए विवश कर दिया।

"लंबड़ तुम्हारे घर के बहुत चक्कर लगाता था। कोई दूर का फेरा लगाना है क्या?" उसने तो बस इतना ही कहा था। पर क्यों कहा था? इस बारे में उसके मस्तिष्क में अब ऐसे विचार उठ रहे थे। तांगा खड़ाकर और घोड़ा छोड़कर जब उसने घर के अंदर पैर रखे तो दरवाजे के पीछे चूल्हे के आगे बच्चे को गोद में उठाए हुए करमी की ओर उसने शक भरी दृष्टि से देखा। करमी ने बच्चे को टाट पर लिटाकर चूल्हे के ऊपर रखे पतीले में से पानी का मग भरकर बिशने की ओर बढ़ाया, "ले, मुंह-हाथ धो ले। मैं रोटी डालती हूं।"

"रुक जा, घड़ी भर।" कहकर वह उन्हीं पैरों अंदर से बाहर आ गया। उसका मन उदास-सा हो गया और वह सीधा दरवाजे के करीब ही खुंडों की ओर बढ़ गया। वहां पहुंचते ही उसने पूरन ब्लैकिए की औरत से गिलास भरवाकर दारू पी और नमक की चुटकी फांककर अंदर वाली संकरी गली हो लिया।

जब वह घर लौटा तो करमी घोड़े को अंदर बांधकर उसके मुंह से दाने वाला थैला लटका चुकी थी। अब घोड़ा नथुने फुलाकर दानों को मुंह मार रहा था। आग जलाने के कारण कोठे के अंदर धुआं फैला हुआ था। शायद, करमी ने चाय का पानी चूल्हे पर रख दिया था। बिशना दीवार के साथ लगी चारपाई पर बैठकर करमी की ओर घूर-घूरकर देखता रहा। उसके अंतर में एक से एक बात चुभ रही थी। "रोटी डाल दे। और लड़के को उठाकर चारपाई पर डाल।" उसने धीमे स्वर में कहा।

"यहां आ जा, आग के पास," करमी ने कहा तो वह चारपाई से उठकर चूल्हे के आगे टाट पर आकर बैठ गया। करमी ने थाली में रोटी रखकर उसके आगे कर दी। अभी उसने पहली बुरकी ही तोड़ी थी कि घोड़ा पेशाब करने लगा और छींटों से आसपास की सारी जगह गीली हो गई। क्रोध में करमी ने चिमटा उठाया और खींचकर घोड़े की टांगों में दे मारा। फिर उसने बिशने के आगे रखी थाली को उठाकर एक ओर रख दिया।

"रुक जा, थोड़ी देर। अभी दूसरी उतार देती हूं मैं।" कहकर उसने दीवार के पास से परात उठाकर आटे की चाटी[1] में हाथ डाला तो बिशने ने उसको रोक दिया। हाथ बढ़ाकर उसने थाली अपनी ओर खींची और रोटी खाने लगा। रोटी खाते-खाते अंदर से मालूम नहीं कैसा उबाल उठा कि उसने बची हुई दो रोटियों समेत थाली करमी के पैरों के आगे सरका दी और उठकर चारपाई पर जा बैठा।

"रोटी और नहीं खानी? दूसरी उतार दूं?" करमी जैसे चिंता में डूब गई।

---

1. मिट्टी का बना खुले मुंह वाला बर्तन।

"नहीं, यूं ही।" रूखा-सा जवाब देकर उसने सिगरेट सुलगाई और लिहाफ ओढ़कर दीवार से पीठ टिका ली। सिगरेट के लंबे-लंबे कश खींचता हुआ वह करमी को बर्तन संभालते, अपनी चारपाई बिछाते, बच्चे के मूत से गीले हुए कपड़ों को ऊपर-नीचे कर बिछाते और चूल्हे में बुझती हुई आग को तसले में डालते हुए देखता रहा। जब करमी बिशने की चारपाई पर पड़े बच्चे को उठाकर अपनी चारपाई पर डालने लगी तो दीए की लौ में उसकी नाक के कोके में लगे नग की लिश्कार बिशने के अंदर जैसे तरंगें पैदा करती हुई गुजर गई। उसने उसकी बांह पकड़कर अपने पास खींचा और उसके सिर को पकड़कर अपनी छाती से लगा लिया। फिर उसने शराब की गंध से भरा अपना मुंह करमी के बिखरे बालों में धंसा देना चाहा। कई दिनों से अनधुले सिर में से उठती दुर्गंध भी इस घड़ी में बिशने को इत्र की महक ही प्रतीत हुई। वह रेत की भांति कण-कण-सा बिखरता चला गया।

कितनी ही देर तक वह चुप्पी साधे दीए की लौ को घूरता रहा। फिर उसने दरवाजा खोलकर बाहर जाती हुई करमी को देखा। लौटकर उसने घोड़े के मुंह से लटके थैले को उतारा। जब वह लेटने लगी तो बिशने ने धीमे से कहा, "कल तू रूड़े की हट्टी पर गई थी?"

"हां..हल्दी नहीं थी। और चाय-पत्ती भी खत्म हो गई थी। क्यों, क्या बात है?"

"बात तो कुछ नहीं.." उसने उठते हुए कहा। वह दीवार से पीठ टिकाकर फिर सिगरेट पीने लग पड़ा। "यूं ही न हट्टी-भट्टी को जाया कर...इस गांव की मिट्टी खरी नहीं है।"

"नहीं खरी तो न हो, मैंने चाटना है मिट्टी को!" करमी गुस्सा होकर बोली और लेट गई।

"अच्छा, जब तू हट्टी पर गई थी तो कौन-कौन बैठा था थड़े पर?" करमी की बात से बिशना जैसे नाराज हो गया था।

"कसम भाइयों की, मैं नहीं जानती कौन बैठे थे...तुझे ज्यादा बातें बनानी आती हैं।"

"लंबड़ और लश्कर भी बैठे थे?" बिशन खांसते हुए आगे बढ़कर घोड़े के पैरों में थूकने लगा।

"बैठे थे तो बैठे रहें, मैं जूती नहीं मारती किसी को...तूने मुझे लुच्ची-लंडी समझ लिया है? आगे से मुझे ऐसी बात नहीं बोलना...नहीं बोलना...बोल देती हूं।"

"क्या बोलेगी तू कुतिया...उठ, कह ले जो कहना है।" तड़पकर बिशना चारपाई पर से उठा और उसने उल्टे हाथ से करमी का मुंह तोड़ दिया। उसके बालों को पकड़कर झटका और गालियां निकालता हुआ चारपाई पर पड़ गया। कुछेक पहले जो तख्त-ताज मिट्टी में फेंक अथाह सागर में डुबकियां लगाकर हटे थे, उन्हें एक बार में ही एक तेज लहर ने नदी के..न पर ला पटका था। दीए की लौ तेज करने के बाद लंबी रात बीतने तक भी बिशना सो नहीं पाया। करमी जैसे गुस्से में दांत भींचे पड़ी थी, दुबारा हिली तक नहीं। वह इस

बात पर भी पछताता रहा था कि उसने यूं ही करमी पर गुस्सा किया।

अब जब बकायन के पेड़ों की ओर जाते हुए हुए लंबड़ को बिशने ने देखा तो शक की एक लहर उसके अंदर दौड़ गई। तभी घोड़ा जोर से हिनहिनाने लगा। बिशने ने चौंककर उधर देखा, घोड़ा चारों पैरों से मिट्टी खोद रहा था और नहर की ओर मुंह उठाए देख रहा था। समाधियों के उस पार से ब्लैकियों की घोड़ी आहिस्ता-आहिस्ता चली आती थी, जिसे देखकर घोड़ा मचल उठा था। बिशने ने उसका रस्सा पकड़कर उसे घूरा, पर वह जोर-जोर से हिनहिनाता रहा। फिर दो-तीन पत्थर के टुकड़े उठाकर घोड़ी के मारे तो वह समाधियों के पास खड़ी हो गई। खुली घोड़ी देखकर बिशने ने घोड़ा खोल ही लिया। परसों भी इसी घोड़ी को घुड़कने पर ब्लैकियों की बेटी उन्हें गालियां निकाल गई थी और वह ब्लैकियों से डरने के कारण कुछ नहीं बोला था। अभी उसने एक कदम ही रखा था कि घोड़ा जोर से हिनहिनाया। बिशने के अंदर मद्धम पड़ी गुस्से की दबी हुई आग लपटों में बदल गई। उसकी आंखों में तो जैसे धुंध आ पसरी और बिदके हुए घोड़े के मुंह के स्थान पर उसे लंबड़ का मुख दिखाई दिया। उसने रस्सा पकड़े-पकड़े आगे बढ़कर तांगे की छत में खोंसी हुई चाबुक को खींचा और घोड़े पर बरस पड़ा—पागलों की भांति। आदमी बेबसी में आग की जगह मिट्टी फूंकने लगता है—बिशने की तरह। किंतु अंदर कुछ न कुछ सांसों से जरूर जुड़ा होता है—बिशने के घोड़े की तरह। इसलिए ऐसा हुआ कि बिशने ने अभी चौथी चाबुक मारी ही थी कि अंधड़ बने खड़े घोड़े ने बिशने के हाथ को अपने मुंह में दबोच लिया, हाथ छोड़कर कंधे को काटा तो बिशना चीखने लगा। वह रस्सा छोड़कर दौड़ उठा पर घोड़े ने पीछे दौड़कर उसके सिर पर मुंह मारा और गर्दन पर काट लिया। बिशना कांपते हुए गिर पड़ा तो घोड़ा पीछे मुड़कर दुलत्तियां झाड़ता हुआ घोड़ी की ओर दौड़ पड़ा। बिशने की चीखें सुनकर कुएं पर खड़ा दौलती का परिवार दौड़ा आया। इधर से बौटी का परिवार भी निकल आया। शोर सुनकर करमी भी लंबे-लंबे डग भरती हुई वहां आ पहुंची। वह रोती हुई चुन्नी से बिशने के सिर, बांह और हाथ से बहते लहू को पोंछने लगी। बिशने के चाचा और छोटे भाई ने आते ही उसे उठाया और रिक्शा में डालकर शहर की ओर दौड़ पड़े। बिशने से बड़ा भाई लाठी उठाकर घोड़े को घेरने चल पड़ा।

बिशने को लेकर जब शहर से लौटे तो उसके सिर-मुंह से लेकर कंधे तक और एक बांह पर सफेद पट्टियां लिपटी हुई थीं जैसे चूना फेरा हुआ हो। चारपाई पर पड़े बिशने की ओर देख-देखकर करमी फूट-फूटकर रो रही थी। सारा मोहल्ला घर में आ इकट्ठा हुआ था।

"ऐसे घोड़े को खरीदा ही क्यों?...अब भी वापस कर दो। फूंकना है इस साले को!" कोई कह रहा था।

"हमने तो बहुत माथा-पच्ची की, पर इसने एक न सुनी। वह पहली घोड़ी क्या बुरी

थी? यह पप्पू उसे जोत ही रहा है, क्या हुआ है उसे?" बिशने के पैरों की ओर बैठे उसके चाचा ने हुक्के का कश भरते हुए कहा।

"काटने वाला घोड़ा तो मैं कहता हूं, वैसे ही बुरा होता है। गोली मारो इसे। लौटा दो उसे जिससे लाए हो...क्या लेना है इससे?" कोई दूसरा बोल रहा था।

कानों पर पतली पट्टी होने के कारण बिशना को सारी बातें सुनाई दे रही थीं। उसकी आंखों के सम्मुख चलता-फिरता और फुंकारे मारता घोड़ा दौड़ रहा था, जिसकी गोल चमकीली आंखें अब भी उसको लंबड़ की आंखें ही लग रही थीं। वह पड़े-पड़े ही क्रोध में जल रहा था, 'अगर वह उठने के काबिल होता, चारपाई के नीचे से बरछा उठाकर घोड़े का पेट फाड़कर रख देता। हजार-बारह सौ ही सही, पर मुक्ति तो मिल जाती।' वह मन ही मन सोच रहा था, 'वैसे कोई बात भी नहीं थी कमबख्त को मारने वाली। बस, यूं ही गुस्से में मारा गया।' सोचते हुए उसने आंखें मूंद लीं।

जब पुनः उसने आंखें खोली, तब उसके पास अकेली करमी ही खड़ी थी। कोठे में से सब जा चुके थे।

"मैंने किशन को कह दिया है कि घोड़ा शहर छोड़ आए। मैं नहीं इसे घर में रहने दूंगी। घोड़ी हमें वापस ले लेनी है। नहीं मानेगा वह तो न सही उसको कहना, इस कलमुंहे को अपने पास ही रख, बेशक घोड़ी भी न दे।" कहते हुए करमी बाल्टी में रखे गरम पानी से बर्तन धोने बैठ गई। "देखो तो, अब कैसे झुलसा खड़ा है? वेलें डाली पड़ी है, पर इसने सवेर का मुंह ही नहीं लगाया। घड़ी भर पहले छान मिलाकर थैला टांगे रखा, बस यूं ही मुंह बनाकर खड़ा रहा। भाइया ने कूटा भी बहुत है। देख तो लाठी के निशान उभरे पड़े हैं। बोलते हुए करमी कोने में गर्दन झुकाए खड़े घोड़े को देखती रही। सच ही, बिशने के बड़े भाई ने घोड़े को बड़ी बेरहमी से पीटा था। उसके पिछले दोनों घुटनों पर जख्म हो गए थे। माथे पर लाठी लगने के कारण आंख तक मांस उभर आया था। कनपटी पर नील पड़े थे।

"मैं कह आऊं फिर किशन को...दिन बीता जा रहा है। बच्चे के सोते-सोते काम निबटा लूं।"

"हां, उसे कहना, उसकी खूंटी में बांध आए। मैं खुद ही बात कर लूंगा।" बिशना के बैठे हुए शब्द कांप रहे थे। उसने आंखें मूंदकर लंबा सांस लिया।

बगल में लेटा लड़का रोने लगा तो बिशना की आंख खुल गई। करमी लौटी नहीं थी। बिशना में हाथ उठाने तक की ताकत नहीं रही थी। लड़का तुरंत ही चुप हो गया। बिशने को "सां-सां" की आवाज सुनाई दी तो उसने निगाहें ऊपर उठाकर देखा, घोड़े का लंबा-सा मुंह उसे शहतीर की तरह लगा और उसने आहिस्ता से गर्दन घुमाई, घोड़ा लड़के के पास सिर किए खड़ा था और लड़का उसके कान मरोड़ते हुए उसके साथ खेल रहा था।

बिशना डर गया और उसने अंदर ही अंदर दर्द से सिकुड़ते हुए घोड़े को घुड़का, पर घोड़े ने दूर हटने के स्थान पर अपना मुंह आगे बढ़ाकर बिशने के कंधे पर रख दिया। मसाले की गंध बिशना की नाक में धंसती चली गई। उसने भयभीत होकर घोड़े के मुंह की ओर देखा, फिर जैसे वह सब कुछ भूल गया, वह घोड़े की आंखों में से नीचे मुंह की ओर टपकते पानी को देखता रहा और फिर उसकी अपनी आंखों में धुंध पसर गई। उसने आंखों को झपका लेकिन दृष्टि साफ नहीं हुई। 'यूं ही साला शक-सा लगा लिया दिल को...क्या जीवन है बंदे का, यूं ही गिरता फिरता है। वाह ओए बिशन सिंह, तुझे समझ नहीं आई...ले आ डंगर ऐसे ही, पर देख ले तू। है अभी जीने का वक्त...मैं तो यूं ही गिर पड़ा।' सोचते हुए बिशने ने आंखों को मूंदकर फिर खोला, काफी साफ-सा नजर आया उसे।

तभी उसका छोटा भाई किशन अंदर घुसा। उसने घोड़े को बिशने के मुंह से मुंह रगड़ते हुए देखा तो घबराकर रास्ते में पड़ा चिमटा उठाकर घोड़े के पैरों में मारा। घोड़ा कोने में सहमकर खड़ा हो गया।

"इसने किल्ली कैसे उखाड़ ली? यह लेगा अभी किसी और को..." बोलते हुए किशन घोड़े के रस्से में बंधा खूंटा खोलने लगा, "मैं इसे ले जा रहा हूं, भाई...बाकी तू खुद बात कर लेना उसके साथ।"

"नहीं किशन...रहने दे इसे यहीं...इसका क्या दोष है ससुरे गूंगे का...पापी तो साला अपना ही मन है।" बिशने से बात पूरी न हुई तो वह चुप हो गया। गहरा सांस भरकर बोला, "करमी कहां है?...उसे बोल, दाना डाले इसे।"

"उसे तो बीरे का लंबड़ ले गया जबरदस्ती घर को... कहता था, घी उठा ला बिशने के लिए। अभी आती है वह..." कहते किशन खूंटा गाड़ने लगा।

"ओ तेरे पैदा करने वालों की..." बिशने ने क्रोध में भड़क कर कहा और जैसे वह गहरी पीड़ा में पुनः डूब गया हो।

कूड़ेदानों में पड़े बच्चे

रश्मि

बच्चे कूड़ेदानों में पड़े हैं...

बच्चों के बाप दोपहर में सोकर उठने के बाद सोफे की कुर्सियों में अलसाए-से बैठे हैं और सिगार पी रहे हैं। उनकी बीवियां सोकर उठने के बाद की सुस्ती उतारने की खातिर ठंडा पी रही है। बच्चों के भाई-बहन रूमकूलरों के सामने बैठकर होमवर्क कर रहे हैं।

बच्चे कूड़ेदानों में पड़े हैं और कूड़ेदानों के ढक्कन बंद हैं।

बच्चों के बाप उठकर नहाने के लिए गुसलखानों में चले गए हैं। अब वे खूब नहाएंगे। घंटा भर ठंडे पानी के टब में बैठे-बैठे अलमस्त-से होकर वे गुनगुनाते रहेंगे। उनकी बीवियां भी अपने गुसलखानों में नहाने के लिए चली गई हैं। बच्चों के भाई-बहनों का होमवर्क कराकर उनकी टीचरें चली गईं। नौकरानियों ने उन्हें नहलाकर कपड़े बदलवा दिए हैं। और दूध के गिलास लेकर उनके पीछे-पीछे दौड़ रही हैं। दूध पीकर छोटे-बड़े सब के सब अपना-अपना खेल का सामान उठाकर खेलने के लिए पार्कों की ओर दौड़ गए हैं।

कूड़ेदानों में पड़े बच्चों के शरीर अकड़ रहे हैं।

बच्चों के बाप तरोताजा होकर कारों में बैठे हुए ड्राइवरों को हार्न बजाने के लिए कह रहे हैं। उनकी बीवियां तैयार होने में हमेशा की भांति देर कर रही हैं। तीसरे हार्न पर वे सज-धजकर जल्दी-जल्दी बाहर निकलती हैं और उनके साथ आकर बैठ जाती हैं। बीवियों की गोरी-चिट्टी चमड़ी जगह-जगह से लटकी हुई है और उनके लिबासों में से तेज सुगंध की लपटें उठ रही हैं।

कालोनियों के पार्कों में शाम की गहमा-गहमी है। बच्चों के भाई-बहनों में से कुछेक हाथों में हाथ थामे अपने हम-उम्रों के संग गोल-गोल दायरों में घूम रहे हैं और स्कूल में सीखे गए गीत गा रहे हैं। कुछ साइकिल चला रहे हैं और कुछ बैट और रैकेटों से खेल रहे हैं।

कूड़ेदानों में पड़े हुए बच्चों के अकड़े हुए शरीरों में से थोड़ी-थोड़ी बू आनी आरंभ हो गई है।

बच्चों के बाप सुराहीदार गर्दन वाली औरतों की पतली कमर में बांहें डालकर नाच

रहे हैं। उनकी बीवियां चौड़े-चौड़े चेहरों और सघन मूंछों वाले पुरुषों के सीनों से लगकर नृत्य कर रही हैं।

नृत्य अपने शिखर पर है। गोरे, लटकते मांस, सघन मूंछें, मखमली पैर, भारी चमकते बूट, सुराहीदार गर्दनें, अलसाए हुए हाथ, लिपिस्टिक लगे होठ, पतली कमरें, सब इस नृत्य में शामिल हैं। पुरुष औरतों को एक ओर ओट में ले जाकर चूम रहे हैं। पति खुश हैं कि उनकी पत्नियां फायदा पहुंचाने वाले लोगों के साथ नृत्य कर रही हैं। पत्नियां आश्वस्त हैं कि उनके पति, उनसे कम रुतबे वाली स्त्रियों को ओट में ले जा रहे हैं।

कूड़ेदानों में पड़े बच्चों के जिस्मों की ओर चींटियों के काफिले बढ़ रहे हैं।

बच्चों के बहन-भाई पार्कों से वापस लौट आए हैं। अब कुछ तो पढ़ रहे हैं, कुछ टेलीविजन देख रहे हैं, कुछ खेल रहे हैं और कुछ सो गए हैं।

रात की बढ़ती कालिमा को देखकर, बच्चों को ड्राइवरों के साथ घर भेज दिया है और खुद कुछ देर और ताश और बिलीअर्ड खेलने के बहाने रुक गए हैं। बीवियां जानती हैं कि उनके पति अब सारी रात घर नहीं आएंगे और सुबह होने से पहले टैक्सी में ही घर लौटेंगे। किन्तु, वे फिर भी बहुत खुश हैं। वे जानती हैं कि कल शाम उनके पति काम से लौटते हुए उनके लिए कोई बहुमूल्य उपहार लेकर आएंगे। उनके पति जिस रात बाहर रहते हैं, अगले दिन उनके लिए कोई न कोई कीमती तोहफा अवश्य लेकर आते हैं।

बीवियों ने इस तरह खुश रहने को एक रस्म की तरह स्वीकार कर लिया है। जब वे छोटी हुआ करती थीं, उनके बाप खुशी के अवसरों पर नाचने वालियां बुलाया करते थे। रात को नाचने के बाद जब नाचने वालियां चौबारों में सोने के लिए जाती थीं तो उनके बाप भी पीछे-पीछे चौबारे की सीढ़ियां चढ़ जाया करते थे। लेकिन उनकी मांएं चुप रहती थीं और खुश भी क्योंकि ये तो खुशी के अवसर थे और जितना पैसा इन अवसरों पर नाचने वालियों को मिलता था, उससे कई गुना अधिक मूल्य के कपड़े और गहने उन्हें मिल जाया करते थे।

घर पहुंचकर बीवियों ने अपने बच्चों को सोए हुए देखा और स्वयं भी वे अपने शयनकक्षों में चली गईं। पर नींद तो आ ही नहीं रही। वे अपने पतियों के बारे में सोचती हैं। पतियों के साथ-साथ उन्हें चेहराहीन कुछ मादा जिस्म दिखाई देते हैं। वे अंदाजा लगाती हैं कि आज उनके पति किस तरह की औरतों के संग होंगे। वे औरतें किस रंग, किस आकार, किस नस्ल, किस उम्र, किस कौम, किस तबके की होंगी? लेकिन कोई अंदाजा नहीं लगा पातीं। उनके पति किसी भी औरत के पास जा सकते थे, जो भी मिल जाए। अपने पतियों के अनदेखी औरतों के संग आलिंगनबद्ध होने की कल्पना कर एक अजीब पागलपन उन पर सवार होने लगता है। वे पलंग पर लेटती हैं, सिरहाने पर मुक्के मारती हैं, चादर को दांतों तले चबाती हैं। फिर वे कल मिलने वाले उपहारों के बारे में सोचकर और अंदाजा

लगाकर हंसती हैं—हंसे जाती हैं, हंसे जाती हैं और हसंते-हंसते उठती हैं और नींद की गोलियां खाकर पलंग पर आ गिरती हैं और सो जाती हैं।

कूड़ेदानों में पड़े हुए बच्चों के जिस्मों को चींटियों ने चारों ओर से घेर लिया है...

बच्चों के बाप इत्मीनान से लेटे हुए हैं। जितना मूल्य उन्होंने लगाया था, उतनी ही तसल्ली भी उन्होंने प्राप्त कर ली है। हर चीज का मूल्य तय करना, उन्होंने शुरू से ही सीखा हुआ है, जिस्मों का भी।

जिस्मों का मोल सबसे पहली बार उन्होंने सत्रह साल की उम्र में लगाया था। पंद्रह वर्षीय बावर्ची लड़कियों के साथ जब पहली बार उन्होंने छेड़छाड़ की थी तो वे घबरा उठी थीं, दूसरी बार छेड़छाड़ करने पर वे शरमाई थीं और तीसरी बार छेड़ने पर वे हंस पड़ी थीं। तब रास्ता आसान देखकर एक दिन उन्होंने बावर्ची लड़कियों के जिस्मों के साथ खेल खेला था। पर खेल के बाद लड़कियां रोने लगी थीं। तब पहली बार डर, घबराहट, खुशी और तसल्ली के जज्बों ने अपने-आप ही उनको उस सब कुछ का मोल लगाना सिखा दिया था। बावर्ची लड़कियों के गुंथे हुए कुंआरे शरीर के कारण, उनके नर्म मुलायम मांस के कारण और पूरे खेल के दौरान गरमजोशी के साथ खेल में शामिल होने के कारण वे अधिक से अधिक कीमत लगाने के लिए तैयार हो गए थे और जेब में रखे पूरे के पूरे पचहत्तर रुपए निकालने के लिए उन्होंने जेब में हाथ डाल लिए थे, पर बावर्ची लड़कियों के कपड़ों में से उठती पसीने की गंध और उनके इर्दगिर्द चिपकी हुई प्याज और लहसुन की स्थाई बू ने उनकी कीमत काफी घटा दी थी और उन्होंने अपने हाथ भींच लिए थे और टटोलकर तीस रुपए निकाल जल्दी-जल्दी में बावर्ची लड़कियों को पकड़ा दिए थे। पूरा महीना खाना बनाकर और बर्तन मांजकर पच्चीस रुपए लेने वाली लड़कियां तीस रुपए देखकर एकदम चुप हो गई थीं।

इसके पश्चात्, घर से बाहर, कालेज में, हर जगह उन्होंने जिस्मों का मूल्य लगाना शुरू कर दिया था--हर पहलू को खूब नाप-तौलकर और खूब अंदाजे के साथ। जिन स्त्रियों के साथ उन्होंने विवाह किए थे, मन ही मन उनका भी मोल लगाकर ही उन्होंने विवाह की रस्म की कीमत उतारी थी।

कीमत उतारने की सुविधा हाथ में होने के कारण, जिस्म से जिस्म तक का सफर उनके लिए आसान हो गया है। बीवियों, रखैलों, वेश्याओं और कच्चे-कुंआरे जिस्मों वाली सभी खेल खत्म होने और मूल्य उतारे जाने के दरम्यान रोया अवश्य करती हैं, शायद ऐसा करना कोई रस्म है। इस समय जिनके साथ वे लेटे हुए हैं, वे भी रोई थीं, पर अब मुट्ठियों में अपने रोने का मूल्य दबाकर वे खामोश लेटी हुई हैं। वे भी इत्मीमान से लेटे हुए हैं। कुछ देर यूं ही लेटे रहकर भोर होने से पहले वे घर चले जाएंगे, जहां कुछ देर सोकर तरोताजा होकर वे अगले दिन अपने-अपने काम पर, कारोबार पर जा सकेंगे।

कूड़ेदानों में पड़े बच्चों के जिस्मों को चींटियों ने काला कर दिया है और उनमें से भयानक दुर्गंध उठ रही है।

बच्चों के बाप बिस्तरों में बैठकर, सुबह की चाय की चुस्कियां लेते हुए अखबारों की सुर्खियां पढ़ रहे हैं। उनकी बीवियां नहा-धोकर निकली हैं और पूरे घर में तुलसी जल छिड़कने के बाद धूप जला रही हैं। बच्चों के बहन-भाई स्कूल की ड्रेस और चमचमाते बूट पहन, सज-धजकर बैठे हैं और जल्दी-जल्दी नाश्ता कर रहे हैं।

कूड़ेदानों के समीप से गुजरने वाले अपनी-अपनी नाक के आगे कपड़ा रखकर गुजर रहे हैं।

कूड़ेदानों में पड़े हुए बच्चों के बाप तैयार होकर अपने कामधंधों पर जाने की उतावली में हैं। उनकी बीवियां माथे पर बिंदियां लगाकर और मांग में सिंदूर भरकर उनको विदा करने के लिए खड़ी हैं। कारे सरकती हैं तो वे हाथ हिलाते हैं। बीवियां उनको जाते हुए देखती हैं और आज मिलने वाले उपहारों के विषय में सोचती हैं।

सफाई कर्मचारी बच्चों के अकड़े हुए और चींटियों से काले हुए बदबूदार जिस्मों को कूड़ेदानों में से निकालकर कूड़े वाली गाड़ियों में लाद रहे हैं।

बच्चों की मांएं अपनी कच्ची बस्तियों में बैठी हुई छातियों में छलक आते दूध को सुखाने का यत्न कर रही हैं और रो रही हैं।

अर्जुन लापता है

देव भारद्वाज

अर्जुन के लापता होने के बारे में अखबार से पता चला। वैसे आजकल बहुत कुछ अखबारों के द्वारा ही पता चलता है। आपके आस-पड़ोस में कोई घटना घट जाए, अक्सर पता सुबह अखबारों के जरिए ही लगता है। अखबारों पर इस तरह निर्भर हो जाने के विषय में जब कभी सोचते हैं तो सच में अपने देश, अपने शहर और यहां तक कि अपने आप पर भी संदेह होने लगता है। अगर सुबह अखबार समय पर नहीं आए तो एकाएक कई प्रकार के वहम पलने शुरू हो जाते हैं—कहीं कर्फ्यू ही न लग गया हो, अखबार का दफ्तर ही न जला दिया गया हो या बहुत कुछ और...और ऐसे वहम तब तक पलते रहते हैं जब तक हॉकर 'ठां' से आपके आंगन में अखबार फेंक न दे। आपको तुरंत मुख्य सुर्खियों में देखना होता है कि कहीं कोई बड़ी घटना या दुर्घटना तो नहीं घटी।...किसी बड़े व्यक्ति के मर-मरा जाने अथवा किसी और कारण से दफ्तरों में आज छुट्टी तो नहीं हो गई। अगर सब ठीक है तो आप भी अपने आपको ठीक महसूस कर सकते हैं और फिर बड़ी आसानी से बाहर चलने-फिरने के विषय में, कहीं जाने के विषय में या नहाने के विषय में सोचा जा सकता है।

और हां, वह अर्जुन के लापता होने की खबर...अखबार के पहले पन्ने पर छपी हुई थी, बिलकुल वैसे ही जैसे उसके आने की खबर छपी थी। बस, उस दिन से ही अर्जुन, अखबारों में, घरों-दफ्तरों और बाजारों में एक चर्चा का विषय बन गया था।

लोगों के लिए यह बात जितनी बड़ी थी, अर्जुन के लिए यह उतनी ही छोटी थी। उसने तो बल्कि कभी सोचा भी न था कि यह बस यूं घटित होगा। वह तो एक गुमनाम जीवन जी रहा था, किसी डर अथवा शौक के कारण नहीं, वरन यह तो हालात की विवशता ही थी जो उसको, उसके परिवार को शहर से दूर ले गई थी। अर्जुन चाहता था कि उसके बच्चे जल्दी-जल्दी बड़े हों। वह चाहता था कि वे खूब लायक बनें, वह चाहता था कि वे ऊंची से ऊंची तालीम हासिल करें...पता नहीं अर्जुन क्या-क्या चाहता था और क्या-क्या नहीं। पर जब रोटी-पानी का जुगाड़ ही मुश्किल से हो तो ऐसी अलौकिक बातों के बारे में सोचना, न सोचना बराबर ही होता है।

अब यह तो कहा जा सकता है कि अर्जुन के पास कौन-सी अनोखी विद्या थी जिसके बलबूते पर वह अपनी संतान को कुछ ज्ञानवान बना देता पर यह नहीं कहा जा सकता कि उसके पास ऐसा कौन-सा तीर था जिससे वह जहां चाहता, निशाना दे मारता। बल्कि ले-देकर जो कुछ बचा था अर्जुन के पास वह था उसका धनुषबाण, जिसे उसने अपनी सबसे प्यारी वस्तु समझकर वर्षों से अपने अंग-संग रखा था। लेकिन जमाना अर्जुन के लिए शायद इतना गुस्ताख हो गया था कि यह कला अब एक भूली-बिसरी चीज बनकर रह गई थी। सो, दीवार पर टंगा तरकश भी अब तक बूढ़ा हो गया था। उसकी पत्नी ने तो उसको कई बार दीवार से उतारकर बाहर कूड़े में दे मारा था पर यह अर्जुन का मोह ही था या हठधर्म, जो वह हर बार पत्नी की हरकत को अंदर ही अंदर पीकर तरकश को कूड़े से उठाकर पुनः दीवार पर टिका देता था। कई बार छोटी-मोटी 'तू-तू, मैं-मैं' भी हो जाती थी आपस में। पत्नी कहती, "यह कौन सा दूध देता है...बल्कि यूं ही फूहड़-सा लगता है।" लेकिन अर्जुन शांत होने के लिए कहता और फिर उसको मोह का भेद समझाता, "अगर हम छोटी-छोटी चीजों के बारे में भी मोह न बना सके तो बड़ी चीजों के प्रति हमारा क्या हाल होगा?"

"मोह केवल बड़ी चीजों के प्रति ही जागता है...छोटी-छोटी वस्तुओं से मोह करना, छोटी-छोटी विपदाएं पैदा करना है।" पत्नी प्रत्युत्तर में अपना तर्क रखती।

कौन अपने तर्क में सही था, इसका निर्णय उन्होंने कल पर छोड़ दिया था। फिलहाल तो तरकश के लिए दीवार पर जगह सुरक्षित रह गई थी।

और फिर जैसे जर्जर घर में अचानक कुछ घटित होना था...एक अखबारी लिफाफे ने अर्जुन के अंदर तक हलचल मचा दी। अक्षर जोड़-जोड़कर उसने उस अखबारी लिफाफे पर छपी एक खबर को उतावली में पढ़ना चाहा। एक सरकारी इबारत थी...सरकार के एक सबसे बड़े सरपरस्त के हस्ताक्षर के नीचे। लिखा था—वीरो, भाइयो, बहादुरो और योद्धाओ...हम बहुत विपदा में हैं। हमें तुममें से एक ऐसे तीरंदाज की आवश्यकता है जिसका एक भी निशाना न चूके...क्योंकि हम जो भी तीर छोड़ते हैं, वह या तो आधे रास्ते में ही नष्ट हो जाता है या फिर गलत जगह पर जा लगता है। ऐसे हम दिन-प्रतिदिन तबाह हुए जा रहे हैं...वेतन की कोई बंदिश नहीं, जो चाहो मिलेगा और हर प्रकार की सुविधा अलग...इंटरव्यू के लिए अगले महीने की पहली तारीख को सचिवालय पहुंचो।

अर्जुन ने अधरों पर जीभ घुमाई और एक बार फिर सरकारी इश्तहार पर नजरें गड़ाते हुए पत्नी को आवाज लगाई—

"भाग्यवान...छोड़ दे सब कुछ...इधर आ जरा...देख, खुल गई है अपनी लाटरी। अब आएगा काम अपना तीर-कमान। तू यूं ही ताने मारती रहती थी...अब पड़ी न जरूरत। मैं तुझे कहा करता था—भगवान के घर देर हो सकती है, अंधेर नहीं। हमारी सरकार को

एक ऐसा तीरंदाज चाहिए जिसका एक भी निशाना न चूके।"

"सच?"

"तो और क्या...यह देख !" उसने अखबारी लिफाफा उसके हाथ में थमाते हुए कहा, "और कहते हैं तनख्वाह जितनी मर्जी। अब आएगा मजा जीने का। पता नहीं, अपने भाईजान कहां भटक रहे होंगे? मिल जाने दे यह नौकरी, सबको ढूंढ लाऊंगा। वाह, हस्तिनापुर! तुझे न जाने किस मूर्ख की नजर लगी और हमें भी कि तू आप तो तबाह हो गया और हमें एक-दूसरे से अलग कर बर्बाद कर दिया—गुमनाम राहों पर। क्या ठाठ थे तेरे हस्तिनापुर...और आज लोग तेरा नाम भी भूल गए हैं और साथ ही हमारा भी।"

अर्जुन उठा और दीवार पर से धनुष उतारकर उसे हसरत-भरी नजरों से देखने लगा।

"मित्र ! होने लगी तेरी भी पूछ। अब देख, कैसे दिखाते हैं हम अपने जौहर।"

थोड़ा गीला कपड़ा और रूई लेकर अर्जुन धनुष को साफ करने लगा। उसकी पत्नी तीरों को संवारने लगी और पास खड़े बच्चे कभी रूई पकड़ाते, कभी कपड़ा।

"रोज साफ करूंगा...बस चमका दूंगा जाने से पहले।" अर्जुन पत्नी को मीठे स्वर में कह रहा था, "मेरी धोती भी जरा अच्छी तरह धोकर चमका दे...धनुष की तरह...और मेरा मुकुट भी..और सच, ये खड़ाऊं भी, देख कितनी धूल जमी पड़ी है।"

दिन-दिन कर वह अंतिम दिन की प्रतीक्षा करने लगे, जब अर्जुन को महानगर के लिए रवाना होना था।

"भाग्यवान, आज तो जनेऊ भी नया पहनकर जाऊंगा। शुभ काम के लिए एक-आध वस्त्र तो कोरा और पवित्र होना चाहिए।" प्रस्थान वाले दिन धोती बांधते हुए अर्जुन ने पत्नी से कहा। उसकी पत्नी संदूकची में से नया जनेऊ निकाल लाई। खड़ाऊं पर से भी धूल उतर चुकी थी। मुकुट और धनुषबाण जैसे अभी ही बने हों।

"यूं ही उदास न होना...बड़े शहर का मामला है...दो-चार दिन ऊपर-नीचे हो सकते हैं। मैं बस अब धूं करते हुए कार में ही लौटूंगा...तुम्हें लेने।" बच्चे बाप से लिपटे जा रहे थे।

'इन बच्चों को क्या मालूम...भविष्य क्या होता है और अतीत क्या?' अर्जुन मन ही मन बोला।

"लाडलो, तुम्हारे लिए ही तो जा रहा हूं। बस, थोड़ा सब्र कर लो...फिर ऐश ही ऐश है।"

उंगलियां छुड़ाते हुए वह परिवार से विदा हुआ।

जंगली पगडंडियां, मीलों तक फैले हरे खेत, पक्की सड़कें, पक्के शहर, पक्की इमारतें और पता नहीं क्या कुछ देखते और महसूस करते हुए अर्जुन निश्चित दिन पर निश्चित समय अपने शस्त्र सहित इंटरव्यू लेने वालों की कमेटी के दफ्तर के रिसेप्शन के आगे खड़ा था।

"नाम?"

"अर्जुन...."

"पता?"

''हस्तिनापुर''

"काम?" काउंटर क्वेस्चन था।

''तीरंदाजी के लिए इंटरव्यू।"

फार्म भरकर अर्जुन ने दस्तखत कर दिए।

"यह हस्तिनापुर कहां हुआ? कभी सुना ही नहीं।" क्लर्क फार्म में आंखें गड़ाए बोल रहा था।

"अब हर रोज यही सुना करोगे।" धनुषबाण को पोछते हुए अर्जुन बहुत आत्मविश्वास में बोल रहा था। पर तीर छोड़ने की बारी जैसे काउंटर-क्लर्क की थी।

"तुमने पूरे कपड़े क्यों नहीं पहने? इस हालत में तुम अंदर नहीं जा सकते।"

"क्या कमी है मेरे कपड़ों में, भाई? वर्षों से यही तो पहन रहा हूं...आदि-युगादि से चले आए हैं ये वस्त्र, काका!"

"मेरा मतलब कमीज से था। तुम सिर्फ यह जनेऊ-सा पहनकर आ गए और कमर पर भी धोती है तुम्हारे...और फिर से खड़ाऊं..गोरमिंट को तीरंदाज की आवश्यकता है न कि हवन करवाने वाले की।"

"बालक...तू तो बहुत नासमझ है। तेरी बोली में तेरा कोई दोष नहीं। तू यह सब नहीं समझ सकता।" कहकर अर्जुन पीछे पड़े एक बैंच पर बैठ गया और इंटरव्यू की प्रतीक्षा करने लगा।

मुलाकात के लिए पड़ी आवाज सुनते ही अर्जुन पूरी शान से चयन समिति के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। धनुषबाण कंधे पर टंगा होने के कारण उसके लिए कुर्सी पर बैठना मुश्किल तो हो ही रहा था, बल्कि कमेटी के किसी भी मेंबर ने उसको बैठने के लिए नहीं कहा।

काउंटर क्लर्क द्वारा भरवाया गया फार्म कमेटी-मेंबरों के आगे मेज पर फैला हुआ था। उसमें "हस्तिनापुर" शब्द के चारों ओर लाल स्याही से बड़ा-सा गोला बना हुआ था।

"अपना पता क्यों गलत लिखा?" अर्जुन से पहला सवाल था।

"क्यों?...इसमें कौन-सी गलती है?" अर्जुन ने प्रत्युत्तर में पूछा।

"तुझे मालूम है...हस्तिनापुर क्या है?"

"मेरी जान है हस्तिनापुर..और हस्तिनापुर की जान मैं हूं।"

"उसे नष्ट हुए तो हजारों वर्ष हो गए। तू कैसे जिंदा है?"

''कौन कहता है, हस्तिनापुर नष्ट हो गया है? मेरे रोम-रोम में बसता है हस्तिनापुर, मेरे अंग-अंग में...हर जर्रे में।"

"तुम्हें किसी दिमागी इलाज की आवश्यकता प्रतीत होती है। यहां कामकाज वाले व्यक्ति की जरूरत है।" कमेटी का एक मेंबर बोला।

"तो क्या मैं आपको कामकाज वाला व्यक्ति नहीं दिखता? ये तीर-कमान इसीलिए तो लाया हूं कि आपको बता सकूं कि मैं कितने काम का व्यक्ति हूं।"

"तीरंदाजी के बारे में क्या तजुर्बा है?" एक और मेंबर ने पूछा।

"निजी तजुर्बा है...आप जहां कहोगे, तीर बस वहीं पर लगेगा।"

"मतलब?"

"मतलब...अगर आप कहो कि तीर किसी पेड़ पर बैठी चिड़िया की आंख में मारना है तो यह उसकी आंख में ही लगेगा...पेट में नहीं।"

"कोई जंग भी लड़ी है कभी?"

"क्यों नहीं? सारी उम्र इसी काम में तो गुजारी है...यह कुरूक्षेत्र मेरे तीरों से बिंधा पड़ा है...पर अफसोस कि किसी को देखने की फुर्सत नहीं है...। ऐसे तीर थे कि छोड़ते ही जमीन-आसमान एक हो जाते थे, धरती कांपने लगती थी...मीलों तक भूचाल ही भूचाल नजर आते थे...। आप तो अब कहानियां ही मानेंगे, मेरी बातों को।"

"पूरा नाम नहीं लिखा फार्म में?" बिल्कुल सामने बैठे मेंबर ने कहा।

"पूरा ही तो है, क्या कमी है इसमें?"

"मसलन अर्जुन के साथ सिंह, दास या राम वगैरह कुछ?"

"मेरा नाम सिर्फ अर्जुन है प्रियजनो...हस्तिनापुरवासी अर्जुन !"

"बस, बस...अब आगे यह न कहना, पांडु-पुत्र अर्जुन...कृष्ण-सहयोगी अर्जुन।"

"वाह ! क्या कहा अपने? सचमुच आपने तो मुझे ठीक ही पहचाना है...बल्कि आप तो...मेरे बारे में मुझसे भी अधिक जानते प्रतीत होते हैं।"

"तुम जा सकते हो।"

अब अर्जुन हड़बड़ा गया था।

"पर आपने तीरंदाजी का टैस्ट तो लिया ही नहीं?"

"अगर आवश्यकता पड़ी तो ले लिया जाएगा।"

अर्जुन कमरे से बाहर हो गया और अगला उम्मीदवार अंदर चला गया था।

अर्जुन ने सोचा कि इस प्रकार घर लौट जाने में तो बड़ी मूर्खता होगी। कुछ परिणाम तो पता चलना चाहिए। इंटरव्यू का काम समाप्त होने पर सभी अपनी-अपनी राह चले गए थे। कुछ देर बाद डीलिंग क्लर्क अर्जुन को बता रहा था, "इतनी जल्दी निर्णय नहीं होता। कुछ दिन तो लगेंगे ही। फैसला करने वालों को बहुत कुछ देखकर फैसला करना होता है।"

"यह कैसा फैसला हुआ? हम तो मौके पर ही फैसला सुना देते थे—हां या न।"

अर्जुन बेबसी में था।

"कह दिया न, कुछ दिन लगेंगे। अगर जल्दी मालूम करना है तो परसों आ जाना मेरे पास। लेकिन खाली हाथ न आना।"

"अच्छा, अच्छा; पर मैं यहां ठहरूंगा कहां? मेरा तो कोई परिचित भी नहीं यहां।"

"होटलों की कमी है? जहां चाहो रह सकते हो।"

तीसरे दिन फिर डीलिंग-क्लर्क को ढूंढने के लिए अर्जुन सचिवालय की सीढ़ियां चढ़-उतर रहा था पर क्लर्क था कि पता ही नहीं लग रहा था कि कहां गया है। जब मायूस होकर वह बाहर निकल रहा था तो क्लर्क बरामदे में मिल गया।

"मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था। क्या हुआ सिलेक्शन का?"

"रिकार्ड आ गया है मेरे पास। तुम्हारा इंटरव्यू तो बढ़िया हुआ है, मगर...।"

"मगर क्या?"

"चलो बताते हैं।...पर कुछ लाए भी हो?"

"क्या मतलब?"

"तुमसे कहा तो था कि खाली हाथ न आना।"

"पर मैं लाता भी क्या?...बस, जो कुछ है, आपके सामने ही है।"

"ये तीर कितने सुंदर हैं।...ये सचमुच सोने के हैं या सिर्फ देखने में ही सुनहरे लग रहे हैं?"

"आपको पसंद हैं?"

"क्यों नहीं?"

"तो ले लीजिए...मेरे पास तो घर में और होंगे।" कहकर अर्जुन ने तीर क्लर्क के हाथ में पकड़ा दिए।

"देखो अर्जुन साहब...मैंने तुम्हारी फाइल को झंडियां वगैरह लगाकर तैयार कर दिया है और अब बस पहिए लगाने हैं...फिर बस काम हुआ कि हुआ। दो-चार दिन बाद आकर फिर पता कर लेना।"

जब दूसरी बार अर्जुन आया तो फाईल ब्रांच सुपरिंटेंडेंट के पास चली गई थी। अर्जुन क्लर्क को घूर रहा था।

"यह क्या मजाक है? तुम तो कहते थे कि काम हुआ कि हुआ...अब यह सुपरिंटेंडेंट बीच में कहां से आ गया?"

"मुझे जो करना था, कर दिया। शुक्र मनाओ कि मैंने फाईल दो दिन में ही निकाल दी। अगर मैं न चाहता तो यह शायद महीना भर यहीं रुकी रहती। पर तुम्हारे तीरों के अहसान के नीचे दबा जो था...अब जाकर सुपरिंटेंडेंट से बात कर लो।"

सुपरिंटेंडेंट ने अर्जुन से घर पर मिलने के लिए कहा। अर्जुन को सुपरिंटेंडेंट और क्लर्क

में बहुत अंतर न दिखाई दिया। सुपरिंटेंडेंट के घर बैठे अर्जुन ने धनुषबाण को कंधे पर से उतारकर मेज पर रख दिया।

"कमाल का है धनुष...तीर कहां हैं इसके?"

"वो तो जी...चल गए, बस।"

"अब अकेले धनुष से क्या करोगे?"

"मेरा काम शीघ्र कर दो, बस तीर खुद आ जाएंगे।"

"तब तक धनुष यहीं पर रहने दो, मेरे पास।" अर्जुन को सुपरिंटेंडेंट की बात गलत नहीं लगी थी।

"परसों मालूम कर लेना।" कहकर सुपरिंटेंडेंट ने अर्जुन को अलविदा किया।

शाम को थका-हारा जब अर्जुन होटल लौटा तो कमरे में घुसते ही बैरा होटल-मालिक का संदेश ले आया।

"आपको मालिक ने बुलाया है, अभी।"

कुछ मिनट बाद होटल-मालिक अर्जुन पर खफा हो रहा था।

"अब और उधार नहीं चल सकता। या तो पैसे दो या फिर कोई वस्तु गिरवी रखो।"

"मेरे पास तो कुछ भी नहीं है...आप बस कुछ दिन ठहरिए...मेरा काम होने ही वाला है...फिर ब्याज सहित उतार दूंगा, आपका उधार।"

"नहीं...मैं और इंतजार नहीं कर सकता।"

"पर मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, आपको देने के लिए।"

"है क्यों नहीं? यह मुकुट क्यों उठाए घूमते हो हर वक्त...यहां रख जाओ। पैसे दे जाना तो ले जाना।" न चाहते हुए भी अर्जुन ने मुकुट उतारकर होटल मालिक के हवाले कर दिया।

वापस कमरे में लौटा तो दरवाजे के आगे धोबी खड़ा था।

"जनाब, वस्त्र धुलवाने के समय तो कहते थे, बस चमका देना और पैसे देने का नाम नहीं ले रहे हैं।"

"बस, कुछ दिन और ठहर जा।"

"नहीं, मैं और प्रतीक्षा नहीं कर सकता।" कहकर वह अर्जुन की खड़ाऊं पांव में पहनकर बाहर निकल गया।

गुस्से से कांपते हुए अर्जुन ने अगले दिन ही सचिवालय पर धावा बोल दिया, "मैं सबको देख लूंगा...लुटेरे हैं सब...मैं सबसे बड़े अफसर से मिलूंगा...और सबकी पोल खोल दूंगा। ये समझते क्या हैं?"

हांफता हुआ अर्जुन चपरासियों के रोकते-रोकते भी बड़े अधिकारी के कमरे का दरवाजा खोलकर अंदर जा घुसा और ऊंचे स्वर में बोलने लगा, "मैं अर्जुन हूं...अर्जुन...हस्तिनापुर

का अर्जुन..और ये लोग मुझे मूर्ख समझ रहे हैं...मेरा केस लटकाए बैठे हैं...आप तो मेरी इंटरव्यू लेने वालों में शामिल थे...क्या दोष दिखाई दिया था मुझमें...जो मुझे परेशान किया जा रहा है इस तरह...।"

अफसर ने अर्जुन को सिर से पांव तक देखा और फिर जैसे गालियां देता हुआ कह रहा हो–

"ओए, तू अर्जुन है? अपनी शक्ल देखी है शीशे में? न तेरे पास तेरा धनुष...न तेरे बाण...न मुकुट, न खड़ाऊं...तू कैसा अर्जुन है?...धोखेबाज...इसे धक्के मारकर बाहर निकाल दो।"

कहा जाता है, उसके बाद अर्जुन न सुपरिंटेंडेंट के पास गया, न क्लर्क के पास और न ही होटल वापस लौटा। वह तब से ही लापता है...हो सकता है, वह हस्तिनापुर ही वापस लौट गया हो...शायद !

लेखक परिचय

विद्रोह

लेखक : गुरमुख सिंह जीत (2 नवंबर, 1922 – नवंबर, 1993)
शिक्षा : एम. ए. (राजनीति विज्ञान)
जीवनवृत्ति : सरकारी नौकरी
प्रकाशित कहानी संग्रह : काले आदमी (1956), धरत मौन सुनहरी (1958), दसवां ग्रह (1964), फूलों की परछाइयां (1970), सपने की ताजपोशी (1977), नीलकंठ (1982), देखो कौन आया है (1988), अलग-अलग फोकस (1988), सुरसागर (1988), सरगम की हत्या (1989), तुम आमार बंधु (1993)।
पता : 82, हेमकुंड, नई दिल्ली-48

सदियों की स्थापित पारंपरिक पहचान और नवीन जीवन-व्यवहार के किसी अनुक्रम के मध्य अंतर का ही दूसरा नाम पीढ़ियों का अंतराल है। विंग कमांडर पिता चाहता है कि उसकी बेटी पुराने समय से चले आ रहे रहन-सहन के अनुसार ही चलती रहे और पिता की इकलौनी औलाद, उसकी बेटी नलिनी चाहती है कि वह अपने स्कूल की सहपाठिनों द्वारा अपनाए गए फैशन के अनुसार स्वयं को ढाले। पिता-पुत्री के आपसी अनबन का कारण बहुत तुच्छ है : बेटी अपने बाल पुराने ढंग से बनाती-संवारती रहे या फिर नए ढंग के अनुसार उन्हें बुआयकट रखे। पिता की विवशता है कि 'हम मराठी ब्राहमण हैं और हमारे पुराने विचारों वाले और कट्टरपंथी परिवार में इस बात को कोई बर्दाश्त नहीं कर सकता' लेकिन, बेटी कान्वेंट की छात्रा है जहां उसकी कितनी ही सहेलियों ने पहले ही इस तरह के बाल बनवा रखे हैं...क्योंकि यह लेटेस्ट फैशन है। बेटी को पारंपरिक मूल्यों की कोई परवाह नहीं। वह तो यहां तक भी कह जाती है कि 'वह बिरादरी आपकी है, परिवार आपका है, समाज आपका है, मेरा नहीं।'

तुच्छ-से घटना-क्रम पर सृजित यह महत्वपूर्ण समस्या है। इस कहानी का पैटर्न तो वही है जो मध्यकालीन किस्से 'हीर' का था। प्रश्न यह है कि बच्चे मां-बाप की जीवन-दृष्टि को हू-ब-हू स्वीकार करेंगे या उसमें कुछ परिवर्तन करने का हक भी उनका बनता है। 'हीर' भी रांझे के साथ पारंपरिक तरीके से ही विवाह करना चाहती थी। नलिनी भी मां-बाप की स्वीकृति से ही अपने केशों को नए ढंग से सजाने का हक मांगती है। केश कटवाने से पहले वह अपने मां-बाप को अपने फैसले की पूर्व-सूचना दे देती है। रांझे के प्यार से रोकने

वाले मां-बाप के संदर्भ में हीर ने कहा था, 'वारिशशाह, नहीं मानूंगी रांझे के बिना, चाहे बाप के बाप का बाप आए।' बुआयकट बालों का विरोध करने वाले पिता के लिए नलिनी का संदेश है, 'अंकल, उनसे कह दो, मेरे कोई पेरेंट्स नहीं।' नई कहानियों में हमारे साहित्य के पुराने पैटर्न भेष बदलकर, अंतर्पाठों की भांति बोलते रहते हैं। कोई भी पीढ़ी अपनी परंपरा से पूरी तरह टूटना-बिछड़ना नहीं चाहती। वह परपंरा के अंदर रहती हुई भी नवीन जीवन-व्यवहार के अनुसार स्वयं को ढालना चाहती है। नलिनी सिर्फ एक दिन अपने घर से गायब रही। अपने बाल 'बुआयकट' करवाकर अपने घर वापस लौट आई। इसकी उसके पिता पर क्या प्रतिक्रिया हुई, इस विषय में कहानी ने खामोश रहना ही उचित समझा है। परंपरा भी अपने आपको नई स्थितियों के मुताबिक ढालती है, यही इस कहानी का संदेश है।

इकाई

लेखक : सुखबीर
जन्मतिथि : 9 जुलाई, 1925
शिक्षा : एम. ए. (पंजाबी)
वृत्ति : स्वतंत्र लेखन
प्रकाशित कहानी संग्रह : डूबता-उगता सूरज, मिट्टी और मनुष्य, अकेली स्त्रियां, खिड़की के मध्य वाला सूरज, पानी की परी, इकाई, लोरी, मनुष्य और जड़े, दाएं-बाएं।
पता : बी-19, सन ऐंड सी, बारसोवा रोड, बंबई-61

सुखबीर, वास्तव में, एक पृथक शैली का कहानीकार है। इनकी विलक्षणता यह है कि ये वास्तविक समय और स्थान में टिके पात्रों के विषय में लिखने के स्थान पर, उनकी मानसिकता के बारे में लिखते हैं। इनकी कहानी कई बार वृत्तांत से रिक्त होती है। उसी तरह की एक कहानी है—'इकाई'।

बड़े शहर में अकेले बसे व्यक्ति की इस कहानी में तीन व्यक्ति है, तीनों अकेले, अपने इर्द-गिर्द से टूटे हुए। एक व्यक्ति को शराब पीने के लिए साथी की जरूरत है, यह जरूरत पूरी हो जाने के बाद वह साथ छोड़ देता है। दूसरा व्यक्ति किसी होस्टल में रहने वाला चित्रकार है जो चित्र बनाकर उसे स्वयं ही पहचान नहीं सकता। उसके चित्र पर खुद उसकी अपनी छाप नहीं। तीसरा पात्र है इस वृत्तांत का प्रमुख पात्र। इसका जीवन वृत्तांत भी संभावना से रिक्त है। पीने के समय साथ चाहने वाला 'राही' शराब पीकर जा चुका है। व्यक्तित्व-हीन चित्र बनाकर, किसी परिचित को भी दे देने वाला चित्रकार भी बहुत दूर है। इस पात्र के पास कुछ अनुपस्थित लोगों की यादें हैं या फिर एक ही तस्वीर को बदल कर बनाए गए अनेक चेहरों का तसव्वुर है। वास्तविकता से पृथक तसव्वुर के सिवाए इस पात्र के पास

और कुछ भी नहीं है। जिनके तसव्वुर हैं—'राही', 'चित्रकार मुकुल', 'कहानीकार बेदी', 'गांव में पीछे रह गए परिवार के सदस्य'—इनके साथ उसका ऐसा कोई जीता-जागता रिश्ता नहीं है जो उसको किसी वृत्तांत का हिस्सा बना सके। अनुपस्थित परिचितों-अपरिचितों और किसी के दिए हुए चित्र के सिवा उसके पास अपना सपना है। सपने में देखे अपनों के चेहरे भी उसको बेगाने प्रतीत होते हैं। वह किसी फिल्म का ऐसा तुच्छ-सा पात्र है जो एडिटिंग के समय फिल्म में से काट भी दिया जाए तो कुछ फर्क नहीं पड़ता।

ऐसे व्यक्तित्व-हीन व्यक्ति की कहानी लिखना बहुत कठिन कार्य है। यह ऐसा व्यक्ति है जो निरोल वर्तमान में जीता है। जो अपने अतीत से टूट चुका है और जिसके पास भविष्य एक संभावना के रूप में ही मौजूद नहीं। समाज में रहते सामाजिकता से पृथक इस पात्र को लेखक ने इकाई कहा है। पंजाबी कहानी, मानवीय तौर पर, रिश्तों में बंधे लोगों को चित्रित करती है। यह कहानी, रिश्तों से बाहर रह गए लोगों को अपने घेरे में लेती है और सोचने को विवश करती है कि कैसे होंगे वे मनुष्य जो मानवी-समाज के सदस्य होकर सामाजिकता से टूट गए हैं? न वे समाज के किसी काम आ रहे हैं, न समाज ही उनका कोई काम संवारता है।

क्या यह कहानी सह-अनुभूति के सिद्धांत पर लिखी गई है? क्या यह कोई सूझ-भरी अंतर्दृष्टि उत्पन्न करती है? वर्ग-संघर्ष से बाहर अकेले व्यक्ति की दास्तान की कोई मार्क्सवादी व्याख्या संभव है? क्या मानव-मन के चेतन-अचेतन फ्रायडी आधार पर इस रचना से कोई सूझ या आनंद प्राप्त किया जा सकता है? इन प्रश्नों का कोई स्पष्ट उत्तर हमें भले ही न मिले, पर यह हमारी चिंतन-शक्ति के लिए चुनौती अवश्य है।

घोड़ा

लेखक : प्रेम प्रकाश
जन्मतिथि : 7 अप्रैल, 1932
शिक्षा : एम. ए. (उर्दू)
वृत्ति : पत्रकारिता
पता : 593, मोटा सिंह नगर, जालन्धर
प्रकाशित कहानी-संग्रह : कच्चकड़े, नमाजी, मुक्ति, श्वेतांबर ने कहा था, प्रेम कहानियां, कुछ अनकहा भी।

प्रेम प्रकाश की कहानी कभी भी सीधी, सपाट या सरल नहीं होती। उनका तथ्य भले ही सरल रेखा में गतिमान प्रतीत होता हो, पर, उनकी सोच जटिल ही होगी। वे स्वीकृत मूल्यों को कभी दो टूक रद्द नहीं करते, पर स्वीकृत सोच की भीतरी कमजोरी को उजागर अवश्य कर देते। इस संदर्भ में वे शेष सभी कहानीकारों से अलग हैं।

'घोड़ा' कहानी में घोड़ा उस आदिम-शक्ति का प्रतीक है जिसे वासना का नाम दिया जा सकता है। पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण मूल वासना है। इस वासना का प्रगटीकरण मनुष्य को आनंद देता है और यही उसके लिए मानसिक क्लेश का कारण भी बनता है। विश्व भर के सभी किस्से इस मूल वासना का उल्लेख स्वीकृति के साथ करते हैं। दुख उन प्रेम कहानियों में भी है, पर दुख का कारण सामाजिक रिश्ते हैं, जो इस वासना का रास्ता रोकते हैं।

प्रेम प्रकाश की कहानी प्रेम-वृत्तांत के इस जाने-पहचाने खांचे पर निर्मित नहीं होती। प्यार की हद तक पहुंचा हुआ आकर्षण है। लेकिन इसके रास्ते में रुकावट न औरत का पति पैदा करता है, न पुरुष की पत्नी। उनके बच्चे भी रुकावट का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कारण नहीं बनते। कोई पड़ोसी या विरोधी भी नहीं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कहानीकार को सभी समर्थक या विरोधी धड़ों से अलग कर लिया गया है और वह प्रेम आकर्षण के अपने ही समर्थन और अपने ही विरोध को अपनी रचना-प्रक्रिया में पसारने का अवसर देता है। और, अंत में, ज्ञात होता है कि प्रेम न तो निरोल सुख है, न निरोल दुख। सुख-सुख दोनों के साथ संबंधित यह मूल वासना बहुत जटिल वस्तु है जो अपने ही अंतर्विरोध का क्लेश भोगती है।

इस कहानी का कहानीकार खुद अपना श्रोता भी है। कहानी विशुद्ध पुरुष-पात्र के मुख से ही बयान नहीं की गई, स्त्री-पात्र के संदर्भ में भी इसकी अभिव्यक्ति होती है। पुरुष और स्त्री अपना पक्ष इस तरह पेश नहीं करते कि वे अपने आप को सच्चा साबित कर रहे हों अथवा दूसरे पक्ष पर आरोप लगा रहे हैं। संतुलित सोच को संतुलित कहानी के रूप में प्रस्तुत करना ही इस कहानी की खूबसूरती है। यह कहानी सोचती है, पर हर स्थान पर 'सोच' को कथा के स्तर पर प्रस्तुत करती है।

शीशे के सम्मुख खड़ा व्यक्ति

लेखक	: मनमोहन बावा
जन्मतिथि	: 18 अगस्त, 1932
शिक्षा	: एम. ए. (इतिहास)
वृत्ति	: चित्रकारी, नक्शानवीसी
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: एक रात, सफेद घोड़े का सवार।
पता	: वाई-30, हौजखास, नई दिल्ली-110016

इस संग्रह को तैयार करते समय एक विचार मुझे बार-बार कौंधता रहा है कि इसकी कहानियां सीधी लकीर की भांति किसी आदि से अंत की ओर नहीं चलतीं बल्कि किसी एक नुक्ते पर खड़ी रहती हैं। इस विचार से तो मेरा कई बार सामना हुआ, लेकिन इसके कारण ढूंढने

में मैं क्रियाशील नहीं हुआ। इस कहानी को पढ़ते हुए ऐसा लगा कि जब हमारे समाज के व्यक्ति ही अपने परिवेश के साथ क्रियाशील तादात्म्य स्थापित करने से संकोच करते हैं, किसी एक बिंदु से आरंभ होने से ही गुरेज करते हैं तो वे किसी वृत्तांत रेखा को आगे बढ़ाने में सहायक कैसे हो सकते हैं? आज के मध्यवर्ग का प्रमुख गुण समझदारी है, समझदारी उसको वह रिश्ता जोड़ने से रोकती है जो जटिलताओं को जन्म दे। इसलिए वह रेखीय यात्रा से झिझकता है और स्वयं के बिंदु तक सीमित हो जाता है।

विवाहित परमजीत ऐसी वस्तु-दशा/मनोदशा में है कि वह दफ्तर में काम समाप्त कर घर नहीं जाना चाहता। उसके दफ्तर में ही एक लड़की है जो उसके साथ सैर करने, घर देर से पहुंचने के लिए तैयार है। पर परमजीत उसके साथ ऐसी बातचीत भी नहीं कर सकता जिससे किसी भी प्रकार के रिश्ते के लिए रास्ता खुलता हो। वह तो इतना पूछने/जानने से भी झिझक जाता है कि वह विवाहित है अथवा अविवाहित।

कहानी, पात्र के चरित्र से संबंधित है, यह होने और करने का रिश्ता है। जब होने में कुछ करने की सामर्थ्य न हो, रेखीय कहानी अस्तित्व में नहीं आ सकती। आज का दुखी, पर समझदार मनुष्य मध्य से ही शुरू होकर मध्य में ही रह जाता है। अपने आप तक सीमित कहानी न परमजीत के घर में प्रवेश करती है, न ही लड़की के घर में। हमें लगता है कि दोनों को अपने से अलग किसी और की आवश्यकता है, पर दोनों ही इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए कोई कदम नहीं उठाते। लड़की भी घर देर से पहुंचेगी और परमजीत भी। दोनों समझदार, संकोची, पर किस्से के लिए अयोग्य।
यह कहानी संकोचशील मध्यवर्गीय व्यक्तियों के किस्सा-विहीन जीवन का चित्र है।

बघेलो साधणी

लेखक : राम सरूप अणखी
जन्मतिथि : 28 अगस्त, 1932
शिक्षा : एम. ए. (पंजाबी), बी. टी.
वृत्ति : लेखन।
प्रकाशित कहानी-संग्रह : सोया नाग (1966), कच्चा धागा (1967), मनुष्य की मौत (1968), टीसी का बेर (1970), दीवार में उगा दरख्त (1971), खारा दूध (1973), कमाई (1975), आधा आदमी (1977), सवाल दर सवाल (1980), अपने घड़े का पानी (1980), छपड़ी बेहड़ा (1982), कब लौटेंगे दिन (1985), ज्वार भाटा (1989), हड्डियां (1989), मिट्टी की जात (1989), बघेलो साधणी (1991), सांझी खिड़की (1991), रेशमा (1991)।
पता : कच्चा रोड, बरनाला।
सीधी और तेज रफ्तार की कहानी लिखने में रामसरूप अणखी बहुत प्रवीण हैं। बघेलो

साधणी की कहानी अपनी रवां चाल के कारण पाठक को अपने साथ लिए चलती है। यह गांव में रहती गरीब मां-बाप की बेटियों और सिर से नंगी (बेआसरा) विवाहित स्त्रियों की दुखदायी स्थिति का चित्र भी प्रस्तुत करती है। स्त्री अगर मर्दाना ढंग से रहना चाहे तो गांव में उसका आदर है, निरोल स्त्रीत्व के सहारे जीने वाली स्त्री का आनंद है। यह कहानी, स्त्री के अबला रूप का विलाप नहीं, उसके अंदर बसते प्रचंड अहम का जयगान है।

स्त्री सामाजिक प्रतिमानों के घेरे के अंदर रहने के लिए विवश है। पर जब उस घेरे के अंदर रहते हुए उसका स्त्री-धर्म सफल नहीं होता, तो वह जिस घेरे के अंदर रहती है, उस घेरे के अंदर रहकर ही उसको अपनी बुनियादी/सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु तोड़ती और अपने अनुसार ढालती है। 'सिस्टम' को स्वीकार करते हुए भी उसको तोड़ना नए सृजनात्मक चिंतन का संदेश है। यह कहानी अचेत रूप में ही सृजनात्मक लकीर पर चलती प्रतीत होती है। वृद्ध व्यक्ति को स्वीकार करने के पश्चात भी वह अपने मातृकर्म की पूर्ति के लिए रास्ता ढूंढ लेती है। विधवा होने पर वह दहलीज के अंदर न रहकर, बाह्य कार्यों में संलग्न होकर अपनी गृहस्थी को पालती है।

सरल शैली में लिखी गई यह जटिल कहानी है। मां बाप की गरीबी के फलस्वरूप पैदा होने वाला दुख, शारीरिक तौर पर टूटे हुए व्यक्ति की पत्नी होने की समस्या, पर-पुरुष के साथ अकेली पूरे परिवार को पालती स्त्री की समस्या, इस जटिलता को रामसरूप अणखी ने सरल-वृत्तांत बनाकर प्रस्तुत किया है। इतना सरल कि पाठक को पता नहीं लगता कि वह किसी जटिलता के बीच से होकर गुजरा है।

सबसे अधिक प्रशंसनीय है इस कहानी का मानसिक वातावरण। आरंभ से अंत तक स्त्री कठोर संघर्ष के बीच से गुजरती है, पर कहानीकार, कठोरता को कहीं भी करुण नहीं बनने देता।

जिंदगी की कीमत

लेखक	: हरबख्श सिंह हंसपाल
जन्मतिथि	: 16 फरवरी, 1933
शिक्षा	: एम. ए. (अंग्रेजी)
वृत्ति	: रीडर, अंग्रेजी विभाग, श्री गुरु तेगबहादुर खालसा कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: ताश का महल (1967), वर्षों बाद (1978), ओ.पी.डी. के बाहर (1982)।
पता	: सी बी/46 सी, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058

हरबख्श हंसपाल की यह कहानी फ्रिज के इर्दगिर्द रचित मध्यवर्ग के एक परिवार

की आकांक्षाओं और विवशताओं का कथा-चित्र है। अपनी इच्छाओं को पूरा करने के मध्यवर्गीय परिवार सेकेंडहैंड वस्तुओं से काम चला लेना चाहता है और निरंतर एक के बाद दूसरी मुसीबत में फंसता चला जाता है। दुख की दास्तान का इतना सुखात्मक चित्र प्रस्तुत करने के लिए हास-परिहास (ह्यूमर) की शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता है। ऐसे चित्र पंजाबी साहित्य में बहुत विरले हैं। यह कहानी कुछ भी सिद्ध नहीं करना चाहती, केवल जिंदगी का एक टुकड़ा हंसते-हंसते प्रस्तुत कर देती है।

हास्य के कई रूपों, सूक्ष्म मुस्कुराहट से लेकर स्थूल अट्टहास तक, से यह रचना हास्य के सूक्ष्म उदाहरण को प्रस्तुत करती है। इस हंसी का उच्चारण न ऊंचा है, न कर्कश। यह न अट्टहास बनती है, न उपहास। कहानीकार न किसी का मजाक उड़ाता है, न पेट में दर्द पैदा करता है। हास्य 'स्थिति' में है, मध्यवर्ग के सीमित साधनों की संरचना में है। मध्यवर्गीय परिवार अपने सीमित सामर्थ्य को कैसे हंस-हंसकर झेलता है, उसका प्रामाणिक उदाहरण है यह कहानी।

इस कहानी की खूबसूरती इसकी 'भावना' और 'सुर' में है। 'भावना' में संतुलित और 'सुर' में जिम्मेदार यह रचना कटु सच को खूबसूरती के अंदाज में प्रस्तुत कर जाती है। इसी में इसकी विलक्षणता है।

पोलियो

लेखक : कुलदीप बग्गा (10 अगस्त, 1933 – 31 जुलाई, 1989)
शिक्षा : एम. ए. (मनोविज्ञान)
प्रकाशित कहानी-संग्रह : टूटे हुए लोग, आंगन की महक।
पता : एच-355, डी.डी.ए. फ्लैट्स, नारायणा, नई दिल्ली-110028

यह कहानी चौंका देने में समर्थ है, पर यह चौंकाती नहीं। यह 'सोच' को उकसाती हुई उस लड़की की कहानी है जिसका एक पैर पोलियो के कारण मारा गया है और जिसका पति संतानोत्पत्ति में असमर्थ है। इन दोनों को परस्पर जोड़ने वाला रिश्ता केवल संतान से ही बन सकता है और संतानोत्पत्ति के लिए गैर-मर्द की जरूरत है। इसलिए इस कहानी का पाठक के साथ रिश्ता सहानुभूति वाला नहीं, सूझ और समझ से जुड़ा है।

यह कहानी सहज गति में लंबाई की दिशा में चलती है, किंतु पाठक के मन में गहराई की दिशा में उतरती जाती है। कला के स्तर पर यह कहानी धीमी गति की कहानी है, पर पाठक को हर स्थान पर अपने पांव के तले एक अंगारे का अहसास होता है। सरल वाक्यों में लिखी गई इसकी इबारत सवाल उठाती है—क्या इस लड़की का विवाह हो सकेगा? क्या यह लड़की नपुसंक पति को छोड़ दे? पोलियो-ग्रस्त पत्नी द्वारा त्यागा गया पति अगर आत्महत्या न करे तो क्या करे? किसी पर-पुरुष से संतान प्राप्त कर पत्नी ने अपनी गृहस्थी

के साथ न्याय किया है अथवा अन्याय? नपुंसक पति बेटे का बाप बनकर प्रसन्न है या परेशान? पुत्र के प्रति उसका व्यवहार कैसा होगा? संतानवती पत्नी के प्रति नपुंसक पति अंदर ही अंदर क्या सोचता है? ऐसे अनेक सवाल यह कहानी उठाती है। सवाल, जिनका एक सुनिश्चित और सर्व-स्वीकृत उत्तर नहीं हो सकता।

यह कहानी अपने कथानक से आगे झांकती प्रतीत होती है। हर मनुष्य में कोई न कोई कमी है। वह जिनसे मिलता-जुलता है, कमी उनमें भी है। क्या स्वयं दोषयुक्त मनुष्य दूसरों के दोषों को गिनाता हुआ अच्छा लगता है?

सहज शैली में असहज अनुभव को अभिव्यक्त करने वाली यह कहानी अद्वितीय सरंचना वाली कहानी है। यह एक व्यापक अंत लिए है। कहानी समाप्त हो जाती है किंतु पाठक की सोच जारी रहती है।

रुतबा

लेखक : अजीत सिंह
जन्मतिथि : 13 अप्रैल, 1934
शिक्षा : एम. ए. (इतिहास, पंजाबी), पी-एच. डी.
वृत्ति : अध्यापन
प्रकाशित कहानी-संग्रह : जिंदगी हक मांगती है, सच के रूप, रंग अपना-अपना, समय का सच, तेरी बात मेरी बात, बाकी सब झूट है, मर्द की जुबान, शरम-धरम का डेरा दूर, मिट्टी की मौत, अमेरिकन रिव्यू, नेम-प्लेट।
पता : डी-2, दिल्ली प्रशासन फ्लैट्स, तीमारपुर, दिल्ली-110007

ऊपरी दृष्टि से यह कहानी जमादारिनों से संबंधित है। उनमें से कुछ पुराने तरीके से अपना काम किए जाती हैं और कुछ के तौर-तरीके में फर्क आ गया है। किंतु कहानी जमादारिनों के घर के अंदर प्रवेश करने से गुरेज करती है। मध्यवर्गीय समाज के उपवर्गों का अक्स निम्नवर्ग को भी प्रभावित कर रहा है, उस अक्स का चित्र इस कहानी में देखा जा सकता है। सेठों की कोठियों में काम करने वाली जमादारिनें सरकारी कर्मचारियों के क्वार्टरों में प्रवेश करती हैं। सेठ तो सरकारी नौकरियों में लगे मध्यवर्गीय लोगों को नीचा समझते ही होंगे, उनकी जमादारिनें भी उन्हें अपने नाक के नीचे नहीं आने देतीं। मुझे यह कहानी मध्यवर्गीय समाज के भीतर की फूट की कहानी प्रतीत होती है। इसमें उच्च और निम्न जातियों का तनाव नहीं चित्रित किया गया। एक ही जाति में घटित होने वाले तनाव को अंकित किया गया है। जहां तकरार के दोनों धड़े मौजूद न हों, वहां भी तकरार की मौजूदगी महसूस की जा सकती है।

कहानी की गति सहज है। इसमें वृत्तांत का प्रयोग बहुत कम हुआ है। 'रुतबा' एक नुक्ता है जो सहज ही सिद्ध हो जाता है।

कुर्सी

लेखक	: रघबीर ढंड (1 नवंबर, 1934 – 27 दिसंबर, 1990)
शिक्षा	: एम. ए., पी-एच. डी.
वृत्ति	: लेखन-पाठन।
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: बोली धरती, उस पार, काया-कल्प, कुर्सी, शाने-पंजाब।

रघबीर ढंड इंग्लैंड में बसते पंजाबी आवासी को ऐसे समझते हैं जैसे पंजाब में बसता कोई भइया हो। इस कहानी में अपनी प्रवासी पहचान और पैतृक देश के रिश्ते पर टिप्पणी की गई है। "दर्द तो हम इंग्लैंड में ही बहुत भोग लेते हैं। चुपचाप ! दर्द सुनने की किसके पास फुर्सत है? रानी के मशीनी राज में लोग भी मशीनी हो गए हैं। लोहा तो दर्द सुनता ही नहीं। बस, शरीर सहता है और सहते-सहते दमा, शुगर, ब्लड-प्रेशर और जोड़ों के दर्द से एक दिन थक-टूटकर मर जाना है। बस, एक 'हाय' की आवाज उठती है, बेचारा !...दो गज जमीन भी न मिली कुए-यार में। 'कुए-यार' में हम प्लाट खरीदने आते हैं—या वे पैसे जमा करवाने जो पांच-सात सालों में दुगने हो जाते हैं या मां-बाप के मरने पर मोह और रस्मों से जकड़े हुए या फिर विलायत की अनुकंपाओं की डींगें मारकर अपनी बैटरियां चार्ज करने आते हैं।"

यही है अजनबीपन का वह दृष्टि-बिंदु जिस पर खड़े कहानीकार ने भारत की मौलिक कला के अपने ही देश में लोप हो जाने का प्रामाणिक चित्र खींचा है। इस कहानी का रचयिता तो रघबीर ढंड हैं, पर इसका वार्ताकार नगोजों को बजाने वाला अरजन अमली है जिसके नगोजे सुनकर लोग अश-अश कर उठते थे, पर आज जिसके पास अपने बेटे के पांव में जूता पहना सकने तक का सामर्थ्य नहीं। यह कहानी उसकी ही नहीं उसके पिता पाखर सारंगीवादक की भी है जो अपनी सारंगी बेचकर भी अपना इलाज न करवा सका। यह कहानी उसके उस्ताद शफी की है जो भूख से मरते हुए पाकिस्तान चला गया और वहां किसी मस्जिद में दिन गुजार रहा है। यह कहानी तूम्बा बजाने वाले नगीने की भी है जो भट्टे में से ईंटें निकालने के लिए अभिशप्त है और लोकगायक तथा व्याख्याकार शौकी भी है जो गधी पर सब्जियां लादकर गांव-गांव जाकर उन्हें बेचता है। वास्तव में यह भारत के सभी उपेक्षित और तिरस्कृत लोगों की कहानी है जिसको सुनकर यूं लगता है जैसे वर्तमान भारतीयता का लोकगीत ही बेसुर और बेताल होकर बिखर गया हो।

क्या इस त्रासद स्थिति से बचाव की कोई राह है? रघबीर ढंड के अनुसार स्थिति किसी मजबूत परंपरागत कुर्सी की भांति है जिस पर बैठने वाले लोग लदे रहते हैं किंतु जो टूटती नहीं। पीढ़ियां गुजर गईं लेकिन पृथकीकरण की प्रक्रिया अभी तक जारी है।

कथ्य तो अमली अरजन और उसके बापू, उस्ताद और संगी कलाकारों का है, पर इसके इर्द-गिर्द प्रकाशवृत्त भी रचा गया है जो इसे समझने में सहायता करता है। निकट

ही, सोना उगलते खेत हैं और सीले चुगती हरिजन स्त्रियां हैं। अशोका होटल में नृत्य करती नर्तकियां हैं जिन्हें नृत्य के साथ-साथ उसकी व्याख्या करने की भी आवश्यकता पड़ती है। न तो सीले चुगते लोगों को फसल में बाकायदा हिस्सेदार बनने का अवसर है, न ही नृत्य को देख रहे दर्शकों के पास नृत्य को समझने-सराहने योग्य सहज-बुद्धि। आर्थिक अथवा कलात्मक दोनों स्थानों पर फासले हैं। बहुत कुछ के बावजूद लोग वंचित हैं। यह कहानी दो टूक शैली में कोई संदेश नहीं देती वरन उसका भरपूर चित्र प्रस्तुत करती है, उसकी अग्रभूमि और पृष्ठभूमि के साथ।

यह फूट, इस अलगाव-पसंद परिणामों की ओर भी हल्का-सा संकेत है। असंगठित लोग दहशतपसंद बनते हैं और अलगाव के निरंतर चलते सिलसिले को समझने में असमर्थ सत्ता के कारकुन उनके स्थान पर किसी फर्जी मुठभेड़ में किसी फर्जी व्यक्ति को मारकर अपने फर्ज से मुक्त होने की तसल्ली कर लेते हैं। संगीत की एक-सुरता भंग है। नग्मे के कुछ टुकड़े विदेशों में जुल्म सहते हैं, जैसे शफी। कुछ परदेश में सफल होते हैं, मनुष्य से लोहा बनते हैं, जैसे कहानीकार। कुछ अपने ही देश में अजनबियों की तरह मरते हैं, जैसे भजो। अथवा अपमानित होते हैं, जैसे भजो की बहू और नग्मे के कुछ टुकड़े सब्जी बेचकर, जैसे शौकी, या भट्ठे से ईंटें निकालकर, जैसे नगीना, अपना और अपने परिवार का पेट भरते है। सरल वृत्तांत के माध्यम से देश के जटिल दुख का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है—रघबीर ढंड ने।

रोटी

लेखक	: गुरदेवसिंह रूपाणा
शिक्षा	: एम. ए., पी-एच. डी (पंजाबी)
जन्मतिथि	: 13 अप्रैल, 1936
वृत्ति	: अध्यापन।
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: एक टुकड़ा औरत (1970), अपनी आंख का जादू (1978), डिफेंस लाइन (1988)।

काम (सेक्स) को रेखांकित करने के लिए अति सूक्ष्म अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है। अभिव्यक्ति जो सामाजिक संयम के घेरे में बंधी हो। मानवीय 'काम' केवल जीव-विज्ञान की ऊर्जा ही नहीं अपितु शिष्टाचार को बनाए रखना भी इसका एक आवश्यक अंग है। शिष्टाचार के प्रतिमानों से पृथक होकर यह हास्यास्पद ही नहीं, बदनामी और बरबादी की सीमा तक पहुंच जाता है।

यह कहानी संयुक्त परिवार के महत्वपूर्ण अंग बख्तियारे के अतृप्त काम से संबंधित है। उसका प्यार (काम) संयुक्त परिवार के दायरे के अंदर अतृप्त रहता है तो वह शिष्टाचार

के निर्वाह को एक ओर कर इसकी स्थूल तृप्ति को खोजता है। उसकी पत्नी की आयु इतनी अधिक नहीं कि वह अपने पति की प्रेम भावना को तृप्त न कर सके। लेकिन, संयुक्त परिवार के दायरे के अंदर उसकी कुछ अन्य भूमिका भी है जो उसे संयम का रास्ता अपनाने को विवश करती है। उसके बड़े बेटे का विवाह हो चुका है। यह विवाह नई पीढ़ी के आगमन का आधार-बिंदु है। बख्तियारे की पत्नी जनन शक्ति पर नियंत्रण रखने के लिए अपने पति से दूरी बनाए रखने की कोशिश करती है—सूक्ष्म शिष्टाचारिक कोशिश। उसका पति अपनी कुदरती ऊर्जा के प्रकटीकरण के लिए ऐसे उपायों का सहारा लेता है जो स्थूल हैं, शिष्टाचार के प्रतिमानों को भंग करते हैं और इसीलिए हास्यास्पदता की सीमा तक पहुंच जाते हैं और बदनामी व बर्बादी की ओर संकेत करते हैं।

इस कहानी में खूबसूरत भूमिका परिवार के बड़े बेटे मक्खन की है। पिता की कुदरती ऊर्जा और मां के शिष्टाचारिक संकोच के मध्य व्याप्त तनाव को पहचानता है। वह दोनों के मध्य ऐसी भूमिका निभाता है जो कहानी के पाठक को कौंचती हैं, मां को परेशान करती है और पिता को रुलाती है। हास्य तथा करुणा का पवित्र सम्मिश्रण है यह कहानी।

औरतजात

लेखक	: एस. साकी
जन्मतिथि	: 10 जुलाई, 1936
शिक्षा	: डिप्लोमा इन फाइन आर्ट्स
वृत्ति	: अध्यापन।
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: एक बटा दो आदमी, आज का अर्जुन, देवी देखती थी, रखैल, कर्मावाली, मुड़ नरक, नानक दुखिया अब संसार।
पता	: ए-317 बी, सूर्या नगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

पुराने मुहावरे वाली यह कहानी प्राचीन स्त्री के चरित्र से हमारी पुनः मुलाकात करवाती है। स्त्री को सामाजिक रिश्तों से बांधकर उसके बारे में विचारने, अनुभव करने, लिखने तथा पढ़ने के हम इस सीमा तक अभ्यस्त हो गए हैं कि असली स्त्रीत्व से हमारा परिचय मद्धम पड़ता जा रहा है। एस. साकी ने आदिम स्त्री को पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

विवाह, प्रेमी के साथ भाग जाना, विवाह पर स्त्री के अधिकार आदि हमारी जान-पहचान के विवरण हैं। पर, विवाह-संस्था से पहले मूल स्त्रीपन नाम का कोई चरित्र होता होगा जिसमें विवाह-संस्था से पार जाने का सामर्थ्य भी हो सकता है। यह सच एस. साकी ने अपनी इस कहानी में प्रस्तुत किया है। चंदन दास ने पैसा खर्च कर विवाह करवाया, विवाहिता स्त्री घर को लूटकर घर से भाग गई और किसी अन्य के घर में जा बसी। समाज-स्वीकृत

रिश्ता भी लाजमी तौर पर निबाहने के योग्य नहीं हो सकता। समाज-स्वीकृत रिश्ता स्त्री को कुछ हक देता है जिसका लाभ विवाहित मगर घर से भागी हुई स्त्री को भी प्राप्त हो जाता है। चंदन दास की घर से भागी स्त्री उसकी मृत्यु के बाद उसकी जायदाद पर हक जताने के लिए आ जाती है।

लेकिन, चंदन दास की जिंदगी में एक ऐसी स्त्री भी आती है जो उसकी ब्याहता नहीं, पर अपने प्यार और सेवा-सुश्रूषा से उसके जीवन को सुखी बना देती है। उसकी मृत्यु पर उसकी संपत्ति आदि को स्वयं लेने का यत्न नहीं करती। न ही बेवफा पत्नी के पास संपत्ति आदि के चले जाने का दुख करती है।

यह कहानी दुखांत है या सुखांत? अगर समझें कि वह चंदनदास की मृत्यु के पश्चात सब कुछ से विमुख कर दी गई है तो कहानी का अंत दुखभरा प्रतीत होता है। अगर समझें कि एक संत की तरह दुनिया की मोह-ममता से निर्लिप्त है तो इसका अंत आनंदमयी प्रतीत होता है। लेकिन, यह सुखांत-दुखांत के पारंपरिक बंटवारे से पार है। यह विशुद्ध स्त्रीत्व संबंधी एक अंतर्दृष्टि उत्पन्न करती है। स्त्री और कहानी के संबंध में पाठक वर्ग को चेताती हुई यह कहानी कहती है : "वे क्या जानें उस औरत के विषय में? उसके मन की बात कैसे समझें? उन्हें क्या मालूम कि उन्हें कुछ नहीं चाहिए। न सामान और न घर। उस औरतजात का रिश्ता तो केवल चंदन दास से जुड़ा हुआ था, जो बीस वर्षों तक कायम रहा। मोह का रिश्ता, प्यार का रिश्ता जो कि चंदन दास के संसार से उठते ही हमेशा के लिए टूट गया था।"

यह अंत कहानी और वास्तविकता के अंतर को भी समझाता है। कहानी वास्तविकता पर आधारित होकर भी उससे पार जाने में समर्थ है। शुद्ध अंतर्दृष्टि पर समाप्त होना साहित्य की परम उपलब्धि है।

आखिरी बार

लेखिका	: राजिंदर कौर
जन्मतिथि	: 2 दिसंबर, 1936
शिक्षा	: एम. ए. (इतिहास)
वृत्ति	: अध्यापन।
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: सतरंगी कल्पना (1971), अपना शहर (1977), सातों ही कुआंरियां (1978), दखल दूसरे का (1985)।
पता	: एच-35, डी.डी.ए फ्लैट्स, नारायणा, नई दिल्ली-110028

राजिंदर कौर की कहानी का निराला स्वरूप है। वैसे तो पंजाबी में अन्य भी कई लेखिकाएं हैं जो स्त्री-समस्याओं का अत्यंत प्रामाणिक विश्लेषण करती हैं। लेकिन, कामकाजी और

गृहस्थ स्त्रियों के निरंतर और एकाग्र चित्रण में राजिंदर कौर की विशेष रुचि रही है। उसकी कामकाजी स्त्रियां मध्यवर्ग से हैं, और मध्यम दर्जे की नौकरियां करती हैं। स्त्रियों के संघर्ष और मानसिक द्वंद्व को वह किसी बहस और मतभेद पर समाप्त नहीं करती, बल्कि उसके सुखद हल तक पहुंचने का प्रयत्न करती हैं। उसकी कहानियां न तो स्त्रीत्व का प्रचंड प्रकटीकरण हैं और न ही स्त्री-स्वतंत्रता का पक्ष लेती हैं। उनका स्वर न तो शिकायती है, न गुस्से में भरा। वे घर-गृहस्थी के सुख की कामना करने वाली कहानियां हैं।

'आखिरी बार' भी इसी प्रकार की कहानी है। तेज बुखार के बावजूद वह पति और परिवार के साथ सफर करने का निर्णय करती है। अपने पति की तरह वह भी किसी दफ्तर में काम करती है। पराई स्त्रियों के संग अपने पति की छोटी-छोटी अनेक क्रीड़ाओं को अनदेखा करती चली आ रही है। हर क्रीड़ा कुछ समय बाद स्वयं ही खत्म हो जाती है और हर बार मीती यही सोचकर संतुष्ट हो जाती है कि यह क्रीड़ा अंतिम है। कहानी पति के चरित्र की निरंतर क्रीड़ा-संभावना को भी प्रकट करती है और यह भी प्रकट कर देती है कि इस व्यवहार से परिचित होकर भी स्त्री इसे सह जाती है और परिवार को टूटने-बिखरने से बचाए रखती है।

राजिंदर कौर बहुत सरल कथ्य में जटिल समस्या को प्रस्तुत करती है। इस समस्या का एक पक्ष परिवार के अंदर विचरण करता है तथा दूसरा पक्ष परिवार के बाहर घटित होता रहता है। पत्नी परिवार की सलामती के लिए प्रयत्नशील रहती है। पति की ओर से कुछ ऐसा होता रहता है जिससे परिवार के टूटने की संभावना बनी रहती है। 'आखिरी बार' की कथावस्तु भी दोहरी है। एक कथावस्तु पति की छोटी-छोटी प्रेमलीलाओं की है और दूसरी, बीमार स्त्री के परिवार के संग सफर करने से संबंधित है। वास्तविक और मानसिक दोनों प्रसार एक ही समय में साथ-साथ गतिमान रहते हैं। पाठक को व्यापक प्रसार में फैली इस कहानी में बहुत कुछ फालतू भी प्रतीत हो सकता है। परंतु, वास्तव में 'फालतू' इस कहानी के गृहस्थ-वातावरण का एक आवश्यक अंग है। गृहस्थ के दुख उन घटनाओं से बने हुए हैं जो परिवार के लिए निरर्थक हैं। साधारण किंतु समझदार स्त्री का संपूर्ण संघर्ष इन्हीं निरर्थक विवरणों से लड़ने का संघर्ष है। स्त्री-पुरुष की अतिरिक्त हरकतों पर भी दृष्टि रखती है, उन्हें एक सीमा से आगे भी नहीं जाने देती और सीमा के अंदर-अंदर टूटती-बिखरती भी है। यही निम्नवर्गीय कामकाजी, परिवार-प्रिय, पारंपरिक मूल्यों की मुद्दई स्त्री का संघर्ष है। राजिंदर कौर इसी दृश्य की ओर हमारा ध्यान निरंतर खींचती रहती है।

मरा नहीं जाता

लेखिका : सुखवंत कौर मान
जन्मतिथि : 19 जनवरी, 1937
शिक्षा : एम. ए. (पंजाबी)
प्रकाशित कहानी-संग्रह : इसके बावजूद, दरार।
पता : तलानियां, बरास्ता बस्ती पठानां, भठिंडा।

कहानी, वृतांत की एक विधा है। कोई कोई कहानीकार वृतांत की लीक को लांघ कर एक अच्छी कहानी की रचना कर लेता है। यह कहानी इसी प्रकार के अपवाद का एक उदाहरण है। यह 'वर्णन' की नींव पर लिखी गई कहानी है।

इस कहानी के पास न कोई रेखांकित किया जाने वाला पात्र है, न ही सुनिश्चित समस्या है। यह देश अथवा काल में फैलती भी नहीं। किसी जीवन-दृष्टि की अभिव्यक्ति की इच्छुक भी नहीं यह कहानी। सभी चिर-परिचित तत्वों के बिना ही यह कहानी स्वयं को सृजित कर सकी है। यह मनुष्य के अस्तित्व की साधारणता का करिश्मा है।

इस कहानी के पास केवल एक स्थिति है। किसी नौ-जवान की मृत्यु पर कुछ स्त्रियां शोक व्यक्त करने हेतु एकत्र हुई हैं। पर यह कहानी केवल शोक का चित्र प्रस्तुत नहीं करती। इसमें चाय की चुस्कियां हैं, कपड़े-गहनों की साधारण पूछताछ है, किसी लड़का-लड़की की आंख-मिचौलियां हैं, चुनावों की बातें हैं, बीमार पड़े किसी बड़े-बूढ़े की तृष्णा के चर्चे हैं। शोक के लिए आई औरतों के मध्य होने वाली पारस्परिक मसखरी भी है।

मृत्यु की छांव तले भी जिंदगी सहज गति से गतिमान रहती है। जिंदगी की साधारण गति भी एक विजय-यात्रा है। बेशक कहानीकार मान ने इस प्रकार के उच्च-स्तरीय शब्दों का प्रयोग नहीं किया, फिर भी उसके साधारण वार्तालाप के अंदाज में भी जिंदगी के गहन-गंभीर संदेश का स्वर उभरता है।

यह कहानी विलक्षण बुनावट वाली कलात्मकता की अनोखी रचना है।

एक और हैमिंग्वे

लेखक : रविंदर रवि
जन्मतिथि : 8 मार्च, 1937
शिक्षा : बी. ए., एम. ए. (आनर्स), बी. टी.
वृत्ति : अध्यापन।
प्रकाशित कहानी-संग्रह : चरावी, जुर्म के पात्र, शहर में जंगल, कोण-प्रतिकोण, शैली पुस्तक, जहां दीवारें नहीं, अघरवासी, कंप्यूटर कल्चर, समय के साथ-साथ।
पता : न्यू आयोंश, बी. सी., कनाडा, वीओजे-140

लोक-कथा के सपाट किस्से से आरंभ होकर कहानी एंटी-किस्से तक पहुंच गई है। इसकी कुछ जानकारी रविंदर रवि की इस कहानी से मिल सकती है। इस कहानी में कथा न तो रेखा की सीध में चलती है, न बिंदु के इर्दगिर्द स्थान घेरती है। जहां तक संभव है यह कहानी वास्तविक समय, स्थान अथवा संस्कृति का दिगभ्रम भी नहीं रचती, पात्र का अन्य पात्रों से संबंध अथवा संबंधों में से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का चित्र भी इस कहानी में नहीं देखा जा सकता। यह किसी लक्ष्य तक बढ़ती हुई भी प्रतीत नहीं होती, और न ही यह किसी उद्देश्य को सिद्ध करने की इच्छुक लगती है। किसी विशेष विचारधारा की मुद्दई नहीं यह रचना, इसे किसी जीवन-दर्शन का सहारा नहीं। गल्प से संबंधित जो भी प्रतिमान विद्वानों ने अब तक खोजे अथवा प्रतिपादित किए हैं, इस कहानी को उनमें से किसी एक पर भी चलते हुए नहीं पाया जा सकता। कहानी होकर भी यह गल्प की हर पहचान से परे है।

इस कहानी में पंजाबी संस्कृति का कोई अंतर्पाठ नहीं। इसका प्रमुख अंतर्पाठ है अंग्रेजी भाषा का, अमेरिकी हैमिंग्वे का, जिसने अपने जीवन को किसी गल्प-कथा की भांति स्वयं ही खत्म किया। उसने जीवन को लिखा और जब जीवन-कथा को साहित्य-रचना की भांति संपूर्ण समझा, उसके आगे एक मोहर लगा दी। यह कहानी ऐसे बिंदु तक पहुंचे मनुष्य की मनोकथा है। जब मनुष्य के पास न उज्ज्वल अतीत है, न जगमग करता भविष्य है, वह स्वयं अपनी कनपटी पर बंदूक की नाली रख लेता है।

इस संग्रह की अधिकतर कहानियों में गांव अथवा कस्बे की संस्कृति बोलती प्रतीत होती है। एक-आध कहानी ऐसी भी है जिसका लेखक अपनी रचना की विलक्षणता 'महानगरीय लेखन' के रूप में निश्चित करता है। इस रचना में न गांव का चित्र है, न कस्बे का, नगर या महानगर का भी नहीं। यह सभ्यता के उदय से पूर्व का जंगल भी नहीं। कहानी के अनाम पात्र के इर्द-गिर्द आदिकालीन जंगली जीवजंतु हैं, पर वह खुद आदिकालीन मनुष्य नहीं। सभ्यता के पहले वाले परिवेश में सभ्यता के बाद का मनुष्य बैठा है—अकेला, वास्तविकता से पृथक, विशुद्ध मानसिकता। इस तरह की कहानियां बहुत कम हैं। इन्हें पढ़ने के लिए भी ऐसे पाठक की आवश्यकता है जो समाज, सभ्यता, संस्कृति के पार जाने का सामर्थ्य रखता हो।

दीए-सी जलती आंख

लेखक	: गुरबचन सिंह भुल्लर
जन्मतिथि	: 18 मार्च, 1937
शिक्षा	: एम. ए. (राजनीति शास्त्र)
वृत्ति	: पत्रकारिता।
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: ओपरा मर्द (1969), बख्तां मार (1975), मैं गजनवी नहीं (1985), दीए-सी जलती आंख (1986)।
पता	: एन.डी. 50, प्रीतम पुरा, नई दिल्ली-110034

गुरबचन सिंह भुल्लर की यह कहानी एक स्त्री के माध्यम से पंजाब के ग्रामीण जीवन का भरपूर चित्रण है। स्त्री पात्र (महिंदर कौर) सुंदर भी है और समझदार भी। वह अपनी इज्जत-आबरू की रक्षा करने में सक्षम भी है और उसको दांव पर लगाकर अपने आर्थिक हित का प्रतिपालन भी कर सकती है। घर में सबसे छोटी बहू होने के कारण वह हमेशा घूंघट में रहती है, पर अपने हितों के लिए सचेत होने के कारण वह अपने आसपास के प्रति असाधारण रूप में सूझबूझ का परिचय भी देती है।

लुकी-छिपी होने के बावजूद उसकी सुंदरता उजागर है, घूंघट में से झांकती उसकी आंख दीए-सी जलती प्रतीत होती है। घर में अकेली वह अपने अनब्याहे जेठ से अपने आपको बचाती हुई उसके लिए भय का वातावरण भी उत्पन्न करती है और भरी सभा में पुरुषों के साथ बेबाक होकर वार्तालाप भी कर सकती है। वह चरित्रवान स्त्री है, पर चरित्र के लिए चरित्र की रक्षा में उसकी दिलचस्पी नहीं। कम भूमि वाले परिवार से संबंधित होने के कारण वह अपने अविवाहित जेठ की जमीन अपने पास रखना चाहती है। इस मनोरथ को सिद्ध करने के लिए वह अपनी गोद के बेटे को भरी पंचायत में अपने जेठ से जोड़ देती है। पाठक उसके चरित्र के प्रति शंकाग्रस्त नहीं होता, उसके साहस के प्रति प्रशंसा का भाव ही नहीं रखता, बल्कि हैरान भी रह जाता है।

इस कहानी का केंद्र बिंदु स्त्री पात्र है। किंतु यह किसी का रेखाचित्र मात्र नहीं और न ही इसको पारंपरिक अर्थों में पात्र-प्रधान कहानी का नाम दिया जा सकता है। अगर यह चित्र है तो ग्रामीण शिष्टाचार का। सुंदर, विचारवान और बेबाक महिंदर का चरित्र अगर रोशन है तो ग्रामीण शिष्टाचार के दायरे में। उसने अपने ऊपर, अपनी इच्छा से और अपने हित की पूर्ति के लिए जो दाग लगाया है, उसकी प्रशंसा (जैसे--वाह री मर्द की बच्ची...शेरनी का दूध पिया है भाभी ने...) भी शिष्टाचार के दायरे में ही संभव है। यह शिष्टाचार का भावुक चित्र नहीं, संतुलित निरूपण है।

इस कहानी का मुख्य तत्व इसका वृतांत ही है। यह कहानी वृतांत के माध्यम से ही सोचती है और वृतांत के आवश्यकतानुसार ही वातावरण और चरित्र दोनों का सृजन करती है। इसका जीवन-दर्शन भी वृतांत में रचा-बसा रहता है। कहीं भी, कुछ भी पृथक नहीं।

यह नारी स्वतंत्रता की कहानी नहीं, जबकि इसमें नारी ने अपनी स्वतंत्र सत्ता का परिचय दिया है। स्त्री अपनी शक्ति का प्रयोग अपने परिवार के हित के लिए ही करती है। उसने अपने ऊपर जो दाग लगाया है, वह अपने पति और गांव-समाज की उपस्थिति में ही लगाया है। यह कहानी स्त्री के तीन बड़े गुणों--शील, शक्ति और सुंदरता--की विजय-कथा है। पुरुष समाज ने इसको सराहा ही है, दोषी नहीं ठहराया।

रामो चंडी

लेखिका : चंदन नेगी
जन्म तिथि : 26 जून, 1937
शिक्षा : बी.ए.
संप्रति : गृहिणी
प्रकाशित कहानी-संग्रह : मेरा आपा मोड़ दे, चित्रगुप्त, करड़ा सार, गंध कस्तूरी, बारि पराए, सगल-संग।
पता : ए-2/89 मी, एम आई जी फ्लैट्स, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-63

भारतीय स्त्री का अपने पुरुष से अलग कोई व्यक्तित्व नहीं। विशाल समाज में पुरुष के करने योग्य कई काम हैं, पर स्त्री के कामकाज का घेरा घर तक ही सीमित है। अपने पति से गहरा अपनत्व रखने वाली पत्नी, पति की हमराज नहीं। पति जेल जा चुका है, पर पत्नी रामो को मालूम तक नहीं कि उसके पति का अपराध क्या है।

पत्नी से संबंधित एक लोक विश्वास यह है कि वह अपने पति की सारी विपदाओं के लिए जिम्मेदार है। संकट के कारणों से अनभिज्ञ वह संकट का फल भोगती है। इसी लोक-जीवन की तस्वीर है यह कहानी। उसको चंडी का विशेषण भी लोगों ने दिया है। उसका कोई मददगार नहीं, पर उसके संकटग्रस्त जीवन से संबंधित निंदनीय कहानियां लोगों ने अवश्य घड़ ली हैं। स्वतंत्रता-संग्राम के नायक सुभाष चंद्र बोस के भारत से फरार होने की कहानी से अनजाने ही संबंधित होने के कारण उसका पति जीवन सात वर्ष के लिए जेल भेज दिया जाता है। जेल से रिहाई के बाद लोग उसके सम्मान के लिए समारोह में एकत्र होते हैं, परंतु इन सात वर्षों में जिस प्रकार की जेल उसकी पत्नी रामो काटती है, उसके लिए कोई शाबासी नहीं। स्वयं रामो जिसने सात वर्ष लंबा संकट जीवन की पत्नी होने के कारण झेला, पत्नी बने रहने में ही अपनी सार्थकता समझी, "यह सम्मान जो जीवन को मिल रहा है, उस पर तो कई सात वर्ष कुर्बान किए जा सकते हैं।" उस (रामो चंडी) का मन हुआ कि वह भी जीवन के साथ जाकर खड़ी हो जाए।

यह कहानी देशभक्ति को उभारती है और उसके सामानांतर स्त्री द्वारा भोगे दुख को नकारती है। इस कहानी का एक अर्थ पुरुष-देशभक्ति के सम्मान का है और एक संदेश दुख भोगती स्त्री की स्व-हीनता का। सम्मान प्राप्त कर रहे पुरुष के पास खड़े हो सकने का अवसर भी पुरुष समाज ने उसकी पत्नी को नहीं दिया। पत्नी दूर खड़ी होकर सिर्फ इच्छा कर रही है—'वह भी जाकर जीवन के पास खड़ी हो जाए।'

'अर्थ' और 'संदेश' का यह तनाव कहानी के 'कथ्य' और 'प्रसंग' के मध्य के तनाव के कारण है। कथ्य आज से 40-45 वर्ष पहले का है जब देश की आजादी का मूल्य स्त्री की आजादी के मूल्य से कहीं अधिक था। परंतु आज के प्रसंग में स्त्री की स्वतंत्रता को

ही अधिक महत्व प्राप्त हो रहा है इस बदले हुए प्रसंग में जेल यात्रा के बाद सम्मानित किए गए पुरुष की पत्नी का पति से दूर खड़े रहना, सम्मान देने वाले पुरुषों द्वारा संकट के बीच से गुजरी स्त्री को महत्व तक न देना, स्त्री का दूर खड़े होकर अपने सम्मानित पति के संग खड़े होने की इच्छा मात्र रखना, इन सबके माध्यम से एक अलग प्रकार का संदेश प्रसारित होता है। कथ्य के भीतर की स्त्री अपना सारा दुख भूलकर पति के सम्मान में खुश है, आज के पाठक का प्रसंग इस खुशी के सामने प्रश्नचिह्न लगाता प्रतीत होता है।

चूरू मूरू

लेखक	: भूपिंदर सिंह
जन्म तिथि	: 1 जुलाई, 1937
शिक्षा	: एम. ए. (नीति शास्त्र)
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: ऊंचा टीला, सायरन की आवाज, सलीब और सरहद, मीना बाजार, एक किनारे वाला दरिया, कर्फ्यू आर्डर और इक्यावन का सगुन।

यह रचना वास्तव में विशिष्ट मूल्य-मान्यता को लेकर है। हमारा साहित्य-सृजन आम तौर पर सरल लकीरों पर चलता है। वह मूल्यों को मानव-सार्थक अथवा मानव-विरोधी सुनिश्चित कर सहज ही निर्णय कर लेता है कि उसको किस ओर खड़ा होना है। लेकिन, जीवन इतना सरल नहीं। मूल्यों की जटिल संरचना कलाकार से अधिक प्रौढ़ फैसलों की आशा रखती है।

इस कहानी में मां अतिथि-सत्कार में अपने घर की अत्यंत कीमती बल्कि बेहद सुंदर और प्यारी वस्तु को भेंट कर बैठती है और उसका ही बच्चा (बेटा) मां के इस फैसले को स्वीकार नहीं कर पाता। अतिथि-सत्कार और प्रिय बेजुबान की रक्षा, दोनों ही हमारे शिष्टाचार के प्राचीन काल से स्वीकृत मूल्य रहे हैं। दोनों में से कोई भी त्याज्य नहीं। पर दोनों को एक ही समय निभाया कैसे जाए?

मां अतिथि-सत्कार के लिए बाजार से गोश्त खरीद सकती थी। बच्चा भी अतिथि के वायदे के अनुसार नया मेमना खरीद सकता था। पर इस प्रकार दोनों जगह पर 'प्यार' की हत्या होती। बहुत समय से परदेश गए पति की खबर लाने वाले के प्रति सत्कार का प्रकटीकरण अपनी बहुत पुरानी प्रिय वस्तु के त्याग से ही हो सकता है। अतिथि का केवल पेट भर देना ही घरवाली को मंजूर नहीं।

बेटे को भी केवल मेमना ही नहीं चाहिए, बहुत समय से पाला हुआ और प्यारा मेमना ही उसकी मानसिकता को स्वीकार हो सकता है।

साहित्यकार कहां पर खड़ा है? वह अतिथि के लिए अपने घर की बहुमूल्य और प्यारी

वस्तु वार देने वाली मां की ओर है अथवा अपने प्यार और सेवा के प्रतीक (मेमने) की रक्षा के लिए दुखी बच्चे की ओर? मां और उसका बच्चा दोनों ही बड़े स्वच्छ चित्त वाले हैं। बच्चे का प्यार और मां की सेवा-भावना दोनों ही प्रशंसा के हकदार हैं।

कहानी कुदरती प्रेम और सामाजिक मूल्यों को निभाने के मध्य तनी हुई है, और यहीं पर ही समाप्त होती है। कहानीकार मां अथवा बच्चे में से किसी के ऊपर दोष आरोपित नहीं कर सकता, स्वयं को ही 'भेड़िया' मानते हुए अपने आपको ही कसूरवार ठहराता है। ऐसी कहानियां हमारी भाषा में बहुत कम हैं। यह मूल मानवता का पक्ष लेने वाली कहानी है।

दुश्मन

लेखक	: रणजीत सिंह
जन्म तिथि	: 7 जनवरी, 1938
शिक्षा	: एम. ए. (अंग्रेजी)
वृत्ति	: अध्यापन।
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: आखिरी दम तक (1991)
पता	: 74, सहयोग अपार्टमेंट, मयूर विहार, दिल्ली-91

साहित्य-जगत, वस्तु-जगत जैसा होकर भी कई बातों में वस्तु-जगत से पृथक होता है। वस्तु-जगत में मनुष्य कई सीमाओं में बंधा होता है, साहित्य रचना वास्तविकता के पार असीम में प्रवेश करने के लिए प्रेरित करती है। साहित्य-जगत का बड़ा गुण यह है कि वह वर्ग-भेदों, देशों की सीमाएं नकारता हुआ सर्व मानव की एकता के पक्ष में खड़ा होता है। इस प्रकार की कहानी है—दुश्मन।

एशिया के एक ही भूभाग के दो देश हैं—भारत और पाकिस्तान। कभी ये एक ही देश हिंदुस्तान के अंग थे, एक-दूसरे से सजीव एकता से सम्बद्ध। कुछ ऐतिहासिक कारणों ने दोनों को एक-दूजे से पृथक कर दिया। दोनों के मध्य एक-दूसरे के संबंध में बहुत दृढ़ मताग्रह बन गए। दोनों परस्पर युद्ध भी करते रहे। ऐसे अलगावों के बावजूद साहित्य सृजन ही दोनों के मध्य किसी सांझ, किसी एकता को पहचानता है। यह सांझ मूल मानवता से शक्ति प्राप्त करती है। समूची मानवता का मूल एक ही है। दुश्मन कहानी इसी मूल पर फोकस है ।

यह भारत और पाकिस्तान के दो फौजियों की कहानी है। मैदाने-जंग में दोनों एक दूसरे से सौ-डेढ़ सौ गज के फासले पर थे। युद्धरत दो सेनाओं के ये फौजी एक-दूसरे के दुश्मन थे। पर साहित्य-सृजन से जुड़े एक फौजी ने दूसरे के साथ जंगी दुश्मनी से आगे कोई मानवीय सांझ भी पहचानी। इसी पहचान के कारण वह गोली चलाने से रुक जाता है। यह पहचान उस मूल मनुष्यता की है जो फौज और देश के तकाजों से आगे देखने और उसे व्यवहार में लाने का सामर्थ्य रखती है।

शर्मा सर

लेखक : जगदीश कौशल
जन्मतिथि : 20 फरवरी, 1939
शिक्षा : एम. ए. (पंजाबी)
प्रकाशित कहानी-संग्रह : मेरे अपने नाम (1975), परछाइयों के जी (1985)
पता : बी-142, जनता कालोनी, नई दिल्ली-110017

यह भी अपने ढंग की विलक्षण कहानी है। एक ही पात्र के माध्यम से, एक ही समस्या को अलग-अलग घटनाओं में अभिव्यक्त करती है। पात्र परिपक्व स्वभाव के एक सुनिश्चित बिंदु पर खड़ा है और निष्क्रियता और भ्रष्टाचार के नुक्ते पर खड़े समाज से टक्कर ले सकता है, पर इसके लिए उसको बहुत बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ सकती है। यह इस कहानी का सचेत पैगाम है।

इस कहानी में रेखाचित्र के तत्व क्रियाशील हैं, पर छोटी-छोटी घटनाएं इसके कथात्मक स्वभाव को भी उजागर करती हैं। भोले पहलवान के गुंडों के साथ मंदिर में टक्कर, भोले के ही साथियों के साथ स्कूल में टक्कर, स्कूल में मास्टर सतपाल वर्मा के साथ टक्कर आदि छोटी-छोटी घटनाएं हैं जो परस्पर जुड़कर संघर्ष में जूझते व्यक्ति का वृतांत पैदा करती हैं। इस कहानी का अंत भी अकेले व्यक्ति के निरंतर संघर्ष पर खत्म होता है। यह एक खुले अंत वाली कहानी है। अपने संघर्षोन्मुखी स्वभाव और व्यवहार के कारण मारपीट का शिकार होकर भी 'शर्मा सर' अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है और वही कुछ करना पुनः आरंभ कर देता है जिसको करते हुए वह कई बार संकट के मुंह में गिरता रहा है। वह सकारात्मक अथवा पाजेटिव किरदार वाला पात्र है।

इस कहानी के टैक्सचर में भी अपने ढंग की विलक्षणता है। गंभीर कार्य में व्यस्त पात्र की प्रस्तुति में विनोद का, हास्य का रंग है। वह गोल छेदों में चौकोर कील जैसा है। उसका असंबद्ध चरित्र हास्य उत्पन्न करता है। गंभीर व्यक्ति इस दुनिया में विरले ही हैं, इसलिए अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं और हास्य उत्पन्न करते हैं। विनोद और गंभीरता के सम्मिश्रण ने इस कहानी को पृथक रूप प्रदान किया है।

पूरा आदमी

लेखक : साधू सिंह
जन्मतिथि : 20 अगस्त, 1939
शिक्षा : एम. ए., पी-एच. डी. (पंजाबी)
वृत्ति : अध्यापन।
प्रकाशित कहानी-संग्रह : पूरा आदमी।

पता : एच-जे. 165, हाऊसिंग बोर्ड कालोनी, फिरोज़पुर रोड, लुधियाना।

यह कहानी उस आदमी की है जो शारीरिक तौर पर अधूरा होने के बावजूद पूरा है। दोनों टांगों से वंचित होने के बावजूद वह अपने चरित्र की दृढ़ता के कारण अपनी जिंदगी को सफल बना लेता है, अपनी खुशमिजाजी के कारण दुखों में भी हंसी बिखेरता है।

इस श्याम की जिंदगी में दो 'प्रेम' हैं जिनमें घटनाएं कुछ नहीं हैं। एक प्रेमिका है रूप रानी जिसका विवाह हो जाता है और उसकी कहानी समाप्त हो जाती है। दूसरी प्रेमिका है विधवा लाजो जो कुछ पलों के लिए ही खामोशी सहित कहानी में दिखाई देती है। इन दोनों के वृत्तांत की गति या मोड़ में कोई हिस्सा नहीं। यह वृत्तांत श्याम के अभावों का और अभावों के बीच जीने-मरने का है। श्याम के सिवाय शेष पात्रों की इस कहानी में भूमिका इतनी कम है कि कहानी के बावजूद यह रचना रेखाचित्र होने का प्रभाव उत्पन्न करती है। किस्सागोई के तत्वों का भरपूर प्रयोग होने के बावजूद यह रचना किस्सा नहीं, सफलता प्राप्त करने के बावजूद श्याम की सफलताओं का वर्णन-योग्य घटनाएं नहीं, वर्णन-योग्य है सिर्फ श्याम का चरित्र।

कहानीकार, अपनी कहानी के पात्र के बहुत नजदीक है। दोनों के मध्य 'मोह' का रिश्ता है। इसलिए कहानी में एक लयात्मकता है। दोनों के मध्य मोह के अतिरिक्त और कोई रिश्ता नहीं, वे एक-दूसरे को सराह सकते हैं, पर एक-दूसरे की जीवन-घटनाओं में पृथक धड़े नहीं बन सकते।

बहुत ही विशेष घटनाओं वाली यह बहुत लंबी कहानी है।

फालतूपन भाषा का सहज गुण है। इसी कारण रेखांकित किए जाने वाला वातावरण सृजित होता है। संक्षेप में, इसमें प्रमुख भूमिका वातावरण की है। रूप रानी को चोरी-चोरी मिलने का यत्न, नाव में पार्टी का जलसा, ट्रांसपोर्ट कंपनी में नौकरी, साझे दोस्त जसवंत के साथ शराबखोरी, लाजो के घर चाय पीना आदि छोटे-छोटे टुकड़े मिलकर किसी कथा-संगठन का सृजन नहीं करते। इनमें से एक-आध को निकाल देने से कहानी में कोई फर्क नहीं पड़ता। फर्क पड़ेगा उस मोह-भरे माहौल को जिसके अंदर श्याम का चरित्र उभरता है।

इस प्रकार के प्रगीतमयी वृत्तांत हमारी कहानी-परंपरा में विरले ही हैं।

परछाइयों की पकड़

लेखिका : बचिंत कौर

जन्मतिथि : 8 फरवरी, 1940

शिक्षा : एम. ए., एम. फिल. (पंजाबी)

वृत्ति : सरकारी नौकरी।

प्रकाशित कहानी-संग्रह : मंजिल (1972), सूहारंग स्याह रंग (1974), भुब्बल की आग (1977), क्यारी लौंगा दी (1982) प्रतिबिंब (1984), खुरे होए रंग (1988)।

पता : सी-67, सी-4-डी, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058

जीवन के एक टुकड़े जैसी यह कहानी स्त्री जाति के सीमित अनुभव और असीम मोह का चित्र प्रस्तुत करती है। यह अतीत का चित्र है जब लड़कियों के लिए 'पांच जमातें ही बी. ए. पास के बराबर थीं', पढ़ाई के मुकाबले 'अपने दहेज के लिए दुसूती के मेज-पोश और चादरों की कढ़ाई अधिक महत्वपूर्ण थी', लड़की छोटे भाई को बगल में उठाए गलियों कोना-कोना छानती रहती या किसी मुकलावे (गौने) पर आई भाभी के इधर-उधर के काम करती रहती। घर के कोठे के ऊपर चढ़कर सहेलियों का इधर-उधर की बातें करना, ऐसे ही छोटे-छोटे शौक थे—विवाह की प्रतीक्षा करती इन लड़कियों के। यही लड़कियां जब विवाह के बाद किसी बहाने एक-दूसरे से मिलती हैं तो छोटी-छोटी प्यार-भीगी यादों के सिवा इनके पास करने योग्य कोई बात नहीं होती।

बचिंत कौर ने स्त्री के तुच्छ जीवन की उस गिलहरी से उपमा दी है जो किसी दरख्त की टूटी शाखा के बोझ तले आकर कुचली जाती है। औरत का परिवेश भादो की ऋतु है जिसमें बादल बड़े ही बेसब्रे होते हैं। पुरानी किसी सहेली के साथ पल भर की भेंट के बाद बिछुड़ना जरूरी हो जाता है।

यह कहानी स्त्री जाति के जीवन की तस्वीर है जिसके पास अप्राप्तियां हैं, पुराने अल्हड़ जीवन की कुछ यादें हैं और उन यादों की बातें करने के लिए भी वक्त नहीं।

यह कहानी कहानी-कला के सम्मुख भी एक प्रश्नचिह्न है। आखिर, उनकी क्या कहानी होगी जिनके पास कहने योग्य विशेष नहीं और उस अविशेष को भी कहने के लिए वक्त नहीं? इस कहानी का महत्व इस अर्थ में नहीं, इसके अर्थहीन वातावरण में है।

अदना इंसान

लेखक : अतर जीत
जन्मतिथि : 2 जनवरी, 1941
शिक्षा : एम. ए. (पंजाबी)
वृत्ति : अध्यापन।
प्रकाशित कहानी-संग्रह : अदना इंसान (1986), टूटते बनते रिश्ते (1976), मांसखोरे (1973), कहानी कौन लिखेगा (1989)।
पता : सरकारी हाई स्कूल, जस्सी पाऊ वाली, भटिंडा (पंजाब)।

इस कहानी का शीर्षक हमारे वर्ग-भेद पर व्यंग्य है। व्यंग्य का अर्थ है—आयरनी। कभी-कभी किसी साहित्यिक कृति का पात्र अनजाने ही कोई उक्ति उच्चारता है जिसके एक अर्थ के प्रति वह सचेत होता है, पर एक अर्थ ऐसा भी संचारित होता है जो पाठक श्रोता तक तो पहुंचता है, किंतु लेखक/वक्ता को उसका अहसास नहीं होता। शाम लाल विनम्रता से अपने आप को 'अदना आदमी' कहता है। पर उसके कथन में उसका जातिगत अर्थ भी है जो पाठक तक बराबर पहुंचता रहता है। शाम लाल की विनम्रता और जातियों में बंटे समाज की करतूतों का व्यंग्यमय विरोधाभास पाठक को परेशान करता रहता है। यह व्यंग्य विरोधाभास अथवा तनाव इस रचना के आदि-अंत तक फैला हुआ है।

यह रचना न तो निरोल वर्णनात्मक है, न ही निरोल चारित्रिक। वृतांत है, पर वह आदि, मध्य, अंत आदि के जानी-पहचानी दिशा में नहीं चलता। शाम लाल का जीवन-वृतांत एक लड़ीवार सिलसिले की भांति नहीं चलता। उसमें कई घटनाएं घटित होती हैं और सबका पैटर्न एक ही है। इस अदना (निम्न जाति वाले) आदमी को कोई उच्च (ऊंची जाति और ऊंचे रुतबे वाला) आदमी अपमानित करता है और इससे एक तनाव की रचना होती है। इस तनाव के हल की कोई सूरत नहीं। तनाव दो व्यक्तियों के बीच में होता तो हल हो सकता था, पर यह तो दो व्यक्तियों में समाया दो जातियों का तनाव है। छोटे-बड़े की तमीज जातिवर्ग से संबंधित है जो दो व्यक्तियों के मिटाए मिट नहीं सकती। हर बार पहल उच्च जाति के वर्ग की ओर से होती है और हर बार हानि 'अदने आदमी' को पहुंचती है। दोनों वर्गों के मध्य दरार कितनी चिर-स्थाई है इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि उसके दिल-जान से सहानुभूति रखने वाला किस्सागो भी वास्तविक स्तर पर उसके हक में खडे होने के लिए तैयार नहीं। चिरकाल से एक ही स्थान पर अटकी हुई जीवन-दृष्टि का यह एक ही स्थान पर अटका हुआ वृतांत है। एक से अधिक एक ही प्रकार की घटनाएं घटित होती हैं, पर कोई घटना आगे बढ़कर किसी अंत पर नहीं पहुंचती। समाधान-रहित समस्या अंतहीन कहानी बन जाती है। कहानी की यह संरचना ही उसका पैगाम है।

यह निरोल चरित्र रचना भी नहीं। ऊपरी तौर पर शाम लाल विलक्षण चरित्र वाला व्यक्ति प्रतीत होता है। लेकिन, यह उसका अपना निजी चरित्र नहीं। यह चरित्र तो जातियों में बंटे समाज ने उसके ऊपर आरोपित कर दिया है। जो कुछ भी घटित होता है, वह केवल शाम लाल के चरित्र के कारण घटित नहीं होता, उच्च वर्गीय अहंकार की पहल के कारण घटित होता है। शाम लाल उच्च आदमी को उसकी पहल के प्रति सावधान भी करता है। पर इस चेतावनी का उच्च वर्ग पर कोई असर नहीं होता। तनाव उत्पन्न करने वाले ये दो दल केवल व्यक्ति वर्ग नहीं, जातिगत इकाइयां हैं। चिरकाल से स्वीकृत जाति के अधिकारों को जब कभी ललकारा जाता है तो उच्च जाति अपने अहम को दर्शाती है और तनाव अस्तित्व में आ जाता है।

इस कहानी का एक ऐतिहासिक पक्ष भी है। उच्च और निम्न जातियों के पारस्परिक संबंध एक ऐतिहासिक मोड़ पर पहुच चुके हैं। निम्न जातियों में आहिस्ता-आहिस्ता यह चेतना जाग्रत होने लगी है कि वे भी सहज-सरल इज्जत के अधिकारी हैं। वे अपने निम्न होने के प्रति सचेत हैं, पर उनमें नई चेतना आ रही है। उच्च वर्ग इस नवीन चेतना को अभी स्वीकारने की स्थिति में नहीं, वे अभी अपनी प्राचीन पूर्व-धारणाओं से मुक्त नहीं हुए। यह कहानी अदना समझे जाने वालों की नवीन चेतना और स्वयं को ऊंचा मानने वालों की पुरातन भावना का द्वंद्व प्रस्तुत करती है। द्वद्व जो मुश्किल से तनाव तक पहुंचा है, टकराव का रूप अभी इसने धारण नहीं किया।

धौल-धरम

लेखक	: नवतेज पुआधी
जन्मतिथि	: 3 मार्च, 1941
शिक्षा	: एम. ए. (राजनीति विज्ञान)
वृति	: ट्रांसपोर्ट
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: गऊ और शराब (1972), पूरा मर्द (1989), ऊंचा बुर्ज लाहौर का (1913)
पता	: 202, गौतम नगर, नई दिल्ली-110049

शक्ति अपने आदिम रूप में सिर्फ 'धौल' (लड़ाई) है जो वेग में आकर दुनिया को ही नहीं स्वयं को भी नष्ट कर सकती है। यह 'धौल' शिष्टाचारक मूल्यों से जुड़कर 'धर्म' बन जाती है और सृजनात्मक भूमिका अदा कर सकती है। धर्मविहीन 'धौल' समाज के लिए खतरा है और शक्तिविहीन 'धर्म' भी संसार में कोई सार्थक भूमिका अदा नहीं कर सकता। कोई चाल-चलन स्वयं में न तो बुरा होता है, न ही बिलकुल अच्छा। सामाजिक तौर पर पतनशील राहों पर चलकर जो नाम 'आवारा' की सूची में आ सकता है, वही

रचनात्मक रास्तों पर चलकर 'शहीद' की पदवी का अधिकारी बन सकता है। मनुष्य का चरित्र एक स्थिर बिंदु नहीं, सदैव गतिशील एक रेखा है, अचित्रित संभावनाओं को साकार करने वाली शक्ति है। गांव के चौक में खड़े होकर गालियां बकने वाला काबल सिंह देश की सीमा की रक्षा हेतु प्राण न्यौछावर करने वाला शहीद बन गया। पिता की शर्मिंदगी का कारण देश के गर्व का प्रतीक बन गया। सरल भाषा में जटिल सच को उजागर करने वाली यह कहानी मनुष्य के उद्यम को समाज-स्वीकृत मूल्यों के काम आने का संदेश देती है।

मछलियां

लेखक	: जसबीर भुल्लर
जन्मतिथि	: 4 अक्तूबर, 1941
शिक्षा	: डिप्लोमा इन रूरल सर्विसेज, एम. ए.
वृत्ति	: लेखन
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: कोरा कागज (1966), सूखी नदी के तैराक (1976), पौधों की तरह उगे जिस्म (1977), पनाहगीर (1984), अली बाबा और पागल हवा (1988), समुद्र की ओर की खिड़की।
पता	: 582, फेज-3 ए, मोहाली।

साहित्यकार आमतौर पर उसी परिवेश के बारे में लिखते हैं जिससे उनका संबंध रहा हो अथवा जिसका उन्हें व्यक्तिगत अनुभव हो। हमारे साहित्यकारों का फौजी जीवन से अधिक वास्ता नहीं पड़ता, इसलिए हमारे साहित्य में फौजी जीवन के चित्र बहुत विरले ही हैं, लगभग न होने के बराबर। जसबीर भुल्लर ने इस कमी को किसी हद तक पूरा किया है। 'मछलियां' कहानी फौजी जीवन के अनुशासन का वर्णन इस प्रकार करती है कि गंभीरता हास्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करने लग जाती है।

ऊंचे पहाड़ों पर तैनात एक फौजी डिवीजन अपने कर्तव्य का पालन कर रही है। ठंड बहुत अधिक है जिसका मुकाबला कुछ व्हिस्की और कुछ बुखारियों के द्वारा किया जाता है। मुआयना करने के लिए आर्मी कमांडर आने वाला है। उसके स्वागत के लिए बल्कि उसकी प्रसन्नता के लिए पहुंच से बाहर एक झील में से मछलियां पकड़ने का प्रबंध किया जाता है। कम समय में दुर्गम जगह पर सड़क बनाई जाती है, झील के बीचोबीच कमांडर के बैठने के लिए प्लेटफार्म तैयार किया जाता है। दूर से मंगवाकर किश्तियां झील की सतह पर टिकाई जाती हैं। झील में मछलियां नहीं हैं, अतः दूसरी जगह से मछलियां पकड़कर इस झील में फेंकने का प्रबंध किया जाता है। दुश्मन से मुकाबला करने के लिए तैयार फौजी वह हर काम कर सकते हैं जिसका फौजी आवश्यकताओं से कोई संबंध नहीं। पूरे काम का अभीष्ट यह है कि आर्मी कमांडर खुश रखा जा सके।

आर्मी कमांडर हैलीकाप्टर पर पहुंचता है। और इधर-उधर दृष्टि घुमाकर वापस लौट जाता है। न गंभीर मुआयना, न मछलियां पकड़ने का मनोरंजन। एक व्यक्ति उसके चित्र खींचता है और एक व्यक्ति उसके मुख से निकले विचित्र शब्दों को नोट करता है ताकि उन्हें किसी सैनिक अखबार में चित्र सहित प्रकाशित किया जा सके।

फौजी जीवन के इस चित्र में कर्तव्य के रस्मी पालन पर जोर दिया गया है जिसे पढ़कर पाठक के मन में उन फौजियों के लिए इज्जत नहीं जागती जो दूर-दराज और दुर्गम स्थलों पर देश की रक्षा के लिए कठिन कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। जिस प्रकार के कर्तव्य में वे व्यस्त किए जाते हैं, उन्हें देखकर हल्की-हल्की हंसी उपजती है, हंसी, जो स्वस्थ और जिम्मेदार व्यक्ति को मूर्खों से काम करते देखकर आती है। ये अडिग फौजी अनुशासन का चित्र है। क्योंकि फौजी अपने से बड़े अधिकारी के आदेश के सम्मुख प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकता, इसलिए वह रोशन दिमाग होने का भ्रम भी पैदा नहीं कर सकता। मजबूत जिस्म और बुझे हुए दिमाग का चित्र। अपनी योग्यता के बावजूद अफसरों की खुशी पर निर्भर होने की विवशता का चित्र।

ऐसी कहानियां पंजाबी में बहुत कम लिखी गई हैं। इस कहानी का कोई आरंभ नहीं, कोई अंत नहीं। यह ठहरे हुए जीवन का चित्र है। जीवन जो कहीं से शुरू होकर कहीं खत्म नहीं होता। जो है और जो इसी तरह बना रहेगा। जीवन, जहां गंभीरता और हास्यास्पदता दोनों एक-दूजे में रची-बसी हैं।

दो किनारे

लेखक : तरसेम नीलगिरी (21 फरवरी, 1942 – 6 अप्रैल, 1992)
शिक्षा : बी. ए., मैनेजमेंट डिप्लोमा (बोल्टन टैक्नीकालिज, इंग्लैंड)
वृत्ति : ब्रिटिश एअरोसपस में इंजीनियरी।

इस कहानी के विषय और प्रसंग में तनाव है। विषय इंग्लैंड में जा बसे उस भारतीय का है जो वहां के मूल निवासियों द्वारा किए गए जानलेवा हमले से बाल-बाल बचा है और अब इंग्लैंड से लौटकर भारत में बसना चाहता है। प्रसंग उन भारतीयों का है जो अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अपने देश भारत में नहीं, पराए देश अर्थात इंग्लैंड की ओर देखते हैं।

इस कहानी में मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके परिवेश के मध्य भी तनाव है। प्रायः समझा जाता है कि अपनी नियति संबंधी फैसला व्यक्ति स्वयं करता है। पर व्यक्ति अपने विषय में फैसला भी परिवेश के दबाव में आकर करता है। इस तथ्य पर ध्यान कम ही दिया जाता है। पाखर सिंह इंग्लैंड छोड़कर अपने पैतृक देश भारत आकर बसने का निर्णय लेता है तो इंग्लैंड में भारतीयों के विरुद्ध चल रहे व्यापक विरोध के कारण। उस देश में

भारतीयों के लिए इज्जत से रहना कठिन हो रहा है। और अब जब भारत में पहुंचकर भारत छोड़ने का और पुनः इंग्लैंड में जाकर बसने का फैसला करना पड़ रहा है तो भी उस तीव्र विरोध के कारण जो पाखर सिंह को अपने ही परिवार के सदस्यों की ओर से सहना पड़ रहा है। इंग्लैंड में जा बसे भारतीयों का जीवन निरी फूलों की सेज नहीं। वे अत्यंत संकटों को सहते हुए भी भारत वापस नहीं आ सकते, इसका विश्वसनीय संकेत इस कहानी से मिलता है।

इस कहानी का अर्थ तो पाखर सिंह की दो किनारों की ओर झांकती स्थिति से मिलता है, जो बहुत स्पष्ट है, पर इस कहानी का एक अपरोक्ष संदेश भी है कि देश-भक्ति केवल भावुक तथ्य है जिसके बढ़ने, फूलने अथवा पालन के लिए खुद इस देश की आर्थिक-सामाजिक अबोहवा अनुकूल नहीं है। केवल देशभक्ति किसी को परेदश की ओर जाने से रोक नहीं सकती।

तरसेम नीलगिरी ने इंग्लैंड में बस रहे भारतीय लोगों के जीवन-संकट, उनकी जटिल मानसिकता और भारत की आर्थिक बदहाली को कमाल के संतुलन से दर्शाया है।

कहानी, लेखक और पाठक के बीच स्वरूप धारण करती है। पाठक कहानी को पढ़ता ही नहीं, उसके विषय में मन ही मन प्रेत विषय (Ghost Text) भी रचता है। उसने इस कहानी को किसी निश्चित बिंदु पर खत्म नहीं कर दिया। उसने "कहां जाए?" कहकर इस काम को पाठक पर छोड़ दिया है कि वह स्वयं अपनी इच्छानुसार कहानी का अंत रचे। क्या पाखर सिंह इंग्लैंड वापस चला जाएगा? क्या वह पुनः पहले जैसे घातक हमले का निशाना बनेगा? इस बार भी वह वापस लौट आएगा? अगर वहीं दम तोड़ देगा, फिर परिवार के सदस्यों की प्रतिक्रिया कैसी होगी?

पंछी बूढ़े नहीं होते

लेखक : केवल सूद
जन्मतिथि : 1942
शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी)
प्रकाशित कहानी-संग्रह : कोई दूसरा चाणक्य, तांडव नाच।
पता : बी-1-ए/6.-ए, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058

दुनिया भर में बुढ़ापा समस्याएं पैदा करता है। बूढ़े आदमी को प्यार करने वाले लोग धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। शरीर की शक्ति भी इस हद तक कम हो जाती है कि वह स्वयं अपना काम नहीं कर सकता। ऐसी अवस्था में वह वास्तव में अकेला ही नहीं रह जाता, दुनिया के लिए निरर्थक भी हो जाता है। उसकी हालत ऐसे आवारा पिल्ले जैसी हो जाती है जिसको घर की स्त्री घर में नहीं रख सकती। घर के अंदर ही नहीं, घर के बाहर पेड़-पौधों पर कूकती

चिड़ियों की तरह लोग बूढ़ों को जैसे उड़ाकर भगा देना चाहते हैं। अगर किसी देश का शिष्टाचार बूढ़ों को घर से निकालने की स्वीकृति न देता हो तो उन्हें घर के अंदर बंद करने की जरूरत पड़ती है।

यह कहानी बूढ़ों से संबंधित हमदर्द व्यक्ति की मानसिकता का चित्र है यह कहानी। कहानी का लेखक स्वयं किसी वृद्ध माता की कहानी का श्रोता है। कहानी सुनाने वाली सुधा और कहानी सुनने वाला लेखक दोनों ही वृद्ध लोगों के हमदर्द हैं, पर दोनों को ही नहीं मालूम कि वृद्ध लोगों की समस्या से कैसे निबटा जाए। बड़े पैमाने पर 'ओल्ड हाऊसिस' का निर्माण भी इस समस्या का हल नहीं।

कहानी संतुलित हमदर्दी के स्तर पर रची गई है। इसकी अर्थ-सरंचना न उदार प्रतीत होती है और न ही कठोर। न कम, न ज्यादा। संतुलन इस कहानी का विशेष गुण है।

यह कहानी वृद्धों के बारे में सोचती है। किंतु सोच कथ्य का अंग बनी हुई है। कथानक की पात्र वृद्ध माता कभी सामने नहीं आती, वह कहानी रचने में अयोग्य हो चुकी है। वृतांत घटित नहीं होता, घटित हो चुके का कथन बनता है। पंछियों को उड़ाने के लिए उठाया गया पत्थर लेखक के हाथ से छूट जाता है। इसी प्रतीकात्मक बिंदु पर कहानी का अंत होता है।

गुमशुदा

लेखक	: कृपाल कजाक
जन्मतिथि	: 15 जनवरी, 1943
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: काला इल्म (1976), सूरजमुखी पूछते हैं (1981), आधापुल (1983)।
वृत्ति	: नौकरी, पंजाबी साहित्य अध्ययन विभाग, पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला।

कृपाल कजाक प्रगतिवाद से आगे मूल मनुष्यता तक पहुंचा हुआ कहानीकार है। उसकी कहानी में प्रगतिशील तत्व सहज ही पहचाने जा सकते हैं। किंतु उसकी कहानी की साहित्यिक सार्थकता मनुष्य के मन के उस बुनियादी गुण के साथ है जो वर्ग-भेद के आधार पर पसरा दिखाई देता है।

इस कहानी में बहुत सारे गुम हुए पात्र हैं। जमींदार बूढ़े कलाल की निर्दयता का मारा है नैनू जो बूढ़े और अपने परिवार दोनों के लिए गुम जाता है। नैनू की पत्नी गुलजारो है जो निर्दयी मालिक की निर्दयता से नहीं, सामाजिकता खो बैठे परिवार के प्रति गैर-जिम्मेदार पति के लिए गुम हो जाती है। इसमें चांद कौर है जो आधुनिक समय में महाभारतकालीन 'पांचाली' की जून भोगती है। उसको भी अपने शरीकों के दुर्योधनों, दुश्मनों के कारण

गुम होना पड़ता है। द्रौपदी की कथा अनजाने ही, उसके किस्से में पहुंच जाती है। पर आधुनिक युग की इस कहानी में द्रौपदी को अकेले ही अज्ञातवास लेना पड़ता है और अंत में वह अपना महाभारत अकेले ही अपने पैरों पर लड़ती है। साहित्य रचना केवल विचारधारा के सिर पर नहीं हो सकती, इसलिए अपने शिष्टाचार के अचेतन में पड़े मिथक का प्रयोग आवश्यक है। यह कहानी इस साहित्य-सोच का बड़ा सटीक उदाहरण है।

अपने पति द्वारा सताई गई गुमशुदा चांद कौर ने अपने गुम हो गए 'स्व' को कैसे खोजा, अपने जमींदार मालिकों के जबर से पीड़ित नैनू ने पुनः अपने गुम हुए 'स्व' को प्रकट करने की प्रेरणा कहां से प्राप्त की, इस तथ्य की खूबसूरत कथा-रचना है यह कहानी।

कैसे मार्क्सवाद से प्रभावित रचनाकार अचेत ही फ्रायडी अंतर्दृष्टियों का प्रयोग कर लेते हैं, इसका संकेत भी इस कहानी (तथा कुछ अन्य कहानियों) का प्रामाणिक प्रतीक है। इस संग्रह की तीन कहानियां (घोड़ा, जीना-मरना, और गुमशुदा) में इस प्रतीक को जाने-अनजाने इसी संदर्भ में प्रयोग किया गया है। ये तीनों कथाकार (प्रेम प्रकाश, प्रेम गोरखी और कृपाल कजाक) मार्क्सवाद से थोड़े-बहुत प्रभावित रहे हैं। मार्क्सवाद हमारे साहित्यकारों की चेतना को, उनकी मानसिकता के जागरूक पक्ष को प्रभावित करता रहा है। पर साहित्य रचना केवल जागरूक मानसिकता से नहीं रची जाती। इसलिए समूची मानसिकता प्रभावित होती है और इसको सुप्त मन की गहराइयों में से अथाह शक्ति प्राप्त होती है। इन तीन कहानियों को शक्ति 'घोड़े' के प्रतीक ने प्रदान की है। स्त्री के लिए मर्द का सहज स्वाभाविक आकर्षण (प्रेम प्रकाश : घोड़ा) जैसा प्रतीक ही इन कहानियों को सशक्त कर गया है। कृपाल कजाक ने इस घोड़े के पैरों की रस्सी खोलकर मनुष्य की दलित शक्ति को समाज-स्वीकृत कार्यों की ओर प्रवाहित करने का संकेत दिया है। यह सामाजिक रोग-ग्रंथी (Neurosis) के स्वस्थ होने की संभावनाशील कहानी है।

चक्रवात

लेखक	: बलदेव सिंह
जन्मतिथि	: 25 आषाढ़ 1943
शिक्षा	: एम. ए. (पंजाबी), बी.एड.
वृत्ति	: ट्रांसपोर्ट।
प्रकाशित कहानी-संग्रह	: गिल्लियां छिट्टियां दी अग्ग (1977), चिड़ियाखाना (1979), हवेली छावें खड़ा रब (1982), सवेरे की लौ (1989)।
पता	: 1419/20, कृष्ण नगर, मोगा-152001

यह चक्रवात ऊंचे घरों से चला और निम्न घरों में बीमारी बनकर बस गया। लावारिस बूढ़े जमींदार की निःसंतान जवान सरदारनी (पत्नी) चक्रवात का मूल स्रोत है। संतान पैदा करना

औरत की जिम्मेदारी है। सरदारनी अपने ही घर के नौजवान चूहड़े तोते की ओर आकर्षित हो गई। रात के समय ईख में दोनों मिलते हैं। रात को तोता मारा गया। इसका चश्मदीद गवाह है दूसरा चूहड़ा प्रीतू लंगड़ा। पर वह मुख से बोलते हुए डरता है। सो, वह बीमार होकर चारपाई पर पड़ जाता है।

जमींदारों और कामगारों के मध्य घटित होने वाले तनाव का ही एक रूप है यह कहानी, पर कहानीकार बलदेव सिंह ने इसको अधिक जटिल रूप प्रदान किया है। जमींदार के ट्रैक्टर के नीचे आकर 'लंगड़ा' हो जाना अथवा ईर्ष्यालू जमींदार की गोली का शिकार होकर मारा जाना, इस तनाव को अभिव्यक्त करने वाले विवरण हैं। दोनों ही स्थानों पर ज्यादती धनी और उच्च जाति के लोगों की ओर से होती है, यंत्रणा या मौत गरीब और निम्न जाति के लोगों के हिस्से में आती है। पर यह कहानी निम्न जाति के लोगों के मन में बसने वाले खौफ और खामोशी का चित्र प्रस्तुत करती है। दुनाली बंदूक वाले सरदार के हाथों हुए कत्ल का चश्मदीद गवाह उसका जिक्र नहीं कर सकता, वह उसे अपने भीतर छिपाकर बीमार पड़ सकता है।

इस कहानी में खौफजदा खामोशी एक वास्तविकता भी है और प्रतीक भी जो वास्तविकता से भी बड़े अर्थ उजागर कर देती है। बड़े लोगों के गुनाहों के गवाह निम्न लोग जो भयभीत तथा चुप रहेंगे तो किसी न किसी बीमारी का दुख भोगेंगे। उनके दुख का एक मात्र इलाज यह है कि वह बोले और अपनी गवाही दें।

इस कहानी का एक विचारणीय युक्ति यह है कि इसका बड़ा और केन्द्रीय अंश कहानीकार द्वारा नहीं सुनाया जाता। इस युक्ति की प्रतीकात्मक सार्थकता भी है। दुखी लोगों की कहानियां सुखी कहानीकार सुनाएं, यह अब तक की प्रथा है। इससे दुख की जानकारी तो होती है, दुख का निवारण नहीं होता। दुख-निवारण के लिए आवश्यक है कि दुखी लोग अपने दुख की कहानी स्वयं सुनाएं। बीमार पड़े प्रीतू लंगड़े के मुख से यह कहानी सुनकर ही कहानीकार को लगता है कि प्रीतू अब धीरे-धीरे स्वस्थ होने लग जाएगा।

इस संग्रह में तीन अच्छी कहानियां (अदना इंसान, जीना मरना, चक्रवात) निम्न और दलित वर्ग के लोगों से संबंधित हैं। पंजाबी कहानी का दृश्य व्यापक हो रहा है। उसमें नया विस्तार हो रहा है जो अब तक अनकहा रहा, उसे अभिव्यक्त किया जा रहा है।

यह कहानी मद्धम गति की शैली में लिखी गई है। यह कहानी इसी शैली में ही अच्छी लगती है। मुख्य पात्र के अंदर बहुत दिनों से कुछ कहने योग्य छिपा पड़ा था। बांध टूटता है और तथ्य और सच तेज गति से बाहर निकलते हैं।

मुद्रित : मॉडर्न प्रिन्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032